प्रवचन-क्रम

इकसठवां प्रवचन

ध्यान आंख है

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो" मं लोकं पभोसित अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।। 150।।

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयती।
सो" मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।। 151।।

अधं भूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति
सकुंतो जालमुत्तो" व अप्पो सग्गाय गच्छति।। 152।।

हंसादिच्चपथे यंति आकासे यंति इद्धिया।
नीयंति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं।। 153।।

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं।। 154।।

जब-जब भू के टुकड़े होते
जड़ जड़ता से पापों से
जब-जब नभ की गरिमा गिरती
अविवेकी अभिशापों से
जब-जब आंखें अंधी होकर
अपने पर रोया करतीं
जब-जब मन ही गल जाता है
सुलग रहे संतापों से
तब कोई मधुगायन गाता हैः
असतो मा सदगमय।
जब-जब कालिख पुत जाती है
दीवाली के माथे पर
दिशा-दिशा पर निशि छा जाती है
खो जाती है डगर-डगर
गलियां तो लुट जाया करतीं
सड़कों पर डाके पड़ते

घर-घर दीवाला हो जाता
हो जाता नीलाम नगर
तब कोई गायन गाता हैः
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
जब जीवन मरुथल बन जाता
मर जाता प्यासा प्यासा
जब अनब्याही रह जाती है
निर्धन क्वांरी अभिलाषा
लोहे की बेड़ी बन जाते
शीशे के कंगन-चूड़ी
हाथों से मेंहदी उड़ जाती
तज जाती आशा आशा
तब कोई गायन गाता हैः
मृत्योर्माऽमृतंगमय।

बुद्ध अनूठे हैं। ध्रुवतारे हैं। तारे तो बहुत, लेकिन ध्रुवतारा एक है। बुद्ध ध्रुवतारे जैसे हैं। उनके साथ मनुष्य की चेतना के इतिहास में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ। कृष्ण ने जो कहा, वह पहले से कहा जाता रहा था। उसमें नया कुछ भी न था। क्राइस्ट ने जो कहा, वह पुराने की ही नयी व्याख्या थी। व्याख्या नयी थी, लेकिन सत्य पुराने थे। अति प्राचीन थे। महावीर ने जो कहा, उसे महावीर के पहले तेईस और तीर्थंकर दोहरा चुके थे। जोड़ा--बहुत जोड़ा--लेकिन नए का कोई जन्म न था। बुद्ध के साथ कुछ नए का जन्म हुआ। बुद्ध के साथ एक क्रांति उतरी मनुष्य की चेतना में। उस क्रांति को समझना जरूरी है, तभी हम बुद्ध के वचनों को समझ पाएंगे।

ये वचन साधारण नहीं हैं, ये क्रांति के उदघोष हैं।

तुम बुद्ध को औरों के साथ मत गिन लेना। हिंदुओं ने बुद्ध को अपने दस अवतारों में गिना है। बौद्ध भी सोचते हैं कि यह बुद्ध के प्रति बड़ा सम्मान हिंदुओं ने प्रगट किया, मैं नहीं सोचता। क्योंकि बुद्ध को दस अवतारों में गिनना बुद्ध के ध्रुवतारे पर चोट करनी है। बाकी जो हिंदुओं के नौ अवतार हैं, उनमें से किसी ने भी नए को कोई सूत्रपात नहीं दिया है, कोई क्रांति उनसे प्रारंभ नहीं होती। उन्होंने शाश्वत सत्य दोहराए हैं। वे बहुमूल्य पुरुष थे, पर अनूठे नहीं। उनसे परंपरा को बल मिला, लेकिन क्रांति का जन्म नहीं हुआ।

इसलिए बुद्ध को किसी दस के साथ जोड़ना बुद्ध का अपमान है, सम्मान नहीं। बुद्ध अकेले हैं, न उन जैसा उनके पहले है कोई, न उन जैसा उनके बाद है कोई। उनके अकेलेपन में ही उनकी खूबी है। उनकी विशिष्टता यही है।

क्या क्रांति बुद्ध मनुष्य की चेतना में ले आए? समझें।

पहली बात, बुद्ध के साथ धर्म ने वैज्ञानिक होने की क्षमता जुटायी। बुद्ध के साथ धर्म वैज्ञानिक हुआ। बुद्ध के साथ विज्ञान की गरिमा धर्म को मिली। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि आज विज्ञान के युग में जब राम फीके पड़ गए हैं और क्राइस्ट के पीछे चलने वाले भी औपचारिक ही क्राइस्ट का नाम लेते हैं, महावीर की पूजा भी चलती है, लेकिन बस नाममात्र को, कामचलाऊ, बुद्ध की गरिमा बढ़ती जाती है। जैसे-जैसे विज्ञान प्रतिष्ठित

हुआ है मनुष्य की आंखों में, वैसे-वैसे बुद्ध की गरिमा बढ़ती गयी है। बुद्ध की गरिमा एक क्षण को भी घटी नहीं है। और तो सत्पुरुष पुराने पड़ गए मालूम पड़ते हैं, बुद्ध ऐसा लगता है कि अब उनका युग आया। या शायद अभी भी नहीं आया है, आने वाला है। पगध्वनि सुनायी पड़ती है कि बुद्ध का युग करीब आ रहा है। चाहे अलबर्ट आइंस्टीन हों, चाहे बर्ट्रेंड रसल, चाहे ज्यां पाल सार्त्र, चाहे कार्ल जैस्पर्स, पश्चिम के बड़े से बड़े विचारक भी, जो क्राइस्ट के सामने झुकने में बेचैनी अनुभव करते हैं, उनके सिर भी बुद्ध के सामने झुक जाते हैं।

बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि मैं ईसाई घर में पैदा हुआ और ईसाई धारणा में पाला-पोसा गया, लेकिन उससे मैंने छुटकारा पा लिया। एक बड़ी अनूठी किताब लिखी है--व्हाय आई एम नाट ए क्रिश्चियन। मैं ईसाई क्यों नहीं हूं। और सारे तर्क दिए हैं कि जीसस का व्यक्तित्व अवैज्ञानिक है, इसलिए मैं ईसाई नहीं हो सकता। लेकिन बर्ट्रेंड रसल ने भी कहा है, बुद्ध के साथ बात कुछ और है। बुद्ध को इनकार करना मुश्किल है। क्योंकि बुद्ध ने अवैज्ञानिक कोई बात ही नहीं कही। बुद्ध ने एक शब्द नहीं उच्चारा जिसे तुम तर्क से खंडित कर सको। बुद्ध ने एक बात भी नहीं कही जो बुद्धि की कसौटी पर खरी न उतरती हो।

इसका यह अर्थ नहीं है कि बुद्ध बुद्धि पर चुक जाते हैं। बुद्ध बुद्धि के पार जाते हैं। लेकिन बुद्धि का सहारा लेकर जाते हैं, बुद्धि के विपरीत नहीं, विरोध में नहीं। यह बुद्ध की पहली क्रांति है।

बुद्ध कहते हैं, बुद्धि की भी सीढ़ी बना लेंगे। इस पर चढ़ेंगे। सत्य बुद्धि के पार है, लेकिन बुद्धि-विरोधी नहीं है। एंटी इंटेलेक्चुअल नहीं है। सुपर इंटेलेक्चुअल है। इसलिए बुद्धि को छोड़ने की जरूरत नहीं है सत्य को पाने के लिए, बुद्धि को परिमार्जित, निखारने की जरूरत है। शुद्ध करने की जरूरत है। अगर बुद्धि शुद्ध न हो तो जहर है, शुद्ध हो जाए तो अमृत है। बुद्ध बुद्धिवादी हैं। यद्यपि उनकी बुद्धि बुद्धि के पार जो है उसकी तरफ इशारा करती है। इसलिए कोई बुद्धिवादी बुद्ध को इनकार नहीं कर सकता।

बुद्ध ने, जानते हो, भगवान की बात ही नहीं की, ईश्वर की बात ही नहीं की, परमात्मा का नाम ही नहीं लिया। नहीं कि बुद्ध को पता नहीं है। बुद्ध को पता न होगा तो किसको पता होगा! लेकिन नाम लेना भी अबौद्धिक मालूम पड़ता है। इसका प्रमाण नहीं जुटाया जा सकता। अगर कोई पूछे, कहां है ईश्वर, तो कैसे प्रमाण जुटाओगे? तो बुद्ध ईश्वर की बात छोड़ दिए, लेकिन अप्रामाणिक बात कहने की उन्होंने भूल नहीं की। ईश्वर के संबंध में चुप रह गए। ध्यान की बात कही। क्योंकि वे जानते हैं, जो ध्यान में उतरेगा वह एक दिन ईश्वर को जान ही लेगा, ईश्वर की बात ही क्या करनी! स्वाद ही ले लेगा, उस दिन डोल जाएगा, उस दिन मस्त हो जाएगा। लेकिन जब तक स्वाद नहीं लिया है, तब तक कहीं ऐसा न हो कि ईश्वर की बात करके ही रुकावट पड़ जाए।

तुमने देखा, बहुत लोग ईश्वर के कारण ही धार्मिक होने से रुके हैं। क्योंकि ईश्वर में ही भरोसा नहीं आता तो धार्मिक कैसे हों! बुद्ध ने नास्तिक को भी धार्मिक होने का मार्ग खोला, यह अपूर्व क्रांति है।

बुद्ध ने कहा, नास्तिक हो, ठीक है, भले हो, आओ। क्योंकि ध्यान करने में तो नास्तिक को भी क्या बाधा हो सकती है! और ध्यान रखना, जब बुद्ध कहते हैं ध्यान, तो उनका वही अर्थ नहीं होता जो दूसरों का होता है। जब मीरा कहती है ध्यान, तो उसका अर्थ होता है--कृष्ण पर ध्यान। किसी पर ध्यान। जब बुद्ध कहते हैं ध्यान, तो वे कहते हैं, जब तक कोई तुम्हारे चित्त में है तब तक ध्यान ही नहीं है। न कृष्ण, न राम, न अल्लाह। जब तक तुम्हारे चित्त में कोई है तब तक चित्त है। तब तक कैसा ध्यान? तो ध्यान का अर्थ है, चित्त से शून्य हो जाना, विचार से शून्य हो जाना। किस पर ध्यान, बात ही गलत है। ध्यान एक अवस्था है निर्विचार की। ध्यान एक अवस्था है जब तुम बिल्कुल अकेले हो, एकाकी। अकेला तुम्हारा चैतन्य बचा। निर्विकार। जरा भी बादल न रहे,

आकाश बचा, कोरा आकाश, निरभ्र आकाश, तब ध्यान। इस ध्यान को तो नास्तिक भी कर सकता है। इस ध्यान के लिए कोई भी श्रद्धा जरूरी नहीं है।

बुद्ध ने एक नया शब्द कहा--शोध। श्रद्धा नहीं, शोध। खोज। श्रद्धा का अर्थ होता है, खोजने के पहले मान लो। श्रद्धा का अर्थ होता है, मानना पहले, खोजना बाद में। लेकिन बुद्ध कहते हैं, अगर पहले मान ही लिया तो खोजोगे कैसे? फिर तो मान्यता ही बाधा बन गयी। खोज का तो अर्थ है, आंख खाली हो, कोई मान्यता न हो--न पक्ष, न विपक्ष। खोज का तो अर्थ होता है, इतना ही बोध हो कि मुझे पता नहीं और मैं पता करना चाहता हूं।

तुम अगर आस्तिक से पूछो, तो वह कहता है, ईश्वर है, मेरी श्रद्धा है। नास्तिक से पूछो, तो वह कहता है, ईश्वर नहीं है, यह मेरी श्रद्धा है। आस्तिक और नास्तिक दोनों श्रद्धालु हैं। एक ईश्वर के होने को मानता है, एक ईश्वर के न होने को। बुद्ध कहते हैं, दोनों धार्मिक न रहे। धार्मिक का तो अर्थ है कि आदमी कहेगा, मुझे पता नहीं है, मैं अंधेरे में खड़ा हूं। खोजना है। जब तक खोज न हो जाए, तब तक कैसे कहूं कि ईश्वर है या नहीं है! खोज हो जाएगी पूरी, तब कहूंगा। निष्पत्ति तो बाद में आएगी। यही तो विज्ञान की प्रक्रिया है। विज्ञान की प्रक्रिया के ये चरण हैं--पक्षपात रहितता, धारणा-शून्यता, अवलोकन--ऑब्जर्वेशन।

लेकिन अवलोकन तो हो ही नहीं सकता, अगर तुम पहले ही से मानकर चले हो। तब तो तुम वही देखते रहोगे जो तुम देखना चाहते हो। तब तो तुम्हारी आंखें तुम्हें वही दिखाती रहेंगी जो तुम देखना चाहते हो। असंभव है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे बहुत परेशान हो गयी-- शराब और शराब और शराब। कोई उपाय न दिखे उसे शराब से छुड़ाने का। तो उसे एक सूझ आयी। मुल्ला रात लौटता है शराब पीकर घर, तब करीब का रास्ता मरघट से होकर गुजरता है। तो रात के नशे में डर इत्यादि तो खो ही जाते हैं, नशे में किसका क्या होश कि मरघट है कि क्या? तो वह करीब के रास्ते ही से घर आता है। दिन में तो मरघट से नहीं निकलता। दिन में तो लंबे रास्ते से मधुशाला जाता है। लेकिन रात जब पी चुकता तो फिर वह कब्रों को ही टकराता हुआ, कब्रों पर ही गिरता हुआ घर लौटता। तो उसे एक सूझ आयी पत्नी को कि अब और तो कोई उपाय नहीं है, तो कुछ यह तरकीब की जाए।

वह एक रात जाकर एक कब्र के पीछे छिप गयी। काला कपड़ा पहन लिया, मुंह पर कालिख लगा ली, भूत बनकर छिप गयी। कि शायद घबड़ा जाए, डर जाए, तो उसी डर में, घबड़ाहट की हालत में इससे वचन ले लेना जरूरी है। जब मुल्ला वहां से निकला लड़खड़ाता हुआ तो वह एकदम से कब्र के ऊपर से छलांग लगाकर उसके सामने कूदकर खड़ी हो गयी। एक क्षण को तो वह चौंका, फिर बोला, अरे! पत्नी खूब जोर से चिल्लायी कि घबड़ा जाए। मगर वह बोला, चिल्लाओ करो मत, पहचाना नहीं मैं कौन हूं, मुल्ला ने उससे कहा। उसकी पत्नी ने कहा, कौन हो? उसने कहा, मैं हूं मुल्ला नसरुद्दीन और तुम हो मेरे साले। अपनी बहन को भी भूल गए? तुम्हारी बहन से तो मेरी शादी हुई है। चेहरा कुछ पहचाना हुआ सा लगा तो उसने सोचा, हो न हो मेरी पत्नी का भाई है। आओ, हाथ मिलाओ और घर चलो, तुम्हारी बहन बड़ी खुश होगी।

धारणा पहले से हो, पहले से एक आकृति मन में हो तो उसी आकृति के सहारे तुम देखोगे। वह चीख-पुकार तो पत्नी की पहचानी हुई थी, कई दफे चीख चुकी, पुकार चुकी, इस तरह का विकराल रूप घर में भी रख लेती है--घर में पत्नियां बड़ा विकराल रूप रख लेती हैं, इसीलिए तो बाहर निकलते वक्त उनको साज-संवरने में बड़ी देर लग जाती है। क्योंकि घर तो वे चंडी होती है। तो वह तो यह रूप घर देख चुका था कई दफा, पहचाना

हुआ रूप था। यद्यपि स्थान नया था, मरघट था, कालिख भी लगा ली थी मुंह पर, बाल बिखरा लिए थे, काले कपड़े पहन लिए थे, तो भी फर्क न पड़ा। पहचान गया।

तुम्हारी आंख में जब कोई आकृति बसी हो तो तुम उसे खोज ही लोगे। हम वही सुनते हैं जो हमारी धारणा है। हम वही देखते हैं जो हमारी धारणा है। विज्ञान का अनिवार्य चरण है कि तुम निर्धारणा से जाओ। तुम पहले से ख्याल लेकर मत जाना। शून्य मन जाओ, नग्न मन जाओ। तो अवलोकन होगा।

फिर परीक्षण करो। क्योंकि अवलोकन से कुछ नहीं होता। जो बात पहली दफे समझ में आ गयी हो, उसे कई तरफ से जांचो-परखो, बहुत प्रयोग करो, जब हर प्रयोग में एक ही नतीजा आए और कभी अपवाद न हो, तब कुछ रास्ता है, तो अनुभव होगा। अनुभव से निष्पत्ति होगी। श्रद्धा बाद में। श्रद्धा पहला कदम नहीं है विज्ञान में। पहला कदम संदेह, अंतिम कदम श्रद्धा।

जिसको तुम धर्म कहते हो, आमतौर से उसमें श्रद्धा पहला कदम और संदेह की तो कोई जगह ही नहीं है। इसलिए बहुत बुद्धिमान लोगों को मजबूरी में अधार्मिक रहना पड़ता है। क्योंकि यह बात उनकी पकड़ ही में नहीं आती। संदेह को कहां ले जाएं? है तो है! और अगर परमात्मा ने दिया है संदेह तो उसे काटकर कैसे फेंक दें? उसका कोई उपयोग होना चाहिए।

इसलिए मैं कहता हूं, बुद्ध ने अनूठी बात कही। बुद्ध ने कहा, संदेह का उपयोग हो सकता है। संदेह को श्रद्धा की सेवा में लगाया जा सकता है। संदेह श्रद्धा के विपरीत नहीं है। संदेह के ही सहारे श्रद्धा खोजी जा सकती है।

यही तो विज्ञान करता है, संदेह के सहारे श्रद्धा खोजता है। और वैज्ञानिक जब एक निष्पत्ति पर पहुंचता है तो संदेह का कारण ही नहीं रह जाता। सब परीक्षण कर लिए, अवलोकन कर लिया, सब तरह से जांच-परख कर ली, ऐसा पाया। तथ्य। धारणा नहीं, तथ्य।

बुद्ध का एक नाम है तथागत। उसका अर्थ होता है, जो जगत में तथ्य को लाया। जिसके द्वारा जगत में तथ्य आया। इसके पहले कल्पनाएं थीं, धारणाएं थीं, विश्वास थे। तथागत प्यारा शब्द है। उसके बहुत अर्थ होते हैं। उसका एक अर्थ यह भी होता है--आगत का अर्थ होता है, आया; और तथा का अर्थ होता है, तथ्य--जिसके द्वारा तथा, तथ्य जगत में उतरा। जिसने सत्य को तथ्य के माध्यम से खोजने के लिए कहा। जिसने श्रद्धा की शोध संदेह के द्वारा करने को कहा। यह बड़ी कीमिया है कि हम संदेह का उपयोग श्रद्धा को पाने के लिए कर लें।

केशर-कस्तूरी नहीं
मैली राख
कर सकती है पावन
कनक-रजत के जूठे पात्र
तुमने देखा, जूठे पात्र को साफ करना हो--
केशर-कस्तूरी नहीं
मैली राख
कर सकती है पावन
कनक-रजत के जूठे पात्र

स्वर्ण और चांदी के बने जूठे पात्रों को साफ करना हो तो राख का सहारा लेना पड़ता है। केशर-कस्तूरी से थोड़े ही पात्र शुद्ध होते हैं, राख से शुद्ध होते हैं। और राख क्या शुद्ध करेगी, तुम कहोगे, राख तो खुद ही शुद्ध नहीं है। ऐसा ही संदेह है। ऊपर से देखोगे राख, लेकिन अगर इसका उपयोग कर लो तो तुम्हारी आत्मा के रजत-कनक के पात्र इससे शुद्ध हो जाते हैं।

बुद्ध ने संदेह को शुद्धि के लिए उपयोग कर लिया। और कलाकार वही है जो व्यर्थ का भी सार्थक उपयोग कर ले। गुणी वही है जो कांटे को भी फूल बना ले। काट देना कोई गुण नहीं है, उपयोग कर लेना, सृजनात्मक उपयोग कर लेना गुण है।

विज्ञान कहता है, निरपेक्ष रहो, कोई अपेक्षा लेकर सत्य के पास मत जाओ। आंखें खाली हों, ताकि तुम वही देख सको जो है। यथावत। तथावत। तुम अगर पहले से ही कुछ मानकर चल पड़े हो तो वही देख लोगे। तुम्हारी कल्पना का प्रक्षेपण हो जाएगा।

मेरे एक मित्र थे--बूढ़े आदमी थे, अब तो चल बसे--महात्मा भगवानदीन। अनूठे व्यक्ति थे। एक महानगर में कुछ पैसे इकट्ठे करने गए थे--कहीं एक आश्रम बनाते थे। सीधे-साधे आदमी थे। बस एक अंडरवियर पहने रहते थे, कभी-कभी सर्दी इत्यादि में एक चादर भी डाल लेते थे। वह अंडरवियर पहने ही वे दुकानों पर गए। किसी ने चार आने दिए, किसी ने आठ आने दिए, किसी ने रुपया दिया। सांझ जब मुझे मिले, उन्होंने कहा, इतना बड़ा नगर है, कुल बीस रुपए इकट्ठे हुए!

मैंने कहा, आप पागल हो, यह कोई ढंग है? आपको महात्मा होना आता ही नहीं। मुझसे पूछा होता। यह जाने का ढंग ही नहीं। अब दो-चार दिन रुक जाओ, दो-चार दिन जाओ मत, लोगों को भूल जाने दो। उन्होंने कहा, क्यों फिर क्या होगा? मैंने कहा, देखेंगे।

चार दिन बीत जाने के बाद अखबार में मैंने खबर दिलवायी कि बड़े महात्मा गांव में आए हैं--महात्मा भगवानदीन। और चार-छह मित्रों को कहा कि जरा डुग्गी पीटो, उनकी खबर करो गांव में। फिर पंद्रह-बीस मित्रों को इकट्ठा कर दिया, मैंने कहा, इनको साथ लेकर अब जाएं--उन्हीं दुकानों पर जाना जिनसे चार आने और आठ आने और बारह आने पाए थे।

वह उन्हीं दुकानों पर गए, वे लोग उठ-उठकर चरण छुएं कि महात्माजी आइए, बैठिए, बड़ी कृपा की। अखबार में पढ़ा कि आप आए हैं। और बीस-पच्चीस आदमियों की भीड़! जिसने चार आने दिए थे उसने पांच सौ रुपए दिए, जिसने आठ आने दिए थे उसने हजार रुपए दिए। जब वह सांझ को लौटे तो बीस रुपए नहीं, बीस हजार रुपए इकट्ठे करके लौटे।

मैंने पूछा, कहो कैसी रही! लोग प्रचार को देते हैं, विज्ञापन को देते हैं। लोग तुम्हें थोड़े ही देते हैं, कि तुम चले गए अपना अंडरवियर पहनकर! चार आने दे दिए, यही बहुत! तुमसे अंडरवियर नहीं छीन लिया उन लोगों ने, भले लोग हैं। नहीं तो धक्का मारकर निकालते अलग और अंडरवियर छीन लेते सो अलग।

मगर, वह कहने लगे, आश्चर्य की बात है, कि उन्हीं दुकानों पर गया और बुद्धुओं को यह भी न दिखायी पड़ा कि मैं पहले चार आने लेकर चला गया हूं!

देखता कौन है! वह चार आने तुम्हें थोड़े दिए थे, हटाने को दिए थे, कि जो भी हो, चलो हटो! फुर्सत किसको है? धारणा! जब धारणा हो मन में कि कोई महात्मा है तो फिर महात्मा दिखायी पड़ने लगता है। चोर हो तो चोर दिखायी पड़ने लगता है।

एक आदमी के घर बगीचे में काम करते वक्त उसकी खुर्पी खो गयी। तो उसने चारों तरफ देखा, एक पड़ोस का लड़का जा रहा था, बिल्कुल चोर मालूम पड़ा, उसने कहा हो न हो यही शैतान खुर्पी ले गया। फिर दो-तीन दिन उसने उसकी जांच-परख की, जहां भी दिखायी पड़े तब गौर से देखे, बिल्कुल चोर मालूम पड़े। चाल से चोर, आंख से चोर, हर तरह से चोर। और तीसरे-चौथे दिन अपने बगीचे में काम करते वक्त एक झाड़ी में पड़ी हुई वह खुर्पी मिल गयी। अरे, उसने कहा, खुर्पी तो यहीं पड़ी है! फिर उस दिन उस लड़के को देखा, वह एकदम भला सज्जन मालूम पड़ने लगा। न उसने खुर्पी उठायी थी, न उसे कुछ पता है कि क्या हुआ, लेकिन धारणा।

जब तुम्हारी धारणा हो कि फलां आदमी चोर, तो तुम्हें चोर दिखायी पड़ने लगेगा। जब तुम्हारी धारणा हो कि फलां आदमी साधु, तुम्हें साधु दिखायी पड़ने लगेगा। ये सत्य को खोजने के ढंग नहीं। धारणा अगर पहले ही बना ली तो तुम तो असत्य में जीने की कसम खा लिए।

तो बुद्ध ने कहा, कोई धारणा नहीं। कोई शास्त्र लेकर सत्य के पास मत जाना। सत्य के पास तो जाना निर्वस्त्र और नग्न, शून्य; दर्पण की भांति जाना सत्य के पास। तो जो हो, वही झलके। तो ही जान पाओगे।

अब मैं तुमसे दूसरी बात कहना चाहता हूं कि विज्ञान से भी कठिन काम बुद्ध ने किया। क्योंकि विज्ञान तो कहता है, वस्तुओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना। वस्तुओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना तो बहुत सरल है, लेकिन स्वयं के प्रति निरपेक्ष भाव रखना बहुत कठिन है। बुद्ध ने वही कहा। विज्ञान तो बहिर्मुखी है, बुद्ध का विज्ञान अंतर्मुखी है। धर्म का अर्थ होता है, अंतर्मुखी विज्ञान। बुद्ध ने कहा, जैसे दूसरे को देखते हो बिना किसी धारणा के, ऐसे ही अपने को भी देखना बिना किसी धारणा के।

यह जरा कठिन बात है। करीब-करीब असंभव जैसी। क्योंकि हम अपने को तो बिना धारणा के देख ही नहीं पाते। हम तो सब अपनी-अपनी मूर्तियां बनाए बैठे हैं। हम सबने तो मान रखा है कि हम क्या हैं, कैसे हैं, कौन हैं। पता कुछ भी नहीं है, मान सब रखा है। इसीलिए रोज दुख उठाते हैं। क्योंकि कोई हमें गाली दे देता है तो हमें कष्ट हो जाता है। क्योंकि हमने तो मान रखा था कि लोग हमारी पूजा करें और लोग गाली दे रहे हैं। कोई पत्थर फेंक देता है तो हम क्रोधित हो जाते हैं, क्योंकि हमने तो मान रखा था कि लोग फूलमालाएं चढ़ाएंगे, लोग पत्थर फेंक रहे हैं। हमारी धारणाएं हैं अपनी। हमने मन में अपनी एक स्वर्ण-प्र्तिमा बना रखी है। कल्पनाओं की, सपनों की, इंद्रधनुषी।

बुद्ध कहते हैं, ये प्रतिमाएं भी छोड़ो। नहीं तो तुम आत्म-साक्षात्कार न कर सकोगे। तुम कौन हो, यह धारणा छोड़ो। हिंदू कि मुसलमान कि ईसाई कि जैन। तुम कौन हो, ब्राह्मण कि शूद्र कि क्षत्रिय? तुम कौन हो, साधु कि असाधु? ये सब धारणाएं छोड़ो। तुम निर्धारणा होकर भीतर उतरो। अभी तुम्हें कुछ भी पता नहीं है कि तुम कौन हो। और ये सब धारणाएं बहुत छोटी हैं। असाधु की धारणा तो व्यर्थ है ही, साधु की धारणा भी व्यर्थ है। क्योंकि जिसे तुम भीतर विराजमान पाओगे, वह स्वयं परमात्मा है। ये तुम कहां की छोटी-छोटी धारणाएं लेकर चले हो! इन छोटी-छोटी धारणाओं के कारण वह विराट नहीं दिख पाता। आंखें इतनी छोटी हैं, विराट समाए कहां? तुमने सीमाएं इतनी छोटी बना ली हैं, बड़ा उतरे कैसे? तो तुम अपने भीतर भी टटोलते हो तो बस धारणाओं में ही उलझे रहते हो।

बुद्ध ने कहा, भीतर भी ऐसे जाओ जैसे तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। शांत, मौन, अपने अज्ञान को धारण किए भीतर जाओ। तब वही दिखायी पड़ेगा, जो है। और जो दिखायी पड़ेगा वही आंखें खोल देगा। ध्यानी आंख

बंद करके ध्यान करने बैठता है, लेकिन जब ध्यान हो जाता है तो आंख ऐसी खुलती है कि फिर कभी बंद ही नहीं होती। फिर सदा के लिए खुली रह जाती है।

जिनको तुमने अपना विचार मान रखा है, कभी ख्याल किया, वे क्या हैं? मैं हिंदू, मुसलमान, कि ब्राह्मण, कि शूद्र, कि अच्छा, कि बुरा, कि ऐसा, कि वैसा, ये तुमने जो मान रखे हैं विचार, ये तुम्हारे हैं? ये सब उधार हैं। मन तो एक चौराहा है, जिस पर विचार के यात्री गुजरते रहते हैं। तुम्हारा इसमें कुछ भी नहीं है।

मैं एक घर में मेहमान था। दो बच्चे सीढ़ियों पर बैठकर बड़ा झगड़ा कर रहे थे। तो मैंने पूछा, मामला क्या है? जब मारपीट पर नौबत आ गयी तो मैं उठा और बाहर गया, मैंने कहा, रुको, बात क्या है? अभी तो भले-चंगे बैठे खेल रहे थे। उन्होंने कहा कि इसने मेरी कार ले ली। मैंने कहा, कहां की कार? तो उन्होंने कहा, आप समझे नहीं, आपको खेल का पता ही नहीं है। मैंने कहा कि खेल मुझे समझाओ। तो उन्होंने कहा, बात यह है कि रास्ते से जो कारें गुजरती हैं, जो पहले देख ले वह उसकी। अभी एक काली कार गुजरी, वह मैंने पहले देखी और यह कहता है कि मेरी! इससे झगड़ा हो गया है।

अब सड़क से कारें गुजर रही हैं और दो बच्चे लड़ रहे हैं कि किसकी और बंटवारा कर रहे हैं। कार वालों को पता ही नहीं है! कि यहां मुकदमे की नौबत आ गयी, मारपीट की हालत हुई जा रही है।

विचार भी ऐसे ही हैं। तुम्हारे मन के रास्ते से गुजरते हैं इसलिए तुम्हारे हैं, ऐसा मत मान लेना। तुम्हारा कौन सा विचार है? जैन-घर में पैदा हो गए, मां-बाप ने कहा तुम जैन हो--एक कार गुजरी। तुमने पकड़ी, कि मेरी। मुसलमान-घर में रख दिए गए होते तो मुसलमान हो जाते। हिंदू-घर में रख दिए गए होते तो हिंदू हो जाते। संयोग की बात थी कि तुम रास्ते के किनारे खड़े थे और कार गुजरी। यह संयोग था कि तुम जैन-घर में पैदा हुए कि हिंदू-घर में पैदा हुए। यह संयोगमात्र है, इससे न तुम हिंदू होते हो, न जैन होते हो। मगर हो गए। तुमने पकड़ ली बात।

किसी ने समझा दिया ब्राह्मण हो, तिलक-टीका लगा दिया, जनेऊ पहना दिया। कैसे-कैसे बुद्धू बनाने के रास्ते हैं। और सरलता से तुम बुद्धू बन गए। और तुमने मान लिया कि बस मैं ब्राह्मण हूं। और तुम शूद्र को हिकारत की नजर से देखने लगे। और अपने पीछे तुमने अकड़ पाल ली। और फिर ऐसा ही तुमने गीता पढ़ी, और कुरान पढ़ी और बाइबिल पढ़ी और विचारों कीशृंखला तुम्हारे भीतर चलने लगी, तैरने लगी, रास्ते पर ट्रैफिक बढ़ता चला गया और तुम सारे ट्रैफिक के मालिक हो गए। तुम्हारा इसमें क्या है? तुम्हारा इसमें कोई भी विचार नहीं है। और फिर तुमने यह भी देखा, विचार कितने जल्दी बदल जाते हैं। विचार बड़े अवसरवादी हैं, विचार बड़े राजनीतिज्ञ हैं। पार्टी बदलने में देर नहीं लगती। जब जैसा मौका हो।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने घोड़े को बांधकर एक दुकान पर सामान खरीदने गया है। जब वह लौटकर आया तो किसी ने घोड़े पर लाल पेंट कर दिया। घोड़े पर! तो बड़ा नाराज हुआ कि यह कौन आदमी है, किसने शरारत की? तो किसी ने कहा, यह सामने जो शराबघर है, उसमें से एक आदमी आया और उसने इसको पोत दिया। कोई पीए होगा।

तो मुल्ला बड़े क्रोध में भीतर गया, और उसने कहा कि किस नालायक ने मेरे घोड़े पर लाल रंग पोता है? हड्डी-हड्डी निकालकर रख दूंगा, कौन है, खड़ा हो जाए! जब आदमी खड़ा हुआ तो बड़ा घबड़ाया। कोई साढ़े छह फीट लंबे एक सरदार जी खड़े हो गए! मुल्ला थोड़ा सहमा। उसने कहा यह हड्डी वगैरह तो निकालना दूर है, अपनी हड्डियां बच जाएं तो बहुत है। उसने, सरदार ने कहा, बोलो, क्या विचार है? क्या कह रहे थे? किसलिए

आए हो? मुल्ला ने कहा, अरे सरदार जी! मैं यह कहने आया हूं कि घोड़े पर पहली कोट तो सूख गयी, दूसरी कोट कब करोगे? बड़ी कृपा की घोड़ा रंग दिया, मगर पहली कोट बिल्कुल सूख गयी है।

ऐसे बदल जाते हैं विचार। विचार बड़े अवसरवादी हैं। विचारों का बहुत भरोसा मत करना, मन राजनीतिज्ञ है। और जो मन में पड़ा रहा, वह राजनीति में पड़ा रहता है। इसलिए मैं कहता हूं, धार्मिक आदमी राजनीतिज्ञ नहीं हो सकता। क्योंकि धार्मिक होने का अर्थ है, मन के पार गया। मन के पीछे जो चैतन्य है, उसमें विराजमान हुआ। विचारों की इस भीड़ से हटो। लेकिन जब तक तुम पकड़े रहोगे, कैसे हटोगे? विचारों की भीड़ ने ही तुम्हें बेईमान बनाया है, पाखंडी बनाया है, अवसरवादी बनाया है।

मन रोग है। इससे अपने हाथ धो लो। बे-मन हो जाओ। समाधि का इतना ही अर्थ है, ध्यान का इतना ही अर्थ है कि किसी तरह मन से तुम्हारा तादात्म्य छूट जाए। और तुम रोज देखते हो कि यह मन तुम्हें कैसे-कैसे धोखे दिए जाता है और इस मन के द्वारा तुम दूसरों को धोखा दे रहे हो। और यह मन तुमको धोखा दे रहा है।

मैंने सुना है कि जंगल के जानवरों को आदमियों का एक दफे रोग लग गया। जंगल में दौड़ती जीपें और झंडे और चुनाव! जानवरों ने कहा, हमको भी चुनाव करना चाहिए। लोकतंत्र हमें भी चाहिए। बड़ी अशांति फैल गयी जंगल में। सिंह ने भी देखा कि अगर लोकतंत्र का साथ न दे तो उसका सिंहासन डांवाडोल हो जाएगा। तो उसने कहा, भई, हम तो पहले ही से लोकतंत्री हैं। खतम करो इमरजेंसी, चुनाव होगा। चुनाव होने लगा। अब बिचारे सिंह को घर-घर, द्वार-द्वार हाथ जोड़कर खड़ा होना पड़ा। गधों से बाप कहना पड़े।

एक लोमड़ी उसके साथ चलती थी, सलाहकार, जैसे दिल्ली में होते हैं। उस लोमड़ी ने कहा, एक बात बड़ी कठिन है। आप अभी-अभी भेड़ों से मिलकर आए और आपने भेड़ों से कहा कि तुम्हारे हित के लिए ही खड़ा हुआ हूं। तुम्हारा विकास हो। सदा से तुम्हारा शोषण किया गया है, प्यारी भेड़ो, तुम्हारे ही लिए मैं खड़ा हुआ हूं। आपने भेड़ों से यह कह दिया है। और आप भेड़ों के दुश्मन भेड़ियों के पास भी कल गए थे और उनसे भी आप कह रहे थे कि प्यारे भेड़ियो, तुम्हारे हित के लिए मैं खड़ा हूं। तुम्हारा हित हो, तुम्हें रोज-रोज नयी-नयी जवान-जवान भेड़ें खाने को मिलें, यही तो हमारा लक्ष्य है। तो लोमड़ी ने कहा, यह तो ठीक है कि इधर तुमने भेड़ों को भी समझा दिया है, भेड़ियों को भी समझा दिया है। और अगर अब दोनों कभी साथ-साथ मिल जाएं, फिर क्या करोगे?

उसने कहा, तुम गांधी बाबा का नाम सुने कि नहीं? सुने, उस लोमड़ी ने कहा, गांधी बाबा का नाम सुने। तो उन्होंने कहा, गांधी बाबा हर तरकीब छोड़ गए हैं। जब दोनों साथ मिल जाते हैं तब मैं कहता हूं, मैं सर्वोदयी हूं, सबका उदय चाहता हूं। भेड़ों का भी उदय हो, भेड़ियों का भी उदय हो, सबका उदय चाहता हूं। जब अकेले-अकेले मिलता हूं तो उनका बता देता हूं, जब सबको मिला तो सर्वोदयी की बात कर देता हूं।

यह सर्वोदय शब्द भी सोचने जैसा है। पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, जान रस्किन। उसने एक किताब लिखी है--अनटू दिस लास्ट। अफ्रीका में महात्मा गांधी को किसी ने वह किताब भेंट की। उस किताब से वह बहुत प्रभावित हुए। उसका उन्होंने गुजराती में अनुवाद किया। तो किताब को क्या नाम दें? किताब का ठीक-ठीक नाम अगर अनुवाद करना हो तो होगा--अंत्योदय। उन्होंने नाम दिया--सर्वोदय। अनटू दिस लास्ट--यह जो आखिरी आदमी है, इसका विकास हो--तो अंत्योदय। अगर मैं अनुवाद करूं तो अंत्योदय करूंगा, सर्वोदय तो नहीं कर सकता। यह तो बेईमानी का शब्द है।

और अनटू दिस लास्ट का मतलब होता भी नहीं सर्वोदय। क्योंकि जो आगे खड़े हैं और जो पीछे खड़े हैं, अगर सबका उदय होता रहे साथ-साथ, तो जो आगे हैं वे आगे रहेंगे, जो पीछे हैं वे पीछे रहेंगे, फासला बराबर

उतना का उतना रहेगा। जो आगे खड़ा है, उसे थोड़ा रोकना पड़ेगा ताकि पीछे वाला आगे बढ़े और साथ हो जाए। अंत्योदय ठीक अनुवाद होगा, लेकिन गांधीजी ने सर्वोदय शब्द चुना उसके लिए। क्योंकि गांधीजी को लगेगा, लगा होगा कि अगर अंत्योदय की बात करो, भेड़ों की तो बात हो गयी, लेकिन भेड़ियों का क्या? फिर बिड़ला और जमनालाल बजाज, इनका क्या? सर्वोदय बात ज्यादा राजनीतिज्ञ लगती है।

यह शब्द कुछ नया नहीं है। एक जैन-दार्शनिक समंत भद्राचार्य ने हजारों साल पहले इस शब्द का प्रयोग किया है--सर्वोदय। लेकिन बड़े दूसरे अर्थ में। तब तो अर्थ ठीक था। समंत भद्राचार्य ने सर्वोदय शब्द का प्रयोग किया है महावीर के लिए कि तुम सर्वोदय-तीर्थ हो। क्योंकि तुम्हारे घाट से ब्राह्मण भी उतर जाता, शूद्र भी उतर जाता, क्षत्रिय भी उतर जाता, वैश्य भी उतर जाता। तुम्हारा तीर्थ सबके लिए है। यह तो ठीक था, यह धार्मिक अर्थ था सर्वोदय का। लेकिन गांधी ने उसे राजनीतिक अर्थ दिया और अंत्योदय को सर्वोदय में बदल दिया।

लेकिन तुम एक मजे की बात देखोगे, पार्टी कोई भी हो, कांग्रेस हो--पुरानी कि नयी--कि जनता पार्टी हो, यहां तक कि समाजवादी भी, पार्टी कोई भी हो, लेकिन सब कहेंगे कि महात्मा गांधी के अनुयायी हैं हम। कुछ बात है गांधी बाबा में। समय पर काम पड़ते हैं। कुछ तरकीब है। तरकीब है--अवसरवादिता के लिए सुविधा है। तो शेर भी कहता है कि मैं जब दोनों को साथ-साथ मिल जाता हूं तब सर्वोदय की बात करता हूं।

तुम अपने मन को जांचो। तुम बड़ी राजनीति मन में पाओगे। तुम चकित होओगे देखकर कि तुम्हारा मन कितना अवसरवादी है। जब जो तुम्हारे अनुकूल पड़ जाता है, उसी को तुम स्वीकार कर लेते हो। जब जिस चीज से जिस तरह शोषण हो सके, तुम वैसा ही शोषण कर लेते हो। जब जैसा स्वांग रचना पड़े, वैसा ही स्वांग रच लेते हो।

अगर ऐसा ही चलता रहा यह स्वांग रचने का खेल तो आत्मबोध कभी भी न हो सकेगा। कितने तो स्वांग तुम रच चुके। कभी जंगली जानवर थे, कभी वृक्ष थे, कभी पशु-पक्षी थे; कभी कुछ, कभी कुछ; कभी स्त्री, कभी पुरुष; कितने स्वांग तुम रच चुके। अनंत-अनंत यात्रापथ पर। कितने विचारों के चक्कर में तुमने कितने स्वांग रचे। कितनी योनियों में तुम उतरे। और अभी भी चक्कर जारी है।

बुद्ध कहते हैं, जो मन से मुक्त हो गया वह आवागमन से मुक्त हो गया। क्योंकि मन ही तुम्हारे आवागमन को चलाता है। मन चलता है और तुम्हें चलाता है। मन का चलना रुक जाए तो तुम्हारा चलना भी रुक जाए। इस यात्रा का जो पहला कदम है, वह है मन के साथ तादात्म्य तोड़ लेना। मैं मन नहीं हूं, तो फिर मन के विचारों से क्या संबंध? तो न तो ईश्वर के संबंध में कोई विचार लेकर चलना, न आत्मा के संबंध में कोई विचार लेकर चलना, न शुभ-अशुभ के संबंध में कोई विचार लेकर चलना। विचार को पकड़कर चलने वाला निर्विचार तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। विचार को छोड़ना है और निर्विचार में थिर होना है। यह महाक्रांति बुद्ध संसार में लाए।

एक बात और, फिर हम सूत्रों में उतरें।

पश्चिम का एक बड़ा विचारक है, कार्ल गुस्ताव जुंग। उसने एक महत्वपूर्ण बात खोजी--नयी नहीं है, कहना चाहिए पुनः खोजी। क्योंकि इस देश को और पूर्वी मनीषा को यह तथ्य हजारों साल से ज्ञात है। कार्ल गुस्ताव जुंग ने यह खोजा कि कोई पुरुष सिर्फ पुरुष ही नहीं है, उसके भीतर स्त्री भी छिपी है। और कोई स्त्री सिर्फ स्त्री नहीं है, उसके भीतर पुरुष भी छिपा है।

यह स्वाभाविक भी है, वैज्ञानिक भी है। क्योंकि प्रत्येक का जन्म दो के मिलने से हुआ है--पुरुष और स्त्री के मिलने से। तुम्हारी मां और तुम्हारे पिता के मिलन से तुम पैदा हुए हो। तो कुछ तुम्हारे पिता का तुममें आया है, कुछ तुम्हारी मां का तुममें आया है। तो तुम न तो एकदम पुरुष हो सकते हो, न एकदम स्त्री हो सकते हो। सौ प्रतिशत पुरुष होता ही नहीं। और न सौ प्रतिशत कोई स्त्री होती है। भेद ऐसा होता है कि साठ प्रतिशत पुरुष, चालीस प्रतिशत स्त्री; तो तुम पुरुष। या तुम स्त्री--साठ प्रतिशत स्त्री और चालीस प्रतिशत पुरुष, तो तुम स्त्री। लेकिन भेद ऐसा ही होता है, थोड़ा सा।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्त्री छिपी है और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पुरुष छिपा है। मनुष्य द्विलिंगीय है, बायो-सेक्सुअल है। इस तथ्य को मैं क्यों तुमसे कहना चाहता हूं, क्योंकि इस तथ्य के सहारे कुछ बातें समझ में आ जाएंगी।

पहली बात, तुम्हारे भीतर जो पुरुष छिपा है, उस पुरुष के कुछ लक्षण हैं। तर्क, सक्रियता, आक्रमण, हमला, पुरुष के लक्षण हैं। और तुम्हारे भीतर जो स्त्री छिपी है, उसके कुछ लक्षण हैं--प्रेम, स्वीकार, भावना, कल्पना, समर्पण। पुरुष का लक्षण है संकल्प, स्त्री का लक्षण है समर्पण। पुरुष का लक्षण है ज्ञान, स्त्री का लक्षण है भक्ति। पुरुष का लक्षण है सत्य की खोज पर जाना, स्त्री का लक्षण है सत्य के आने की प्रतीक्षा करना। ये दोनों तुम्हारे भीतर छिपे हैं।

तो तुम्हारे भीतर का पुरुष अगर बहुत सक्रिय हो जाए और वस्तु-जगत में भी अगर पुरुष को ही खोजे, तुम्हारा पुरुष अगर वस्तु-जगत में भी पुरुष को ही खोजे, तो तुम वैज्ञानिक बन जाओगे। इसलिए वैज्ञानिक कठोर तर्क से जीता है और कठोर सत्य की खोज करता है। एक सुंदर फूल लगा है। अगर वैज्ञानिक आएगा तो सौंदर्य नहीं देखेगा फूल में, वह देखेगा, किन रासायनिक द्रव्यों से मिलकर बना है फूल। उसमें जो कोमल तत्व है फूल में, उसे चूक जाएगा। जो कठोर तत्व है, उसको पकड़ लेगा।

वैज्ञानिक पुरुष की पुरुष से मिलन की अवस्था है। इसलिए विज्ञान एक तरह की होमोसेक्सुअलिटी है, समलिंगीयता है। पुरुष पुरुष की खोज कर रहा है, जैसे पुरुष पुरुष के प्रेम में पड़ गया है। इससे खोज तो होती है, लेकिन बहुत सृजन नहीं होता, क्योंकि पुरुष और पुरुष के साथ कैसे सृजन हो सकता है!

फिर एक दूसरी इससे विपरीत दशा है कि तुम्हारे भीतर की स्त्री सारे जगत में व्याप्त स्त्रैण-तत्व की खोज करे, तुम्हारे भीतर की कोमलता जगत की कोमलता की खोज करे। इससे काव्य का जन्म होता है, कला का।

तो तुम कवि को देखते हो, स्त्रैण हो जाता है--लंबे बाल बढ़ाए है, ढीले-ढाले कपड़े पहने है, रंग-बिरंगे कपड़े पहने है। और अगर तुम फूल दिखाओ तो उसको रासायनिक द्रव्य नहीं दिखायी पड़ेंगे। फूल का सौंदर्य, फूल का रंग, फूल की सुगंध, कोमल तत्व उसे दिखायी पड़ेंगे।

अगर तुम चांद दिखाओ तो वैज्ञानिक देखेगा चांद में पत्थर, पहाड़, झीलें, कुछ इस तरह की चीजें देखेगा। अगर कवि को तुम दिखाओ चांद तो उसे अपनी प्रेयसी का मुख दिखायी पड़ेगा, कि खिलता हुआ कमल दिखायी पड़ेगा, कि काव्य का जन्म होगा।

तो कवि है स्त्री-तत्व के द्वारा स्त्री-तत्व की खोज। वह भी होमोसेक्सुअलिटी है। क्योंकि दो स्त्रियों के प्रेम से फिर कुछ सृजन नहीं हो सकता। और धर्म, धर्म है हेट्रोसेक्सुअलिटी, एक स्त्री और एक पुरुष का मिलन।

अब धर्म दो तरह के हो सकते हैं। तुम्हारे भीतर का पुरुष अस्तित्व में छिपी हुई स्त्री को खोजे, तो एक तरह का धर्म होगा। और तुम्हारे भीतर की छिपी स्त्री अस्तित्व में छिपे पुरुष को खोजे तो दूसरी तरह का धर्म होगा। इसी से भक्ति और ज्ञान का भेद है। भक्ति का अर्थ हुआ, तुम्हारे भीतर की स्त्री जगत में छिपे पुरुष को

खोज रही है। राधा कृष्ण को खोज रही है। ज्ञान का अर्थ हुआ, तुम्हारे भीतर का छिपा पुरुष अस्तित्व में छिपी स्त्री को खोज रहा है।

बुद्ध का धर्म ज्ञान का धर्म है। तुम्हारे भीतर का पुरुष जगत में छिपी स्त्री को खोज रहा है। बुद्ध का धर्म ज्ञान और ध्यान का धर्म है। नारद, मीरा, चैतन्य का धर्म भक्ति का, प्रेम का धर्म है।

तुमने कभी ख्याल किया, हिंदू कभी भी जब कहते हैं तो ऐसा नहीं कहते-- कृष्ण-राधा नहीं कहते, कहते हैं--राधा-कृष्ण। राधा को पहले रखते हैं, कृष्ण को पीछे कर देते हैं। कहते हैं--सीताराम। सीता को पहले रख देते हैं, राम को पीछे रख देते हैं। क्या कारण होगा? यह अकारण नहीं है, कुछ भी अकारण नहीं होता, यह चुनाव है। इसमें बात जाहिर है कि हमारे भीतर का स्त्री-तत्व जगत में छिपे पुरुष-तत्व को खोज रहा है। इसलिए स्त्री पहले है। राधा पहले, कृष्ण पीछे।

ज्ञानी कुछ और ढंग से खोजता है। अगर सूफियों से पूछो कि परमात्मा का क्या रूप है, तो वे कहते हैं--प्रेयसी, परमात्मा प्रेयसी है। हिंदू भक्तों से पूछो तो वे कहते हैं, परमात्मा पुरुष है, प्रेयसी हम हैं। हम उसकी सखियां हैं, वह पुरुष। और सूफी कहते हैं कि हम पुरुष, वह हमारी प्रेयसी। प्रियतमा। इसलिए सूफियों की जो कविता है, उसमें पुरुष की तरह परमात्मा का वर्णन नहीं है, स्त्री की तरह वर्णन है, प्यारी, प्रियतमा की तरह।

फर्क ख्याल में लेना। ये दो संभावनाएं हैं धर्म की। तुम्हारा पुरुष खोजे स्त्री को, या तुम्हारी स्त्री खोजे पुरुष को। बुद्ध का धर्म, तुम्हारे भीतर जो पुरुष है, तुम्हारे भीतर जो विचार, ज्ञान, विवेक; तुम्हारे भीतर तर्क, संदेह, उस सबको नियोजित करना है सत्य की खोज में।

अभी कल तक मैं दया की बात कर रहा था, वह ठीक इससे उलटी बात थी। वहां स्त्री खोज रही थी पुरुष को। तो तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी कल्पना, तुम्हारी भावना, तुम्हारी अनुभूति, तुम्हारा हृदय लगेगा काम में।

बुद्ध के साथ तुम्हारी बुद्धि लगेगी काम में। तुम्हारे हृदय की कोई जरूरत नहीं, हृदय को बाद दी जा सकती है। भावना, समर्पण इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है। भावना और समर्पण वाला धर्म सुगम है, बहुप्रचारित है। बुद्ध ने धर्म को एक नया आयाम दिया, ताकि तुम्हारे भीतर जो पुरुष छिपा है, वह कहीं वंचित न रह जाए।

तो तुम सोच लेना, अगर तुम्हारे भीतर संदेह की क्षमता है तो तुम श्रद्धा की झंझट में मत पड़ो। अगर तुम पाते हो संदेह में कुशल हो, तो श्रद्धा की बात भूलो। अगर तुम पाते हो कि तुम्हारे भीतर संकल्प का बल है, तो तुम समर्पण को छोड़ो। अगर तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पास तलवार की धार की तरह बुद्धि है, तो तुम उसका उपयोग कर लो। उसी से पहुंच जाओगे। जो तुम्हारे पास हो, उसे ठीक से पहचान लो और उसका उपयोग कर लो।

अब सूत्र!

कृष्ण ने गीता कही तो एक शिष्य को कही, ये सूत्र धम्मपद के अलग-अलग शिष्यों से अलग-अलग समयों में कहे गए हैं। ये बहुत शिष्यों को बहुत अलग-अलग स्थितियों में कहे गए हैं। और आज के जो सूत्र हैं, उन सब सूत्रों के पीछे छोटी-छोटी कथाएं हैं--कब कहे गए। वे कथाएं भी मैं तुम्हें याद दिलाना चाहूंगा, क्योंकि संदर्भ में ही तुम ठीक से समझ पाओगे।

पहला सूत्र--

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।

सो" मं लोकं पभोसित अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।।

"जो पहले प्र्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।"

तुमने एक वचन सुना होगा! पश्चिम के ईसाई फकीर कहते हैं कि प्रत्येक संत का अतीत है और प्रत्येक पापी का भविष्य है। एवरी सेंट हैज ए पास्ट एंड एवरी सिनर हैज ए फ्यूचर।

यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि सभी संत अपने अतीत में पापी रहे हैं। और दूसरी बात और भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक पापी का भविष्य है। क्योंकि कितना ही तुम पाप करो, तुम किसी भी दिन चाहो उसी दिन संत हो सकते हो। यह तुम्हारा निर्णय है, यह तुमने चुना है। तुम जैसे हो वैसा होना नियति नहीं है, यह तुम्हारा निर्णय है। तुम इसे बदल दे सकते हो। तो प्रत्येक पापी का भविष्य है और प्रत्येक संत का अतीत है।

यह सूत्र कहता है, "जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता।"

पहले तो बड़ी भूलें कीं, निद्रा में जीआ, सोया-सोया रहा, प्रमाद किया, आलस्य किया, बेहोश रहा, मूर्च्छित रहा।

"जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता।"

लेकिन जाग गया फिर, होश आ गया फिर।

"वह मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।"

वही है संत। संत का यह अर्थ नहीं है कि जिसने कभी भूलें नहीं कीं। ऐसे संत को खोजने निकलना ही मत। ऐसा संत होता ही नहीं। हो ही नहीं सकता। संत का अर्थ है, जिसने बहुत भूलें कीं, दिल खोलकर भूलें कीं--और खूब की होंगी तभी तो जागा, नहीं तो इतनी आसानी से जाग भी नहीं सकता था। इतनी की होंगी, इतनी की होंगी कि उनकी पीड़ा अब और झेलनी संभव न रही। इतनी की होंगी कि उनका कांटा चुभते-चुभते हृदय तक पहुंच गया। इतनी की होंगी कि रोआं-रोआं पीड़ा से भर गया, क्योंकि भूल करोगे तो पीड़ा तो झेलनी पड़ेगी।

इसलिए मैं तुमसे एक बात कहता हूं--कान खोलकर सुनना--अगर पाप करना हो तो कुनकुने पाप मत करना। नहीं तो तुम करते रहोगे, करते रहोगे, करते रहोगे। जैसे सौ डिग्री पर पानी उबलकर भाप बनता है, ऐसा सौ डिग्री पर पापी संत बनता है। पाप ही करना हो तो पूरी शक्ति लगाकर कर लेना। ऐसा कंजूसी मत करना पाप करने में कि थोड़ा-थोड़ा कर रहे, फुटकर-फुटकर। थोक करना। तो संभावना है कि किसी दिन तुम जग जाओ। नहीं तो तुम कभी न जगोगे। क्योंकि अगर थोक किया तो थोक ही पश्चात्ताप भी होगा। अगर थोक किया तो पहाड़ टूट पड़ेगा पीड़ा का। उस पीड़ा के पहाड़ के टूटने में ही कोई जागता है, नहीं तो जागता नहीं।

तुमने कभी देखा, रात तुम दुख-स्वप्न देखते हो, चलता जाता है दुख-स्वप्न! तुम्हें मारा जा रहा है, पीटा जा रहा है, सताया जा रहा है, दुष्ट तुम्हारी छाती पर बैठे हैं, तुम्हें पहाड़ के नीचे फेंक रहे, तुम गिर रहे, चलता रहता है। तुम जगना भी चाहते हो जग भी नहीं सकते, तुम करवट भी बदलते हो मगर हाथ नहीं हिलता, आंख खोलना चाहते हो आंख नहीं खुलती, ऐसा दुख-स्वप्न!

लेकिन वह भी टूटता तो है ही। मगर तुमने ख्याल किया, कब टूटता है? जब आखिरी घड़ी आ जाती है, कि हिमालय ही तुम्हारी छाती पर गिर गया, फिर टूटता है। फिर तुम एकदम जागकर उठ आते हो। एक सीमा है, उसके बाद दुख-स्वप्न टूटता है। अगर दुख-स्वप्न भी धीमा-धीमा चलता रहे, होमियोपैथी की मात्रा में चलता

रहे... एलोपैथिक डोज चाहिए पाप का, तो कोई जगता है। इसलिए बड़े पापी अक्सर क्षणभर में संत हो जाते हैं।

तुमने बाल्मीकि की कथा सुनी न? क्षणभर में, बाल्या भील क्षणभर में बाल्मीकि हो गया। पकड़ लिया एक ऋषि को, ऋषि जा रहे अपनी वीणा बजाते, भजन गाते, गीत गाते, पकड़ लिया लूटने के इरादे से। लुटेरा था बाल्या। बांध दिया एक वृृक्ष से और कहा, दे दो जो कुछ हो। ऋषि के पास कुछ था भी नहीं, उसने कहा, यह वीणा है, अगर लेना हो ले लो। और मैं हूं, अगर मुझसे कुछ काम लेना हो, मुझसे काम ले लो, लेकिन मामला क्या है? यह तू कर क्या रहा है? तो बाल्या ने कहा, क्या कर रहा हूं? बच्चों का पेट भरना है। पत्नी है, बच्चे हैं, बूढ़े माता-पिता हैं। उसने कहा, ठीक है, तू एक बात तो उनसे पूछ आ कि जब इन सारे पापों का फल तुझे मिलेगा, वे इसमें सहयोगी होंगे? भागीदार होंगे?

बाल्या थोड़ा चौंका। उसने कहा, महाराज, तरकीबें न निकालो भाग जाने की, मैं जाऊंगा इधर और तुम इधर नदारद हो जाओगे! तो ऋषि ने कहा, तू मुझे ठीक से बांधकर जा, या चाहे तो मैं तेरे साथ घर चला चलूं। देखा ऋषि की आंखों में, आदमी निष्ठावान था। सीधा-सरल था। बांध दिया, कहा, मैं अभी आया पूछकर।

बाल्या घर गया। अपनी पत्नी से पूछा कि देख, रोज मैं चोरी करता, डाके डालता, लोगों को मारता, मार भी डालता कभी, यह तुम्हारे लिए कर रहा हूं। जब इसका फल मुझे मिलेगा, नर्क में जब मैं जलाया जाऊंगा, सड़ाया जाऊंगा, तब तुम इसमें भागीदार होओगे कि नहीं? तो उसकी पत्नी ने कहा, इसमें क्या भागीदारी? यह तुम्हारा काम है, पति हो तो तुम करते हो, मगर भागीदारी वगैरह इसमें कुछ नहीं है। तुम्हारा तुम जानो। हमें पता ही क्या कि तुम कहां से क्या करके लाते हो? और इसमें स्त्री को लेना-देना भी क्या है कि तुम पुण्य से कमाते कि पाप से, यह तुम जानो। बाल्या तो बहुत चौंका।

उसने अपने बूढ़े बाप से पूछा। बूढ़े बाप ने कहा, मैं वैसे ही बूढ़ा हो गया और परेशान हो रहा हूं और अब कहां की परेशानियों की बातें मेरे पास लाता है! और तू तो जब मरेगा तब मरेगा, मेरी मौत तो करीब आ रही है, यह साझेदारी नहीं होगी; हम नरक में पहले पहुंच जाएंगे। फिर हमें कुछ मतलब नहीं। तू पुण्य करके ला कि पाप करके ला, बूढ़े बाप की सेवा करेगा न! बूढ़े बाप की सेवा करने से जो पुण्य तुझे मिलना है वह मिलेगा, बाकी तू जो कर रहा है वह तू जान। उसने सबसे पूछा, कोई भागीदारी में राजी नहीं था। उसने कहा, यह भी खूब रही!

वह लौटकर आया, ऋषि को उसने छोड़ दिया, पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा कि प्रभु, मुझे कुछ ध्यान बता दो। हो गया बहुत! लेकिन मैं बड़ा पापी हूं और जल्दी परमात्मा का साक्षात्कार मुझे होगा इसकी आशा नहीं, लेकिन कोई फिकर नहीं। मैं जिस जिद्द से पाप करता था, उसी जिद्द से अब पुण्य करूंगा। और जिस जिद्द से नुकसान पहुंचाया है, उसी जिद्द से स्मरण भी करूंगा। हठी हूं, इतनी भर बात मुझमें गुण की है, कि जो करूंगा, पूरी तरह करूंगा। आप मुझे बता दो।

बेपढ़ा-लिखा था बाल्या। ऋषि ने कहा, तो तू अब और तो क्या करेगा, राम-राम, राम-राम जप। वह जपता रहा, लेकिन थोड़ी ही देर में भूल गया राम-राम, तो मरा-मरा जपता रहा। राम-राम जोर से जपो तो मरा-मरा हो जाता है। जैसे कभी-कभी मालगाड़ी के डिब्बे एक-दूसरे पर चढ़ जाते हैं न, राम-राम-राम-राम तेजी से जपते रहो तो पक्का नहीं रह जाता कि रा पहले कि म पहले, एक-दूसरे पर चढ़ जाते हैं। तो वह मरा-मरा जपता रहा।

और जब ऋषि वापस आए, तो देखा कि वह तो ज्ञान को उपलब्ध हो गया-- अपूर्व उसकी आभा है। ऐसा तो ऋषि को भी नहीं हुआ था। उससे पूछा, तूने किया क्या पागल? तू तो पहुंच गया मालूम होता है, तू तो परमहंस हो गया। तेरे आसपास सुगंध है। तेरे आसपास ज्योति है। तूने किया क्या? उसने कहा, कुछ नहीं, वह जो आप मंत्र बता गए थे कि मरा-मरा जपते रहो, वह मैं जपता रहा। मगर दिल खोलकर जपा। हो गया।

ऋषि की आंख में आंसू आ गए। वह राम-राम जपते उनकी जिंदगी हो गयी है। मगर कुनकुना-कुनकुना जपते होंगे। ऐसा वीणा वगैरह बजाते होंगे, सुर-ताल का भी ध्यान रखते होंगे, हिसाब से जपते होंगे। मगर इसने बेहिसाब जपा। यह पहुंच गया।

पापी अक्सर एक क्षण में क्रांति को उपलब्ध हो जाते हैं। कुनकुने जो जीते हैं, अभागे लोग वही हैं। या तो त्वरा से जीओ पापी की तरह, या त्वरा से जीओ पुण्यात्मा की तरह, तो ही तुम जानोगे कि जीवन का अर्थ क्या है। पाप की त्वरा जलाएगी, राख कर देगी तुम्हें। लेकिन उसी राख में से नया जीवन आविर्भूत होता है।

बुद्ध कहते हैं, "जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता।"

जिसने पहले बहुत भूलें कीं, बहुत पाप किए, लेकिन एक दिन पापों का बोझ इतना हो गया कि अब इसको और ढोना संभव नहीं है, उसे उतारकर रख देता है।

"वह इस लोक को मेघों से मुक्त हो गए चंद्रमा की भांति प्रकाशित करता है।"

देखा, रात कभी आकाश में मेघ घिर जाते तो चांद दब जाता है। बस ऐसे ही तुम्हारी दशा है। तुम भटके नहीं हो, केवल थोड़े से मेघों में घिर गए हो। चांद अब भी चांद है। उतना ही पवित्र जितना कभी था। तुम अब भी क्वांरे हो। तुम्हारा अंतरतम पापी हो ही नहीं सकता। वहां तक पाप पहुंचता ही नहीं। क्योंकि चांद को कितने ही मेघ घेर लें, और कितने ही काले-कजरारे मेघ हों, कोई फर्क नहीं पड़ता, चांद अछूता रहता है।

यह एक बहुत मौलिक घोषणा है कि तुम चांद जैसे शुद्ध और पवित्र हो। तुम्हारे ऊपर अगर मेघ घिर गए हैं, तो विचारों के, वासनाओं के। और वे भी इसलिए घिर गए हैं कि तुम बड़ी निद्रा में जी रहे हो। प्रमाद शब्द बौद्धों का अपना शब्द है। प्रमाद का अर्थ होता है, कोई आदमी ऐसे जीए जैसे नींद में। या कोई आदमी ऐसे जीए जैसे नशे में। चल भी रहा है, पक्का पता भी नहीं, क्यों चल रहा है। चल भी रहा है, पक्का पता नहीं, कहां चल रहा है। चल भी रहा है, पक्का पता नहीं, कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है। चला जा रहा है।

एक शराबी शराबघर से निकला, रास्ते पर आया। संयोगवशात एक पैर तो उसका नीचे पड़ गया सड़क पर और एक पड़ गया सड़क के पास की पटरी पर, अब बड़ा हैरान हुआ कि यह मामला क्या है, क्या मैं लंगड़ा हो गया? ये मेरे पांव नीचे-ऊंचे क्यों हो गए? लंगड़ा हो गया, यह सोचकर बेचारा सम्हल-सम्हलकर चलने लगा। मगर उसने पटरी की लीक पकड़ रखी। एक पैर पटरी पर और एक सड़क पर। एक पुलिस वाले ने उसे देखा, उसने कहा, इसे हुआ क्या है? क्योंकि बड़े धीरे-धीरे सरकता चला जा रहा है, बड़ी मुश्किल उठा रहा है। चलना कठिन हो रहा है। उस पुलिस वाले ने आकर पूछा कि मामला क्या है? उसने कहा, मामला क्या है, मेरी ही समझ में नहीं आता, लगता है कि अचानक मैं लंगड़ा हो गया। एक पैर छोटा एक पैर बड़ा हो गया।

यह आदमी मूर्च्छित है। तथ्य इसे दिखायी नहीं पड़ते। ऐसी अवस्था को बौद्ध कहते हैं, प्रमाद।

यह सूत्र बुद्ध ने एक विशेष घटना के समय कहा था, वह घटना भी समझ लेने जैसी है।

बुद्ध के शिष्यों में एक भिक्षु थे, उनका नाम था समंजनी। उन्हें सफाई का पागलपन था। क्योंकि बुद्ध ने कहा, स्वच्छ रहो, साफ-सुथरे रहो। वह उनको धुन पकड़ गयी। पागल तो पागल, वह ठीक बात में से भी गलत

बात निकाल लेते। उनको ऐसी धुन पकड़ गयी कि चौबीस घंटे वह झाड़ू ही लिए रहते। इधर जाला दिखायी पड़ गया, उधर कचड़ा दिखायी पड़ गया, सफाई ही सफाई।

कई स्त्रियों को यह रोग रहता है, सफाई ही सफाई। किसके लिए सफाई कर रही हैं, यह भी कुछ पक्का नहीं।

मैं एक घर में कुछ दिन तक रहता था, बड़ा साफ-सुथरा घर था, ऐसा साफ- सुथरा घर मैंने देखा ही नहीं। घर कहना ही नहीं चाहिए उसको, इतना साफ-सुथरा था। उसमें रहने की सुविधा ही नहीं थी। वह महिला अपने पति को भी अपने बैठकखाने में नहीं बैठने देती थी, कि तुम उठो! अखबार भीतर चलकर पढ़ो! क्योंकि इधर बैठे रहे घंटेभर तो उसकी गद्दी खराब हो जाए। मेहमानों को वह पसंद न करती कि कोई घर में आएं, क्योंकि वह सफाई! बच्चे बैठकखाने में प्रवेश न कर सकते, क्योंकि सफाई!

मैं दो-चार दिन देखता रहा, मैंने उससे कहा कि सफाई तो बड़ी तू गजब की कर रही है। उसको मैंने यह कहानी कही थी जो मैं तुम्हें सुना रहा हूं बुद्ध की। मैंने कहा, यह तो ठीक है, मगर किसलिए? मेहमान आ नहीं सकते, पति बैठ नहीं सकता, बच्चे आ नहीं सकते, तुझे मैंने कभी बैठा देखा नहीं, बस तू सफाई में ही लगी है। वह दिनभर लिए है कपड़ा और बाल्टी और जगह-जगह घिस रही है। सफाई तो बुरी बात नहीं, उसने मुझसे कहा। मैंने कहा, नहीं, सफाई बुरी बात नहीं। लेकिन सफाई ही सफाई करते रहो... सफाई का प्रयोजन क्या है? कि साफ-सुथरे घर में रहो, मगर रहने का मौका भी चाहिए न! रहने का अवकाश चाहिए।

यह बुद्ध के भिक्षु थे समंजनी, बुद्ध की बात सुनकर कि स्वच्छ रहो, उनको पकड़ गयी। पागल रहे होंगे, दिमाग कुछ झक्की रहा होगा। उन्होंने कहा, ठीक! जब बुद्ध ने कहा तो फिर... तो वह झाड़ू लिए रहते दिनभर और दिनभर झाड़ू लगाया करते। कभी यहां गंदा, कभी वहां गंदा, उन्हें मौका ही न मिलता भीतरी सफाई का जिसके लिए भिक्षु हुए थे, जिसके लिए संन्यास लिया था।

एक दिन एक वृद्ध भिक्षु रेवत ने उन्हें कहा, आवुस, भिक्षु को सदा बाहर की सफाई ही नहीं करते रहना चाहिए। बाहर की सफाई ठीक है, तो कभी सुबह कर ली, सांझ कर ली, बाकी चौबीस घंटे यही काम! तो झाड़ू से तुम स्वर्ग नहीं पहुंच जाओगे! कुछ ध्यान भी करो, कुछ भीतर की सफाई भी करो। कुछ भीतर की झाड़ू उठाओ। कभी ध्यान किया करो, कभी शांत बैठा करो, कभी विश्राम में भीतर जाया करो, कुछ भीतर भी तो झांको। उससे ही असली सफाई होगी। भीतर कब झाड़ू मारोगे? उस बूढ़े फकीर ने पूछा। या कि जीवनभर ऐसा ही बिता देना है!

बात चोट खा गयी। समंजनी को बोध हुआ। होश आया। बात तो उसे हास्यास्पद लगी कि मैं क्या करता रहा! कोई दस साल हो गए बुद्ध के पास, यही काम करते। जैसे नींद टूटी। तंद्रा की जैसे एक पर्त आंखों से गिर गयी। बाहर नहीं जैसे भीतर की आंख अचानक खुल गयी। जैसे सुबह कोई रात का सोया हुआ जागे और सपने खो जाएं।

दूसरे दिन उसे झाड़ू न लगाते देखकर अन्य भिक्षु हैरान हुए। यह तो बात ही भरोसे की न थी कि समंजनी और झाड़ू न लगाएं। और दूसरे दिन देखा कि झाड़ू वगैरह उनके हाथ में भी नहीं है, तो उनको तो भरोसा ही नहीं आए, क्योंकि वह तो झाड़ू वाले ही भिक्षु की तरह प्रसिद्ध थे। झाड़ू वाले बाबा! उन्होंने पूछा, आवुस, समंजनी स्थविर, आज झाड़ू कहां? यह आपके स्वभाव में परिवर्तन कैसा? आप होश में तो हैं, तबीयत तो ठीक है न? कुछ बीमार इत्यादि तो नहीं हो गए। यह कैसा पतन! यह कैसा चरित्र का ह्नास! देखो इस जगह कूड़ा इकट्ठा हो गया है, उस जगह मकड़ी का जाला लगा है, लोग मजाक करने लगे।

समंजनी हंसे और बोले, भंते, सोते समय मैं ऐसा करता था। सोते समय मैं ऐसा करता था, लेकिन अब जाग गया हूं। मेरा प्रमाद गया और अप्रमाद का मुझमें उदय हुआ है। सुबह-सांझ झाड़ू लगा दूंगा, उतना पर्याप्त है। शेष समय भीतर की सफाई। और ऐसा कहकर वह फिर ध्यान में लीन हो गए।

भिक्षुओं ने यह बात जाकर बुद्ध को कही। बुद्ध ने कहा, हां भिक्षुओ, मेरा वह पुत्र प्रमाद के समय ऐसा करता था। लेकिन अब जाग गया है और उस व्यर्थ के विक्षिप्त व्यवहार से मुक्त हो गया है। तब बुद्ध ने यह गाथा कही।

यही गाथा आज का पहला सूत्र है--

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो" मं लोकं पभोसित अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।।

"जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।"

बुद्ध ने कहा, मेरा यह पुत्र। सच्चा पिता तो गुरु ही है। क्योंकि उससे आत्मा को जन्म मिलता है। बुद्ध ने कहा, मेरा यह पुत्र अब जाग गया है। बेहोश था, तब ऐसा मूर्च्छित व्यवहार चलता था। पागलपन का व्यवहार था वह। अब यह होश में आ गया है। तुम जाओ उसके पास बैठो। उसे गौर से देखो, यह वही आदमी नहीं है। यह चांद है जो मेघों से मुक्त हो गया है। इसका प्रमाद गया।

दूसरा सूत्र--

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयती।
सो" मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।।

"जिसका किया हुआ पाप उसी के बाद में किए हुए पुण्य से ढंक जाता है, वह मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।"

पापों की चिंता मत करो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमने पाप किए बहुत, उनको कैसे काटें?

अब पीछे तो लौटना संभव नहीं। जो गया सो गया, जो हुआ सो हुआ। अब तो तुम कुछ ऐसा करो, कुछ ऐसी दिशा में अपनी जीवन-ऊर्जा को बहाओ कि संतुलन आ जाए। जैसे तुमने चोरी की, तो दान कर दो। पुण्य का और क्या अर्थ होता है? तुमने कभी पुण्य का ऐसा सोचा अर्थ? पुण्यात्मा होकर तुम अहंकारी मत बन जाना। क्योंकि पुण्यात्मा तो सिर्फ पश्चात्ताप है। उसमें गौरव का कुछ भी नहीं है।

जैसे एक आदमी बीमार हुआ। ज्यादा भोजन करता था, रात देर तक जागता था, कामाचारी था, बीमार हुआ। तो अब दवा लेनी पड़ती, पथ्य पर जीना पड़ता, ठीक समय सोना पड़ता, सुबह व्यायाम करना पड़ता। तो ऐसा आदमी सड़क पर जाकर अपनी दवाइयों की बोतल दिखाकर लोगों को तो नहीं कहता कि देखो, मैं कैसा पुण्यात्मा, कैसी-कैसी दवाइयां पीता हूं, पथ्य से जीता हूं।

नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं कहता। क्योंकि जो वह कर रहा है, वह तो जो पहले किया है, उसको अनकिया करने के लिए कर रहा है। अब इसका कोई मूल्य थोड़े ही है। किया था पाप, तो पुण्य। चोरी की, तो दान। क्रोध किया था, तो करुणा। लोभ किया था, तो सेवा।

कुछ करो। जो हो गया, उसको तो अनकिया नहीं किया जा सकता, वह तो गया। वह तो समय गया, वह हाथ के बाहर हो गयी बात। लेकिन तुम अभी अपनी ऊर्जा को ठीक दूसरी दिशा में झुका सकते हो। तो संतुलन आ जाएगा। जैसे आदमी तराजू तौलता है। एक पलड़े पर तुम चीजें रखते गए, रखते गए, रखते गए, वह पलड़ा जमीन से लग गया और दूसरा उठ गया ऊपर, अब क्या करो? समय का पलड़ा ऐसा है कि जो पलड़ा जमीन से लग गया वह तो तुम्हारे हाथ के बाहर हो गया, वह तो अतीत हो गया, अब उसमें से चीजें निकाल नहीं सकते। जो कर लिया, कर लिया। अब कैसे घटाओगे? तो पुण्य की प्रक्रिया का अर्थ इतना ही है कि वह तो तुम्हारे हाथ के बाहर हो गया, अतीत का पलड़ा तो तुम्हारे हाथ के बाहर हो गया, लेकिन भविष्य का पलड़ा तुम्हारे हाथ के भीतर है, इस पर पुण्य चढ़ाओ। धीरे-धीरे यह पलड़ा भारी होकर नीचे उतरेगा और पुराने पलड़े को बराबर ले आएगा, संतुलन हो जाएगा। और जहां तराजू मध्य में ठहर जाएगा, जहां तराजू का कांटा बताने लगेगा दोनों बराबर हो गए, उसी क्षण मुक्ति है।

मुक्ति, जहां कांटा मध्य में आ जाता है। जहां न तुम पापी रहे, न पुण्यात्मा। जहां न शुभ रहे, न अशुभ। न अच्छे, न बुरे। न सज्जन, न दुर्जन। उसी क्षण तुम पार हो जाते हो। उस अवस्था को बौद्धों ने कहा है, सम्यकत्व। समता आ गयी।

यह दूसरे सूत्र की घटना--

भिक्षु अंगुलीमाल के देह छोड़ने पर अन्य भिक्षुओं ने पूछा, भंते, अंगुलीमाल मरकर कहां उत्पन्न हुए होंगे?

यह जिज्ञासा स्वाभाविक थी, क्योंकि अंगुलीमाल बड़ा हत्यारा था। उसने एक हजार लोगों की हत्या की थी। उसने कसम ली थी कि एक हजार लोगों को मारकर उनकी अंगुलियों की माला बनाकर पहनूंगा। इसीलिए उसका नाम अंगुलीमाल पड़ गया था, क्योंकि अंगुलियों की माला उसने पहन ली थी। उसने एक हजार लोग मार डाले थे। वह बड़ा भयंकर हत्यारा था बुद्ध के समय का। नौ सौ निन्यानबे आदमियों को मार चुका था, और हजारवें की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन दूर-दूर तक लोग चौंक गए थे। तो जिस जंगल में छिपकर अंगुलीमाल रहता था, वहां कोई जाता नहीं था। जाए ही नहीं कोई--उसकी मां नहीं जाने को राजी थी। क्योंकि लोगों को डर था, लोग जानते थे, वह मां तक को मार डालेगा। उसको तो एक हजार का व्रत पूरा करना है।

बुद्ध उस रास्ते से गुजरते थे। तो लोगों ने कहा, आप न जाएं, भंते! वह आदमी खतरनाक है। वह सोचेगा ही नहीं आप कौन हैं, उसको तो... बिल्कुल अंधा है। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले हैं। राजा उससे कांपते हैं। सैनिक उससे डरते हैं। फौजें नहीं निकलतीं इस रास्ते से। क्योंकि वह किसी को भी मार डाले। वह एकदम पागल है। उसे होश है ही नहीं। आप मत जाएं।

लेकिन बुद्ध ने कहा, अगर मुझे पता न होता तो शायद मैं न भी जाता, लेकिन अब पता है मुझे, वह बेचारा एक की प्रतीक्षा करता होगा! नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले न, उसको हजार आदमी चाहिए, उसकी प्रतिज्ञा का क्या होगा, यह भी तो सोचो! तो मैं जाता हूं।

तो बुद्ध गए। उनके साथी-संगी भी पीछे छूट गए। ऐसे समय कौन साथ, कौन संगी! जब बुद्ध गए तो अकेले ही रह गए। अंगुलीमाल फरसे पर धार रखने लगा देखकर कि कोई आ रहा है। लेकिन वह भी बहुत

चौंका। क्योंकि वर्षों से इस रास्ते पर कोई चलता ही नहीं। यह कौन नासमझ--उसको भी दया आने लगी--यह कौन नासमझ मरने आ रहा है! उसने गौर से देखा, गैरिक वस्त्र, अरे! उसने सोचा, कोई संन्यासी है। गया बिचारा काम से। इसे कुछ पता नहीं है। गांव के लोगों ने भी बताया नहीं मालूम होता है, ऐसा सोचने लगा। फरसे पर धार रखी।

जैसे-जैसे बुद्ध करीब आने लगे वैसे-वैसे उसका भाव बदलने लगा, उसे दया आने लगी। उसने अपने मन में सोचा, अंगुलीमाल, तुझे हो क्या रहा है? ऐसी दया तुझे कभी नहीं आयी, तेरी मां भी आती तो भी तू काटने को तत्पर था। यह तो कौन है, अपनी क्या जान, क्या पहचान! लेकिन कुछ होने लगा। बुद्ध की मौजूदगी कुछ करने लगी। वे तरंगें बुद्ध की, वह शांति बुद्ध की, वह हवा बुद्ध की, वह सुगंध बुद्ध की कुछ करने लगी।

जब वह थोड़ी दूर रह गए तो अंगुलीमाल चिल्लाया और उसने कहा कि रुक जाओ वहीं, अगर आगे बढ़े तो खतरा है। यह फरसा देखते हो? ये अंगुलियां देखते हो? मैं अंगुलीमाल हूं, मेरा नाम सुना? गर्दन काटकर अंगुलियों की माला बना लूंगा! और मेरा व्रत पूरा करना है मुझे, और कई सालों बाद तुम दिखायी पड़े हो, कोई और आता भी नहीं। मगर तुम्हें मैं एक मौका देता हूं। न-मालूम कैसे कमजोरी का क्षण है मेरा कि मैं तुम्हें एक मौका देता हूं, भाग जाओ। लेकिन और करीब मत आओ। मैं आदमी बुरा हूं। जरा भी आगे मत चलो।

बुद्ध ने कहा, पागल, मेरा चलना तो कई वर्ष हुए तब बंद हो चुका। जिस दिन मन गया, उस दिन सब चलन भी गया, सब चलना भी गया। अब कहां चलना! मैं तो ठहरा हुआ हूं। मैं तुझसे कहता हूं, तू चलना बंद कर। अंगुलीमाल ने कहा कि मैं सोच ही रहा था कि आदमी पागल होना चाहिए। तुम पागल हो, चल तुम रहे हो, चलते हुए को कहते हो कि चलता नहीं और मैं बैठा हुआ फरसे पर धार रख रहा हूं और मुझको तुम कहते हो कि चलते हो। तुम्हारा दिमाग खराब है, अब मैं समझा कि तुम कैसे चले आ रहे हो। बुद्ध ने कहा, ठीक है, मगर मैं तुझसे फिर कहता हूं, सोच ले, मैं रुका हुआ हूं, तू चल रहा है। तेरा मन अभी बहुत दौड़ता है, यहां-वहां दौड़ता है, इसलिए मैं कहता हूं, तू चलता है।

खैर, बुद्ध पास आ गए। अंगुलीमाल ने कहा, अगर तुम जिद्दी हो तो मैं भी जिद्दी हूं। मुझे शक होता है कि हो न हो तुम गौतम बुद्ध हो, जिनकी मैंने खबरें सुनी हैं। क्योंकि जिन लोगों को मैंने मारा, उनमें से कई ने मुझे कहा कि ऐसा लगता है, सिवाय गौतम बुद्ध के तुझे कोई भी बदल न सकेगा। हो न हो तुम वही हो। मगर भूल जाओ, मैं भी अंगुलीमाल हूं। मैं मारकर रहूंगा। बुद्ध ने कहा, तू अपनी तैयारी कर ले, फरसे पर धार रख ले, मैं बैठा हूं। वे बैठ गए शांत। वह फरसे पर धार रखता है--क्योंकि कई साल से कोई आया नहीं तो फरसे पर जंग चढ़ गयी है।

वह बार-बार देख लेता है इस आदमी को, बात क्या है, उसका दिल बड़ा पिघला जा रहा है! इस आदमी पर बड़ा प्रेम आया जा रहा है। इस आदमी की तरफ बड़ा लगाव हुआ जा रहा है। वह डर रहा है। थोड़ी देर करने लगा फरसे पर धार रखने में कि और थोड़ी देर जी ले, इस आदमी का साथ बड़ा प्यारा है। फिर मर जाएगा। फिर कब ऐसा आदमी मिलेगा? वह और देर लगाने लगा।

बुद्ध ने कहा, मुझे लगता है तुम जरा देरी लगा रहे। फरसे पर धार रखो, अंगुलीमाल! तुम अपना काम करो, मुझे मेरा काम करने दो, ऐसे जल्दी से किसी के प्रभाव में नहीं आ जाते। अंगुलीमाल ने कहा, कि तुम आदमी कैसे हो, तुम मरने पर तत्पर हो, आत्महत्या करने की तुमने सोच रखी है? लेकिन उसका दिल बदल गया है। फरसे पर धार बेमन से रख रहा है।

फिर धार भी पूरी हो गयी। फिर उसने कहा, बोलो क्या विचार है? बुद्ध से पूछता है, अब क्या विचार है! बुद्ध ने कहा, विचार की संभावना कहां, विचार तो मैं छोड़ ही चुका, अंगुलीमाल। और तू जिसे मारेगा, वह मैं नहीं हूं। और जो मैं हूं, उसे कोई भी मार नहीं सकता। कौन फरसा मुझे छेद सकेगा?

अंगुलीमाल ने आंख में आंख डालकर देखा। इस आदमी को मारना असंभव है। लेकिन फिर भी जिद्द पुरानी, पुरानी आदत, वह अपना फरसा लेकर खड़ा हो गया। उसने कहा कि ठीक है, दो आदमियों की जिद्द अटकी है। तुम बुद्ध हो, मैं अंगुलीमाल हूं। इतनी जल्दी हार नहीं जाऊंगा। मगर यह क्यों मेरा दिल कमजोर हुआ जाता है? क्यों मेरी छाती बैठी जाती है, मैं तुमसे पूछता हूं। बुद्ध ने कहा, इसका कारण है। मारने में कुछ कला है ही नहीं, अंगुलीमाल, यह तो बच्चे कर सकते हैं। तू देख, यह सामने वृक्ष है, इसकी शाखा काटकर मुझे दे दे। तो उसने फरसे से शाखा काट दी। बुद्ध ने कहा, अब इसे तू वापस जोड़ दे। उसने कहा, यह कैसे हो सकता है! तो बुद्ध ने कहा, काटना-मारना तो बहुत आसान है। जोड़कर कोई आदमी महान बनता है। काटकर कोई महान बनता है? अब तू मेरी गर्दन काट दे, बात खतम हो गयी। मगर याद रख, जिन गर्दनों को जोड़ नहीं सकता, उन्हें काटने का तुझे हक नहीं है। और जोड़ तो कुछ बात हुई! तो दुनिया तुझे याद रखेगी।

फरसा उसने फेंक दिया, वह बुद्ध के चरणों में गिर गया। वह अंगुलीमाल बुद्ध का भिक्षु हो गया। उसका भय ऐसा था कि जब खबर फैल गयी कि बुद्ध तो मारे नहीं गए उलटा अंगुलीमाल मारा गया, तो खुद सम्राट अजातशत्रु उसे देखने आया। क्योंकि अजातशत्रु तक के प्राण कंपते थे।

वह आया और उसने कहा कि भंते, मैंने सुना है अंगुलीमाल भिक्षु हो गया, विश्वास नहीं आता। अगर यह हो सकता है तो सब कुछ हो सकता है। यह मुझे विश्वास नहीं आता। मैं मान ही नहीं सकता, इसमें कुछ अफवाह है, झूठी बात है। बुद्ध ने कहा, आप मानें या न मानें, यह पास जो भिक्षु बैठा है, कौन है? वह बुद्ध के पास ही बैठा पंखा कर रहा था।

यह सोचकर ही कि यह अंगुलीमाल है, अजातशत्रु ने अपनी तलवार निकाल ली। उसने कहा यह खतरनाक आदमी है, कोई धोखाधड़ी की हो, बैठा हो बनकर भिक्षु और एकदम हमला कर दे। बुद्ध ने कहा, तू तलवार भीतर रख, तलवार की कोई जरूरत नहीं, अजातशत्रु! यह अंगुलीमाल वह अंगुलीमाल नहीं है। यह और ही हो गया है।

जब अंगुलीमाल गांव में भिक्षा मांगने गया--जैसा भिक्षु को जाना पड़ता था--तो गांव के लोगों ने दरवाजे बंद कर लिए, दुकानें बंद हो गयीं। लोग अपनी छतों पर चढ़ गए। और लोगों ने पत्थर इकट्ठे कर लिए। और कहते हैं, जब अंगुलीमाल बीच सड़क पर था तो लोगों ने उसे पत्थर मारे। कायर, कमजोर लोग! और अंगुलीमाल बीच सड़क पर खड़ा रहा और उसके सिर पर पत्थर गिरते रहे और लहू बहता रहा। और अभी तरु ने जो मंत्र पढ़ा न--बुद्धं शरणं गच्छामि, वह इसे दोहराता रहा। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, ऐसा कहते-कहते ही वह गिर गया।

बुद्ध को खबर मिली, वह आए। आखिरी घड़ी थी, बुद्ध ने उससे कहा, अंगुलीमाल, तेरा क्या भाव है? उसने कहा, आप और पूछते हैं! ठहरे हुए का क्या भाव? रुके हुए का क्या भाव? तेरे मन को कुछ हुआ अंगुलीमाल? अंगुलीमाल ने कहा, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ; देखता रहा, साक्षी था। तो अंगुलीमाल ने कहा, होता भी क्या? मैं देखने वाला हूं, द्रष्टा हूं, यही तो आपने समझाया। बुद्ध उससे बोले, अंगुलीमाल, तू ब्राह्मण होकर मर रहा है। तू ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध होकर मर रहा है। तू अर्हत को उपलब्ध हो गया, तू अरिहंत हो गया।

ऐसा जब अंगुलीमाल मर गया तो और भिक्षुओं ने पूछा बुद्ध को, भंते! अंगुलीमाल मरकर कहां उत्पन्न हुए? बुद्ध ने कहा, भिक्षुओ, मेरा वह पुत्र परिनिवृत्त हो गया, परिनिर्वाण को उपलब्ध हो गया है। अब उसका जन्म नहीं होगा। वह जन्म-मरण के पार हो गया है। अब वह वापस नहीं लौटेगा। भंते, भिक्षुओं ने कहा, इतने मनुष्यों को मार कर? भिक्षुओं को भरोसा न आया। ऐसा पापी परिनिर्वाण को उपलब्ध हो गया! हां भिक्षुओ, बुद्ध ने कहा, सोए-सोए उसने बहुत पाप किए, लेकिन जागकर पुण्यों से उसने उन्हें काट डाला। ऐसे वह शून्यभाव में डूबकर निर्वाण को उपलब्ध हो गया है। लेकिन भिक्षुओं ने फिर पूछा, भगवान! उसे तो ज्यादा समय भिक्षु हुए भी नहीं हुआ, उसने पुण्य किए कहां? बुद्ध ने कहा, कभी-कभी एक पुण्य का छोटा सा कृत्य भी अगर समग्रता से किया जाए तो सारे पापों को काट डालता है। नहीं उसे ज्यादा दिन लगे, नहीं ज्यादा दिन वह जीआ, लेकिन जब लोग उसे पत्थर मार रहे थे तब वह साक्षी बना रहा, यह सबसे बड़ा पुण्य-कृत्य है। कर्ता होने में पाप है, साक्षी होने में पुण्य है; ऐसी अपूर्व बात बुद्ध ने कही।

और तब उन्होंने यह दूसरी गाथा कही--

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयती।
सो" मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चंद्रिमा।।

"जिसका किया हुआ पाप उसके बाद में किए हुए पुण्य से ढंक जाता है, वह मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।"

तीसरा सूत्र--

अधं भूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति
सकुंतो जालमुत्तो" व अप्पो सग्गाय गच्छति।।

"यह सारा लोक अंधा बना है। यहां देखने वाला कोई विरला है। जाल से मुक्त हुए पक्षी की भांति विरला ही स्वर्ग को जाता है।"

"यह सारा लोक अंधा बना है।"

यहां लोगों के पास आंख नहीं, क्योंकि लोगों के पास ध्यान नहीं। ध्यान आंख है। ध्यान का च्चु ही असली च्चु है--उसको तृतीय नेत्र कहो, शिव नेत्र कहो, या जो भी नाम दो--अन्यथा आदमी अंधा है। जब तक तीसरी आंख न खुल गयी हो, जब तक भीतर देखने वाली आंख न खुल गयी हो, तब तक आदमी अंधा है।

यह सूत्र बुद्ध ने इस परिस्थिति में कहा--

एक जुलाहे की बेटी गौतम बुद्ध के दर्शन को आयी। अत्यंत आनंद और अहोभाव से उसने बुद्ध के चरणों में सिर रखा। बुद्ध ने उससे पूछा, बेटी, कहां से आती हो? भंते, नहीं जानती हूं, वह बोली। उसकी अभी ज्यादा उम्र भी न थी। अठारह वर्ष की केवल। बुद्ध ने कहा, कहां जाओगी, बेटी? भंते, उसने कहा, नहीं जानती हूं। क्या नहीं जानती हो, बुद्ध ने पूछा। वह बोली, भंते, जानती हूं। जानती हो, बुद्ध ने कहा। वह बोली, कहां भगवान, जरा भी नहीं जानती हूं।

ऐसी बातचीत सुनकर अन्य उपस्थित लोग बहुत नाराज हुए। गांव के लोग, जुलाहे की बेटी को भलीभांति जानते हैं कि यह क्या बकवास कर रही है! और यह कोई ढंग है भगवान से बात करने का? यह कोई शिष्टाचार है? गांव के लोगों ने कहा कि सुन, पागल, यह तू किस तरह की बात कर रही है, होश में है? किससे बात कर रही है? डांटा-डपटा भी।

लेकिन भगवान ने कहा, पहले उसकी सुनो भी तो, गुनो भी तो वह क्या कहती है। बुद्ध हंसे, उन्होंने कहा, बेटी, इन सबको समझा कि तूने क्या कहा।

तो उस युवती ने कहा, जुलाहे के घर से आ रही हूं, भगवान, यह तो आप जानते ही हैं। और ये गांव के लोग भी जानते हैं। लेकिन कहां से आ रही हूं, यह जन्म कहां से हुआ, मुझे पता नहीं। वापस जुलाहे के घर जाऊंगी, यह मैं भी जानती हूं, आप भी जानते हैं, ये गांव के लोग भी जानते हैं, यह कोई बात है! लेकिन इस जन्म के बाद जब मृत्यु होगी तो कहां जाऊंगी, मुझे कुछ पता नहीं है। इसलिए आपसे कभी मैंने कहा, जानती हूं--जब मैंने सोचा कि आप पूछ रहे हैं, कहां से आ रही है, जुलाहे के घर से? तो मैंने कहा, जानती हूं। जब आपने कहा, कहां जा रही है? मैंने सोचा कि पूछते हैं, कहां वापस जाएगी, जुलाहे के घर? तो मैंने कहा, जानती हूं। लेकिन फिर जब मैंने आपकी आंखों में देखा तो मैंने कहा, नहीं-नहीं, बुद्ध और ऐसा प्रश्न क्या खाक पूछेंगे! वह पूछ रहे हैं, कहां से आती है, किस लोक से? कहां तेरा जीवन-स्रोत है? तो मैंने कहा, नहीं भगवान, नहीं जानती हूं। फिर मैंने सोचा कि जब आप पूछते हैं, कहां जाती है, तो मैंने सोचा मरने के बाद कहां जाऊंगी--बुद्ध तो ऐसे ही प्रश्न पूछेंगे न--तो मैंने कहा, नहीं जानती हूं। इसलिए।

तब बुद्ध ने यह गाथा कही--

"यह सारा लोक अंधा है। यहां देखने वाला विरला ही है। जाल से मुक्त हुए पक्षी की भांति विरला ही स्वर्ग को जाता है।"

उस लड़की को उन्होंने कहा, तेरे पास आंख है। तू देख पाती है। ये गांव के लोग अंधे हैं। आंख वाला जब बोले तो अंधों की समझ में नहीं आता, क्योंकि आंख वाला ऐसी बातें करेगा जो अंधे मान ही नहीं सकते कि हो सकती हैं। आंख वाला कहेगा, प्रकाश; आंख वाला कहेगा, रंग; आंख वाला कहेगा, कैसा प्यारा इंद्रधनुष; और अंधा कैसे समझेगा?

बुद्ध, कृष्ण, महावीर आंख वाले हैं, अंधे नहीं समझ पाते हैं। अंधे कुछ का कुछ समझ लेते हैं।

"हंस सूर्यपथ से जाते हैं। ऋद्धि से योगी भी आकाश में गमन करते हैं। धीरपुरुष सेनासहित मार को पराजित कर लोक से निर्वाण चले जाते हैं।"

हंसादिच्चपथे यंति आकासे यंति इद्धिया।
नीयंति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं।।

जैसे हंस आकाश में उड़ते हैं, ऐसा एक और आकाश है--अंतर का आकाश--जहां परमहंस उड़ते हैं। जैसे हंस आकाश में उड़ते हैं और दूर की यात्रा करते हैं, ऐसे परमहंस अंतर के आकाश में उड़ते हैं और निर्वाण में लीन हो जाते हैं, निर्वाण में चले जाते हैं।

यह गाथा बुद्ध ने एक बड़े अनूठे समय पर कही--

एक दिन तीस खोजी बुद्ध के पास आए। तीसों बुद्ध के भिक्षु हैं, बहुत लंबा पर्यटन करके आए हैं। भिक्षु आनंद द्वार पर पहरा दे रहा है और वे तीस खोजी बुद्ध से कमरे के भीतर बात कर रहे हैं। आनंद को बड़ी देर लग रही है कि बहुत देर हो गयी, बहुत देर हो गयी, बात चलती ही जा रही है, बुद्ध को वे सताए ही चले जा रहे हैं, अब निकलें भी, अब निकलें भी, समय मांगा था, उससे दुगुना समय हो गया! आखिर सीमा आ गयी उसके धैर्य की, वह उठा, उसने दरवाजे से झांककर देखा, बड़ा हैरान हुआ, वहां बुद्ध अकेले बैठे हैं। वे तीस आदमी वहां हैं ही नहीं। उसको तो--अपनी आंखें मींड़ीं--उसको भरोसा न आया, क्योंकि दरवाजा एक ही है, वह दरवाजे पर बैठा है, वे जा तो सकते नहीं, गए कहां?

आनंद ने भगवान से पूछा, भंते, कुछ व्यक्ति आपसे मिलने आए थे, यह क्या चमत्कार! वे कहां हैं? बाहर तो निकले नहीं, क्योंकि मैं द्वार पर बैठा हूं। निकलने का कोई और द्वार है भी नहीं, इसलिए जा कहीं सकते नहीं। गए कहां? तो बुद्ध ने कहा, वे गए आनंद, वे आकाशमार्ग से चले गए। आनंद ने कहा, आप मुझे इस तरह की बातों में उलझाएं मत, पहेलियां न बूझें। आप सीधा-सीधा कहें, वे गए कहां? क्योंकि द्वार पर मैं बैठा हूं और मैं पूरा सजग हूं। तो बुद्ध ने कहा, आनंद, वे भीतर के आकाश से समाधि में उतर गए। इस अंतर-आकाश में उतरने के लिए किसी और द्वार से जाने की जरूरत नहीं है। अपने ही भीतर कोई चला जाए। उस समय आकाश में हंस उड़ रहे थे। तो बुद्ध ने कहा, देख आनंद, द्वार के बाहर देख, जैसे आकाश में हंस उड़ रहे हैं, ऐसे ही वे भी उड़ गए। आनंद ने पूछा, तो क्या वे उड़कर हंस हो गए? गए कहां? बुद्ध ने कहा, वे परमहंस हो गए हैं, आनंद।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

हंसादिच्चपथे यंति आकासे यंति इद्धिया।

"जैसे सूर्यपथ से जाते आकाश में हंस... ।"

नीयंति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं।।

"ऐसे ही धीरपुरुष शैतान की सारी सेना को मारकर--सेनासहित मार को पराजित कर--लोक से निर्वाण को चले जाते हैं।"

यह कथा बड़ी अदभुत है। झेन जैसी है। इसका मतलब कुल इतना है कि वे तीस ही व्यक्ति बुद्ध के पास बैठे-बैठे ध्यान में लीन हो गए, समाधिस्थ हो गए। वे इतनी गहरी समाधि में चले गए--नहीं कि उनके शरीर वहां नहीं थे, शरीर तो आनंद को भी दिखायी पड़ रहे होंगे, शरीर तो थे ही--मगर वे चले गए थे। बस शरीर ही थे। लाशें रखी थीं, पक्षी उड़ गया था। पक्षी जैसे वहां था ही नहीं। मूर्तिवत। वे समाधि में उतर गए थे। और इस समाधि में जो उतरता है उसी की आंख खुलती है।

अंतिम सूत्र--

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।

सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं।। 154।।

"पृथ्वी का अकेला राजा होने से--चक्रवर्ती होने से--या स्वर्ग के गमन से--देवता होने से--अथवा सभी लोकों का अधिपति बनने से भी स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है।"

जो ध्यान की सरिता में उतर गया, उसको बौद्ध-भाषा में कहते हैं, स्रोतापन्न। वह स्रोत की तरफ चल पड़ा। हम तो ऐसे लोग हैं जो किनारे पर खड़े हैं। नदी में उतरते नहीं, बस किनारे पर खड़े हैं। नदी बही जा रही है, पीते तक नहीं, क्योंकि पीने के लिए झुकना पड़ेगा। उतरते नहीं, क्योंकि डरते हैं, कहीं गल न जाएं। क्योंकि जो झूठ हमने बना रखी है अपने जीवन में, वह निश्चित गल जाएगी। जो प्रतिमा हमने अपनी मान रखी है, वह बह जाएगी, तो घबड़ाहट है। और हमें भीतर का तो कुछ पता नहीं है, तो हम ध्यान की धारा में उतरते नहीं। ध्यान की धारा में जो उतरता है, उसे कहते हैं--स्रोतापन्न।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जो जीवन में लक्ष्य की तरफ दौड़ रहे हैं। लक्ष्य का मतलब--धन पाना है, पद पाना है। स्रोतापन्न दूसरे तरह के लोग हैं, जो स्रोत की तरफ जा रहे हैं। जो लक्ष्य की तरफ नहीं जा रहे हैं, जिनकी सारी खोज यह है कि हम आए कहां से? उस मूलस्रोत को पकड़ लेना है। उसे पकड़ लिया तो सब पकड़ लिया। क्योंकि जहां से हम आए, अंततः वहीं जाना है। गंगा गंगोत्री में ही लौट जाती है। बीज वृक्ष बनता है और फिर बीज बन जाता है, वर्तुल पूरा हो जाता है। हम जहां से आए वहीं लौट जाना है--स्रोत, मूलस्रोत की तरफ।

यह गाथा बुद्ध ने एक विशेष अवसर पर कही।

ये सारे अवसर बड़े प्यारे हैं, इसलिए मैं कह रहा हूं।

एक बड़ा दानी था, उसका नाम था, अनाथपिंडक। वह अनाथों का बड़ा सहारा था। देता लोगों को, दिल खोलकर देता। उसके घर काल नाम का एक पुत्र था। अनाथपिंडक बुद्ध को सुनने जाता, लेकिन काल कभी बुद्ध को सुनने न जाता था।

काल शब्द भी बड़ा अच्छा! अनाथपिंडक का मतलब होता है, देने वाला, दान देने वाला, अनाथों को सनाथ कर दे जो। और काल का अर्थ होता है, समय, या मौत। न तो समय बुद्ध को सुनने जाना चाहता है और न मौत, क्योंकि दोनों बुद्ध से डरते हैं।

समय तो क्षणभंगुर है, शाश्वत के पास जाने में घबड़ाता है। और मौत भी जीवन के सामने जाने में घबड़ाती है। तुम तो मौत के सामने जाने में घबड़ाते हो, बुद्धपुरुष के सामने मौत आने में घबड़ाती है। ये तो प्रतीक हुए नाम के।

बाप लेकिन चाहता था कि बेटा जाए, बुद्ध को सुने। लेकिन बेटा सुनता नहीं था। तो बाप ने कहा, ऐसा कर, मैं तुझे सौ स्वर्णमुद्राएं दूंगा अगर तू बुद्ध के वचन सुनने जाए। इस लोभ में वह गया।

तुम ख्याल रखना, पहली दफे जब तुम धर्म की तरफ आते हो तो तुम लोभ में ही आते हो। लोभ किसी तरह का हो, कि चलो मन को थोड़ी शांति मिलेगी, अशांति से छुटकारा होगा, कि थोड़ा आत्मविश्वास बढ़ेगा, कि जीवन में सफलता शायद इस तरह से मिल जाए, कि दुकान तो चलती नहीं शायद ध्यान करने से चल जाए, क्योंकि लोग कहते हैं कि ध्यान करने से तो परमधन मिलता है, तो यह तो छोटा-मोटा धन है, यह तो मिल ही जाएगा, ऐसे ही हजार--कि बीमार रहती है तबियत शायद ध्यान करने से ठीक हो जाए; कि पति-पत्नी की बनती नहीं तो सोचते हैं, चलो ध्यान कर लें शायद बनने लगे, कुछ ऐसे लोभ से आदमी आता है।

तो गया बेटा, बुद्ध को सुना, लौटकर आया, आते ही उसने कहा कि सौ स्वर्णमुद्राएं? पीछे भोजन करूंगा, क्योंकि मुझे भरोसा किसी का नहीं। पहले स्वर्णमुद्राएं गिनवा लीं, तब भोजन किया। वह तो गया ही उसके लिए था। उसको बुद्ध को सुनने से मतलब थोड़े ही था! वह तो जब बुद्ध को सुन रहा होगा तब भी मुद्राएं गिन रहा

होगा। सोच रहा होगा कि बाप देगा कि नहीं देगा, कि चालबाजी की है, कि ऐसे ही बहाना कर दिया है कि इसी बहाने भेज दिया।

दूसरे दिन बाप ने कहा कि अब हजार स्वर्णमुद्राएं दूंगा, लेकिन शर्त एक है कि सुनना काफी नहीं, जो सुनो उसे याद भी रखना और मेरे सामने आकर दोहराना। हजार स्वर्णमुद्राएं! तो बेटा गया। लेकिन वहां जाकर डुबकी खा गया।

वह याद रखने में गड़बड़ हो गयी। गौर से सुनना पड़ा, याद रखना था। ध्यान से सुनना पड़ा, गुन-गुनकर सुनना पड़ा कि एक भी बात चूक न जाए, नहीं तो बाप भी पक्का बाप है, वह एक हजार स्वर्णमुद्राओं में काट लेगा--इतना याद नहीं रहा। इतने गौर से सुना, ध्यान से सुना--भूल ही गया स्वर्णमुद्राओं को उस भाव में--डुबकी खा गया।

आया ही नहीं घर। सांझ हो गयी। बाप भागा आया कि मामला क्या है? वह आंख बंद किए बैठा था। अरे, बाप ने कहा, घर चल। उसने कहा, सुन लिया, अब कहां आना और कहां जाना? बाप ने कहा, हजार स्वर्णमुद्राएं तेरी प्रतीक्षा कर रही हैं। उसने कहा, वह अब आप ही सम्हालकर रख लो, और ये सौ भी जो कल दी थीं वापस ले जाओ।

बाप तो बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि बुद्ध को बहुत सुनता था, उनकी बात मानकर दान भी करता था, लेकिन ऐसा नहीं सुना था जैसा इस बेटे ने सुन लिया।

अक्सर ऐसा होता है कि जवानी जो सुन सकती है, बुढ़ापा नहीं सुन सकता। युवा मन जो सुन सकता है, बूढ़ा मन नहीं सुन सकता। थक गया होता है। या, जानकारी की इतनी पर्तें इकट्ठी हो गयी होती हैं! ताजा मन जो सुन सकता है... ।

बाप ने बहुत समझाया, लेकिन उसने कहा, अब छोड़ो पिंड, तुम यही तो चाहते थे, हो गया। बाप ने कहा, यह जरा ज्यादा हो गया। मैंने इतना चाहा था कि सुन लेगा, लौट आएगा, थोड़ा समझदार हो जाएगा, धार्मिक हो जाएगा, प्रतिष्ठित हो जाएगा, मगर यह जरा ज्यादा हो गया। तेरा क्या इरादा है? उसने कहा, अब क्या इरादा है, बात खतम हो गयी। अब हम बुद्ध के हैं। बात उतर गयी।

बाप ने बुद्ध को कहा कि यह मामला क्या है? मैं जन्म से सुन रहा हूं और इस आदमी ने दो ही बार सुना है और यह भी किसी और कारण से सुना है, पैसा पाने के लिए। बुद्ध ने कहा, तुम्हारा बेटा अब तुम्हारा नहीं, मेरा हो गया। जिसने मुझे सुन लिया, मेरा हो गया। अब यह बेटा मेरा है, अब यह तुम दावा जाने दो। अब उसे तुम चक्रवर्ती की संपत्ति भी दो, तो भी लौटने वाला नहीं। तुम उसे देवलोक का सम्राट बना दो, इंद्र बना दो, तो भी लौटने वाला नहीं। तुम तीनों लोकों की सारी संपदा उसके चरणों में रख दो, तो भी लौटने वाला नहीं। तो बाप ने कहा, इसे हो क्या गया है? तो बुद्ध ने कहा, यह स्रोतापन्न हो गया। यह ध्यान की सरिता में उतर गया है।

इस घड़ी बुद्ध ने यह गाथा कही--

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं।।

"पृथ्वी का अकेला राजा होने से, या स्वर्ग के गमन से, अथवा सभी लोकों का अधिपति बनने से भी स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है।"

इस स्रोतापन्न हो जाने को ही मैं संन्यास कहता हूं। तुममें से जिसने सुना हो, वह ख्याल रखें इस घटना को। सुना, तो मेरे हुए। अगर सुनकर चले गए बिना मेरे हुए, तो सुना ही नहीं। स्मरण रखना। और जब तक तुम स्रोतापन्न न हो जाओ, जब तक तुम ध्यान की सरिता में डूबने न लगो, डुबकी न खाने लगो, तब तक सुना या न सुना सब बराबर है।

आज इतना ही।

बासठवां प्रवचन

संसारः सीढ़ी परमात्मा तक जाने की

पहला प्रश्नः आपने कल ऐसा आदेश क्यों दिया कि संबोधि-दिवस के नृत्य में केवल संन्यासी ही भाग लेंगे? औरों को भाग लेने से क्यों रोक दिया?

जो मुझमें भाग लेने को तैयार नहीं, उसमें मैं भी भाग लेने को तैयार नहीं। धीरे-धीरे हिम्मत करो। तुम अपने हृदय का द्वार मेरे लिए खोलोगे, तो ही मेरा हृदय का द्वारा तुम्हारे लिए खुल सकता है। नहीं कि तुम्हारे लिए बंद है, लेकिन खुल न सकेगा। मेरे हृदय के खुलने की कुंजी भी तुम्हारे हृदय के खुलने में छिपी है।

तो धीरे-धीरे तो मैं उनके लिए ही रहूंगा, जो डूबे हैं। डूबोगे तो ही मेरे साथ चल सकोगे। भीड़-भाड़ में मुझे रस नहीं है। मैं कोई राजनेता नहीं हूं कि भीड़-भाड़ में मेरी उत्सुकता हो। मेरी उत्सुकता उन थोड़े से लोगों में है जो सच में ही खोजने को तत्पर हैं। और कुछ दांव पर लगाने की भी हिम्मत रखते हैं।

संन्यासी का क्या अर्थ होता है? जिसने कुछ दांव पर लगाया। तुम दांव पर तो कुछ भी नहीं लगाना चाहते हो, पाना तुम सब चाहते हो। ऐसी होशियारी से काम न चलेगा।

तो धीरे-धीरे और तरह से भी संन्यासी में ही मैं उत्सुक रह जाऊंगा। क्योंकि संन्यासी का अर्थ इतना है कि वह मेरे साथ डूबने को तैयार है। ले जाऊं अंधेरे में तो अंधेरे में जाने को तैयार है। संन्यासी का अर्थ है, उसे मुझ पर भरोसा आया।

गैर-संन्यासी संन्यासियों की तरंग में थोड़ी सी बाधा डालता है। इसलिए नाचने से मना कर दिया। गैर-संन्यासी नाचते हुए संन्यासियों के बीच में उनकी भाव-समाधि में बाधा बनता है। क्योंकि वह तो उतना खुला नहीं, वह तो बंद है। जो संन्यास लेने की हिम्मत नहीं कर सका, वह नाच भी सकेगा? और जो नाच सकता है, उसे संन्यास लेने में अड़चन क्या होगी? ये दोनों ही पागलपन के काम हैं।

तो इसके पीछे एक सरणी है। अब मैं चाहूंगा कि यहां एक तरंग हो। इस तरंग में जो लोग जीने को राजी हैं, वे ही उसमें डूबें। जो नहीं हैं राजी, उनके लिए बोलता रहूंगा, ताकि आज नहीं कल वे राजी हो जाएं। तो बोलने के लिए मैं तैयार हूं गैर-संन्यासी से भी। लेकिन धीरे-धीरे जो गहरे तल की बातें हैं, जो भीतर घटती हैं, उनके लिए संन्यासी के अतिरिक्त दूसरे के लिए उपाय नहीं होगा।

मुझे फर्क करने ही होंगे। नहीं तो तुम्हें तो कुछ लाभ नहीं होता है, संन्यासी को नुकसान होता है। तुम सोचते हो, पूछने वाले ने इसीलिए पूछा है कि जैसे उसको कुछ हानि हुई। उसको कुछ हानि नहीं होने वाली। तुम्हारे पास कुछ है नहीं, हानि क्या होगी! तकलीफ तुम्हें सिर्फ यही हुई होगी कि कोई बात ऐसी थी जिसमें तुम्हें प्रवेश का अधिकार न मिला। तुम्हारे अहंकार को चोट लगी होगी। इस अहंकार को लेकर तुम सम्मिलित भी हो जाते तो तुम्हारे कारण केवल एक व्याघात पैदा होता। तुम बेसुरे होते। तुम उन पागलों की भीड़ में समझदार होते। तुम एक पत्थर की तरह होते उस धारा में। तुम्हारे कारण धारा को बहने में सहायता न मिलती, बाधा पड़ती।

तुम्हारा कुछ नहीं खोया है। हां, अगर तुम सम्मिलित होते तो जो संन्यासी नाच रहे थे, उनका कुछ खो जाता। नाचकर वे मेरे साथ किसी गहरी छंदोबद्धता में गिर रहे थे। उसका तुम्हें पता भी नहीं है। इसलिए

जिनको हुआ, वही जानते हैं। जिनको नहीं हुआ, उनको तो बाहर से ऐसा लगा कि संन्यासियों को नाचने मिला, हमें नाचने न मिला। तुम्हारे नाचने की आकांक्षा बलवती नहीं है, अन्यथा तुम संन्यासी होने की हिम्मत करोगे, तुम कहोगे कि ठीक है, अगर नाचना है तो यह शर्त भी स्वीकार करेंगे। अगर तुमने कुछ खोया है, तो तुम संन्यास की हिम्मत जुटाओगे। क्योंकि तुम दुबारा वैसा न खोना चाहोगे।

लेकिन नहीं, तुम्हें कुछ अड़चन दूसरी है। तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम्हारे साथ कुछ पक्षपात किया गया। तुम्हारे अहंकार को कुछ बाधा पड़ी है। तुम्हें क्यों न नाचने दिया गया! तुम्हारी पात्रता में कौन सी कमी है! कमी है। साहस की कमी है। हिम्मत की कमी है। तुम सत्य को मुफ्त पाना चाहते हो। तुम सत्य को वैसे ही पाना चाहते हो जैसे तुम हो। तुम कुछ भी बदलने को तैयार नहीं हो। तुम दो कदम बढ़ने को तैयार नहीं हो। और मैं तुमसे कहता हूं, कि तुम एक कदम चलो तो परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ चलता है। लेकिन तुम एक कदम भी चलने को राजी नहीं हो। हालत तो और भी उलटी है। हालत तो ऐसी है कि परमात्मा अगर तुम्हारी तरफ चले तो तुम पीछे हट जाओगे।

एक मजिस्ट्रेट के सामने एक आदमी को पकड़कर लाया गया। क्योंकि वह कार चला रहा था और कोई साठ-सत्तर मील की रफ्तार से जा रहा था, जहां कि बीस मील की रफ्तार से जाने की ही आज्ञा थी, उससे ऊपर नहीं। उस आदमी ने कहा कि सिपाही गलत कह रहा है, ज्यादा से ज्यादा मैं पैंतीस-चालीस की रफ्तार से जा रहा था। मजिस्ट्रेट ने कहा, वह भी ज्यादा है, दुगुनी तो वह भी है। दंड तो उसमें भी होगा, क्योंकि बीस की आज्ञा है, तुम चालीस से जा रहे थे।

लेकिन उसकी बगल में जो दूसरा आदमी बैठा था कार में, उसने कहा कि क्षमा करिए, जहां तक मैं समझता हूं, रफ्तार बीस-पच्चीस से ज्यादा नहीं थी। और उसकी पत्नी ने, जो पीछे बैठी थी, उसने कहा कि मैं भलीभांति जानती हूं कि मेरे पति दस-पंद्रह से ज्यादा की रफ्तार से चलाते ही नहीं।

इसके पहले कि चौथा आदमी जो कि पीछे की सीट पर बैठा था, वह बोले, मजिस्ट्रेट ने कहा, रुको। कहीं ऐसा न हो कि तुम यह कहने लगो कि यह आदमी गाड़ी को पीछे की तरफ ले जा रहा था। अब रुक जाओ, बस! क्योंकि तुम धीरे-धीरे पैंतालीस, चालीस, पच्चीस, पंद्रह पर आ गए, अब कहीं ऐसा न करना कि तुम पीछे गाड़ी को ले जा रहे थे, यह कहने लगो।

परमात्मा तुम्हारी तरफ आए, तो तुमने कभी पूछा है, तुम कहीं गाड़ी को पीछे की तरफ तो न ले जाने लगोगे? तुम हिम्मत से खड़े रहोगे अपनी जगह पर? तुम अपने हाथ आलिंगन के लिए फैलाओगे? क्योंकि मैं जानता हूं, इसलिए ऐसा कह रहा हूं। बहुतों को मैं जानता हूं जिनके पास मैं गया हूं और वे पीछे हट गए हैं। इसलिए कह रहा हूं।

तो अब कृपा करके मुझे उन पर काम करने दो जो पीछे नहीं हटेंगे, जिनका मुझे भरोसा है। और अगर मैं जाऊंगा उनकी तरफ, दो कदम बढ़कर स्वागत करेंगे। केवल उनमें ही प्रवेश हो सकेगा।

कल जो घटा है, एक तो बाहर से दिखायी पड़ने वाली घटना है कि मैं आंख बंद किए यहां बैठा हूं और लोग नाच रहे हैं। इतना तो कोई भी देख लेगा। इतना देखने के लिए तो कुछ भी आंख चाहिए नहीं। अंधा भी अंदाज लगा लेगा, अनुमान कर लेगा। छोटा बच्चा भी देख लेगा। इसके लिए कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर तुम्हारे पास थोड़ी भीतर की आंख हो तो तुम कुछ और देखोगे कि कुछ और घट रहा है। मैं एक तरंग में अपने को ले जा रहा हूं और मेरी तरंग के साथ कुछ लोग धीरे-धीरे डुबकी ले रहे हैं। उसमें मैं बाधा नहीं डालना चाहता।

इसलिए गैर-संन्यासी को अब धीरे-धीरे हक कम होते चले जाएंगे। जैसे-जैसे मेरे पास संन्यासियों की संख्या बड़ी होती जाएगी वैसे-वैसे गैर-संन्यासी के लिए हक कम होते जाएंगे। इसके पहले कि तुम्हारे हक बिल्कुल खो जाएं, तुम जल्दी करो!

दूसरा प्रश्नः जीवन में व्रत का क्या मूल्य है?

व्रत का मूल्य तो जरा भी नहीं, बोध का मूल्य है। व्रत का तो अर्थ ही होता है, बोध की कमी है। उसकी परिपूर्ति तुमने व्रत से कर ली।

तुमने देखा, झूठे आदमी ज्यादा कसमें खाते हैं। हर बात में कसम खाने को तैयार रहते हैं। झूठा आदमी कसम के सहारे चलता है। वह अपनी झूठ को कसम के सहारे सच बताना चाहता है।

पश्चिम में ईसाइयों का एक छोटा सा रहस्यवादी संप्रदाय है, क्वेकर। वे अदालत में भी कसम खाने को राजी नहीं होते। सैकड़ों बार तो उनको इसीलिए सजा भोगनी पड़ी है, क्योंकि अदालत में वह कसम खानी ही पड़ेगी बाइबिल हाथ में लेकर कि मैं सच बोलूंगा। लेकिन क्वेकर्स का कहना भी बड़ा सही है, वे कहते हैं कि मैं सच बोलूंगा, यह भी कोई कसम खाने की बात है! और अगर मैं झूठ बोलने वाला हूं तो कसम भी झूठी खा लूंगा। यह बात ही फिजूल है, यह बात ही मूढ़तापूर्ण है। एक झूठे आदमी से कहो कि यह हाथ में लेकर कुरान या बाइबिल या गीता कसम खा लो कि सच बोलोगे। अब अगर वह आदमी सच में झूठा है, तो वह कसम खा लेगा कि लाओ, कसम खा लेता हूं। झूठ बोलने वाले आदमी को झूठी कसम खाने में कौन सी बाधा है! और सच बोलने वाला आदमी जरूर कहेगा कि मैं कसम क्यों खाऊं, क्योंकि मैं जो बोलता हूं वह सच ही है। कसम खाने का तो मतलब होगा कि बिना कसम खाए जो बोलता हूं, वह झूठ है।

इसलिए क्वेकर कसम नहीं खाते। वे कहते हैं, कसम खाने का तो मतलब ही यह हुआ कि बिना कसम खायी गयी बात झूठ है। हम सच ही बोलते हैं, कसम और गैर-कसम का कोई सवाल नहीं है!

व्रत का अर्थ होता है, कसम। व्रत का अर्थ होता है, समाज के सामने कसम। तुम गए मंदिर में, साधु-संन्यासी के पास, मुनि महाराज के पास, समाज की भीड़ में तुमने कसम खा ली। यह कसम तुम भीड़ में खाते हो। क्यों? क्योंकि तुम्हें अपने पर तो भरोसा नहीं है। तुम जानते तो हो कि अगर सबके सामने कसम खा ली कि अब धूम्रपान न करेंगे, तो अब प्रतिष्ठा का सवाल हो गया। अब अगर समाज में कहीं कोई धूम्रपान करता हुआ पकड़ लेगा, तो बेइज्जती होगी। तो तुमने धूम्रपान के खिलाफ अहंकार को खड़ा कर दिया। कसम का क्या मतलब है?

कसम का मतलब यह हुआ कि अब अहंकार को चोट लगेगी। लोग कहेंगे, अरे, तुमने तो कसम खा ली थी धूम्रपान न करने की, अब कर रहे हो! शर्म नहीं आती! मुनि महाराज के पास किस मुंह को लेकर जाओगे? मंदिर में कैसे प्रवेश करोगे? बाजार में कैसे निकलोगे? प्रतिष्ठा दांव पर लगा दी। कसम का मतलब यह है कि अब सबसे कह दिए कि आज से मैं सिगरेट नहीं पीऊंगा, कि धूम्रपान नहीं करूंगा। अब सारे लोग तुम्हारे पहरेदार हो गए, यह मतलब है कसम का। अब जो भी देखेगा छोटे से लेकर बड़े तक, वह कहेगा, अरे भाई! क्या कर रहे हो! कल तक कोई भी नहीं कह सकता था, क्योंकि तुम अपने मालिक थे। तुमने मालकियत इनके हाथ में दे दी। कल तक हो सकता था पत्नी से बचाकर पी लेते थे, पिता से बचाकर पी लेते थे, अब तुमको सबसे बचाकर पीना होगा, यह बहुत कठिन मामला है! कहां पीओगे? कैसे बचाओगे?

कसम का अर्थ है, भीतर तो बोध नहीं है, भीतर से तो तुम धूम्रपान छोड़ना चाहते नहीं। अगर भीतर से छोड़ना चाहते तो किसी के गवाही की क्या जरूरत थी; छोड़ दिया होता, बात खतम हो गयी। तुम्हें समझ में आ गयी बात कि धूम्रपान व्यर्थ है, बात समाप्त हो गयी। उसी क्षण समाप्त हो गयी, बचा क्या छोड़ने को? धूम्रपान में छोड़ने जैसा है क्या? पहले तो पीने की मूढ़ता की, अब छोड़ने की मूढ़ता कर रहे हो। पहले पीकर सोचते थे कुछ बड़ा काम कर रहे हो... ।

अक्सर ऐसा होता है। सिगरेट पीते वक्त लोग बड़े अकड़कर बैठ जाते हैं, जैसे कोई बड़ा काम कर रहे हैं। छोटे बच्चे भी जल्दी बड़े होना चाहते हैं कि बड़े हो जाएं तो सिगरेट पीएं। छोटे बच्चे भी बैठकर सिगरेट पीना चाहते हैं, क्योंकि सिगरेट पीने के साथ बड़प्पन का भाव जुड़ा है। ऐसा लगता है, कुछ खास हो गए।

मैं एक गांव में रहता था। सुबह घूमने गया था, तो देखा एक छोटा सा बच्चा एक दो आने की मूंछ लगाए सिगरेट पी रहा है, एक झाड़ के नीचे। मुझे देखकर वह छिपने लगा। मैं उसके पीछे भागा तो वह अपने घर में घुस गया। मैं उसके पीछे उसके घर में गया। वह एक पोस्ट-मास्टर का लड़का था। वह घबड़ा गया। उसने जल्दी से अपनी मूंछ छिपा ली, सिगरेट फेंक दी, उसका बाप आया कि क्यों आप मेरे लड़के के पीछे लगे हैं! उसको क्यों डरा दिए? मैंने कहा, डरा मैंने नहीं दिया, मैं पूछने आया हूं उससे कुछ। आपका लड़का गजब का है, जरा उसे बाहर लाएं।

वह लड़का बाहर डरता हुआ आया। मैंने पूछा कि तू यह क्या कर रहा था? बस मुझे तेरे से सिर्फ पूछना है, तुझे यह नहीं कहना है कि तू गलत कर रहा है, तू कर क्या रहा था? यह मूंछ लगाकर सिगरेट पीना? तब मैंने गौर से उसके बाप का चेहरा देखा, वैसी मूंछ बाप की है। बाप भी थोड़ा शर्माया। उसने कहा, यह करता है। यह कभी-कभी करता है। यह एक दो आने की मूंछ खरीद लाया है और इसने बिल्कुल काटकर मेरे जैसी बना ली है। और सिगरेट मेरी पी जाता है!

मगर जब बाप की अकड़ देखता होगा तो उसको भी होता होगा कि अकड़ जाएं। छोटे-छोटे बच्चे सिगरेट पीकर सिर्फ ऐसा काम कर रहे हैं जिसमें प्रतिष्ठा है। सिगरेट में कुछ प्रतिष्ठा है।

तो जब तुम पीते हो तब अकड़कर पीते थे, अब तुमने छोड़ दिया! एक तो काम ही मूढ़तापूर्ण था। मैं पाप नहीं कह रहा हूं, ध्यान रखना, मूढ़तापूर्ण। मैं सिगरेट पीने वाले को पापी नहीं कहता, क्योंकि पापी कहना तो बड़ा सम्मान हो गया कि बड़ा काम कर रहे हैं, चलो पाप ही सही, मगर कुछ कर तो रहे हैं! कुछ ऐसा काम कर रहे हैं कि परमात्मा को भी इनका हिसाब रखना पड़ेगा। पाप का मतलब होता है, उस ऊपर की खाते-बही में तुम्हारा नाम लिखा जाएगा कि फलां सज्जन सिगरेट पीते हैं, दिन में इतनी पीते हैं! कुछ विशेष कर रहे हैं। पाप तो विशिष्ट हो गया। मैं सिर्फ कहता हूं, मूढ़ता। परमात्मा की खाते-बही में कहीं भी नहीं लिखा होगा कि तुमने कितनी सिगरेट पी हैं, कि नहीं पी हैं। कि कौन से मार्के की सिगरेट पीते थे! अगर परमात्मा ऐसा करता हो तो तुमसे भी गया-बीता है। ये भी कोई हिसाब रखने की बातें हैं! तुम मूढ़ता करो और परमात्मा हिसाब रखे!

नहीं, मैं सिर्फ कहता हूं, मूढ़ता। एक तरह की मूर्च्छा। जिसको बुद्ध ने प्रमाद कहा है। एक तरह का प्रमाद। प्रमाद शब्द में मूर्च्छा और अहंकार, दोनों का भाव है। इसलिए तो हम अहंकारी को भी कहते हैं, बड़ा प्रमादी। मूर्च्छित को भी कहते हैं प्रमादी। प्रमाद शब्द बड़ा बहुमूल्य है, उसमें मूर्च्छा और अहंकार, दोनों का जोड़ है। मूर्च्छित अहंकार, या अहंकारी मूर्च्छा।

तो एक तो सिगरेट पीकर तुम प्रमाद कर रहे थे। उतने से तुम्हारा मन न माना, अब मंदिर में जाकर तुम छोड़ आए। तुम्हारे मुनि भी तुमसे गए-बीते हैं जो बड़े प्रसन्न होते हैं--तुमने धूम्रपान छोड़ दिया। जैसे दुनिया का

बड़ा कल्याण हुआ जा रहा है। तुम करते ही कुल इतना थे कि धुआं भीतर ले जाते थे, बाहर निकालते थे। तुम्हारे धुआं बाहर-भीतर निकालने से न दुनिया का अकल्याण हो रहा था, न कल्याण हो जाएगा बंद कर देने से। धुआं बाहर-भीतर निकालने से क्या कल्याण-अकल्याण का संबंध! हां, तुम इतना ही बता रहे थे कि तुम बुद्धू हो।

लेकिन, अब ये मुनि महाराज कहते हैं, तुमने बड़ा काम किया कि व्रत ले लिया, कसम खा ली। धन्यभागी हो तुम! तुम्हारे जीवन में पुण्य की शुरुआत हुई।

पहली तो बात धुआं पीना और बाहर निकालना पाप न था; फिर धुआं निकालना, ले जाना छोड़ना पुण्य नहीं हो सकता। तुमने भी पुण्य की कैसी बचकानी बातें बना रखी हैं। जो लोग सिगरेट नहीं पी रहे हैं, वे सोच रहे हैं कि खाते-बही में बड़ा पुण्य लिखा जा रहा होगा कि देखो, यह आदमी सिगरेट नहीं पीता, यह आदमी पान नहीं खाता, यह आदमी तंबाकू नहीं खाता, यह आदमी यह नहीं करता, यह आदमी वह नहीं करता, तुम जरा सोचो तो तुम्हारे कितने पुण्य चल रहे हैं। जो-जो तुम नहीं करते, वह सब पुण्य है। तुम वेश्या के घर नहीं जाते, शराब नहीं पीते, पान नहीं खाते, सिगरेट नहीं पीते, ताश नहीं खेलते, पुण्य ही पुण्य कर रहे हो तुम! अब और क्या कमी है तुम्हारे जीवन में? महात्मा हो तुम! जरा देखो भी तो कि कितने पुण्य कर रहे हो! जो-जो तुम नहीं कर रहे हो, उसको गिन लो।

जिस दिन तुम सिगरेट पीना छोड़ देते हो, उस दिन तुमने कोई पुण्य किया? तुमने सिर्फ अपने पर थोड़ी अनुकंपा की जरूर, मगर पुण्य इत्यादि कुछ भी नहीं। तुम थोड़े समझदार हुए जरूर, मगर पुण्य इत्यादि कुछ भी नहीं।

कल हमने बुद्ध के भिक्षु की बात कही जो झाड़ू लगाया करता था। अब क्या तुम सोचते हो, झाड़ू लगाना छोड़ देने से पुण्य हुआ? कि भगवान कहेगा कि धन्यभागी! तेरा बड़ा सौभाग्य कि तूने झाड़ू लगाना छोड़ दिया! इसकी कहीं पुण्य में गिनती होगी!

अगर तुम गौर से समझो तो इस जमीन पर पाप के नाम से तुमने जो किया है, वह नासमझी है। और पुण्य के नाम से उस नासमझी को मिटाते हो। पुण्य क्या है? चोरी की, चोरी कर-करके धन इकट्ठा कर लिया, फिर दान करके पुण्य कर दिया। पहले धनी होने का मजा ले लिया, फिर पुण्यात्मा, दानी होने का मजा ले लिया। और दोनों निर्भर हैं धन पर। और धन का कोई मूल्य ही नहीं है। धन दो कौड़ी का है। मिट्टी है। पहले मिट्टी इकट्ठी करके मजा ले लिया, तब अखबारों में खबर छप गयी कि देखो, कितनी मिट्टी इकट्ठी कर ली इस आदमी ने। और फिर मिट्टी दान करके मजा ले लिया। फिर अखबारों में खबर छप गयी कि यह आदमी पुण्यात्मा हो गया।

व्रत बेईमानी है। समझदार के जीवन में क्रांति होती है, व्रत नहीं होते।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मायके गयी थी। उसने अपनी एक प्रेयसी को घर आने का निमंत्रण दिया। पत्नी बाहर गयी हो तो कौन ऐसा अवसर चूके! इसलिए पत्नियां मायके जाने की धमकी देती हैं, जाती-करती नहीं। जाने की कहो तो नाराज हो जाती हैं। मगर जाना पड़ा था। कुछ जरूरी काम आ गया होगा। तो गयी भी तो भी कसम दिलवा गयी। कसम दिलवा गयी कि मुल्ला, एक बात की कसम खा लो कि किसी और स्त्री के साथ बाहर मत जाना। जाते ही मुल्ला ने फोन किया अपनी प्रेयसी को, कहा कि आ जाओ, पत्नी मायके गयी है और महीने-पंद्रह दिन अब कोई झंझट नहीं है।

प्रेयसी चाहती थी कि मुल्ला उसके घर आए। लेकिन मुल्ला जिद्द पर अड़ा रहा सो अड़ा रहा। आखिर प्रेयसी ने खीझकर पूछा, नसरुद्दीन, मामला क्या है? मैं ही तुम्हारे घर आऊं ऐसी जिद्द क्यों? तुम मेरे घर क्यों नहीं आ सकते?

मुल्ला ने कहा, कारण है। कारण यह है कि मैंने अपनी पत्नी को आश्वासन दिया है कि जब तक वह मायके में है, मैं किसी स्त्री के साथ बाहर नहीं जाऊंगा। और कोरा आश्वासन नहीं, उसने कुरान हाथ में रखवाकर कसम दिलवा दी। सो बाहर तो मैं जा नहीं सकता, अब तुम ही आ जाओ। भीतर आने की तो कोई बात ही नहीं है कसम में कि बाहर की स्त्री को भीतर नहीं आने दूंगा। मैं किसी स्त्री के साथ बाहर नहीं जाऊंगा।

सब कसमें ऐसी हैं। झूठ हैं। तुम खाना भी नहीं चाहते थे, खानी पड़ी है। तुमने प्रतिष्ठा और अहंकार के आधार पर खा ली होगी। अब पत्नी अगर कहे कि किसी स्त्री के साथ बाहर न जाओगे, कसम खाओ। अगर तुम न खाओ तो झंझट! उसका मतलब कि तुम जाने का विचार किए बैठे हो। न खाओ तो साफ हो गयी बात कि तुम विचार ही किए बैठे हो। कि तुम राह ही देख रहे हो कि कब पत्नी जाए। इसलिए कसम तो खानी ही पड़ेगी। फिर कसम में से कोई तरकीब निकालनी पड़ेगी। तो लोग कसमों में से तरकीब निकालते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने शराब छोड़ दी थी। लेकिन एक दिन एक मित्र ने देखा कि वह पी रहा है। तो उसने पूछा, अरे, मैंने तो सुना था तुमने छोड़ दी! उसने कहा, खरीदनी छोड़ दी। जाकर कसम खा ली, पत्नी बहुत पीछे पड़ी थी, तो कसम खा ली कि अब शराब कभी खरीदकर न पीऊंगा। कोई पिला दे तो बात और।

मैंने तो यहां तक सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र मरा तो मरते वक्त--दोनों साथ-साथ शराब पीते रहे जिंदगीभर; जब भी दोनों जाते तो दो गिलासों में शराब आती थी--मरते वक्त उसके मित्र ने कहा, मुल्ला, अब तुम अकेले ही शराब पीओगे, मेरी याद करोगे या नहीं? मुल्ला ने कहा, याद जरूर करूंगा। तो मित्र ने कहा, इस तरह से याद करना कि मैं तो चला जाऊंगा, मैं तो मर रहा हूं, कोई उम्मीद नहीं डाक्टर कहते हैं, तुम इतना करना, कि जब भी तुम शराब पीओ तो जैसे हम सदा दो गिलास का आर्डर देते थे, दो का ही आर्डर देना। दोनों गिलास तुम पी लेना--एक तुम्हारे लिए, एक मेरे लिए। इससे मेरी आत्मा को बड़ी शांति रहेगी। मुल्ला ने कहा, अरे, यह भी कोई बात! जरूर करूंगा। इससे अच्छा और क्या? मुल्ला तो ऐसा प्रसन्न हो गया कि अच्छा ही हुआ कि मित्र मर रहा है।

मित्र तो मर गए, मुल्ला दो गिलास बुलाकर पीने लगा। जब भी कोई पूछता कि दो गिलास क्यों, अकेले तो तुम हो, तो वह कहता--एक मित्र के लिए। मित्र तो मर चुका है। सारे गांव में खबर हो गयी कि वह दो गिलास बुलाकर पीता है। जहां भी जाए, वह दो गिलास बुलाकर पीए। फिर एक दिन शराबघर में आया और एक ही गिलास का आर्डर दिया। तो शराबघर के मालिक ने कहा, नसरुद्दीन, बात क्या है, क्या मित्र को भूल गए? नहीं, उसने कहा, यह बात नहीं, डाक्टर ने कहा है कि नसरुद्दीन शराब पीना छोड़ दो। तो मेरा गिलास तो छोड़ना पड़ रहा है। मित्र की तरफ तो जो वफादारी है सो निभानी ही पड़ेगी।

आदमी ऐसा बेईमान है। तुम्हारे व्रत, तुम्हारे नियम, सब कानूनी बातें हैं। अगर तुम्हारा बोध उनके साथ नहीं है तो तुम कोई न कोई तरकीब निकाल लोगे। आदमी बड़ा कुशल है। दूसरों को धोखा देने में तो है ही, खुद को धोखा देने में भी बड़ा कुशल है। तुम कोई न कोई मार्ग खोज लोगे। इसलिए मैं व्रत के पक्ष में नहीं हूं। मैं बोध के पक्ष में हूं। मैं कहता हूं, समझने की कोशिश करो। समझदारी ही तुम्हारा व्रत बन जाएगी। व्रत को अलग से मत लो।

अगर तुम्हें समझ में आ गया कि शराब पीना व्यर्थ है, तो यही समझ काफी होनी चाहिए। इसी समझ के आधार पर शराब छूट जानी चाहिए। अगर इस समझ से ही न छूटती हो तो अभी मत छोड़ना। क्योंकि व्रत लेकर तुम कोई न कोई बेईमानी करोगे। फिर व्रत ही क्यों लेना। जब समझ के अनुकूल ही नहीं है अभी बात तो समझ के प्रतिकूल व्रत क्यों लेना!

समझ के प्रतिकूल लिया गया व्रत तुम्हारे भीतर द्वंद्व पैदा करेगा, कानफ्लिक्ट पैदा करेगा, संघर्ष पैदा करेगा। तुम दो हिस्सों में बंट जाओगे। एक हिस्सा पीना चाहेगा, एक हिस्सा कहेगा कि कैसे हो सकता है, सबके सामने व्रत ले लिया है! तो तुम्हारे भीतर तनाव पैदा होगा, अशांति पैदा होगी, चिंता पैदा होगी, बेचैनी पैदा होगी।

और धर्म से बेचैनी पैदा नहीं होती, धर्म से चैन आता है। धर्म से अशांति पैदा नहीं होती, धर्म से शांति उतरती है। तो जिस धर्म से भी अशांति पैदा हो, जानना कि वह धर्म नहीं है।

मैंने सुना है--
जीवन के महक भरे स्वप्न कहां बोऊं मैं
आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
सुनना ध्यानपूर्वक!
जीवन के महक भरे स्वप्न कहां बोऊं मैं
आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
कोई भी काम नहीं ऐसा जो
पुण्य हो न पाप हो,
जिसको मैं करूं सहज भाव से
जिस पर बस मेरी ही मेरी छाप हो
मन की सुन लेता तो आत्मा धिक्कारती
स्वयं तो अमर है पर मुझे रोज मारती
बाहर से धैर्यवान भीतर से डरा हुआ
सदा भूल जाता हूं जीवन का एकमात्र
सत्य तो रक्त और मांस और चर्म है
आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
झूठा आश्वासन है मेरी स्वाधीनता
मेरा हर अहंकार मुखरित कर देता है
मेरी ही दीनता
मैं भी कुछ ऐसे स्वच्छंद हूं
जैसे हो सील भरी लकड़ी में आग
जैसे हो तर्कशील मन में अनुराग
मैं कोई राजनयिक बंदी हूं
यूं सब सुविधाएं हैं,

सिर्फ नजरबंद हूं,
मुक्ति का करूं अभिनय कैसे जब
चिंतन है बिका हुआ
अनुबंधित कर्म है
आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
फूलों पर मुहर लगी मृत्यु की
फल सारे मृत्यु की नजर में हैं
कैसे ये फल चखूं
कैसे ये फूल मेज पर रखूं
धर्म नहीं, धर्म के प्रचारों से डरता हूं
मृत्यु नहीं, मृत्यु के विचारों से डरता हूं
रूप और रस और गंध कैसे भोगूं जब
संयम ही सारे उपदेशों का मर्म है
आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
जीवन के महक भरे स्वप्न कहां बोऊं मैं

तुम देखे? इधर मृत्यु डरा रही, इधर धर्म डरा रहा। इधर मृत्यु कहती है, गए। इधर मृत्यु कहती है, जल्दी करो, भोग लो। और इधर धर्म कहता है, भूलकर भोगना मत, नहीं तो जलाए जाओगे नर्क की लपटों में। कीड़े-मकोड़े बनोगे। भटकोगे ही योनियों और योनियों में। महादुख होगा परिणाम। जरा सा भोग महादुख में ले जाएगा। ये क्षणभंगुर सुख की आशा अनंत-अनंतकालीन नर्क में डाल देगी। इधर मौत है, वह कहती है, देर क्या कर रहे, यह जवानी हाथ से चली जा रही है, पी लो, पिला लो, मौज कर लो। फिर दुबारा कोई आना नहीं है। मौत सब छीन लेगी। यह घड़ीभर के लिए जो जीवन मिला है, इसे ऐसा ही न गुजर जाने दो।

आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है

और आदमी इन दोनों के बीच में कटा हुआ खड़ा है। इधर मृत्यु खींचती है, उधर महात्मा। तुम्हारी बड़ी दुर्गति है।

तुमने इस सत्य को समझा या नहीं? तुम्हारी बड़ी दुर्गति है! अगर मृत्यु को मानो तो मृत्यु कहती है, भोग लो, खोओ मत क्षण, कल का कुछ पता नहीं, कौन जाने कल हो, न हो। तो जो करना है, कर लो। और इधर महात्मा कहता है, सोच-विचारकर करना। ऐसा मत कर लेना कुछ कि कल बिगड़ जाए आज के पीछे। कल का ख्याल रखकर करना। मौत के बाद का ध्यान रखना। बीज तो अभी बोओगे, फल कौन काटेगा? ऐसा आदमी दोनों के बीच में खड़ा है। न घर का न घाट का। धोबी का गधा।

तुमने उस गधे की बात सुनी? ईसप की कथा है। एक गधे को बीच में खड़ा कर दिया उसके मालिक ने और दोनों तरफ घास के दो पूले रख दिए। गधा भूखा है। लेकिन इस पूले की तरफ देखता है तो उस पूले की याद आती है। उस पूले की तरफ देखता है तो इस पूले की याद आती है। ऐसा बीच में ही खड़ा-खड़ा मर गया। चुनाव ही न हो पाया। निर्णय ही न हो पाया किस तरफ जाऊं, यह ठीक कि यह ठीक! ऐसे द्वंद्व में प्राण निकल गए।

तुम जरा देखना, एक तरफ महात्मा खड़े, एक तरफ मौत खड़ी। मौत कहती, जल्दी करो, भोगो। महात्मा कहता है, ठहरो, भोगना भर नहीं। नहीं तो सदा भुगतोगे। भोगा कि भुगते। फिर मत कहना। तो भोगने जाओ तो महात्मा खड़ा है, न भोगो तो मौत खड़ी है।

आधे में मृत्यु और आधे में धर्म है
जीवन के महक भरे स्वप्न कहां बोऊं मैं

नहीं, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यह जो धर्म है, यह वास्तविक धर्म नहीं है। यह व्रत वाला धर्म है।

वास्तविक धर्म तो तुम्हें नर्क से भयभीत नहीं करता। वास्तविक धर्म तो भयभीत ही नहीं करता। वास्तविक धर्म तो जीवन के आनंद को तुम कैसे परिपूर्णता से भोगो, उसके सूत्र देता है। वास्तविक धर्म तुम्हें संसार के भोग से मुक्त नहीं करता है, संसार में ही कैसे परमात्मा का भोग भी संभव हो सकता है, इस दिशा में गतिशील करता है। वास्तविक धर्म तुम्हारे जीवन में द्वंद्व पैदा नहीं करता। वास्तविक धर्म कहता है, तुम्हारा यह जो जीवन है, उस जीवन की सीढ़ी है। इसमें विरोध नहीं है। दुकान मंदिर की सीढ़ी है। और धन ध्यान की सीढ़ी है। और शरीर आत्मा का द्वार है। और यह संसार परमात्मा का संसार है। इसे कुछ ढंग से जीओ, इसे कुछ बोध से जीओ, तो तुम इसी सुख में स्वर्ग को खोज लोगे। और ख्याल रखना, अगर तुम इस सुख में स्वर्ग को नहीं खोज सकते तो स्वर्ग फिर कहीं भी नहीं है।

मैं तुमसे जिस धर्म की बात कर रहा हूं, वह व्रत वाला धर्म नहीं है, बोध वाला धर्म है। मैं तुम्हें कहीं से भी तोड़ना नहीं चाहता हूं। मैं तुम्हें परमात्मा से जरूर जोड़ना चाहता हूं, लेकिन तुम्हें कहीं से तोड़ना नहीं चाहता हूं। मैं तुम्हें, तुम जहां हो, उस जगह का ठीक-ठीक उपयोग कर लेना सिखाना चाहता हूं।

एक मित्र मेरे पास आए, बहुत दिन से उन्हें सिगरेट पीने की आदत है। वे कहने लगे, कैसे छोडूं? मैंने कहा, तुम छोड़ तो रहे हो तीस साल से, अभी भी अकल नहीं आयी कि तीस साल छोड़ने-छोड़ने में बिताए। न पी पाए, न छोड़ पाए। छोड़ो पंचायत! तो उन्होंने कहा, फिर पीता ही रहूं? बड़े उदास हो गए--तीस साल से पी ही रहे हैं--जैसे कि मैं कुछ कसूर कर रहा हूं। यानी वे मुझ पर ही कुछ नाराज मालूम पड़े। कि आप और ऐसी बात कह रहे हैं! क्योंकि महात्मा से तो बात ऐसी होनी चाहिए कि छोड़ो, इसी वक्त छोड़ दो, कसम खा लो कि अब कभी न पीएंगे। अरे, अपना बल खोजो, आत्मबल जगाओ, यह क्या बात है! सिगरेट से हारे जा रहे हो? आत्मवान बनो, संकल्प पैदा करो, यह क्या बात है! महात्मा से वे ऐसे ही सुनते रहे होंगे। महात्माओं के पास जाते भी हैं।

ऐसे ही लोग तो जाते हैं महात्माओं के पास--किसी को सिगरेट छोड़नी है, किसी को तमाखू छोड़नी है। यह भी अजीब धंधा है। कोई लोग तमाखू बेचने का धंधा कर रहे हैं, कुछ लोग तमाखू छुड़वाने का धंधा कर रहे हैं। मगर धंधा वही है। धंधे में कोई बहुत भेद नहीं है। ये एक ही दुकान में साझीदार मालूम पड़ते हैं।

मैंने उनसे कहा कि देखो, एक काम करो तुम, एक छोटा सा काम करो। यह धूम्रपान को तुम मंत्र बना लो। जब धुआं भीतर ले जाओ तो कहो, ओम्। और जब धुआं बाहर लाओ तो कहो, ओम्। वे बोले, क्या मामला! मैंने कहा, यह माला बन जाएगी, ओंकार का नाद करो। थोड़े हंसे भी! कहा, आप भी क्या बात कह रहे हैं! कहां ओम और कहां धूम्रपान, इसको कहां जोड़ रहे हैं! मैंने कहा, तुमने मेरी किताब नहीं पढ़ी--संभोग से समाधि की ओर। मैं कुछ भी जोड़ देता हूं। तुम फिकर न करो। तुम ओंकार का पाठ तो शुरू करो, फिर देखेंगे।

पंद्रह दिन बाद मेरे पास आए, वे कहने लगे, बड़ा गजब हो गया है! पंद्रह दिन से ओंकार का पाठ कर रहा हूं, सिगरेट तो धीरे-धीरे गौण हुई जा रही है, ओंकार का पाठ गहन हुआ जा रहा है। अब तो कभी-कभी सिगरेट पीने का ख्याल उठता है तो सिगरेट न पीकर ओंकार का पाठ ही कर लेता हूं। और ऐसा मजा आता है जैसा सिगरेट में कभी नहीं आया था! मैंने कहा, वह तुम्हारी मर्जी, मैंने तुमसे छोड़ने को नहीं कहा है।

अगर सिगरेट को भी आधार बनाया जा सके तो क्यों न बना लो? अगर देह भी द्वार बनती हो तो क्यों न बना लो? अगर संबंध, नाते, रिश्ते भी उस परम की तरफ ले जाने के लिए सहारा बनते हों तो क्यों न बना लो? अगर परिवार को बिना छोड़े परमात्मा खोजा जा सकता हो, तो क्या यह उचित न होगा, ज्यादा मानवीय, ज्यादा धार्मिक, ज्यादा कारुणिक?

नहीं, मैं तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता कहीं से। इसलिए व्रत के मैं पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि व्रत तो प्रक्रिया है जबर्दस्ती आरोपण की। मैं बोध के पक्ष में हूं।

तीसरा प्रश्नः मैं कवि हूं। क्या सत्य को पाने के लिए अब संन्यासी भी होना आवश्यक है?

सत्य यदि मिल गया हो, तो पूछ किसलिए रहे हो? और कवि होने से सत्य मिलता है! कवि तो कल्पना का ही विस्तार है। हां, कभी-कभी सत्य को पाने वाले भी कवि होते हैं। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि जो-जो कवि हैं, सबने सत्य को पा लिया है।

इसलिए इस देश में हमने कवियों के लिए दो नाम दिए हैं--ऋषि और कवि। दोनों का एक ही अर्थ होता है। लेकिन दोनों का बड़ा गहन भेद भी है।

ऋषि हम उसे कहते हैं, जिसे सत्य मिला और जिसने सत्य को गीत में गाया। जिसने सत्य पाया और सत्य को ऋचा बनाया, गीत बनाया, उसको हम ऋषि कहते हैं। उपनिषद जिसने लिखे, वेद के मंत्र जिसने लिखे। कबीर और नानक और दादू और मीरा और सहजो और दया, ये सब ऋषि हैं। इनको तुम कवि कहकर ही भ्रांति में मत पड़ जाना। क्योंकि कवि तो हजारों हैं, लेकिन वे नानक नहीं हैं, और न कबीर हैं। और यह भी हो सकता है कि वे नानक से बेहतर कवि हों और कबीर से बेहतर कवि हों, क्योंकि कविता एक अलग बात है। नानक कोई बहुत बड़े कवि थोड़े ही हैं! अगर कविता को ही खोजने जाओ तो नानक और कबीर में कोई बहुत बड़ी कविता थोड़े ही है! कविता के कारण उनका गौरव भी नहीं है। गौरव तो किसी और बात से है। जो उन्होंने देखा है, उसको उन्होंने काव्य में ढाला है। उसको गाकर कहा है।

साधारण कवि ने देखा तो कुछ भी नहीं है, ज्यादा से ज्यादा सपने देखे हैं--यह भी हो सकता है कि शराब पीकर देखे हों कि गांजा पीकर देखे हों। इसलिए अक्सर कवि को तुम पाओगे शराब पीते, गांजा पीते, इस तरह के काम करते। किसी कवि की कविता अच्छी लग जाए तो भूलकर कवि से मिलने मत जाना, नहीं तो बड़ा सदमा पहुंचता है। कविता तो ऐसी ऊंची थी और कवि को देखा तो वे नाली में पड़े हैं! कि चायघर में बैठे गालियां बक रहे हैं! कवि को देखने जाना ही मत। अगर कविता पसंद पड़े तो भूलकर मत जाना, नहीं तो कविता तक में अरुचि हो जाएगी।

हां, ऋषि की बात और है। अगर ऋषि की पंक्ति पसंद पड़ जाए और ऋषि उपलब्ध हो तो छोड़ना मत। क्योंकि पंक्ति में क्या रखा है! पंक्ति तो कुछ भी नहीं है। जब तुम ऋषि को देखोगे तब तुम्हें पूरा दर्शन होगा।

पंक्ति तो जैसे एक किरण थी छोटी। एक नमूना था। जरा सा स्वाद दिया था पंक्ति ने तो। ऋषि के पास जाओगे तो पूरा सागर लहलहाता मिलेगा।

कवि तो कविता में खतम हो गया। कवि को पाओगे तो रिक्त, कोरा पाओगे। ऋषि कविता में खतम नहीं हो गया है। कविता तो ऐसी ही है जैसे ऋषि के भीतर तो आनंद उछल रहा था, कुछ बूंदें कविता बन गयीं।

तुम कहते हो, "मैं कवि हूं।"

अच्छा है कवि हो, लेकिन ऋषि न बनना चाहोगे? तुम्हारे काव्य के साथ संन्यास जुड़ जाए तो तुम ऋषि हो जाओ। तुम्हारे काव्य के साथ ध्यान जुड़ जाए तो तुम ऋषि हो जाओ। कवि होने पर मत रुक जाना। कवि कोई बहुत बड़ा गुण नहीं है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने एक युवती से विवाह का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। तो उसने खुशी में डुबकी लेकर पूछा, क्या तुम्हारे माता-पिता को पता है कि मैं कवि हूं, शायर? युवती ने कहा, नहीं अभी तक नहीं। मैंने उनसे चोरी के अपराध में तुम्हारी जेल-यात्रा के संबंध में जरूर बताया है। यह भी कि तुम्हें जुआ खेलने की आदत है, और यह भी कि शराब की लत है। लेकिन तुम कवि भी हो, यह मैंने नहीं कहा; सोचा सभी बातें एक साथ बताना ठीक नहीं। धीरे-धीरे बताएंगे।

कवि होना अनिवार्यरूपेण गुण नहीं है। अक्सर तो तुम कविता करते उन लोगों को पाओगे जो जीवन में असफल हो गए हैं। जो कुछ और न कर सके वे कवि हो गए। फिर जो कवि भी नहीं हो सकते, वे आलोचक हो जाते हैं। वह और गयी-बीती दशा है। कवि होने का अर्थ ही इतना है कि तुम कृत्य में नहीं उतार पाए, तो अब कल्पनाओं में उतार रहे हो। जिनके जीवन में प्रेम नहीं घटा, वे प्रेम की कविताएं लिख रहे हैं। ऐसे मन को समझा रहे हैं, बुझा रहे हैं। यह सांत्वना है।

इसलिए कवियों की कविताओं से तुम प्रेम की कोई धारणा मत बना लेना, क्योंकि उनको प्रेम का कुछ पता ही नहीं है। प्रेम का जिनको पता है, वे शायद कविताएं लिखेंगे भी नहीं। अक्सर ऐसा होता है कि जिनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव नहीं घटता, वे किसी तरह के सपने पैदा करके परिपूरक निर्मित करते हैं। सपने का उपयोग ही यही है।

तुम दिन में भूखे सोए, किसी दिन तुमने उपवास किया, तो रात तुम सपना देखोगे कि भोजन कर रहे हो, राजा के घर मेहमान हो, बड़ा स्वादिष्ट भोजन है, सभी तरह के मिष्ठान्न हैं। ये भूखे आदमी ही इस तरह के सपने देखते हैं। उपवास करने वाले, व्रत इत्यादि ले लिया, कि पर्यूषण आ गए, ऐसा कुछ मौका आ गया, तो रात में सपने आते हैं। जब तुम भरे पेट सोते हो तो रात कभी भोजन के सपने नहीं आते।

गरीब आदमी सपने देखता है, सम्राट हो गया है। सम्राट नहीं देखता ऐसे सपने। झोपड़े वाला सपने देखता है, महल में हो गया। महल वाला ये सपने नहीं देखता। तुम तो चकित होओगे, अक्सर महल वाला देखता है कि संन्यासी हो गया, भिक्षु हो गया। अक्सर धन वाला देखता है सपने कि कब इस धन से छुटकारा होगा, कब इस फंदे से बाहर निकलेंगे। कब हो जाएंगे मस्त फकीर। न कुछ फिकर, न कुछ लेन-देन। सपने विपरीत होते हैं, यह मैं कह रहा हूं। जिस चीज की कमी होती है, सपने के द्वारा उसकी हम पूर्ति करते हैं।

कविता एक तरह का सपना है। जो तुम्हारे जीवन में कम है, उसकी तुम सुंदर-सुंदर पंक्तियां रचकर अपने को समझाते हो कि चलो, कविता कर ली। ऐसे मन बहलता है। काव्य कोई जीवन का बड़ा गहरा अनुभव नहीं है। अगर जीवन का गहरा अनुभव करना है तो ऋषि बनो। कवि और ऋषि का फर्क हैः कवि का अर्थ है, सपने देखने वाला आदमी; ऋषि का अर्थ है, सत्य देखने वाला आदमी। सपने देखकर तुम जो गीत गुनगुनाओगे, उनमें

सपनों ही की तो गंध होगी। सत्य देखकर तुम जो गीत गुनगुनाओगे उनमें सत्य की गंध होगी। सपनों में गंध कहां, दुर्गंध ही होती है। गंध तो सत्य की ही होती है।

इसलिए मैं तुमसे कहूंगा, कवि हो, सुंदर। और थोड़े आगे बढ़ो, यह कोई मंजिल नहीं आ गयी। यहां रुकने से कुछ होगा नहीं, थोड़े आगे चलो। ऋषि बनो। तब तुम्हारे भीतर से एक नए ढंग के काव्य का अवतरण होगा। तब तुम्हारी गीत की कड़ियां तुम्हारी न होंगी, परमात्मा की होंगी। तब तुम बांस की पोंगरी हो जाओगे। गीत उसका होगा, ओंठ उसके होंगे, तुम वेणु बन जाओगे। तब भी बांसुरी बजेगी, लेकिन स्वर परमात्मा का होगा। तब बड़ी अनूठी बांसुरी बजती है।

अभी तुम्हीं तो बजाओगे, तुम्हारे पास है क्या? तुम डालोगे क्या बांसुरी में? तुम्हारी संपदा क्या है? तुम्हारे भीतर है क्या? हुआ क्या है? कुछ भी तो नहीं हुआ है। तुम वैसे ही साधारण आदमी हो जैसे दूसरा कोई साधारण आदमी है। तुम्हें परमात्मा की झलक कहां मिली! तो तुम कहोगे क्या कविता में?

तुम्हारे पास डालने को कुछ भी नहीं है। तो तुम्हारी कविता कोरी-कोरी होगी, सूनी-सूनी होगी, मुर्दा-मुर्दा होगी। शब्दों का अंबार लगा दोगे तुम, लेकिन शब्दों के पीछे जब तक सत्य न हो तब तक बेबुनियाद है भवन। तब तक तुम कागज की नावें जितनी चाहो तैरा लो, लेकिन इनसे भवसागर पार न होगा।

चौथा प्रश्नः सिख होने की वजह से मैं नानक से प्रभावित हूं। आपकी वाणी और दर्शन से भी प्रभावित हूं। कृपया बताएं कि कौन सा मार्ग अपनाऊं?

तुम्हें भेद कहां दिखायी पड़ा? चुनाव तो तब होता है जब भेद हो। कि नानक कुछ कहते हों, मैं कुछ और कह रहा होऊं, तब चुनाव का सवाल है।

अगर तुमने नानक को चाहा है, तो तुम नानक को ही मुझमें देख लोगे। अगर तुमने मुझे चाहा है, तो तुम मुझको ही नानक में देख लोगे, भेद कहां है?

यहां एक अपूर्व घटना घट रही है। यहां जीसस को चाहने वाले लोग हैं, उन्होंने जीसस को मुझमें देख लिया। उन्होंने मुझको भी चाहा उनके प्रेम के कारण। उनका प्रेम सेतु बन गया और मैं और जीसस एक हो गए। यहां कबीर को चाहने वाले लोग हैं। यहां महावीर को चाहने वाले लोग हैं। यहां बुद्ध को चाहने वाले लोग हैं। यहां जरथुस्त्र को चाहने वाले लोग हैं। मोहम्मद को चाहने वाले लोग हैं। यहां सारे धर्मों के लोग हैं। पृथ्वी पर तुम्हें ऐसी कोई दूसरी जगह न मिलेगी, जहां सारे धर्मों के लोग हों। और यहां कोई सर्व-धर्म-समन्वय का पाठ नहीं पढ़ाया जा रहा है, मजा यह है। यहां मैं कह ही नहीं रहा कि सब धर्म एक हैं। सब धर्म बड़े अलग-अलग हैं, बड़े भिन्न-भिन्न हैं, बड़े विशिष्ट हैं।

तो फिर जोड़ क्या है? जोड़, नानक को प्रेम करने वाला जब मेरे प्रेम में पड़ जाता है, तो उसका प्रेम ही मेरे और नानक के बीच सेतु हो जाता है। फिर वह नानक की वाणी को कुछ इस ढंग से समझेगा, कुछ इस रंग से समझेगा कि वह मेरी वाणी हो जाएगी। वह मेरी वाणी को कुछ इस ढंग और रंग से समझेगा कि मेरी वाणी में उसे नानक का स्वर सुनायी पड़ने लगेगा। प्रेम ने भेद कभी जाना नहीं, प्रेम तो अभेद जानता है।

तुम इस चिंता में ही मत पड़ो। यहां कोई विरोध है ही नहीं। यहां कुछ भेद है ही नहीं। तुम अगर मेरे प्रेम में डूबे तो नानक नाराज न होंगे, इतना आश्वासन मैं तुम्हें देता हूं। और तुम अगर नानक के प्रेम में बने रहे, तो मैं नाराज नहीं हूं, इतना आश्वासन तुम्हें देता हूं। सच तो यह है, अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम्हें बात समझ में आ

जाएगी। तुमने नानक को प्रेम किया और तुम मुझे भी प्रेम कर सके, उसी प्रेम में यह खबर मिल गयी कि जो मैं कह रहा हूं वह नानक से भिन्न नहीं है, अभिन्न है। अन्य नहीं है, अनन्य है। इसीलिए तो तुम मेरे प्रेम में सरक आए। और मेरे प्रेम में बहुत तरह के लोग सरक आए हैं। तरह-तरह के लोग। जिनके जीवन में एक-दूसरे से मिलने की कभी कोई संभावना नहीं थी।

क्या हुआ है? कुछ अपूर्व घटा है। यह कोई धर्म-समन्वय नहीं है। धर्म-समन्वय में मेरी उत्सुकता ही नहीं है। यह टुटपुंजियों का धंधा है, जो धर्म-समन्वय की बात करते हैं। क्योंकि मैं मानता हूं, बुद्ध अनूठी बात कहते हैं। नानक अनूठी बात कहते हैं। समन्वय किया नहीं जा सकता।

लेकिन, किसी सदगुरु की विराटता में समन्वय हो सकता है। मेरे पास छोटा हृदय नहीं है, संकीर्ण दरवाजा नहीं है। मेरे बहुत दरवाजे हैं, एक दरवाजा नहीं है। तुम नानक को प्रेम करते हो, तो मेरा एक दरवाजा है जो नानक से प्रेम करने वाले के लिए है, उससे तुम मेरे भीतर आ जाओ। तुम जीसस को प्रेम करते हो, तुम नानक वाले दरवाजे से भीतर न आ सकोगे, मेरा एक और दरवाजा है, जिसका नाम जीसस। तुम उससे मेरे भीतर आ जाओ। भीतर आकर तुम मुझे पाओगे, वह एक ही है। लेकिन दरवाजे बहुत हैं।

जीसस का एक प्रसिद्ध वचन है कि मेरे प्रभु के मंदिर के बहुत द्वार हैं और मेरे प्रभु के मंदिर में बहुत कक्ष हैं।

रामकृष्ण कहते थे, पहाड़ पर तुम चढ़ो, अलग-अलग दिशाओं से, कहीं से भी चढ़ो, कैसे भी चढ़ो--डोली में, पैदल, घोड़े पर, दौड़ते कि आहिस्ता, कि बूढ़े कि जवान, कि स्त्री कि पुरुष, कि इस रंग में, उस रंग में--लेकिन जब तुम चोटी पर पहुंचते हो तो तुम एक ही जगह पहुंच जाते हो।

मैं जहां खड़ा हूं, अगर तुमने उस तरफ आंख उठायी तो तुमने जिनको भी कभी प्रेम किया है, तुम मुझे पाओगे, मैं उन सबकी परिपूर्ति हूं।

जीसस से एक आदमी ने पूछा, क्या आप पुराने पैगंबरों के खिलाफ हैं? जीसस ने कहा, नहीं, मैं उन्हें परिपूर्ण करने आया हूं। आई हैव कम नाट टु डिस्ट्राय, बट टु फुलफिल। मैं उन्हें पूरा करने आया हूं, विनष्ट करने नहीं।

लेकिन एक बात पक्की है कि मैं कोई सिख नहीं हूं। न मैं ईसाई हूं, न मैं जैन हूं, न मैं बौद्ध हूं, न मैं हिंदू, न मैं मुसलमान। मैं हो भी नहीं सकता किसी एक के साथ, क्योंकि मुझे सबके साथ होना है। सब मेरे हैं, इसलिए मैं कोई चुनाव नहीं कर सकता।

लेकिन तुम्हारी आंखों में अगर नानक का रंग लगा है, तो वैसा दरवाजा भी मेरे हृदय का है, तुम उसी दरवाजे से आ जाओ। तुम नानक की परिपूर्ति पाओगे। तुम नानक को पुनः जीवित पाओगे। इसलिए चिंता न लो।

पांचवां प्रश्नः सुना है कि आप विदेश जा रहे हैं। सच न हो! और यदि सच हुआ, तो सदियों पुरानी गोपियों और उनके कृष्ण की कहानी फिर दोहर जाएगी। आपकी मीरा भी उसी तरह रोएगी। क्या आपने इसी में हमारा भला सोचा है?

पहली बात तो मेरे लिए देश और विदेश नहीं। विदेश शब्द ही मेरी भाषा में नहीं है। मेरे लिए कोई विदेशी नहीं है। वह शब्द अपमानजनक है। किसी को भूलकर विदेशी मत कहना।

हम सब एक देश के वासी हैं, विदेश कहां है? तो मैं यहां रहूं कि इंग्लैंड में, कि अमरीका में, कि जापान में, इससे विदेश जा रहा हूं, यह बात तो छोड़ ही देना। जो मुझे समझते हैं, वह विदेश शब्द को तो छोड़ ही दें। विदेश तो कुछ भी नहीं है, यह जमीन तो एक है। यह पृथ्वी तो एक है। सबै भूमि गोपाल की। यह तो सारी भूमि एक ही प्रभु की है। इसमें विदेश कहां!

सोचो, अगर उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले मैं लाहौर चला जाता तो देश जाता, और अब चला जाऊं तो विदेश चला गया। लाहौर वहीं का वहीं है। लेकिन पागल राजनीतिज्ञों ने बीच में एक रेखा खींच दी, तो आज विदेश हो गया।

मैंने सुना है एक पागलखाने के संबंध में। जब उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत बंटा, तो सआदत हसन मंटो ने एक कहानी लिखी। कहानी थी कि एक पागलखाना था जो दोनों देशों की सीमा पर पड़ता था। अब पागलखाने में कोई बहुत उत्सुक भी नहीं था कि भारत में रहे कि पाकिस्तान में जाए। किसको फिकर थी पागलखाने की! लेकिन कहीं तो जाना ही चाहिए। आखिर पागलखाने को बांटना तो पड़ेगा, कहां जाए? और कोई उत्सुक नहीं दिखायी पड़ रहा था।

तो पागलखाने के प्रधान ने पागलों ही से पूछा कि तुम्हीं तय कर लो, कहां जाना है! तो पागलों ने कहा, हमें तो कहीं नहीं जाना है, हमें तो यहीं रहना है। अरे, उन्होंने कहा, तुम यहीं रहोगे; जाओगे कहीं भी नहीं। पागल बड़े बेबूझ पड़े। पागल कहने लगे कि हम तो सोचते थे कि हम पागल हैं, तुम पागल हो गए! अगर यहीं रहेंगे, तो तुम यह पूछते ही क्यों हो कि कहां जाना है? जब यहीं रहेंगे, तो ठीक, बात खतम हो गयी। लेकिन उस प्रधान ने समझाया कि समझने की कोशिश करो, पागलो! तुम्हें हिंदुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में जाना है? रहोगे तो यहीं। पागलों ने सिर पीट लिया, उन्होंने कहा कि आपका दिमाग भी हमारे साथ खराब हो गया! जब रहेंगे यहीं, तो कैसा हिंदुस्तान कैसा पाकिस्तान!

बड़ा मुश्किल में पड़ा वह प्रधान, उनको समझा न पाए। कैसे समझाए! वह उनकी जिद्द यह कि जब जाने की बात उठ रही है, तो फिर रहने की बात में बड़ा विरोध है। दोनों बातें साथ-साथ कैसे हो सकती हैं!

आखिर कोई उपाय न देखकर ऐसा किया कि उस पागलखाने के बीच में से दीवाल उठा दी। आधे पागल, उस तरफ जो पड़ गए, जिनकी कोठरियां उस तरफ थीं, वे उस तरफ हो गए। आधे पागल इस तरफ पड़ गए, जिनकी कोठरियां इस तरफ थीं, वे इस तरफ हो गए। उधर पाकिस्तान हो गया, इधर हिंदुस्तान हो गया।

मैंने सुना है कि उस पागलखाने की दीवाल पर पागल अभी भी चढ़ आते हैं दोनों तरफ से, बैठ जाते हैं दीवाल पर उचककर, कहते हैं, बड़ा गजब हो गया, तुम भी वहीं हो, हम भी वहीं हैं, तुम पाकिस्तान चले गए, हम हिंदुस्तान चले गए! बड़ा गजब हो गया! अभी तक उनको भरोसा नहीं आता कि यह हुआ क्या मामला!

राजनीति का पागलपन है--देश की सीमाएं, राष्ट्र की सीमाएं! इसलिए पहली बात तो यह तुम भूल ही जाओ कि मैं विदेश जा रहा हूं, या जा सकता हूं। क्योंकि मेरे लिए विदेश कोई नहीं। जहां भी हूं, एक ही पृथ्वी है, एक जैसे लोग हैं, एक जैसी पीड़ाएं हैं, एक जैसा संताप है, एक जैसी समस्याएं हैं और एक जैसा समाधान है, एक जैसा ध्यान है, एक जैसी समाधि है। एक ही परमात्मा है, एक ही पृथ्वी है।

दूसरी बात, अगर विदेश शब्द से बहुत प्रेम हो तो फिर ऐसा करो कि समझो कि हम सभी विदेशी हैं। अगर शब्द से बहुत लगाव हो गया है और बचाना ही है, तो फिर ऐसा समझो कि हम सभी विदेशी हैं। क्योंकि यहां हमारा घर तो है नहीं, जाना तो पड़ेगा ही किसी और घर की तलाश में, तो यह विदेश ही हो सकता है।

लेकिन तब देश कोई नहीं है। तब सब विदेश है। चाहे भारत में रहो, चाहे पाकिस्तान में, चाहे चीन में, चाहे तिब्बत में, सब विदेश है। क्योंकि घर, देश तो कहीं और है। कबीर कहते हैं, चल हंसा वा देस। उस देश चलें हंस, जो अपना है। सच में अपना है। जहां से हम आए और जहां हमें जाना है।

तो अगर तुम्हें देश शब्द से प्रेम हो, तो सारी पृथ्वी देश है। अगर तुम्हें विदेश शब्द से प्रेम हो, तो सारी पृथ्वी विदेश है। मगर किसी को विदेशी मत कहना और किसी को देशी मत कहना। ये सीमाएं गलत हैं। ये सीमाएं तोड़ देने का यहां उपाय चल रहा है। यहां मैं हिंदू-मुसलमान के बीच की दीवाल गिरा देना चाहता हूं। गोरे और काले के बीच की दीवाल गिरा देना चाहता हूं। पूरब और पश्चिम की दीवाल गिरा देना चाहता हूं। उत्तर और दक्षिण की दीवाल गिरा देना चाहता हूं। यहां दीवालें गिराने का ही काम चल रहा है। जिस दिन तुम्हारे आसपास कोई दीवाल न रहेगी, उस दिन तुम मुक्त हुए।

अब तुम चकित होओगे, तुमने मान लिया है कि मैं हिंदू हूं, मुसलमान हूं, सिख हूं, जैन हूं, तुमने कारागृह बना लिया। तुमने मान लिया--हिंदुस्तानी, पाकिस्तानी, अफगानिस्तानी, तुमने फिर कारागृह बना लिया। और फिर कारागृह के भीतर और छोटे कारागृह। और उनके भीतर और छोटे कारागृह--कि महाराष्ट्रियन, कि गुजराती। फिर महाराष्ट्रियन में और छोटे कारागृह--कि देशस्थ, कि कोंकणस्थ। चले, बनाते जाते कोठरियों में कोठरियां, कोठरियों में कोठरियां। आखिर में तुम्हीं बचते हो, चारों तरफ दीवाल हो जाती है। फिर तड़फते। फिर चिल्लाते।

एक घर में मैं मेहमान था। सामने एक बड़ा मकान बन रहा था और एक छोटा बच्चा, रेत के ढेर लगे थे, ईंटें लगी थीं, उनसे खेल रहा था। उसने अपने चारों तरफ धीरे-धीरे ईंटें रखकर--बैठा-बैठा खेलता रहा, ईंटें जमाता गया चारों तरफ, फिर धीरे-धीरे ईंटें उससे ऊंची हो गयीं, तब वह चिल्लाया। क्योंकि अब निकले कैसे! तब वह चिल्लाया कि मुझे बचाओ! खुद ही रख रहा है ईंटें। अपने चारों तरफ ईंटें जमा लीं, अब ईंटें बड़ी हो गयीं, अब उनके बाहर निकल नहीं सकता, अब घबड़ाया कि यह तो मौत हो गयी।

ये ईंटें तुमने ही रखी हैं। अब चिल्ला रहे हो, बचाओ। अब कहते हो, मोक्ष कैसे हो? और तुम जो भी कर रहे हो उससे जंजीरें निर्मित हो रही हैं।

यहां तो जंजीरें तोड़ने का काम है। इसलिए यह भाषा तो छोड़ दो।

रही इस जगह से किसी और जगह जाने की बात। तो हालात इस देश के कुछ ऐसे होते जा रहे थे कि जैसे देश एक बड़ा कारागृह बन गया। यहां कोई स्वतंत्रता न रही। एक शिकंजा, एक तानाशाही शिकंजा मुल्क की छाती पर कसा जाने लगा। अब मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, मुझे राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। कौन हुकूमत में रहे, कौन न रहे, इससे मुझे प्रयोजन नहीं। मैंने अपने जीवन में कभी वोट नहीं दिया। क्योंकि दो पागलों के बीच किसको वोट दो! तो मुझे कोई राजनीति में तो जरा भी रस नहीं है। कौन हुकूमत करे? कोई भी पागल करे--कोई न कोई पागल करेगा। मेरी गिनती में वे सब पागल हैं। राजनीति में पागल ही उत्सुक होते हैं।

लेकिन हालात बिगड़ते चले गए और ऐसा लगा कि लोकतंत्र की कोई स्थिति न रह जाएगी। और, और तो और, राजनीतिज्ञों की तो छोड़ दो, जिनको लोग संत कहते हैं, राष्ट्र-संत कहते हैं--विनोबा भावे को राष्ट्र-संत कहते हैं, कहना चाहिए सरकारी-संत--औरों की तो बात छोड़ दो, विनोबा जैसे व्यक्ति को भी चमचागीरी सूझी। वे भी कहने लगे कि यह अनुशासन का महापर्व है। यह जो डिक्टेटरशिप आ रही, यह जो तानाशाही, अधिनायकशाही आ रही, इसको उन्होंने नयी व्याख्या दे दी। उन्होंने कहा, यह अनुशासन पर्व है।

झूठी बातें हैं। परतंत्रता को अनुशासन पर्व कह दिया।

तो ऐसा लगा कि यहां काम करना मुश्किल हो गया। छोटी-छोटी बात पर इतना उपद्रव कि कोई काम करना संभव नहीं। और मेरा तो सारा काम आदमी को स्वतंत्र बनाने का। सब तरह से स्वतंत्र बनाने का। सब सीमाएं तोड़ने का। और अगर काम असंभव ही हो जाए--तो तुम्हारे लिए ही मैं यहां हूं, अगर काम ही न कर सकूं तुम्हारे लिए तो फिर कहीं और से करूंगा। काम तो तुम्हारे लिए ही करूंगा, लेकिन कहीं और से करूंगा। ऐसी मजबूरी के कारण सोचा था। शायद अब जाने की जरूरत न पड़े।

लेकिन कहीं भी रहूं--यहां रहूं, वहां रहूं, कहीं भी रहूं--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जो काम मैंने चुना है, वह हो जाए। किसी तरह आदमी को स्वतंत्रता का थोड़ा स्वाद आ जाए। थोड़े से लोगों को आ जाए, तो उनके द्वारा तरंगें फैलती रहेंगी। वे थोड़े से लोग उदघोषणाएं बन जाएंगे। उन थोड़े से लोगों के द्वारा, शुरू-शुरू में चाहे कानाफूसी ही चलेगी, लेकिन खबरें फैलती जाएंगी।

यह बात कुछ ऐसी बात नहीं है कि इसके लिए बहुत प्रचार करना पड़े। यह बात कुछ ऐसी बात है कि इसका प्रचार अपने से हो जाएगा। सत्य का प्रचार करना नहीं होता, सत्य का प्रचार अपने से हो जाता है। झूठ का प्रचार करना होता है। और प्रचार करना बंद किया कि झूठ गिर जाता है।

तो यह बात तो फैलती रहेगी। इतना ही है कि थोड़ी सुविधा हो, तो अनुकूलता से फैल जाए।

खिला कहीं सूने में फूल एक
अनचीन्हा, अनदेखा
किंतु गंध सारे ही उपवन में व्याप गयी

तुम देखते, यहां तुम्हें लोग मिलेंगे अलास्का, टर्की, जर्मनी, स्वीडन, नार्वे, स्विट्जरलैंड, फ्रांस, इटली, इंग्लैंड, जापान, कोरिया, दूर-दूर से लोग हैं। सिर्फ कम्युनिस्ट देशों को छोड़कर करीब-करीब सभी देशों के लोग हैं यहां। कम्युनिस्ट देशों का दुर्भाग्य है। आने को लोग वहां से भी उत्सुक हैं, पत्र आते हैं, लेकिन आ नहीं सकते। वहां कारागृह मजबूत हो गया है। वैसा ही कारागृह यहां बनने की संभावना होती जा रही थी। उन्हीं के इशारों पर, उन्हीं की मार्ग-दिशा में यहां भी लोहे की दीवाल बनती जा रही थी।

लेकिन, अगर थोड़ी स्वतंत्रता हो, तो जो फूल खिला है यहां, उसकी खुशबू सारी दुनिया के कोने-कोने तक पहुंच सकती है।

खिला कहीं सूने में फूल एक
अनचीन्हा, अनदेखा
किंतु गंध सारे ही उपवन में व्याप गयी
इसी तरह गीतों की खुशबू भी
दूर-दूर जाती है
छोटी सीमाओं में किए गए उद्यम भी
व्यर्थ नहीं होते हैं

ये थोड़े से लोगों से मैं बोल रहा हूं। लेकिन यह उद्यम भी व्यर्थ नहीं होता। ये थोड़े से लोग खबर ले जाते हैं। और इनके जीवन में जो क्रांति घटेगी, वह क्रांति व्यर्थ नहीं चली जाएगी।

इसलिए चाहे हम कुछ न करें
कमरे में दर्पण से
या कि किसी बहिर्मुखी साथी से
केवल यह जिक्र करें
बात करें
अंधियारा अब न सहा जाता है
धुएं में अब न रहा जाता है
कमरों से निकलें हम
आओ युग बदलें हम
सुनो! सुनो! द्वार खड़ा सूर्य थाप देता है
मित्रो, विश्वास करो
खुशबू की तरह यही बात फैल जाएगी
छिप-छिपकर की जाने वाली सरगोशियां
समय बदल सकती हैं
आपस में की जाने वाली चर्चाओं का
पूरे युग-जीवन पर बड़ा असर पड़ता है
वातावरण इन्हीं क्षुद्र तुच्छ बातों से
बनता या बिगड़ता है

ये जो छोटी-छोटी बातें मैं तुमसे कह रहा हूं, ये बातें विराट हो जाएंगी। ये छोटी-छोटी तरंगें बड़ा विराट रूप ले लेती हैं। इनमें सचाई होनी चाहिए, फिर इन बातों को फैलने से रोका नहीं जा सकता। ये बढ़ती रहेंगी।

लेकिन जब तक मैं हूं, अगर थोड़ी सी अनुकूल हवा मिल जाए और यह नाव अनुकूल हवा में अपना पाल खोलने का अवसर पा जाए तो बात बहुत दूर-दूर तक उस समय पहुंच जाएगी, जब कि लोग आ सकते हैं और जिस फूल की खबर उन्हें मिली है, उसके साथ आत्मलीन हो सकते हैं।

अक्सर ऐसा हुआ पुराने दिनों में, खबर पहुंचते-पहुंचते बुद्ध मौजूद न रहे। जब तक लोग आए, जब तक लोगों को खबर मिली, तब तक बुद्ध न थे। अब ऐसा होने का कोई कारण नहीं है। महावीर जब जा चुके तब लोगों को खबर मिली। या कि नानक को लंका से लेकर और मक्का तक यात्रा करनी पड़ी। तब भी कितने दूर तक खबर पहुंचा पाए! कोई बहुत दूर तक खबर न पहुंच पायी।

युग बदला है। बड़े साधन उपलब्ध हुए हैं, जिनके माध्यम से एक क्षण में सारी पृथ्वी कंपित हो सकती है। तो थोड़ी स्वतंत्रता हो, उन माध्यमों का उपयोग कर लेने की, तो जैसा आज के युग में घट सकता है वैसा कभी नहीं घटा था। इतने बड़े पैमाने पर क्रांति घट सकती है जैसी कभी नहीं हुई थी।

लेकिन अगर छोटी-छोटी बात में बाधा पड़ने लगे, एक-एक छोटी-छोटी-- ऐसी कि आपको कल्पना भी नहीं हो सकती! मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि मैं तो अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकलता। मुझे तुम जेल में रख दो तो फर्क ही नहीं पड़ेगा। जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा मेरी चर्या में, क्योंकि मैं एक ही कमरे में रहता ही हूं। एक कमरा तो दोगे न! सो मैंने खूब अभ्यास कर रखा है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चौबीस घंटे एक ही कमरे में हूं, अब और क्या करोगे!

मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता कि कहां हूं। मेरे लिए कहीं जाने का सवाल नहीं है। मेरे लिए तो यहां हूं कि कहां हूं, सब बराबर है। अगर जाना भी पड़ता तो तुम्हारे लिए ही कि कहीं मैं स्वतंत्रता से गीत तो गा सकूं। दूर से सही, लेकिन तुम्हारे पास ठीक सी खबर तो आ जाएगी। लेकिन अब कोई कारण नहीं मालूम होता। हवा थोड़ी बदली है। बदलनी ही चाहिए थी। क्योंकि जो होने जा रहा था, वह एक बिल्कुल दुर्घटना थी। दुर्घटना से देश बच गया है। एक दुखस्वप्न शुरू हुआ था, वह टूट गया है। इसलिए अब जाने का कोई कारण नहीं है।

छठवां प्रश्नः आपने संन्यास को उठा हुआ पहला कदम कहा। क्या यह कदम उठा ही रहेगा, या मंजिल भी मिलेगी?

अगर उठ गया तो पहले ही कदम में भी मंजिल मिल सकती है। सवाल है उठने का। क्योंकि परमात्मा दूर थोड़े ही है कि बहुत कदम उठाने पड़ेंगे। परमात्मा तो पास से भी पास है। सच तो यह है, एक भी कदम उठाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है। यह कदम उठाने की बात तो प्रतीकात्मक है। यह तो सिर्फ इस बात की खबर है कि तुमने हिम्मत की, तुमने चुनौती स्वीकार की, तुमने कहा मैं राजी हूं।

तुम अगर राजी हो तो परमात्मा तो सदा से राजी था कि तुम्हें मिल जाए। उसने तो कभी इनकार न किया था, उसके द्वार तो कभी बंद न थे। मंजिल तो सामने है, तुम्हीं इधर-उधर देखते थे। तुम सामने चूककर और सब जगह देखते थे। निकट को हम देखते ही नहीं, दूर पर हमारी आंखें पड़ती हैं। पास को हम भूल ही जाते हैं। दूर की बातें हमें सुहावनी लगती हैं--दूर के ढोल सुहावने।

मुल्ला नसरुद्दीन अदालत में बुलाया गया, क्योंकि उसके पड़ोस में एक हत्या हो गयी। उसने गवाही दी। उसने कहा कि मेरे घर से कम से कम एक फर्लांग दूर यह हत्या हुई। इस हत्यारे ने छलांग मारकर इस आदमी की छाती में छुरा भोंक दिया। एक फर्लांग दूर! मजिस्ट्रेट ने पूछा। और सूरज ढल चुका था, तुम कहते हो। और सांझ उतरने लगी थी और अंधेरा उतरने लगा था, एक फर्लांग दूर तुम देख सके? तुम कितनी दूर तक देख सकते हो, यह बोलो? अंधेरे में कितनी दूर तक देख सकते हो? मुल्ला ने कहा कि अब यह तो बड़ा मुश्किल है। ऐसे तो मैं चांद-तारे भी देखता हूं। दूर की तो कुछ न पूछो।

लेकिन चांद-तारे देखना एक बात है।

एक स्त्री के संबंध में मैंने सुना, वह किसी के प्रेम में पड़ गयी। जिसके प्रेम में पड़ गयी, वह एक युवक था। स्त्री तो काफी उम्र की थी, कोई पैंतालीस साल की थी। लेकिन बताती वह अपने को तीस ही साल की थी। स्त्रियां अक्सर रुक जाती हैं। एकाध वर्ष उनको जंच जाता है, फिर वे वहां से आगे नहीं बढ़तीं। पसंद पड़ गया है, फिर क्या बढ़ना आगे! क्या बार-बार बदलना!

तो वह तीस पर रुक गयी थी सो रुकी थी। एक जवान आदमी के--उम्र ज्यादा नहीं थी, मुश्किल से पच्चीस साल होगी--उसके प्रेम में थी। सिर्फ अड़चन उसे एक बात की आती थी कि आंखें उसकी कमजोर हो गयी थीं।

स्त्री की आंखें कमजोर हो गयी थीं। लेकिन वह चश्मा भी नहीं लगाती थी, क्योंकि चश्मा लगाने का मतलब, लोग समझेंगे बूढ़ी हो गयी। तीस साल की जवान वह अपने को मानती थी।

एक बार अदालत में उस पर मुकदमा था, तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि देवी, कम से कम तीन बार तो मैं ही सुन चुका हूं दस वर्ष के समय में कि तेरी उम्र तीस साल है। दस वर्ष पहले भी तू अदालत में आयी थी तब भी तीस साल थी, अब भी तीस साल है! तो उस स्त्री ने कहा, महाशय, जो बात एक दफे कह दी, कह दी। अब कोई बार-बार बदलने की जरूरत! मैं कभी असंगत वक्तव्य देती ही नहीं।

इस युवक के प्रेम में थी, सब तरह सिद्ध करने की कोशिश कर रही थी कि बिल्कुल जवान है, सिर्फ उसको यह डर था आंख का। आंख ही सिद्ध करने की बात थी कि खराब नहीं है। कहीं इसको पता न चल जाए! क्योंकि उसको बिल्कुल सामने का भी नहीं दिखायी पड़ता था। कभी-कभी युवक भी सामने बैठा रहता तो भी उसे गौर से देखना पड़ता था, वही है न! किसी और से तो बातें नहीं चल रही हैं!

तो उसने सिद्ध करने के लिए एक तरकीब खोजी। उसने अपनी हीरे की अंगूठी एक झाड़ पर जाकर रख दी, जहां झाड़ की दो बड़ी शाखाएं अलग होती थीं--होगा कोई जमीन से पांच फीट ऊपर--वहां जाकर उसने रख दी। फिर युवक को लेकर बगीचे में घूमने गयी।

फिर काफी दूर से--कोई सौ कदम दूर से--उसने युवक से कहा, अरे देखते, मैं अपनी अंगूठी, मालूम होता है, उस झाड़ के पास भूल आयी। वह अंगूठी रखी है, हीरा चमक रहा है। युवक ने कहा, मुझे तो दिखायी नहीं पड़ता। छोटा सा हीरा, झाड़ पर रखा है! उसने कहा, तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता! वह झाड़ पर, मैं अभी उठाकर लाती हूं।

वह गयी और सामने खड़ी थी एक भैंस, उस पर गिर पड़ी। वह भैंस दिखायी न पड़ी!

आदमी के साथ अक्सर ऐसी हालत है। वह जो सामने है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। और परमात्मा बिल्कुल सामने है।

एक आदमी मेरे पास आया, उसने कहा, परमात्मा को कहां खोजें? मैंने कहा, तुम नाक की सीध में चले जाओ। मिल ही जाएगा, पक्का है। क्योंकि सारे संत यही कहते रहे कि वह सामने खड़ा है। तो नाक की सीध में चले जाना। उसी से टकराओगे, और तो मिलने को कोई है भी नहीं। तुम उसी से टकराते रहे हो।

जब तुम किसी एक स्त्री के प्रेम में पड़े, तुम उसी के प्रेम में पड़े। और जब तुम्हारे घर एक बेटा पैदा हुआ, वही पैदा हुआ। और जब तुमने एक फूल में सुगंध पायी, तो उसी की सुगंध पायी। और जब तुमने आकाश में तारे देखे, तो उसी को देखा। जब तुमने झरने का गीत सुना, तो वही गाया। जब कहीं कोई बांसुरी बजी, तो उसकी ही बजी, क्योंकि उसके अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं। सिर्फ तुम देखने में असमर्थ हो।

संन्यास का अर्थ है, तुमने देखने की चेष्टा शुरू की। तुमने कहा, आंख को मांजेंगे, साफ करेंगे, निखारेंगे, काजल लगाएंगे। ध्यान यानी काजल। कि आंख को शुद्ध करेंगे। कि आंख में जो कूड़ा-करकट इकट्ठा हो गया है जन्मों-जन्मों से वासना का, विचार का, विकार का, उसको अलग करेंगे। यह पहला कदम हो गया।

अब तुम पूछते हो कि "क्या यह कदम उठा ही रहेगा या मंजिल भी मिलेगी?"

अगर यह उठ गया तो मंजिल मिल गयी। लेकिन मैं सोचता हूं, प्रश्न उठ रहा है, क्योंकि कदम उठा न होगा। अक्सर ऐसा हो जाता है। तुम कल्पना कर लेते हो कि उठ गया कदम। और वहीं के वहीं हो, कोई कदम नहीं उठा।

सब समाप्त हो जाने के पश्चात भी
कुछ ऐसा है जो कि अनहुआ रह जाता है
चलते-चलते राह कहीं चुक जाती है
लेकिन लक्ष्य नहीं मिलता
चाहे रखो उसे जल में या धूप में
किंतु फूल कोई दो बार नहीं खिलता
खिले फूल के झर जाने के बाद भी
शापग्रस्त सौरभ उसका
किसी डाल के आसपास मंडराता है
अच्छा मैंने मान लिया
अब तुमसे कुछ संबंध नहीं
पर विवेक का लग पाता
मन पर सदैव प्रतिबंध नहीं
अक्सर ऐसा होता है
सब जंजीरें खुल जाने के बाद भी
कैदी अपने को कैदी ही पाता है
मृत्यु किसी जीवन का अंतिम अंत नहीं
साथ देह के प्राण नहीं मर जाते हैं
दृष्टि रहे न रहे कुछ फर्क नहीं पड़ता
चक्षुहीन को भी तो सपने आते हैं
सभी राख हो जाने के पश्चात भी
कोई अंगारा ऐसा भी बच जाता है
जो भीतर-भीतर रह-रह धुंधुआता है
सब समाप्त हो जाने के पश्चात भी
कुछ ऐसा है जो कि अनहुआ रह जाता है

तुम संन्यास ले लिए। तुमने सोचा, चलो, सब समाप्त हुआ। इतनी जल्दी नहीं। संन्यास शुरुआत है। जंजीर खोलने का निर्णय है। जंजीर खोलनी भी पड़ेगी।

और अक्सर ऐसा होता है
कि सब जंजीरें खुल जाने के बाद भी
कैदी अपने को कैदी ही पाता है

पुरानी आदत। सब जंजीरें खुल जाती हैं, तो भी अपने को कैदी कैदी ही पाता है। पुरानी आदतों का जाल! जंजीरें जो नहीं हैं, वे भी मालूम होती हैं, हैं। आदत जल्दी नहीं छूटती। आदत पीछा करती है।

खिले फूल के झर जाने के बाद भी
शापग्रस्त सौरभ उसका
किसी डाल के आसपास मंडराता है

ऐसे ही आदतें मंडराती रहती हैं। जिनको तुम भूत-प्रेत कहते हो, वे कुछ भी और नहीं हैं, तुम्हारी आदतें हैं।

एक मित्र हैं, उनकी पत्नी मर गयी। वे दूसरे दिन भागे आए, कहने लगे, वह भूत हो गयी। मैंने कहा, कुछ भूत-वूत नहीं हो गयी। तुम्हारी पुरानी आदत। अरे, वे बोले, मैंने उसको बिल्कुल अपने बिस्तर पर रात सोए देखा!

देख लिया होगा, इसमें मैं शक नहीं करता। वर्षों से उसके साथ सोए, एक दिन आज मर गयी तो जिसके साथ तीस साल सोए हो, अगर रात अचानक वह दिखायी पड़ गयी हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। पुरानी आदत। तीस साल की आदत कटते-कटते ही तो कटेगी न। वक्त लगेगा। वह समझे कि भूत हो गयी पत्नी। पतियों को डर लगा ही रहता है कि छोड़ेगी नहीं पीछा, अगर यह मर भी गयी तो छोड़ेगी नहीं पीछा। यह भूत हो ही जाएगी। एक तो डर लगा रहा होगा कि भूत हो न जाए और फिर पुरानी आदत, देख लिया होगा।

आंखें वही थोड़े ही देखती हैं जो है, आंखें वह भी देख लेती हैं जो देखती रही हैं। जिसको सदा देखा है, उसका प्रतिबिंब आंखों में गहरा समा जाता है।

अक्सर ऐसा होता है
सब जंजीरें खुल जाने के बाद भी
कैदी अपने को कैदी ही पाता है
सभी राख हो जाने के पश्चात भी
कोई अंगारा ऐसा बच जाता है
जो भीतर-भीतर रह-रह धुंधुआता है
सब समाप्त हो जाने के पश्चात भी
कुछ ऐसा है जो कि अनहुआ रह जाता है

संन्यास तुमने लिया, लेकिन अभी कोई अंगारा धुंधुआता है। संन्यास प्रारंभ है, फिर चदरिया तानकर सो मत जाना कि बात खतम हो गयी। बहुत करने को है, अभी कदम उठाने का तुमने विचार किया, उठा नहीं। विचार किया, यह भी सौभाग्य है। क्योंकि अनेक हैं जिन्होंने विचार भी नहीं किया। ऐसे अनेक अभागे लोग हैं जिनके जीवन में कभी संन्यास की धारणा ही नहीं आयी। जिनके जीवन की पूरी यात्रा में संन्यास शब्द जिनके मन में कभी गूंजा ही नहीं। जिनके प्राणों में कभी ध्यान शब्द की कोई झंकार नहीं उठी। इन अभागों को भी सोचो! उस दृष्टि से तुम सौभाग्यशाली हो। चाहे तुमने अभी न भी लिया हो, मगर लेने का भाव भी उठा है, तो भी सौभाग्यशाली हो। अगर ले लिया, महासौभाग्यशाली हो।

लेकिन इसको अंत मत समझ लेना। अभी कदम उठाना है। अभी प्राणों को रूपांतरित करना है। अभी अंगारे वासना के हैं, उनको सबको बुझाना है। यही अंगारे जब बुझ जाते हैं--जिन्होंने तुम्हें सदा जलाया, वासना के अंगारे--जब ये बुझ जाते हैं, तो जो शीतल विभूति बनती है, वही दिव्य है।

इसलिए इस देश में विभूति को बड़ा गौरव हो गया। राख का इतना गौरव! किस कारण? राख का इतना मूल्य! किस कारण? उसके पीछे एक प्रतीक छिपा है। वासना अंगारा है, निर्वासना राख है। वासना बुझ गयी--उसने खूब जलाया, दग्ध किया--बुझ गयी, राख रह गयी, शीतल राख, उसको हम विभूति कहते हैं। हमने बड़े सोचकर वह नाम दिया है।

संन्यासी भी ऐसा व्यक्ति है जिसकी वासना बुझ गयी, जो विभूति हो गया। इसलिए हम महापुरुषों को भी विभूति कहते हैं, तुमने कभी ख्याल किया? दोनों को विभूति--राख को भी विभूति, महापुरुषों को भी विभूति। कहते हैं, बुद्ध विभूति थे। कि कबीर, कि नानक, विभूति। क्या मतलब? अंगारा बुझ गया। शीतल ठंडी राख, विभूति। विभूति को हम प्रसाद की तरह बांटते हैं। उसका अर्थ है।

संन्यासी का अर्थ है, विभूति। अभी कोई अंगारा धुंधुआता होगा। जाएगा लेकिन। जाना ही पड़ेगा उसे। अगर तुमने मेरे साथ अपनी गांठ बांध ली तो जाना ही पड़ेगा उसे। यह ज्यादा देर न चलेगा। वर्षा होने लगी है तो यह धुंधुआता अंगारा कितनी देर टिकेगा? बुझेगा। दीया जलने लगा है तो कितनी देर यह अंधियारा टिकेगा? यह अंधियारा टूटेगा।

आखिरी प्रश्नः सपने के बिना जिंदगी कैसी होगी? और संन्यास भी सपना है क्या?

प्रश्न स्वाभाविक है, उठता है मन में, सपनों के बिना जिंदगी कैसी होगी? क्योंकि हमने अब तक तो जो जीवन जीया, वह झूठ का जीवन है। हमारा जीवन तो झूठ ही झूठ है। और झूठ की ईंटों से बनाया हमने यह भवन। सपने ही सपनों में हम जीए हैं। आशा, कल्पना, वासना, मिला तो कुछ भी नहीं है। झूठ ही झूठ। तो जब मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ दो सब झूठ, तो एक घबड़ाहट आनी स्वाभाविक है, कि फिर जीवन का क्या होगा? यही तो हमने अब तक जीवन जाना है।

कुछ लोग एक ही सपना देखते हैं। उनकी बड़ी अदम्य वासना होती है। किसी को पद का सपना है, किसी को धन का सपना है। कुछ लोग अनेक सपने देखते हैं--पद का भी, धन का भी, यश का भी। मगर सभी सपने देखते हैं। कुछ लोगों का सपना एकाग्र होता है, कुछ लोगों का सपना अनेक दिशाओं में बंटा होता है। और सपने जब टूटते हैं, तो पीड़ा भी स्वाभाविक है।

मैं नहीं दस-बीस सपनों का धनी हूं
एक ही तो यह मनौती का सपन था
आज वह भी तो खरीदा जा चुका है
जो कि मेरे वास्ते धरती-गगन था
आज मेरे साज का मस्तक झुका है
और तुम कहते हो कि मीठा गीत गाऊं
दाग देकर जिस तरह घर लौटते हैं

उस तरह बस आज मैं खोया हुआ हूं

देखने को ये पलक सूखे पड़े हैं

किंतु मन की आंख से रोया हुआ हूं

आज दृग का देवता तक मर चुका है

और तुम कहते हो कि मीठा गीत गाऊं

मैं समझा। सपना टूटेगा तो तुम यह परमात्मा का मीठा गीत कैसे गाओगे, तुम्हें लगता है। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं, सपना टूटेगा तो ही तुम यह मीठा गीत गा पाओगे। सपने के कारण ही नहीं गा पा रहे हो। और सपने के कारण तुम जो सोच रहे हो जीवन में मिठास है, वह है कहां? ख्याल है। सिर्फ ख्याल है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात उठा और अपनी पत्नी से बोला, जल्दी मेरा चश्मा ला। पत्नी जरा नाराज हुई, आधी रात, बीच नींद में, उसने कहा, चश्मे का करना क्या है आधी रात? मुल्ला ने कहा, बातचीत में समय न गंवा, मैं एक बड़ा प्यारा सपना देख रहा हूं। और आंख कमजोर होने की वजह से ठीक-ठीक नहीं देख पा रहा हूं, तू जरा चश्मा तो ले आ!

सपना ही है, चश्मा लगाकर भी देख लोगे तो क्या देख लोगे? सपना सपना है। सपने का अर्थ ही है कि जो नहीं है।

तो सारी मिठास जो तुम्हें मालूम पड़ती है सपनों में, वह सिर्फ ख्याल की मिठास है। और उसी मिठास के कारण जो सत्य की मिठास है, उससे तुम चूके जा रहे हो, क्योंकि सपनों के भोजन करने में जो लीन है, वह सत्य भोजन को नहीं कर पाता। ये दोनों चीजें साथ-साथ नहीं चलतीं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, जीवन सपना है। और सपने से जागना है।

अब तुम पूछते हो, "संन्यास भी सपना है क्या?"

तुम पर निर्भर है। तुम इस ढंग से संन्यास ले सकते हो कि वह भी एक सपना ही रहे। लेकिन तब तुमने मेरा संन्यास न लिया। तुमने अपना कोई संन्यास गढ़ लिया। मेरा संन्यास तो सब सपनों के बाहर आने की विधि है। यह कोई नया सपना नहीं है। यह सब सपनों का ध्वंस है। यह सपनों का अभाव है। लेकिन यह मेरी तरफ से। तुम्हारी तरफ से मैं नहीं कह रहा। तुम्हारी तरफ से तो हो सकता है यह एक नया सपना हो--कि नहीं मिला संसार में कुछ, चलो संन्यास लेकर मिल जाए।

एक मित्र ने परसों संन्यास लिया। मैंने पूछा, क्या करते हैं? उन्होंने कहा, वकालत करता हूं, लेकिन चलती नहीं। सोचा, चलो आपके चरणों में झुक आऊं, शायद चल जाए।

अब वकालत चलानी है और संन्यास ले रहे हैं! मैंने कहा, बड़ा मुश्किल है। चलती भी होती तो गड़बड़ हो जाती और तुम्हारी तो चल ही नहीं रही। अब वकालत से ज्यादा गैर-संन्यासी कोई धंधा है! तुमको भी खूब सूझी। अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी। तुम कहां आ गए! एक तो वकालत, चल नहीं रही दूसरे, और तुम सोच रहे हो कि वह संन्यास के द्वारा शायद चल जाए। अब कभी न चलेगी, मैंने उनसे कहा, बात ही छोड़ दो! अब संन्यास चलेगा कि वकालत चलेगी?

तो मुझे पक्का नहीं है, तुम्हारी तरफ से क्या है! तुम हजार-हजार वासनाएं दबाकर मन में आते हो। तुम उन्हीं वासनाओं के लिए संन्यास भी ले लेते हो। तुम सोचते हो, चलो संसार में नहीं मिला तो शायद परमात्मा में मिल जाए, लेकिन चाहते तुम वही हो। तुम्हारी दृष्टि वही है। तुम्हारी पकड़ वही है।

तो हो सकता है, तुम्हारे लिए संन्यास भी सपना हो। मेरे लिए नहीं है। और संन्यास लेना हो, तो जो मैं दूं वह लेना। जो तुम लेना चाहते हो वह मत ले लेना, नहीं तो तुमने लिया ही नहीं। तब तुम ऊपर ही ऊपर रह जाओगे। कपड़े रंगकर रह जाओगे, आत्मा न रंग पाएगी।

जाएं कहां न सिर पर छत है
और न पांव तले धरती
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण
सभी दिशाएं सूनी हैं
ओ, मेरे मन भटक न घर-घर
यह नगरी बेगानी है
राहें सभी अजनबी हैं और
हर सूरत बेपहचानी है
अभी-अभी आवाज सुनी जो
तूने उत्सुक कानों से
तेरी ही प्रतिध्वनि लौटी थी
टकराकर चट्टानों से
धीरे-धीरे टूट किसी को
कानों कान पता न चले
यहां आत्महत्याएं वर्जित
मृत जीवन कानूनी है
चारों ओर स्लेटी कुहरा
चारों ओर उदासी है
आधी धरती अनुर्वरा है
आधी धरती प्यासी है
उगे कहां पर बीज कि
पूरा युग बंजर पथरीला है
आसमान पर मेघ नहीं हैं
सिर्फ धुआं जहरीला है
सुबह चले थे दिनभर भटके
शाम हुई तो यह पाया
सारी खुशियां खर्च हो गयीं
और व्यथाएं दूनी हैं
सांस न ले, विष घुल जाएगा
तेरी रक्त-शिराओं में
सुरभि नहीं अणु-धूल तैरती है

आज हवाओं में
चांद-सितारों तक तुझको
कोई न कभी ले जाएगा
सिर्फ अंधेरा अंधगुफाओं में
फिर-फिर भटकाएगा
रंगे हुए शब्दों
भड़कीले विज्ञापन पर ध्यान न दे
सभी कल्पनाएं झूठी हैं
सभी स्वप्न बातूनी हैं

स्वप्न से जागना मन से जागना है। स्वप्न यानी मन। मन में उठी तरंगें। ध्यान यानी मन का निस्तरंग हो जाना, मन का शांत हो जाना। और जहां मन निस्तरंग है, वहीं तुम्हारी आत्मा दर्पण की तरह उसे झलकाती है, जो है। जो है, उसे जान लेना सत्य को जान लेना है। कहो उसे ईश्वर, परमात्मा, जो चाहो नाम देना, दो। न देना चाहो नाम, न दो। लेकिन बुद्ध का सारा संदेश यथार्थ के साथ तादात्म्य बना लेने का है, संबंध जोड़ लेने का है। तथागत हो जाने का है।

सपना है संसार। इस सपने के पार भी कुछ है। जो सपने को देख रहा है, वह इस सपने के पार है। जिसके सामने यह सपना चल रहा है, वह इस सपने के पार है। सपना देखने को भी तो देखने वाला चाहिए। देखने वाला तो सच चाहिए, देखने वाला तो होना ही चाहिए।

तुम गए, फिल्म में बैठ गए रात, पर्दे पर चलने लगा झूठ, छायाओं का जाल। वह झूठ है, लेकिन तुम तो सच हो न! तुम, जो देख रहे हो। देखने वाला तो झूठ नहीं हो सकता।

द्रष्टा सच है, दृश्य सपने हैं। द्रष्टा को पहचान लेना आत्मज्ञान है। और द्रष्टा की पहचान की तरफ चलने का जो पहला कदम है, वही संन्यास है।

आज इतना ही।

तिरसठवां प्रवचन

सारे अस्तित्व का चौराहाः मनुष्य

यस्स जित नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।। 155।।

यस्स जालिनी विसत्तिका तन्हा नत्थि कुहिंच नेतवे।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।। 156।।

ये ज्ञानपसुत्ता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिह्यंति संबुद्धानं सतीमतं।। 157।।

किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छ मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो।। 158।।

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सच्चित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं।। 159।।

खंती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं बदंति बुद्धा।
नहि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयंतो।। 160।।

अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तां ता च भत्तस्मिं पंतंच सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं।। 161।।

योगियों का लिबास लगते हैं,
लोग कितने उदास लगते हैं
दर्द की ओस में धुले चेहरे
मकबरों पर की घास लगते हैं
सुबह सूरज किधर से निकलेगा
मैकदे में कयास लगते हैं
आप भी जिंदगी से आजिज हैं
आप भी देवदास लगते हैं
हाय, पलकें लहूलुहान हुईं

ख्वाब टूटे गिलास लगते हैं

आप उस शख्स तक नहीं पहुंचे

हां, मगर आसपास लगते हैं

जिस्म आंधी है आरजूओं की

लोग उड़ती कपास लगते हैं

पास में आईने नहीं रखते

सुख सभी सूरदास लगते हैं

कत्ल करके किसी का भागे हों

लोग यूं बदहवाश लगते हैं

योगियों का लिबास लगते हैं

लोग कितने उदास लगते हैं

आदमी उदास है। आदमी इतना उदास है कि उसका तथाकथित जीवन तो उदास है ही, उसका धार्मिक जीवन भी उदास है। इसलिए योगी का लिबास तो उदास आदमी का प्रतीक हो गया। योगी का तो अर्थ ही हो गया हारा, टूटा, दुखी, जीते जी मरा हुआ। जिसके जीवन में कोई रस की धार नहीं है। मरुस्थल है जो।

पर यह बात उलटी है। योगी के ही जीवन में रस की धार होती है। और सब मरुस्थल हैं। योगी के जीवन में ही परमात्मा की झलक होती है। और योगी के जीवन में ही ऊगता है अंतर का सूरज। तो योगी के जीवन में तो आनंद होगा, नृत्य होगा, गीत होगा। चाहे तुम पहचान न पाओ। क्योंकि जिन गीतों को तुम पहचानते हो, वैसे गीत वहां न होंगे। और जिस आनंद को तुमने जाना है, वह आनंद तो झूठा है। असली सिक्के वहां होंगे। नकली सिक्कों के तुम आदी हो गए हो, तो शायद तुम न भी पहचान पाओ।

मैंने सुना है कि एक बूढ़ी स्त्री अपने बेटे के साथ--बेटा एक चित्रकार था--एक कला-प्रदर्शनी को देखने गयी। वहां उसने पिकासो की एक बहुत प्रसिद्ध कृति देखी। लेकिन न उसे पिकासो का कुछ पता है, न पिकासो की मूलकृति उसके सामने है, लाखों रुपए की उसकी कीमत है, न इसका उसे पता है। वह अपने बेटे से देखकर बोली, यह भी कौन चित्रकार है? मालूम होता है, अपने घर जो कैलेंडर टंगा है, उसी की नकल इसने की है।

कैलेंडर पिकासो की इस कृति की नकल है, यह मूलकृति है। लेकिन उस बूढ़ी स्त्री को माफ करना होगा। कैलेंडर ही उसने देखा सदा घर में टंगा हुआ, अब आज अचानक मूलकृति देखी, तो उसे लगता है कि शायद यह कैलेंडर की नकल है। और वह चकित है कि किस नासमझ ने इसको यहां टांगा है! इसको प्रदर्शन करने की जरूरत क्या है? पहली तो बात, नकल, वह भी एक साधारण से कैलेंडर की जो अपने घर में वर्षों से टंगा है।

तुमने तो जो जाना है, वह नकल है। योगी के जीवन में जो सुवास तुम्हें मिलेगी, वह असल है। वह असली सिक्का है।

स्वामी राम कहा करते थे, धर्म नगद है और असली सिक्का है।

यहां तो सब उलटा हो गया है। यहां तो तुमने करीब-करीब दुख को ही धीरे-धीरे सुख मान लिया है। मानो न तो करो भी क्या! मन को तो समझाना पड़ता है। उदास से उदास आदमी से मिलो, पूछो--कैसे हो? वह कहता है, सब मजा है। सब ठीक चल रहा है। प्रभु की कृपा। और चेहरा कुछ और कह रहा है, आंखें कुछ और कह रही हैं, ओंठ कुछ और कह रहे हैं। शब्द झुठला रहे हैं उसके व्यक्तित्व को। मातमी से मातमी चेहरा भी कहता है,

सब ठीक है। तुम सब ठीक है शायद होश में भी नहीं कहते कि तुम क्या कह रहे हो। सब कहां ठीक है? सब ही ठीक होता तो फिर क्या कहना था।

लेकिन तुम्हारी अड़चन क्षमा करने योग्य है। क्योंकि अगर तुम इसको ही ठीक न मान लो तो जीओगे कैसे? सोओगे कैसे, उठोगे कैसे, बैठोगे कैसे? प्रतिपल कांटा चुभेगा। मुश्किल हो जाएगा जीना। जीवन कठिन हो जाएगा। इसलिए धीरे-धीरे इसी को सुख मान लेते हैं।

हम सब बहुत सुखी हैं
लेकिन सुख की कोई बात नहीं,
हम सब बहुत दुखी हैं
लेकिन दुख का कारण ज्ञात नहीं।
प्रेमालाप मग्न ये जोड़े
चट्टानों की छाहों में,
जैसे कोई सत्य खोजता हो
झूठी अफवाहों में,
कुछ खोखले रिक्त शब्दों का
फिर-फिर दोहराया जाना,
नकली विश्वासों के हाथों
बार-बार धोखा खाना
तन के भोग-कक्ष में कैदी
शापग्रस्त प्यासी रूहें,
इन पर कभी किसी बादल का
होता दृष्टि-निपात नहीं,
हम सब बहुत सुखी हैं
लेकिन सुख की कोई बात नहीं,
हम सब बहुत दुखी हैं
लेकिन दुख का कारण ज्ञात नहीं।

न तो सुख है जीवन में और न हमने दुख के कारणों में झांकना चाहा है। उसमें भी डर लगता है कि कहीं और झंझट न हो जाए। कहीं दुख के कारण खोजते और दुखी न हो जाएं। तो हम दुख से आंख चुराते हैं।

इस बात को ख्याल में लेना। सुख जहां नहीं है वहां सुख मान लेते हैं, जीना तो है किसी बहाने! और दुख जहां है वहां से आंख चुराते हैं, क्योंकि दुख को देखने में डर लगता है कि अगर देखा तो कहीं दुख और न हो जाए। फिर देखने में सार भी क्या है! तो हम वहां देखते हैं, दूर सपनों की दुनिया में, जहां सुख कभी होगा। और यहीं चूक हो रही है। दुख को गौर से देखो, दुख का कारण मिल जाए तो जीवन में सुख के आने का द्वार मिल जाता है।

बुद्ध ने कहा है, दुख है, दुख का कारण है, दुख से मुक्त होने का उपाय है, दुख-मुक्ति की अवस्था है। इन चार को बुद्ध ने आर्य-सत्य कहा है। अत्यंत बुनियादी सत्य। इनसे बुनियादी और कुछ भी नहीं। पहला बुनियादी सत्यः दुख है।

तुमने तो अभी वही स्वीकार नहीं किया। तुम तो झुठलाए जा रहे हो। तुम तो कहते हो, दुख? नहीं, सुखी हूं, सब है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, भगवान की कृपा से सब है। बच्चे हैं, पत्नी है, घर-द्वार है, धन-दौलत है, सब है, मगर... । फिर मगर क्या? जब सब है परमात्मा की कृपा से तो अब मगर क्या? कैसा हम झूठ बोले जा रहे हैं। और हम ही झूठ नहीं बोलते, परमात्मा को भी झूठ में घसीट रहे हैं। उसकी कृपा से! अगर यही उसकी कृपा है, जो तुम्हारे जीवन में हो रहा है, तो फिर उसे कृपालु कहना बंद कर दो। होगी कोई दुष्टता की प्रक्रिया परमात्मा के नाम पर छिपी बैठी, जो तुम्हें सता रही है।

नहीं, लेकिन तुम झूठे हो तो तुम्हारा परमात्मा भी झूठा हो जाता है। तुम झूठे हो, तुम जो छूते हो वही झूठा हो जाता है। और झूठ की पहली सीढ़ी कहां पड़ती है? वहीं जहां तुम दुख को दुख नहीं मानते और सुख समझा लेते हो कि सुख है। फिर जब तुम दुख को सुख मान लेते हो, तो तुम एक ऐसी प्रक्रिया में पड़ गए कि अब तुम दुख के कारण कैसे खोजोगे--जब सुख ही मान लिया तो दुख का कारण कैसे खोजोगे? जिसने बीमारी को स्वास्थ्य मान लिया, वह चिकित्सक के पास जाए क्यों? और जिसने बीमारी को स्वास्थ्य मान लिया, वह बीमारी का कारण क्यों खोजे? बीमारी रही नहीं, तो कारण कैसे खोजे? तुमने जहां दुख को इंकार किया, वहीं तुम चूक गए। वहीं से तुम भटक रहे हो और जन्मों-जन्मों में तुमने वही किया है।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, पहला आर्य-सत्य हैः दुख है। इसे झुठलाओ मत, भागो मत। आंख मत मूंदो। आंख मूंदने से दुख मिटेगा नहीं। आंख मूंदने के कारण ही दुख बढ़ता गया है--तुम आंखें मूंदे खड़े हो और दुख बढ़ता चला गया। आंख खोलो। कारण खोजो। दुख है, सुख जरा भी नहीं है। सुख मान्यता है, दुख सत्य है। तो दुख के कारण को खोजो।

और उसी के कारण की खोज करते-करते तुम चकित हो जाओगे। जैसे ही यह कारण हाथ में आ जाता है, तुम्हारे हाथ में एक अपूर्व कुंजी आ गयी। अब तुम्हारी मर्जी, दुखी होना हो तो हो जाओ, न होना हो तो न होओ। कौन चाहकर दुखी होना चाहेगा! जब समझ में आ जाए कि द्वार कहां, तब कौन दीवाल से निकलकर सिर तोड़ना चाहता है!

लेकिन तुम दीवाल को द्वार कहते हो। तो द्वार तुम्हें दिखायी नहीं पड़ सकता। बार-बार टकराते हो, फिर भी सजग नहीं होते, चौंकते नहीं। बार-बार कोई बहाना खोज लेते हो कि टकरा गए होंगे, कोई और भूल-चूक हो गयी, दरवाजा तो यही है, निकलना तो यहीं से है, निकलना तो यहीं से हो सकता है।

दुख का कारण ख्याल में आ गया तो दुख से मुक्ति तुम्हारे हाथ में आ गयी। अब तुम्हारी मर्जी। और कौन है जो दुख चाहता है! दुख का कारण समझ में आते ही दुख से मुक्ति का उपाय मिल जाता है। दुख-मुक्ति का उपाय मिलते ही तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे वह घड़ी आनी शुरू हो जाती है--कभी-कभी झलक आती है, कभी किरण उतरती है, कभी देर टिक जाती है, कभी थोड़ी और ज्यादा देर टिक जाती है--जब सुख होता है। दुख का अभाव सुख है।

इस बुद्ध-विचार को समझो।

बुद्ध कहते हैं, दुख-निरोध। बुद्ध से लोग पूछते कि मोक्ष में सुख होगा? निर्वाण में सुख तो होगा न! बुद्ध कहते, सुख की बात ही मत करो, इतना ही कह सकता हूं कि दुख नहीं होगा।

बुद्ध अदभुत हैं। क्योंकि बुद्ध जानते हैं, तुम इतने बेईमान हो कि तुम निर्वाण में भी सुख खोजने लगोगे। वही तो तुम्हारी संसार की भूल है कि तुम सुख खोज रहे। दुख को तो पहचानते नहीं, सुख को खोजते हो, वही तुम्हारी चूक है। वही तुम्हारी फिसलन है, वहीं से तुम गिरे हो, वहीं से तुम गिरते जा रहे हो।

अगर तुमसे कहा जाए कि मोक्ष में सुख है--जैसा कि हिंदू कहते हैं, आनंद; जैसा जैन कहते हैं, परम आनंद। बुद्ध ने नयी भाषा खोजी। बुद्ध की भाषा मनुष्य के मनोविज्ञान को जिस ठीक ढंग से पहचान पायी है, वैसी किसी दूसरे व्यक्ति की भाषा नहीं पहचान पायी। बुद्ध ने मनुष्य को सोचकर भाषा निर्मित की।

महावीर अपने को देखकर बोल रहे हैं। महावीर को आनंद हुआ है, तो वह कहते हैं कि मोक्ष परम आनंद की दशा है। लेकिन उन्होंने यह ख्याल नहीं लिया है कि जिस आदमी से बोल रहे हैं, उसने तो आनंद जाना नहीं, वह तो आनंद के नाम से सुख समझेगा, पहली बात। दूसरी बात, अभी तक सुख खोजता रहा संसार में, अब वह मोक्ष में सुख खोजने लगेगा। और सुख खोजने में ही उसकी भ्रांति है। इसलिए महावीर की भाषा आदमी को देखकर नहीं है, महावीर की अपनी चित्त-दशा को देखकर है। बुद्ध की भाषा तुम्हें देखकर है। बुद्ध पागलों की भाषा में बोल रहे हैं--पागलों से बोल रहे हैं। देखकर, जानकर कि तुम किस तरह की भूल कर सकते हो।

जैन-शास्त्रों में लिखा है कि जब मोक्ष-रमणी तुम्हें वरेगी। मोक्ष-रमणी! कि जब मोक्ष की सुंदर स्त्री तुम्हारा वरण करेगी।

अब बात बिल्कुल ठीक है, कहीं भी भूल-चूक नहीं है, लेकिन जो रमणियों के पीछे दीवाना रहा है अब तक, और फिल्म अभिनेत्रियों के द्वार खटखटाता रहा है, वह तो पढ़कर गदगद हो जाएगा--मोक्ष-रमणी! वह क्या समझेगा? उसके सामने कौन सी प्रतिमा उठेगी, कौन सा रूप उठेगा--मोक्ष-रमणी! वह मोक्ष में भी वही खोजने लगेगा जो यहां खोज रहा था।

नहीं, बुद्ध ने एक शब्द भी नहीं ऐसा बोला जिसके साथ तुम फिर से धोखा खा सको। बुद्ध की भाषा बड़ी अदभुत है। बड़ा संयम रखना पड़ा होगा बुद्ध को। क्योंकि मैं जानता हूं कठिनाई कैसी है। जब भीतर आनंद बरस रहा हो, तब इस बात को सदा याद रखना कि तुमसे आनंद की बात न की जाए, कठिन है। और जब भीतर सच ही मोक्ष की रमणी के साथ भोग चल रहा हो, तब यह बात बड़ी मुश्किल है कि तुमसे न कही जाए। कभी भूल-चूक, समय-असमय निकल ही जाएगी। लेकिन बुद्ध से न निकली। चालीस साल बोले, लेकिन फूंक-फूंककर कदम रखा।

महावीर जमीन पर फूंक-फूंककर कदम रखते हैं, बुद्ध एक-एक शब्द पर फूंक-फूंककर कदम रखते हैं। कितनी ही बार पूछा गया और कितने ही ढंग से पूछा गया, लेकिन उन्होंने सदा यही कहा कि दुख-निरोध। दुख नहीं होगा, इतना ही तुमसे कह सकता हूं। सुख होगा कि नहीं, तुम जानो। मेरी तरफ से इतनी भर पक्की बात है कि दुख नहीं होगा।

इसीलिए बुद्ध का प्रभाव बहुत समझदार लोगों पर पड़ा। नासमझ लोगों पर नहीं पड़ा। नासमझों ने तो कहा, यह भी कोई लक्ष्य हुआ--दुख-निरोध? दुख नहीं होगा। यह बात कुछ जंचती नहीं। कुछ विधायक। होगा क्या, यह कहो न! नहीं होगा! इधर दुख से परेशान हैं, तुम कहते हो, दुख नहीं होगा। यह लक्ष्य कुछ बहुत हृदय को गदगद नहीं करता। करता है? --दुख निरोध! कांटा नहीं होगा, घाव नहीं होगा। लेकिन बुद्ध यह नहीं कहते

कि फूल खिलेगा। सुगंध होगी, सुवास होगी, बुद्ध यह बात नहीं कहते। बुद्ध कहते हैं, कांटा नहीं होगा, बस इतना ही।

अब कांटा नहीं होगा, इससे मन में कहीं कोई तरंग उठती है! कोई लहर उठती है! इसको कोई लक्ष्य मानकर अपना जीवन समर्पित करेगा? दुख-निरोध के लिए कोई साध्य बनाएगा? किसी से तुम पूछोगे, क्या खोज रहे हो, तो वह कहेगा, मैं दुख-निरोध खोज रहा हूं!

यह बात कुछ जंचती नहीं। दुख-निरोध की प्रतिमा बनती नहीं।

इसलिए बुद्ध का प्रभाव अत्यंत बुद्धिशाली लोगों पर पड़ा। और जैसे ही बुद्ध विदा हो गए, वह प्रभाव क्षीण होने लगा। क्योंकि भीड़ तो बुद्धिहीनों की है। बुद्ध का धर्म इस जगत में सर्वाधिक वैज्ञानिक धर्म था, लेकिन विलुप्त हो गया। इस देश से विलुप्त हो गया जहां पैदा हुआ! क्योंकि इस देश से विलुप्त हो जाने के बहुत कारणों में एक कारण यह था कि इस देश के शेष सारे धर्म आनंद की भाषा बोलते हैं--सच्चिदानंद, मोक्ष, मोक्ष-रमणी, अपूर्व सुख की वर्षा, महासुख। और बुद्ध ने सिर्फ इतना कहा--दुख-निरोध।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध की बात समझकर चलोगे तो इस मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ सकते हो। क्योंकि दुख-निरोध ही सुख को पाने का मार्ग है। दुख न रह जाए तो जो बचेगा, उसका नाम आनंद है। दुख के अभाव का नाम आनंद है।

फूल खिलता है, निश्चित खिलता है, लेकिन जो व्यक्ति सुख की तलाश में लगा है, वह संसार को ही बढ़ाए चला जाता है। और जो व्यक्ति दुख की तलाश में लग जाता है, वह संसार को काटने लगता है। कारण हाथ में आने लगते हैं, उतना-उतना दुख गिरने लगा, उतना संसार गिरने लगा। निदान हो गया रोग का, चिकित्सा बड़ी आसान हो जाती है।

बुद्ध चिकित्सक हैं। बुद्ध ने कहा भी कि मैं वैद्य हूं। जैसा नानक ने कहा है कि मैं वैद्य हूं, ऐसा बुद्ध ने भी बहुत बार कहा कि मैं वैद्य हूं। अनेक-अनेक बार बुद्ध ने दोहराया है कि मैं कोई दार्शनिक नहीं, कोई ज्ञानी नहीं, मैं तो वैद्य हूं। तुम बीमार हो, मैं वैद्य हूं।

तुम जब वैद्य के पास जाते हो तो वह तुम्हारी बीमारी दूर कर देता है। स्वास्थ्य तो तुम्हें देता नहीं, दे भी नहीं सकता, किस वैद्य की सामर्थ्य है! स्वास्थ्य कब किसने किसको दिया? स्वास्थ्य को देने की जरूरत ही नहीं। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है, जब बीमारी नहीं रह जाती है तो जो बचता है।

तो वैद्य तुम्हारी बीमारी छीन लेता है। औषधि देता है कि तुम्हारी बीमारी कट जाए, जब सब बीमारी कट जाती है तो जो पीछे अपने आप स्वभावतः रह जाता है, उस स्वभाव में जो है वही तो स्वास्थ्य है। ये दोनों शब्द एक से ही बने हैं--स्व से--स्वभाव और स्वास्थ्य। स्वयं रह गए तो स्वस्थ। कुछ और विजातीय न बचा, तो स्वस्थ।

तो स्वास्थ्य तो कोई नहीं दे सकता। तुम अगर डाक्टर के पास जाओ और कहो कि कुछ स्वास्थ्य दे दें, तो वह कहेगा, बीमारी क्या है? तुम कहो, बीमारी तो कुछ भी नहीं है, मैं स्वास्थ्य की तलाश कर रहा हूं, तो वह कहेगा कि बीमारी जब कुछ भी नहीं है तो तुम स्वस्थ हो। और स्वास्थ्य देने का कोई उपाय नहीं है। बीमारी छीनी जा सकती है, स्वास्थ्य दिया नहीं जा सकता।

तो बुद्ध बीमारी का विश्लेषण किए। बीमारी को ठीक-ठीक तर्कयुक्त ढंग से साफ कर दिया। फूल खिलता है।

नाव नहीं, ये अधर हैं
हंसती इनसे झील
पता नहीं ये जिंदगी
कितने लंबे मील
लकड़ी की इस देह के
टूटे हुए किवाड़
पीछे रेगिस्तान है
आगे उठे पहाड़
कोने पर से फट गयी
यह चिट्ठी-सी धूप
संध्या ऐसी लग रही
ज्यों विधवा का रूप
कच्ची मिट्टी के मनुज
आंवे जैसा गांव
अंगारों का फर्श है
और धुएं की छांव
बारह बजते ही मिलीं
सुइयां दोनों साथ
अभिवादन करता समय
जुड़े घड़ी के हाथ
पीली आंखें धूप की
नीले दर्द हजार
पतझड़ में शायद तभी
हरा हो गया प्यार
कपट-छलावों का नगर
तीखे-तीखे लोग
मित्रों को भी लग गया
नागफनी का रोग
संबंधों की हथकड़ी
चेहरे हैं अभियुक्त
आंखों के पक्षी उड़े
होकर बंधनमुक्त
चोरी करके चांद की
गए तिमिर के चोर
गश्त लगाता फिर रहा

यहां सिपहिया भोर
लहंगा पहने धूप का
उतरी जल में शाम
बूढ़े बरगद ने कहा
पलक मूंदकर राम
अनगिन चेहरों से लदा
यह नीला आकाश
बरसों खोजा न मिला
अपना सुर्ख पलाश

बरसों क्या! जन्मों खोजा न मिला, अपना सुर्ख पलाश। वह जो अपने भीतर का सुर्ख फूल है, वह मिला नहीं। और जब तक वह नहीं मिला, तब तक कुछ भी नहीं मिला। तब तक तुमने जो भी इकट्ठा कर लिया, सब बोझ है। और तब तक तुमने जो भी खोजा, सब व्यर्थ है। तुम रेगिस्तानों में भटकते रहे, मरूद्यान मिला नहीं। यह भी स्वीकार करने का मन नहीं होता कि मरूद्यान मिला नहीं, इसलिए मान लेते हो कि मिल गया। ऐसे सांत्वना हो जाती है। सांत्वना से जागो, तो ही सत्य मिलता है।

तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तुम्हें सांत्वना ही देते हैं। सांत्वना से जागो तो सत्य मिलता है, सांत्वना से सत्य नहीं मिलता।

मैं तुम्हारे साथ जो प्रयोग कर रहा हूं, वह है तुम्हारी सांत्वनाएं छीन लेने का प्रयोग। तुम्हारी सब सांत्वनाएं छिन जाएं तो तुम्हारे जीवन का दुख इतना है कि वही दुख तुम्हें जगा देगा। तुम्हें दुख जगा नहीं पा रहा है, क्योंकि तुमने सांत्वनाओं की खूब आड़ बना रखी है। सांत्वनाओं के खूब तुमने कवच पहन रखे हैं।

दुख है और नहीं जगा पा रहा है। अलार्म बज रहा है दुख का और तुम कानों में रुई लगाए पड़े हो। वह रुई सांत्वना है। दुख बजता है, लेकिन कान में रुई लगाए पड़े हो तो सुनायी कैसे पड़े? और तुम चाहते हो कि किसी तरह सुनायी न पड़े, तो तुम रुई बढ़ाते चले जाते हो।

धर्म या धर्मगुरु का एक ही प्रयोजन है कि तुम्हारे कान की सब रुई निकाल ले। बुद्ध ने चालीस वर्ष यही अदभुत प्रयोग किया और बहुत लोग उनके पास सत्य को उपलब्ध हुए। और जिसे भी सत्य को पाना हो उसे टालना नहीं चाहिए। उसे यह नहीं कहना चाहिए, कल निकालेंगे कान की रुई। अभी निकालो तो निकलेगी, कल पर छोड़ा तो कभी न निकलेगी।

एक संस्मरण और जोड़ दूं
ओ मेरे इतिहास रुको तो

हम रोके जा रहे हर चीज को। हम कहते हैं, जरा ठहरो। थोड़ा और धन इकट्ठा कर लूं, कि थोड़ा और मन इकट्ठा कर लूं, कि थोड़ा और ऐसा कर लूं, कि थोड़ा और वैसा कर लूं।

एक संस्मरण और जोड़ दूं

ओ मेरे इतिहास रुको तो

हम तो मौत से भी यही कहें। मौत सुनती नहीं, इसलिए बात मुश्किल हो जाती है। नहीं तो हम तो मौत से भी यही कहें कि जरा रुक जा--एक संस्मरण और जोड़ दूं।

मैंने तुमको अपना जाना
अपने से भी ज्यादा माना
पर इतना सब करने पर भी
सचमुच क्या तुमको पहचाना
तुम तो अब भी पहले जैसे
लगते हो वैसे के वैसे
एक संस्मरण और जोड़ दूं
ओ मेरे मधुमास रुको तो
रात न रुचती स्वप्न न भाता
दिवस सरीखा दिवस न जाता
लगता पहले मैं भी था कुछ
पर अब कुछ भी याद न आता
सच कितना मजबूर हुआ है
अपने से भी दूर हुआ है
एक विस्मरण और जोड़ दूं
ओ मेरे विश्वास रुको तो
केवल इतनी कथा हमारी
अथ पर इति की पहरेदारी
कभी संवरना चाहा होगा
अब तो बुझने की तैयारी
मन था नयी सृष्टि रचने का
अब प्रयास सबसे बचने का
एक संवरण और जोड़ दूं
ओ मेरे संन्यास रुको तो
एक संस्मरण और जोड़ दूं
ओ मेरे इतिहास रुको तो

बुद्ध ने ऐसा नहीं किया। जिस दिन देखा कि मृत्यु है, जिस दिन देखा कि बुढ़ापा है, जिस दिन देखा कि जीवन में दुख है, उसी रात छोड़ दिया सब। उस रात छोड़ने के बाद बुद्ध ने जो कसम खायी, वह समझने जैसी

है! बुद्ध ने कहा, चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न शेष रह जाएं; चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जाए, किंतु बिना सम्यक-संबोधि को प्राप्त किए नहीं रहूंगा।

क्योंकि उसके बिना रहने का कोई अर्थ नहीं है। सम्यक-संबोधि एकमात्र संपदा है। सम्यक-संबोधि का अर्थ है, बिना जागे नहीं रहूंगा। सोया-सोया अब नहीं रहूंगा, सब दांव पर लगा दूंगा, लेकिन अब नींद में रहने का कोई भी कारण नहीं है। जहां मौत है, वहां जो सो रहे, वे गाफिल हैं और नासमझ हैं। जहां मौत सब छीन लेगी, वहां जो इकट्ठा कर रहे, वे पागल हैं और विक्षिप्त हैं। अब नहीं।

तो बुद्ध ने सब दांव पर लगा दिया। लंबी तपश्चर्या की। छह वर्ष कठोर तपश्चर्या की। सच में ही हड्डी-मांस-मज्जा सब सूख गया। छाती की हड्डियां दिखायी पड़ने लगीं। कथाएं कहती हैं कि पेट पीठ से लग गया। सब सूख गया। अपूर्व संघर्ष किया। गहन संकल्प किया और सब दांव पर लगा दिया। उसी संकल्प का अंतिम परिणाम समर्पण था। उसी संघर्ष का अंतिम परिणाम विश्राम था।

तुममें से बहुत लोग समर्पण करते हैं। लेकिन समर्पण के पहले समर्पण करने को ही कुछ नहीं होता। कभी मुझे सुन लेते हैं यह कहते कि ध्यान भी छोड़ना पड़ेगा, तो वे कहते हैं, फिर ठीक है, हमने किया ही नहीं, झंझट में ही क्यों पड़ना! कभी मैं कहता हूं, गुरु भी छोड़ना पड़ेगा, तो वे कहते हैं, फिर ठीक है, जब छोड़ना ही पड़ेगा, तो गुरु करना ही क्यों?

लेकिन तुम वही छोड़ सकते हो जो तुम्हारे पास है। ध्यान हो, तो ध्यान छोड़ सकते हो। निश्चित ही मैं बार-बार कहता हूं कि नदी पार कर जाने पर नाव छोड़ देनी पड़ती है, तो तुम कहते हो, नाव चढ़ें ही क्यों? लेकिन तब तुम दूसरे किनारे ही रह जाओगे। यह बात उस किनारे जाकर छोड़ने की हो रही थी। नाव पकड़नी पड़ेगी और छोड़नी पड़ेगी।

बुद्ध ने संकल्प किया, संघर्ष किया, तपश्चर्या की और आखिरी चरम शिखर पर पहुंचे--उसके पार मनुष्य के हाथ में करने को कुछ भी नहीं बचता--कर्ता की आखिरी स्थिति आ गयी, वहां से कर्ता गिरा, बिखर गया, समाप्त हो गया, वहीं अहंकार विसर्जित हो गया। जो बचा, वही बुद्धत्व है।

आज के सूत्र जिस कथा से संबंधित हैं, वह मैं पहले कह दूं, जिस परिस्थिति में बुद्ध ने ये सूत्र, आज के पहले दो सूत्र कहे।

पहले दो सूत्र--

यस्स जित नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।।
यस्स जालिनी विसत्तिका तन्हा नत्थि कुहिंच नेतवे।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।।

"जिसका जीता कोई अनजीता नहीं कर सकता, और जिसके जीते को कोई दूसरा नहीं पहुंच सकता, उस अनंतद्रष्टा और अपद बुद्ध को किस पथ से ले जाओगे?"

"अपने जाल में सबको फंसाने वाली तृष्णा जिसे नहीं डिगा सकती, उस अनंतद्रष्टा और अपद बुद्ध को किस पथ से ले जाओगे?"

ये पहले दो सूत्र एक खास स्थिति में कहे गए थे, वह स्थिति बड़ी समझने जैसी है। क्योंकि उस स्थिति से तुम्हें कभी न कभी गुजरना होगा। स्थिति यह थी--

बुद्ध ने छह वर्ष की तपश्चर्या की। जो करने योग्य था, किया। जो भी किया जा सकता था, किया। कुछ भी अनकिया न छोड़ा। जिसने जो कहा, वही किया। जिस गुरु ने जो बताया, उसको समग्र मन-भाव से किया, तन-प्राण से किया। रत्तीभर भी अपने को बचाया नहीं। सब तरह अपने को दांव पर लगा दिया।

ऐसी स्थिति की अंतिम घड़ी में जहां संकल्प अपने शिखर पर पहुंचता है और जहां से आदमी मन से मुक्त होता है, तो मन आखिरी हमले करता है। स्वाभाविक। जिस मन के साथ हम वर्षों रहे, जन्मों रहे और जिस मन की हम पर मालकियत रही, वह मालकियत यूं ही नहीं छोड़ देता। कौन मालकियत यूं ही छोड़ देता है!

अगर तुम्हारा नौकर भी तुम छुड़ाना चाहो तो वह भी आसानी से नहीं छोड़ता, तो मालिक की तो बात ही और। नौकर नौकरी छोड़ने को आसानी से राजी नहीं होता तो मालिक मालकियत छोड़ने को कैसे राजी होगा! और अगर नौकर कहीं भूल-चूक से मालिक बन बैठा हो, तब तो फिर छोड़ने की बात ही नहीं। और यही हुआ है। मन नौकर है, बन बैठा मालिक है। तो अगर नौकर सिंहासन पर बैठ जाए तो फिर आसान नहीं है उतारना।

मैंने सुना है, एक झक्की बादशाह ने कोर्ट के मसखरे को ऐसे ही बातचीत में पूछ लिया कि बोल, तुझ पर हम बहुत प्रसन्न हैं, तू क्या चाहता है? तेरी मर्जी पूरी कर देंगे। मसखरा था अदभुत और सम्राट को हंसाया करता था और सम्राट--उसने कुछ मजाक की बात कही--खूब हंसा, लोटा-पोटा, बहुत प्रसन्न हो गया। तो उसने कहा, देख, तू जो चाहेगा। उसने कहा, कुछ ज्यादा नहीं, चौबीस घंटे के लिए सम्राट बना दो। अब यह कोई बड़ी बात न थी, सम्राट ने कहा, ठीक है, चौबीस घंटे का ही मामला है, बन जा।

चौबीस घंटे के लिए मसखरा सम्राट बन गया। लेकिन चौबीस घंटे में उसने सब तहस-नहस कर डाला। पहला काम तो उसने कहा कि सम्राट को फांसी लगा दो। सम्राट ने कहा, अरे पागल, मैंने तुझे सम्राट बनाया! उसने कहा, वह मैं जानता हूं, तुम्हीं मुझे उतारोगे। फैसला! खतम करो! देर-दार की जरूरत नहीं, चौबीस घंटे का मामला है, चौबीस घंटे में सब कर लेना है। सब दरबारियों वगैरह को जेल में डाल दिया। सेनापति बदल डाले, अपने आदमी बिठा दिए। चौबीस घंटे का था मामला, लेकिन सदा के लिए बनने की योजना कर ली। चौबीस मिनट में भी यह हो सकता था।

अगर गुलाम कभी मालिक बन जाए तो बहुत खतरनाक सिद्ध होता है। क्योंकि वह जानता है कि मैं हूं तो गुलाम और यह जो थोड़ी सी घड़ियां मुझे मिल गयी हैं, अगर इनका उपयोग न कर लिया तो फिर का फिर गुलाम हो जाऊंगा। नौकर अगर मालिक जन्मों तक रहा हो, तब तो बहुत कठिन है उसे हटा देना। और वही स्थिति है मन की।

तो जब कोई साधक अपने अंतिम शिखर पर पहुंचता साधना के, तो मन आखिरी जद्दोजहद करता है, आखिरी संघर्ष होता है--कुरुक्षेत्र। अंतिम निर्णायक युद्ध होता है। उस निर्णायक युद्ध को अनेक-अनेक प्रतीकों से कहा गया है।

मुसलमान कहते हैं--शैतान हमला करता है। वह शैतान मन है। ईसाई कहते हैं--डेविल, बीलझेबब हमला करता है। वह बीलझेबब कोई और नहीं, मन है। हिंदू कहते हैं--कामदेव। और स्वभावतः हिंदुओं के पास सबसे श्रेष्ठ कथाएं हैं। क्योंकि उन्होंने खूब परिमार्जित किया है। दस हजार साल तक परिमार्जन किया है। औरों की

कथाएं नयी-नयी हैं, उनमें कई भूल-चूकें मिल जाएंगी, लेकिन हिंदुओं ने तो खूब परिमार्जन किया है। इसके पहले कि हिंदुओं की कथाएं लिखी गयीं, हजारों साल तक वे कथाएं बुद्धिमानों के हाथ से गुजरती रहीं, उन पर परिमार्जन होता रहा।

तो हिंदुओं की कामदेव की कथा बड़ी अदभुत है, उसमें पहली तो बात यह कि वह अनंग हैं, उनकी कोई देह नहीं। यही तो मन है। मन की कोई देह थोड़े ही है। मन अदेही है। इसीलिए तो मन को कहीं भी जाने में देर नहीं लगती। तुम्हें दिल्ली जाना, समय लगे; कलकत्ता जाना, समय लगे; मन, यह गया। अदेही है, न कोई ट्रेन, न मोटर, न हवाई जहाज, किसी की कोई जरूरत नहीं। सोचा नहीं कि गया नहीं। क्षण भी बीच में टूटता नहीं--समय नहीं लगता। देह अगर मन की होती तो समय लगता।

हिंदुओं की कथा अदभुत है कि शिव को काम ने बहुत ज्यादा पीड़ित किया, परेशान किया तो वह नाराज हो गए और उन्होंने आंख अपनी, तीसरा नेत्र खोल दिया। उस तीसरे नेत्र के कारण जलकर भस्म होकर काम का जो शरीर था वह गिर गया। तब से वह अनंग है। उसके पास देह नहीं है।

यह कथा भी प्यारी है कि तीसरे नेत्र के खोलने से काम जल गया। तीसरे नेत्र के खुलने पर ही काम जलता है। तीसरे नेत्र के खुलने का अर्थ है, अंतर्दृष्टि उपलब्ध हो गयी, भीतर की आंख खुल गयी। जब तक भीतर की आंख बंद है, तभी तक काम का तुम पर प्रभाव है। भीतर की आंख खुल गयी, काम का प्रभाव समाप्त हो गया। भीतर तुम सोए हो, इसलिए काम तुम्हें फुसला लेता है, राजी कर लेता है। भीतर जाग गए, फिर तुम्हें कोई राजी न कर सकेगा।

बौद्धों में यही काम मार कहा जाता है। यह बौद्ध नाम है काम का ही। बौद्धों ने भी खूब परिष्कार किया है मार का। और यह घटना तुम्हें बताएगी कि किस तरह परिष्कार किया है।

साधना अंतिम शिखर पर पहुंच गयी उनकी। तपश्चर्या के अंतिम शिखर पर मार ने भगवान को पछाड़ने की चेष्टा की। मार सब तरफ से हमले किया।

सब द्वार-दरवाजों से हमले किया। क्षणभर भी खोने का उपाय न था, जल्दी करनी जरूरी थी, क्योंकि बुद्ध वहां जा रहे हैं जहां तीसरा नेत्र खुल जाएगा। इसके पहले कि तीसरा नेत्र खुल जाए, सब उपाय कर लेना जरूरी था।

लेकिन उसे मार खानी पड़ी। मार को मार खानी पड़ी। हार खानी पड़ी।

यह शब्द भी बड़ा अच्छा है। इसलिए बुद्ध इसे मार कहते हैं कि तुम घबड़ाओ मत, आखिर में तो इसको मार खानी पड़ेगी। यह मार खाएगा। बीच के ही दिन हैं इसकी विजय-यात्रा अगर होती है। अंततः तो इसे हारना है--सत्यमेव जयते। सत्य अंततः तो जीतेगा। अगर झूठ जीतता है तो बीच में ही जीतता है, इसलिए बहुत परेशान मत होना। अगर झूठ जीत भी जाए तो प्रतीक्षा करना, डांवाडोल मत हो जाना, अंततः तो सत्य ही जीतेगा। क्योंकि झूठ है ही नहीं तो जीतेगा कैसे? इसलिए मार को मार तो खानी ही पड़ेगी। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वह हारेगा। तुम जागे कि हारेगा। अगर जीत रहा है तो सिर्फ इसीलिए कि तुम अभी सोए हो। तुम खुद ही झूठ हो, इसलिए झूठ जीत रहा है। जैसे ही तुम सच हुए कि सच की जीत हो जाएगी। मार अपने कारण नहीं जीत रहा है, तुम्हारे कारण जीत रहा है। तुम हारे हुए बैठे हो, इसलिए जीत रहा है। तुम जरा उठकर खड़े हो जाओ, तो मार जीत न सकेगा।

मार को हार खानी पड़ी। तब उसने अपनी तीन कन्याओं को भेजा। मार-कन्याएं नाना प्रकार के प्रयत्न कर भगवान को वश में करना चाहीं।

अब यह भी समझना। पहले मार स्वयं आया। हार गया, तो उसने अपनी तीन कन्याओं को भेजा। यह आखिरी उपाय है।

इन प्रतीकों को ख्याल में लेना जरूरी है। पहली बात, जैसा मैंने तुमसे पहले दिन कहा कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर पुरुष है और स्त्री है। और प्रत्येक स्त्री के भीतर स्त्री है और पुरुष है। तो बुद्ध पुरुष हैं। स्वभावतः, सबसे पहले बुद्ध का जो अधिक अंशों वाला मन है--पुरुष का मन--वह हमला करेगा। स्वभावतः। क्योंकि बुद्ध के पास पुरुष का मन बड़ा है स्त्री के मन के मुकाबले। तो मन पहले तो अपनी बड़ी से बड़ी शक्ति को लगाएगा। मन के भीतर पुरुष जैसी बातें हैं, जैसे अहंकार, क्रोध, पद, मद, मत्सर, मोह, ये सब पुरुषवाची हैं। अहंकार इनका मूलस्रोत है। तुम्हारे भीतर जो जाल है, उस जाल में जो पुरुष तुम्हारे भीतर छिपा है, जो तुम्हें उलझा रहा है, वह है अहंकार।

इसलिए तुम पाओगे कि पुरुषों की सबसे बड़ी पीड़ा अहंकार है। सबसे बड़ी अड़चन उनकी अहंकार की। इसलिए पुरुष को समर्पण करना बहुत कठिन होता है। झुकना कठिन होता है। टूट जाए, झुकना नहीं चाहता। कहावतें कहती हैं--टूट जाना मगर झुकना मत। यह पुरुष की अकड़ है। अहंकार पुरुष मन का आधार है।

तो मार पहले स्वयं आया। इसका अर्थ है, पुरुष के द्वार से आया। उसने बुद्ध के अहंकार को जगाया होगा। साफ नहीं है कथा में कि उसने क्या कहा, क्योंकि बहुत अनूठी कथाएं बहुत सी बातें बिना कहे छोड़ देती हैं। क्योंकि सभी बातें कह दी जाएं तो फिर ध्यान करने योग्य उन कथाओं में कुछ भी नहीं रह जाता। और ये कथाएं ध्यान करने के लिए निर्मित की गयी हैं। इन पर ध्यान करना है। और जो खाली हिस्से हैं उनको ध्यान से भरना है।

इसलिए भारत में इतना विवेचन, इतनी व्याख्या चली। उस विवेचन और व्याख्या का कारण है, क्योंकि कथाएं अधूरी हैं। ईसाइयत के पास ऐसी व्याख्याएं नहीं हैं, न इस्लाम के पास ऐसी व्याख्याएं हैं। कुरान पर कोई अच्छी व्याख्या हुई ही नहीं। क्योंकि कुरान में कुछ खाली छोड़ा नहीं। सब कुछ कह दिया। बेकार की बातें भी कह दीं जो कि कुरान में नहीं होनी चाहिए थीं। शादी-विवाह, समाज, राजनीति, सब डाल दिया। कुछ छोड़ा ही नहीं।

इससे एक बात साफ होती है कि कुरान जिन लोगों के लिए लिखा गया, वे कोई बहुत बुद्धिमान लोग नहीं थे। उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता था, डिटेल्स में सब बातें कह देनी जरूरी थीं, अन्यथा वे गड़बड़ कर देंगे। एक-एक बात ब्योरे में कह देनी जरूरी थी कि ऐसा करना, ऐसे उठना, ऐसे बैठना। सब साफ कर दिया। इसलिए कुरान में व्याख्या की बहुत गुंजाइश नहीं है।

लेकिन उपनिषदों में व्याख्या की खूब गुंजाइश है। कुछ भी साफ नहीं किया है। इशारे हैं और इशारों के कुछ भी अर्थ बन सकते हैं। फायदा भी है, नुकसान भी है। हर फायदे में नुकसान होता है। कुरान का एक फायदा है कि मुसलमान बिल्कुल निश्चिंत हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। इस मामले में दुविधा नहीं है। हिंदू बिल्कुल अनिश्चित हैं--क्या करना, क्या नहीं करना, एकदम दुविधा है। और तुम पूछने जाओ तो जिस आचार्य से पूछो, वह अलग व्याख्या दे रहा है। शंकराचार्य कुछ कहेंगे, रामानुजाचार्य कुछ कहेंगे, वल्लभाचार्य कुछ कहेंगे, निंबार्काचार्य कुछ कहेंगे। और तुम खोजते रहो आचार्यों को और हर आचार्य व्याख्या देगा। खतरा यह है कि लोग साफ कभी नहीं हो पाएंगे कि ठीक-ठीक क्या करना है! और फायदा यह है कि ध्यान के लिए बड़ी सुविधा है। सोच-विचार के लिए बड़ी गुंजाइश है।

इसलिए इस्लाम में बहुत विचार पैदा नहीं हो सका। मुसलमान सीधा-सादा आदमी है। जो करने योग्य है, करता है, जो नहीं करने योग्य है, नहीं करता है। जो बात उसे कही है, उसे लकीर के फकीर की तरह मानकर चलता है। लेकिन बहुत विचार का जन्म नहीं हुआ। हिंदुओं जैसा चिंतन पैदा नहीं हुआ, होने का कारण ही नहीं था। चिंतन तो वहीं पैदा होता है जहां खाली जगह छोड़ दी गयी हैं। जिन्हें तुम्हें भरना होगा।

तो भारत में जो भी कथाएं रची गयी हैं, उनमें बड़े रिक्त स्थान हैं। जैसे, पहले मार ने हमला किया, लेकिन उसने क्या किया हमले में, यह बात नहीं कही गयी। यह सोचनी पड़ेगी।

मार यानी पुरुष। पुरुष यानी अहंकार। तो उसने बुद्ध के अहंकार को गुदगुदाया होगा कि अरे, तेरे जैसा तपस्वी कोई भी नहीं। तू महातपस्वी है। तू तपस्वियों का तपस्वी। प्रसन्न हो जा। तेरे जैसा कभी न हुआ, न कभी होगा। उसने बुद्ध को खूब फुसलाया होगा। और उसने बुद्ध को खूब समझाया होगा कि धन्यभाग, कि तेरे दर्शन हो गए! मैं तेरे चरणों में झुका हूं। उसने बुद्ध के अहंकार को मक्खन लगाया होगा। यह कथा का अंश छूटा है। यह साफ नहीं है। उसने चमचागिरी की होगी। उसने इस कोने, उस कोने से बुद्ध को कहा होगा, अरे, धन्यभाग! लेकिन उसे मात खानी पड़ी। मार को मार खानी पड़ी। बुद्ध चुप रहे, बैठे रहे, कुछ भी न बोले। उसकी प्रशंसाओं का कोई परिणाम न पड़ा। उसने क्या कहा, वह जैसे बहरे कानों पर पड़ा। बुद्ध अडिग रहे, जरा डांवाडोल न हुए।

और जब कोई आदमी ऐसी अवस्था में हो, अडोल, कि पुरुष के द्वारा, अहंकार की प्रतिष्ठा के द्वारा उसे न हिलाया जा सके, तो फिर दूसरा उपाय है कि उसको हिलाने के लिए कुछ स्त्रैण उपाय खोजे जाएं। क्योंकि जहां पुरुष हार जाता है, वहां स्त्री अक्सर जीत जाती है।

तुमने देखा, दुनिया के बड़े से बड़े पुरुष--नेपोलियन, सिकंदर--युद्ध के मैदान पर बड़े पुरुष हैं, लेकिन घर आकर एक दुबली-पतली स्त्री से हार जाते हैं।

मैंने सुना है, एक जिद्दी सम्राट ने, एक झक्की सम्राट ने यह घोषणा की अपने वजीरों से कि पता लगाओ, मेरे राज्य में जो पुरुष अपनी स्त्री की मानकर न चलता हो, उसको जो मेरा श्रेष्ठतम घोड़ा है वह भेंट किया जाए और उसका राजकीय सम्मान किया जाए। और जो-जो लोग अपनी स्त्री की मानकर चलते हों, उनको भी एक-एक भेड़ प्रतीक रूप भेंट की जाए।

तो वजीरों का एक समूह राजधानी में पता लगाने गया। जिससे भी उन्होंने पूछा कि आप अपनी पत्नी से डरते हैं, आप अपनी पत्नी की मानकर चलते हैं--और ध्यान रखना, अगर झूठी बात कही और राजा को पता चल गया तो घोड़ा तो मिलेगा नहीं, फांसी लगेगी। इसलिए सच-सच कह देना। तो लोगों ने कहा, भई, अब इसमें झूठ क्या कहना, तुम भी जानते हो। तुम भी पति हो, हम भी पति हैं, अब इसमें छिपाना किससे है! तुम नाहक की खोज पर निकले, ऐसा पति कहां मिलेगा?

थक गए राजा के लोग खोजते-खोजते, लेकिन एक झोपड़े में एक आदमी मिल गया। एक बड़ा पहलवान अपना बैठा हुआ भांग घोंट रहा था। उसकी मसलें ऐसी थीं कि कभी देखी भी नहीं गयीं। उसका शरीर तो बड़ा सुंदर था। लोहे का बना हो जैसे। किसी का हाथ पकड़ ले तो हड्डी चरमरा जाए। कोई होगा साढ़े छह फीट लंबा। तगड़ा जवान आदमी, लोहे की देह। उन्होंने कहा हो न हो, यह आदमी घोड़ा ले जाएगा।

तो उन्होंने उस आदमी से पूछा कि ऐसा सम्राट ने पुछवाया है। तो उसने सिर्फ अपनी मसलें उठाकर दिखायीं उनको, उनका दर्शन, कहा कि देखते हैं, स्त्री इत्यादि को तो ऐसा मसल दूंगा। अगर मेरे हाथ में स्त्री पड़ जाए तो बस खतम। जरा मेरा हाथ तो पकड़कर देखो, उसने कहा। और वजीर का हाथ पकड़ लिया तो वजीर

को छुड़ाना मुश्किल हो गया। और वजीर रोने लगा, उसने कहा, मेरा हाथ छोड़ भाई। घोड़ा तुझे मिल जाएगा, मगर तू यह क्या करता है, हाथ तो छोड़। मगर घोड़ा किस रंग का चाहिए, राजा के पास दो घोड़े हैं--काला और सफेद।

तो उसने भीतर आवाज दी कि मुन्ने की मां, काला कि सफेद? मुन्ने की मां ने कहा, सफेद। तो वजीर ने कहा, तुझे भेड़ मिलेगी। यह मुन्ने की मां से ही पूछकर तय कर रहा है आखिर में। और मुन्ने की मां निकली, बिल्कुल दुबली-पतली औरत, और उसने कहा, भूलकर काला मत लेना। भेड़ ही मिली पहलवान को।

जहां कठोर हार जाए, वहां कोमल के जीतने की संभावना है। कथा अर्थपूर्ण है। खुद तो हार गया मार, उसने अपनी तीन कन्याओं को भेजा। तीन क्यों? आखिर खुद अकेला आया था, एक ही कन्या काफी होती, तीन क्यों?

उसमें भी बौद्ध प्रतीक है। बौद्ध कहते हैं, स्त्री का इसीलिए तो पता नहीं लग पाता कि वह कितनी है। होती एक, लेकिन तीन। अभी कुछ, अभी कुछ, अभी कुछ; सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ। पक्का भरोसा नहीं कि क्या है। त्रिवेणी है न प्रयाग में! ऐसा स्त्री भी एक अपूर्व संगम है। उसमें दो नदियां तो दिखायी पड़ती हैं, एक बिल्कुल दिखायी ही नहीं पड़ती, सरस्वती का तो पता ही नहीं चलता कि है। तो तुम जो देख सकते हो, उसको ही तो तुम पहचान सकते हो, लेकिन एक है जो अदृश्य है। और जो दृश्य से जीत जाए, वह भी अदृश्य से हारने की संभावना रखता है। तो तीन। तीन प्रतीक है।

तीन का मतलब है, एक से जीते तो दूसरे से मुश्किल, दूसरे से जीते तो तीसरे से मुश्किल। और एक तरफ लड़ाई नहीं होगी, तीन तरफ से लड़ाई होगी।

तुमने कभी स्त्री से झगड़ा करके देखा? झगड़ा कई तरह का होगा! वह तर्क से भी लड़ेगी--हालांकि तर्क चाहे उससे करते न बनें--तर्क भी करती जाएगी, क्रोध भी करती जाएगी और रोने भी लगेगी। अब यह बहुत मुश्किल काम हो जाता है। क्योंकि यह अगर तर्क ही करना है तो बात साफ समझ में आती है। पुरुष को समझ में आता है कि तर्क कर लो, चलो निपटारा कर लें, उसमें पुरुष जीत भी सकता है। लेकिन स्त्री उसी पर भरोसा नहीं रखती। वह क्रोध भी कर रही है--हो सकता है चीजें फेंक रही हो तुम्हारे ऊपर। लेकिन उस पर भी भरोसा नहीं, क्योंकि क्रोध में तो पुरुष जीत सकता है। तो वह रो भी रही है।

अब उसने तुम्हें तीन तरफ से घेर लिया। तर्क से हारो तो ठीक, क्रोध से हारो तो ठीक, नहीं तो उसके रोने को देखकर तो हारोगे न! वह अपनी ही छाती पीटने लगी है और अपना ही सिर पटक रही है। उसका हमला तीन द्वारों से है। इसलिए कथा कहती है कि मार ने अपनी तीन कन्याओं को भेजा।

मार-कन्याएं नाना प्रकार के प्रयत्न कर भगवान को अपने वश में करना चाहीं। लेकिन बुद्ध शांत रहे। उन्होंने हां-हूं कुछ भी न किया। वह सिर्फ देखते ही रहे जो हो रहा था।

क्योंकि तुमने हां-हूं किया कि फंसे। तुम अगर इंकार भी कर दो तो गए। तुम अगर डर भी जाओ, भयभीत हो जाओ, तुम चिल्लाने लगो कि मुझे बचाओ, या भाग निकलो बाहर, तो तुम हार गए। नहीं, वह बैठे रहे जहां बैठे थे। जैसे थे वैसे ही बैठे रहे। जैसे कुछ हुआ ही न हो। जैसे यह सब उनके आसपास जो हो रहा था--तीनों तरफ से कन्याएं खींचने लगीं; सुंदर होंगी, रूपवती होंगी, सुगंध आती होगी उनके जीवन से, उनकी देह अपूर्व होगी, मगर वह बैठे रहे। उन्होंने जरा भी स्वीकार भी न किया कि कोई है चारों तरफ।

भगवान शांत रहे--शांत का यही अर्थ होता है--जैसे कोई है ही नहीं, ऐसे अकेले रहे। न मोहे, न क्रोधे।

दो चीजों का ख्याल रखना, दोनों में आदमी फंस जाता है। जिसको तुम संसारी कहते हो, वह मोह जाता है। जिसको तुम संन्यासी कहते हो, वह क्रोध जाता है। या तो मोहो या क्रोधो। मगर दोनों हालत में आदमी स्त्री से हार जाता है। लेकिन भगवान के संबंध में कहा कि न मोहे, न क्रोधे।

और जहां मोह नहीं, क्रोध नहीं, वहां फिर कोई परिणाम नहीं हो सकता। वहां शून्य निर्मित हो जाता है। शून्य को कैसे रिझाओगे? क्रोध किया तो अहंकार आ गया। मोह किया तो भी अहंकार आ गया। तो तुम्हारे जो ऋषि-मुनि नाराज हो गए, वे भी हार गए। जो ऋषि-मुनि नाराज न हुए, प्रसन्न हो गए, वे भी हार गए।

बुद्ध शून्यवत रहे, शांत रहे। उन्होंने उपेक्षा रखी।

उपेक्षा बौद्धों का अपना शब्द है। उपेक्षा का अर्थ है, उन्होंने कोई भी अपेक्षा न रखी। ये स्त्रियां यहां नहीं होनी चाहिए, यह भी अपेक्षा न रखी। क्योंकि यह भी अपेक्षा हो कि ये स्त्रियां यहां नहीं होनी चाहिए, तो फिर उपेक्षा नहीं रह जाती। फिर तुम्हारे मन में संबंध जुड़ गया। फिर तुमने एक संबंध बना लिया कि नहीं होना था। जो नहीं होना था वह हुआ। तो धीरे-धीरे रोष पैदा होगा, क्रोध पैदा होगा, नाराजगी पैदा होगी कि स्त्रियां यह क्यों कर रही हैं। उपेक्षा रखी, तटस्थ रहे। जैसे कोई किनारे पर बैठा नदी के, नदी बहती है, देखता रहता है। नदी बहे, नदी से क्या लेना-देना। तुम रास्ते के किनारे खड़े, राह चलती रहती है, लोग आते-जाते--अच्छे, बुरे, सुंदर, कुरूप--तुम्हें क्या लेना-देना, तुम राह के किनारे खड़े। ऐसे बुद्ध तटस्थ रहे। उन्होंने उपेक्षा रखी।

और अंततः उन्होंने जितनी बात कही वह इतनी सी थी, उन्होंने कहा--हटो भी, पागलो! क्या देखकर इतना प्रयत्न, इतना श्रम कर रही हो।

बुद्ध ने अनूठी बात कही, कहा कि पागलो, हटो भी। दया की, पागल कहा। नाराज न हुए, न मोहे। अनुकंपा जतलायी। अनुकंपा के सामने कामवासना एकदम हार जाती है। अनुकंपा जतलायी, कहा, हटो पागलो, क्या देखकर इतनी मेहनत कर रही हो? यहां कुछ भी तो नहीं है। यह हड्डी, मांस, मज्जा सब सूख गयी है। यहां भीतर भी कोई नहीं है। तुम किसके लिए यह नाच-गान आयोजित कर रही हो? किसको रिझाना चाहती हो? जिसको रिझाती, वह तो जा चुका। क्या तुम्हें रागरहितों से कभी तुम्हारी कोई पहचान नहीं हुई? क्या तुम्हारे जीवन में कभी ऐसा मौका नहीं आया कि तुमने कोई वीतराग देखा हो? तो तुम देख लो। वीतराग पर तुम्हारा कोई प्रयत्न काम न आएगा।

तथागत तो रागरहित हैं, राग आदि प्रहीन हैं, किस कारण तुम उन्हें अपने वश में करोगी?

बचे ही नहीं हैं, तो वश में क्या करोगी? तुम्हारी मर्जी, तुम्हें उछल-कूद करनी हो, तुम अपना करती रहो। लेकिन इतना तुम्हें कह दूं कि तुम नाहक का श्रम कर रही हो, थकोगी, परेशान होओगी, अपने घर जाओ, विश्राम करो। ऐसा बुद्ध ने कहा। उस समय उन्होंने ये पहले दो पद कहे। अब तुम्हें पदों का अर्थ साफ हो जाएगा। ये गाथाएं कहीं--

यस्स जित नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।।

"जिसका जीता कोई अनजीता नहीं कर सकता, और जिसके जीते को कोई दूसरा नहीं पहुंच सकता, उस अनंतद्रष्टा और अपद बुद्ध को किस पथ से ले जाओगे?"

कई बातें समझने जैसी हैं।

बुद्ध कहते हैं, "जिसका जीता कोई अनजीता नहीं कर सकता।"

जो तुमने संयम से जीता हो, उसको तो अनजीता किया जा सकता है। संयमी का संयम तोड़ा जा सकता है। लेकिन जिसने बोधपूर्वक जीता हो, उसको फिर तोड़ा नहीं जा सकता।

जिसने जबरदस्ती अपने जीवन में आचरण उठा लिया हो, बना लिया हो, आरोपित कर लिया हो, उसके आचरण को तो तोड़ा जा सकता है। क्योंकि भीतर तो अभी भी वासना मौजूद होगी। बीच में एक आचरण की पर्त है, उसमें छेद भर करने की जरूरत है। भीतर जो सोया है, दबा पड़ा है, उसे उठाया जा सकता है। लेकिन बुद्ध की तो सारी प्रक्रिया यही है कि दबाना मत, दमन मत करना, जागकर देखना, होश से देखना। और धीरे-धीरे होश में ही जल जाए वासना, तो जो शेष रह जाए उस निर्वासना में ही भरोसा है।

"जिसका जीता कोई अनजीता नहीं कर सकता।"

फिर उसको जैसे अनजीता करोगे? जिसकी वासना दग्ध हो गयी बोध से, होश से, ध्यान से, उसको कैसे अनजीता करोगे?

यस्स जित नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।

"और जिसके जीते को कोई दूसरा पहुंच ही नहीं सकता।"

बोध के उस शिखर पर तो केवल बुद्ध ही पहुंच सकते हैं। तो ये स्त्रियां जो इनके आसपास नाच रही हैं, ये तो वहां पहुंच न सकेंगी उस शिखर पर। जहां तुम पहुंच नहीं सकते, वहां से किसी को डिगाओगे कैसे? कोई बुद्ध ही पहुंच सकता है उस शिखर पर। और बुद्ध तो किसी बुद्ध को क्यों डिगाना चाहेगा! बुद्धू वहां पहुंच नहीं सकते। तो तुम खाई-खंदक में शोरगुल मचाते रहो, उससे कुछ फर्क न पड़ेगा।

"उस अनंतद्रष्टा और अपद बुद्ध को किस पथ से ले जाओगे?"

और उन्होंने कहा कि पागलो, यह भी समझो कि तुम अगर मुझे ले जाना चाहो वासना में, संसार में, मेरे पैर टूट गए हैं--अपद हो गया हूं।

कभी तुमने ख्याल किया, तुम्हारी वासना ही तुम्हें चला रही है, वही तुम्हारा पैर है। इसीलिए तो परसों मैंने अंगुलीमाल की कथा में कहा कि बुद्ध ने कहा, पागल, मेरा चलना तो बहुत पहले रुक गया। तू ही चल रहा है, तू रुक। और अंगुलीमाल बैठा हुआ धार दे रहा था, चल नहीं रहा था, और बुद्ध चल रहे थे।

तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ।

तो बुद्ध ने जब यह कहा कि मुझ न चलते हुए को तू सोचता है कि चल रहा हूं और तू अपने को बैठा हुआ मान रहा है जो कि तू चल ही रहा है, तो उनका अर्थ है--वासना में ही पैर हैं तुम्हारे। आत्मा तो कहीं जाती ही नहीं। आत्मा तो अपने घर में ही है सदा। भीतर ही विराजी है। उसके कोई पैर ही नहीं कि कहीं चली जाए। वासना जाती है। और वासना कभी घर नहीं आती। वासना आवारा है। वह घूमती ही रहती है, चक्कर ही मारती रहती है, वह कभी घर नहीं लौटती। और आत्मा सदा घर में विराजमान है, वह कभी घर से बाहर जाती नहीं।

तो जब तक तुम वासना के प्रभाव में रहोगे, तुम्हें भीतर जो पड़ा है, उसका पता न चलेगा। तुम वासना के कंधों पर बैठकर भटकते रहोगे। वासना में ही तुम्हारे पैर हैं। बुद्ध तो अपद कहते अपने को कि मेरे तो पैर टूट

गए, पागलो, जरा देखो भी तो। अब तो मुझे ले जाना भी चाहो तो कैसे? अब चलने वाला बचा नहीं है। अब चलने की वृत्ति ही जा चुकी है। अब मुझे न कुछ पाना है, न खोजना है। तो मुझे तुम प्रलोभित कैसे करोगे?

"अपने जाल में सबको फंसाने वाली तृष्णा जिसे नहीं डिगा सकती, उस अनंतद्रष्टा और अपद बुद्ध को किस पथ से ले जाओगे?"

तृष्णा का जाल था, तब तक तुम अगर आयी होतीं तो जरूर मैं प्रभावित होता। लेकिन अब तो तृष्णा का जाल न रहा, अब तो मैंने भरी आंखों देख लिया कि संसार में कुछ भी नहीं है। अब तो संसार में कुछ भी नहीं है, यह मेरी दृष्टि हो गयी है। इसलिए वे कहते हैं, उस अनंतद्रष्टा को। अब तो मैं अनंतरूपेण दृष्टि को उपलब्ध हुआ हूं, अब तो मेरी आंखें समग्र को देख रही हैं, आर-पार देख रही हैं, अब मेरा बोध पारदर्शी हुआ है।

तं बुद्धमनंतगोचरं... ।

और जो सबको देखने लगा है, और जिसकी आंख में अब जरा भी तिनका नहीं रहा मूर्च्छा और प्रमाद का, जिसकी सारी सीमाएं गिर गयी हैं देखने की, असीम जिसकी देखने की क्षमता हो गयी है, मुझ देखने वाले को तुम कहां ले जाओगे? अंधों को तुम ले जाती रही हो, अंधों को तुम्हारी जरूरत है, क्योंकि वे चाहते हैं किसी का सहारा मिल जाए। मेरी आंख खुल गयी, अब तुम मुझे न ले जा सकोगी। अब तुम्हें उछल-कूद करनी हो, तुम करो। ऐसी परिस्थिति में बुद्ध ने ये गाथाएं कही थीं।

"जो धीर ध्यान में लगे हैं, परम शांत निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिवान संबुद्धों की स्पृहा देवता भी करते हैं।"

तीसरा सूत्र!

ये झानपसुत्ता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिह्यंति संबुद्धानं सतीमतं।।

"जो धीर ध्यान में लगे हैं... ।"

ज्ञानी बुद्ध उसी को कहते हैं जो ध्यान में लगा है। वही है धीरपुरुष, जो ध्यान में लगा है। जो ज्ञान का अर्जन कर रहा है, वह ज्ञानी नहीं है, विद्वान होगा। जो ध्यान का अर्जन कर रहा है, वही ज्ञानी है, वही धीर है। क्योंकि ज्ञान तो बासा है और उधार है। ध्यान से अपनी अनुभूति संगृहीत होती है। जो ध्यान में लगे, वे धीर।

"जो परम शांत निर्वाण में रत हैं।"

और निर्वाण का अर्थ है, बुद्ध की भाषा में, परम शांति की खोज। जहां कोई तरंग न रह जाए। जहां चित्त की सारी तरंगें शांत हो जाएं, झील मौन हो जाए। जहां कोई लहर न आए, न जाए। तृष्णा न हो, वासना न हो, कामना न हो, वहीं आत्मा है।

"ऐसे शांत निर्वाण में रत जो धीर हैं, ध्यान में जो लगे हैं, उन स्मृतिवान संबुद्धों की स्पृहा देवता भी करते हैं।"

ऐसा जो स्वयं के बोध को उपलब्ध, स्मृतिवान, संबुद्ध हो गया है, जाग गया है, देवता भी उसकी स्पृहा करते हैं। देवता भी वैसा हो जाना चाहते हैं। देवताओं के मन में भी ईर्ष्या जगती है।

इस गाथा को जब कहा, उस परिस्थिति को समझ लेना जरूरी है--

बुद्ध ने श्रावस्ती में तीन मास का वर्षा-वास पूरा किया। उस वर्षा-वास में वे सतत समाधि में लीन रहे। बाहर निकले नहीं। लोगों से बोले नहीं। नियमित रूप से जो उपदेश देते थे, वह भी न दिया। तीन माह अपने में ही डूबे रहे।

बौद्ध-ग्रंथ कहते हैं, तीन माह वह पृथ्वी पर न रहे। बड़ी मीठी बात! तीन माह वह कहीं और रहे। किसी और लोक में विचरे।

कथाएं अदभुत हैं हमारे पास। उनका अर्थ समझ में आने लगे तो उनमें से ऐसे मणि-माणिक्य झरने लगते हैं! कहां गए बुद्ध? तीन माह कैसे लीन हो गए? प्रश्न उठने स्वाभाविक थे भिक्षु-संघ में। क्योंकि बुद्ध तो परमज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, अब समाधि में रहने का, आंख बंद करके बैठे रहने का तीन महीने तक, बाहर न आने का क्या कारण होगा? हजार-हजार प्रश्न उठे होंगे, जिज्ञासाएं जगी होंगी, अफवाहें उड़ी होंगी।

जब बुद्ध लौटे तो उन्होंने कहा, मैं स्वर्ग गया था। क्योंकि देवताओं की बड़ी आकांक्षा थी कि उन्हें भी उपदेश दूं। वे मेरे पीछे पड़े थे। वे कहते थे, मनुष्यों-मनुष्यों को ही समझाते रहोगे? हम पर दया कब होगी?

इस बात पर तो लोगों को शायद भरोसा भी न आता, लेकिन भरोसा करना पड़ा। क्योंकि तीन महीने बाद जब वे जिस भवन में तीन महीने तक मौन रहे थे उससे बाहर उतरे, तो लोग चकित हो गए।

घटना ऐसी घटी कि न-मालूम कितने देवता भी उस दिन स्वागत करने के लिए खड़े थे। न-मालूम कितने मनुष्य और न-मालूम कितने देवता। देवताओं और मनुष्यों का अदभुत सन्निपात हुआ। संख्यातीत था सन्निपात। देवता मनुष्यों को देखने लगे और मनुष्य देवताओं को देखने लगे। मनुष्यों को तो बिल्कुल भरोसा ही न आया कि ये देवता यहां क्या कर रहे हैं? ये यहां कैसे आए?

बुद्ध की बात पर तो वे शायद भरोसा भी न करते, लेकिन जब ये अनंत-अनंत देवता स्वागत के लिए खड़े थे, तो उन्हें मानना ही पड़ा कि बुद्ध कहते हैं वे तीन माह तक स्वर्ग में रहे, वहां देवताओं को समझाया, जरूर समझाया होगा, इतने भक्त हो गए पैदा! वे सब खड़े हैं द्वार पर स्वागत करने के लिए।

उस दिन भगवान की शोभा अवर्णनीय थी। जैसे उनके चारों ओर इंद्रधनुष घिरा था। सातों रंग उनकी देह से फूट रहे थे। सभी रंगों की अभिव्यक्ति हो रही थी। भगवान के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र ने उनका स्वागत करते हुए कहा, भगवान, न तो ऐसा कभी देखा था और न सुना था। उसे बहुत दिन हो गए भगवान के साथ रहते, लेकिन ऐसा कभी उसने सुना भी नहीं था, देखा भी नहीं था कि देवता और भगवान के लिए आतुर होकर खड़े हैं स्वागत में! भंते! मनुष्य ही नहीं देवता भी आपको चाहते हैं। ऐसी उसने जिज्ञासा की।

तब भगवान ने कहा, संबोधि परम घटना है। उसके पार कुछ भी नहीं है। स्वभावतः देवता भी उसके लिए तरसते हैं, लालायित होते हैं।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

ये ज्ञानपसुत्ता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिह्यंति संबुद्धानं सतीमतं।।

"जो धीर ध्यान में लगे हैं, परम शांत निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिवान संबुद्धों की स्पृहा देवता भी करते हैं।"

अब इस कथा को समझने की कोशिश करें।

देवता शब्द से बहुत परेशान मत हो जाना। अकेला भारत ऐसा देश है, जिसने ध्यान की गहरी गहराइयों में प्रवेश किया है। या ध्यान की ऊंची ऊंचाइयों में गया है। अकेला भारत ऐसा देश है, जिसको यह बात साफ हो गयी है कि आदमी सबसे ऊपर नहीं है। मनुष्य से ऊपर भी चैतन्य की दशाएं हैं, देवता का इतना ही अर्थ होता है। जैसे मनुष्य के नीचे पशु-पक्षी हैं, ऐसे मनुष्य के ऊपर देवता हैं, देवताओं की कोटियां हैं।

और यह बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, क्योंकि मनुष्य अंत हो भी क्यों? आखिर मनुष्य पर सारा विकास रुके भी क्यों? मनुष्य मध्य में है। पीछे बड़ी यात्रा है और आगे बड़ी यात्रा है। स्वभावतः जो पीछे हो गया, वह तो हमें दिखायी पड़ता है, क्योंकि वह हो चुका। जो अभी आगे होने को है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ता; क्योंकि अभी हुआ नहीं है तो दिखायी कैसे पड़े? इसलिए देवता दिखायी नहीं पड़ते हैं।

देवता का अर्थ है, हमारी संभावनाएं। देवता का अर्थ है, हमारे चित्त की ऊंची तरंगें। हम जिस तरंग पर जी रहे हैं, इससे भी ऊंची तरंगें चित्त की हैं। कभी-कभी ऐसा होता है, कभी-कभी किसी आदमी में देवत्व के लक्षण होते हैं। कभी किसी आदमी को देखकर तुम्हें लगता है कि मन कह उठता है, देवता है। क्यों कह उठता है मन? क्योंकि आदमी जैसा आदमी है, हड्डी-मांस-मज्जा है! लेकिन फिर भी लगता है, चेतना किसी और तल पर है। कहीं और है।

देवता का अर्थ समझ लेना। देवता का अर्थ होता है, मनुष्य से ऊपर शुद्ध चैतन्य की और तरंगें।

लेकिन एक और अनूठी बात भारत को खोज में आयी है। और वह अनूठी बात यह है कि देवता भी अंतिम अवस्था नहीं है। अंतिम अवस्था बुद्धत्व है। और बुद्धत्व को पाने के लिए मनुष्य चौराहा है। मनुष्य के नीचे पशु-पक्षी हैं, उनको भी अगर बुद्ध होना हो तो मनुष्य तक आना पड़ेगा। मनुष्य चौराहा है। और मनुष्य के ऊपर देवता हैं, देवताओं की अनेक कोटियां हैं। लेकिन उनको भी अगर बुद्ध होना हो, उनको भी मनुष्य तक आना पड़ेगा।

ऐसा ही समझो कि जब भी तुम्हें राह बदलनी हो तो चौराहे पर आना पड़ता है। तुम चले गए स्टेशन की तरफ, तुम आगे निकल गए चौराहे से। लेकिन अब तुम्हें राह बदलनी है, तुम्हें नदी की तरफ जाना है, तो तुम वापस चौराहे पर लौटते हो, क्योंकि चौराहे ही से रास्ता नदी की तरफ जाता है।

मनुष्य चौराहा है। इस सारे अस्तित्व का चौराहा है मनुष्य। उससे पीछे की तरफ भी रास्ते जाते हैं, आगे की तरफ भी रास्ते जाते हैं। और अतिक्रमण की तरफ भी रास्ते जाते हैं। सबसे ऊपर तो अतिक्रमण की दशा है--बुद्धत्व।

बुद्धत्व का अर्थ है, मन समाप्त ही हो गया। देवता का अर्थ है, मन की तरंगें और सुंदर और प्रीतिकर हो गयीं। मनुष्य की तरंगें उतनी सुंदर नहीं, उतनी प्र्ीतिकर नहीं। देवता की तरंगें प्रीतिकर हैं, सुंदर हैं। नारकीय का अर्थ है, मनुष्य से भी नीचे गिर गयीं तरंगें और दुख हो गया। इसलिए हम कहते हैं, नरक में दुख है, स्वर्ग में सुख है। सुख का मतलब इतना ही होता है कि तुम्हारी तरंगें सुख को पकड़ने में ज्यादा समर्थ हो गयीं। दुख का अर्थ इतना ही होता है कि तुम्हारी तरंगें दुख को पकड़ने में ज्यादा समर्थ हो गयीं।

तुमने कभी ख्याल किया, दो आदमी एक ही जगह बैठे हों, एक सुखी हो सकता है, एक दुखी हो सकता है। दो आदमी एक ही अवस्था में हों, एक सुखी हो सकता है, एक दुखी हो सकता है। क्या कारण होगा? तुम्हारा चित्त क्या पकड़ता है, इस पर सब निर्भर है।

अल्डुअस हक्सले पश्चिम का एक बड़ा विचारक था। उसने जीवनभर बड़ी अनूठी किताबें इकट्ठी कीं। बड़ा संग्रह था उसके पास किताबों का। और अनूठे-अनूठे ग्रंथ इकट्ठे किए थे। और एक दिन अचानक आग लग गयी। वह जीवनभर उन्हीं को इकट्ठा करता रहा था।

उसकी पत्नी लारा हक्सले ने तो समझा कि वह एकदम गिर ही पड़ेगा, उसका हार्ट फेल हो जाएगा। यह तो उसका प्राण था। किताब पर दीमक न लग जाए, किताब पर सीलन न आ जाए, ऐसी फिकर करता था। चौबीस घंटे किताबों में ही रत था। उसकी सारी की सारी संपदा जीवन की जलकर राख हो गयी। पत्नी तो घबड़ायी। पत्नी को किताबों में कुछ लेना-देना भी नहीं था, मगर यह पति को क्या हो जाएगा, कहा नहीं जा सकता! वह उसके बगल में ही खड़ी है। और लपटें उठती गयीं, बहुत बुझाने की कोशिश की गयी, लेकिन सब मकान राख हो गया।

लेकिन लारा बहुत चौंकी, क्योंकि हक्सले चुपचाप खड़ा देख रहा है। दुखी भी नहीं मालूम होता, बेचैन भी नहीं मालूम होता, बल्कि एक तरह की प्रसन्नता उसके चेहरे पर झलक रही है। उसने कहा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा, आप और प्रसन्न! कभी कोई एक किताब बच्चा फाड़ दे, या लकीर खींच देता था तो आप ऐसे नाराज हो जाते थे। अगर एक किताब खो जाती थी तो आप दीवाने हो जाते थे, रात सो नहीं सकते थे। अगर कोई मित्र किताब मांगता था तो आप देते नहीं थे, डरते थे कि कहीं लौटाए, न लौटाए। मित्रता चाहे खो जाए, किताब देने को राजी न थे। और आज सब जलकर राख हो गया है, आप प्रसन्नता से खड़े हैं?

हक्सले ने कहा, मैं भी चौंककर देख रहा हूं और बड़े आश्चर्य की बात है--तुम्हीं चकित नहीं हो, मैं भी चकित हूं--ऐसा लग रहा है कि मन से एक बोझ उतर गया। हल्का हो गया। इतना हल्का मैं कभी भी नहीं था। प्रभु की कृपा! यह बोझ गया। यह बोझ उतर गया। यह मेरा मोह था, यह भी गया। अच्छा ही हुआ। यह अचानक लगी आग सौभाग्य है।

इसको कहेंगे, देवता। इसके मन की तरंग दुख में से भी सुख को पकड़ लेती है।

मुल्ला नसरुद्दीन को लाटरी मिल गयी। लाख रुपए मिल गए। भागा हुआ घर आया। और पत्नी को कहा, खुशी मनाओ, नाचो-गाओ। पास-पड़ोस की स्त्रियों से बैठी पत्नी उसी की निंदा कर रही थी। पत्नियां और करें भी क्या! और यह बीच में आ गया और उसने लाकर लाख रुपए एकदम बीच में रख दिए और कहा, देखो, लाटरी मिल गयी! पत्नी ने कहा, लाटरी छोड़ो, पहले यह बताओ कि तुमने जो टिकिट खरीदी, वह रुपया कहां से पाया? क्योंकि वह सब नगद रखवा लेती है तनख्वाह पर। यह रुपया आया कहां से?

यह एक नारकीय चित्त है। लाख रुपए आ गए, उसकी खुशी नहीं है। उसने कहा, यह छोड़ो लाटरी-माटरी, पहले यह साफ करो कि रुपया तुमने पाया कहां से जिससे टिकिट खरीदी?

आदमी आदमी में फर्क हैं। तुम भी अपने भीतर जांचना। और ऐसा भी नहीं है कि तुम सदा एक ही अवस्था में होते हो। कभी-कभी तुम नारकीय अवस्था में होते हो, कभी-कभी स्वर्गीय अवस्था में होते हो। किन्हीं-किन्हीं क्षणों में तुम भी बड़े उदार होते हो, कि सब दे डालो। और किन्हीं क्षणों में बड़े कृपण हो जाते हो। किन्हीं-किन्हीं क्षणों में तुम भी जीवन में प्रकाश देख पाते हो, किन्हीं-किन्हीं क्षणों में सब अंधेरी रात हो जाती है। तुम भी नकारात्मक और विधायक में डोलते रहते हो। कभी सुबह अचानक तुम पाते हो, कितना सब हल्का! और किसी दिन अचानक पाते हो, सब बोझ, भारी। मर ही जाते तो अच्छा था, क्या सार! कभी असार में सार दिखता है और कभी सार में भी सार नहीं दिखता।

तो ऐसा मत सोचना कि देवता कहीं आकाश में रहते हैं और नारकीय कहीं दूर पाताल में रहते हैं। तुम भी कभी-कभी देवता हो जाते हो और कभी-कभी नारकीय हो जाते हो। कभी-कभी पशु हो जाते हो और कभी-कभी परमात्मा हो जाते हो। क्षणभर को कभी तुम भी झलक जाते हो प्रकाश से। तुम भी भर जाते हो रस से। उन्हीं क्षणों में तुम प्यारे आदमी हो जाते हो। उन्हीं क्षणों में लोग तुम्हें प्र्ेम करने लगते हैं। उन्हीं क्षणों में लोग तुम्हारे मित्र हो जाते हैं। लेकिन वे क्षण टिकते नहीं, खो-खो जाते हैं। देवता का अर्थ है, जिसने उन ऊंचाइयों पर रहना थिर कर लिया।

लेकिन देवता भी आखिरी अवस्था नहीं है। देवता को सुख तो ज्यादा है, लेकिन जहां सुख है, वहां दुख की संभावना सदा मौजूद रहती है। जहां दिन है, वहां रात होगी। विपरीत बना रहेगा। बुद्धत्व का अर्थ है, न दिन रहा, न रात। बुद्ध की अवस्था दोनों के पार है, द्वंद्व के पार है।

इसलिए जब कभी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो उसमें सभी उत्सुक होते हैं। उसमें पशु-पक्षी भी उत्सुक हो जाते हैं, उसमें देवता भी उत्सुक हो जाते हैं, उसमें मनुष्य भी उत्सुक हो जाते हैं। उसमें बुरे से बुरे आदमी भी उत्सुक होते हैं, उसमें भले से भले आदमी भी उत्सुक होते हैं। जिसमें भले ही भले आदमी उत्सुक हों, वह महात्मा है। जिसमें बुरे ही बुरे आदमी उत्सुक हों, वह असंत। और जिसमें भले और बुरे दोनों तरह के आदमी उत्सुक हो जाएं, वह बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति। क्योंकि बुरे को भी उसमें से द्वार दिखायी पड़ता है, भले को भी द्वार दिखायी पड़ता है। इसलिए जब भी कहीं कोई बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति होगा, तुम उसके पास बुरे से बुरे आदमी पाओगे, भले से भले आदमी पाओगे। उसके पास एक समागम होगा। मनुष्यों का, पशुओं का, देवताओं का एक सन्निपात होगा।

अगर तुम कहीं जाओ और अच्छे-अच्छे आदमी पाओ तो समझना कि महात्मा है। अगर बुरे ही बुरे आदमी पाओ तो समझना कि कोई अपराधी। जहां तुम्हें दोनों तरह के लोग मिल जाएं, वहां तुम समझना कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ है। क्योंकि वहां दोनों की आतुरता है। बुरा भी पार होना चाहता है और भला भी पार होना चाहता है। बुरा बुरे से थक गया है, भला भले से थक गया है। बुरा दुख से थक गया है, भला सुख से थक गया है। वहां गरीब को भी पा लोगे, अमीर को भी पा लोगे। वहां अपढ़ को भी पा लोगे, पढ़े हुए को भी पा लोगे। वहां तुम सब तरह के द्वंद्व एक साथ पा लोगे। जहां सब द्वंद्व एक साथ उत्सुक हो जाते हैं, उसका अर्थ है, वहां से कोई संक्रमण है। वहां से कोई संक्रांति घट सकती है।

यह कथा मीठी है। इस घड़ी में बुद्ध ने ये सूत्र कहे--

"जो धीर ध्यान में लगे हैं, परम शांति में रत हैं, उन स्मृतिवान संबुद्धों की स्पृहा देवता भी करते हैं।"

"मनुष्य का जन्म पाना दुर्लभ है; मनुष्य का जीवित रहना दुर्लभ है; सद्धर्म का श्रवण करना दुर्लभ है, और बुद्धों का उत्पन्न होना दुर्लभ है।"

किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छ मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो।।

बुद्ध कहते हैं, पहले तो मनुष्य का जन्म पाना दुर्लभ है। क्योंकि मनुष्य तो बहुत थोड़े हैं, पशु-पक्षी, पत्थर कितने हैं! अनंत! तो पहले तो इतनी सारी योनियों को खोजते-खोजते कोई आदमी मनुष्य हो पाता है।

"मनुष्य का जन्म पाना दुर्लभ है।"

और जन्म भी पाकर क्या होता है, मनुष्य की तरह जीवित रहना और भी मुश्किल है। बहुत से लोग मनुष्य की तरह जन्म पा लिए हैं, लेकिन मनुष्य हैं नहीं। शकल-सूरत से मनुष्य हैं, रंग-ढंग से मनुष्य हैं, भीतर अभी भी पशुता भरी है। भीतर अभी भी पशु के ढंग से ही जी रहे हैं। भीतर अभी भी पाशविक आकांक्षाएं भरी हैं।

तो पहले तो मनुष्य का जन्म पाना दुर्लभ, फिर मनुष्य होकर जीना और दुर्लभ है। फिर अगर मनुष्य होकर जीना भी आ जाए, तो सद्धर्म का श्रवण करना दुर्लभ है। क्योंकि जिन लोगों को थोड़ी सी मनुष्यता का रस आ जाता है, उन्हें बड़ा अहंकार जगता है। वे अपने को कुछ समझने लगते हैं। कोई कहता है, मैं ज्ञानी हूं; कोई कहता है, मैं त्यागी हूं; कोई कहता है, मैं यह हूं; कोई कहता है, मैं वह हूं; देखो मैंने कितना शुभ किया, कितनी सेवा की। तो अहंकार पकड़ता है। और जब अहंकार पकड़ता है, तो श्रवण मुश्किल हो जाता है।

फिर किसी के चरणों में जाना, सद्धर्म को सुनना, बहुत मुश्किल हो जाता है। तो फिर सद्धर्म का श्रवण करना दुर्लभ है। और अगर श्रवण की क्षमता भी हो, तैयारी भी हो, तो बुद्धपुरुष को पाना बहुत मुश्किल है, कि जिसको सुनकर कुछ हो जाए। जिसको मात्र सुनने से कुछ हो जाए। श्रवणमात्रेण।

"और बुद्धों का उत्पन्न होना अति दुर्लभ है।"

"सभी पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना और अपने चित्त का शोधन करते रहना--यही बुद्धों का शासन है।"

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं।।

बुद्ध ने कहा, "पाप का न करना, पुण्य का करना और अपने चित्त का शोधन करते रहना--ये तीन बातें--यही बुद्धों का शासन है।"

जो तुम्हें बुरा लगे, उस तरफ न जाना। जो तुम्हें ठीक लगे, उस तरफ जीवन की धारा को बहाना। और इतने पर ही रुक नहीं जाना, चित्त को रोज-रोज शोधन करते रहना--ध्यान से। क्योंकि आज जो बुरा लग रहा है और आज जो भला लग रहा है, इस पर ही अंत नहीं है। चित्त-शोधन होता जाए तो तुम चकित होओगे--कल जो भला लगा था, वह भी बुरा लगने लगा। और नए भले के दर्शन हुए। चित्त का शोधन होता जाए तो तुम रोज-रोज पाओगे कि जिसको तुमने कल मंजिल समझ लिया था, वह भी पड़ाव था, क्योंकि और आगे के शिखर दिखायी पड़ने लगे। चित्त साफ होने लगता है, तो रोज-रोज गति होने लगती है।

तो बुद्ध कहते हैं, बुरे को मत करना। जो तुम्हें साफ लग जाए कि बुरा है, उसे मत करना। क्योंकि बहुत ऐसे लोग हैं, उन्हें लगता भी है कि बुरा है, फिर भी किसी अंधी आदतवश किए चले जाते हैं। आलस्य के कारण, पुराने अभ्यास के कारण किए चले जाते हैं। वह मत करना। आदत को तोड़ना। और, जो ठीक लगे, वह करना। बहुत ऐसे लोग हैं, जानते हैं, ठीक क्या है, एहसास होता है कि ठीक क्या है, कभी-कभी साफ झलक मिल जाती है कि ठीक क्या है, फिर भी नहीं करते। क्योंकि कभी किया नहीं, इसलिए अभ्यास नहीं है। तो यह बुरे और भले के बीच ख्याल। और जो सबसे महत्वपूर्ण बात है, अपने चित्त का शोधन--

सचित्तपरियोदपनं... ।

अपने चित्त को रोज शोधते रहना। क्योंकि इसी चित्त से तुम्हें पता चलेगा कि और भला क्या है, और भला क्या है। यहां शिखर के ऊपर शिखर हैं, द्वार के बाद द्वार हैं, रहस्यों के बाद रहस्य हैं। तुम्हारे पास जितना शुद्ध चित्त होगा, उतनी ही तुम्हारी दृष्टि साफ होती जाएगी, और उसी दृष्टि को बुद्ध ने कहा कि मेरा शासन मानना। यही मेरा उपदेश है।

"तितिक्षा और क्षांति परम तप हैं। बुद्ध निर्वाण को परम कहते हैं। दूसरों का घात करने वाला प्रवजित नहीं होता है और दूसरों को सताने वाला श्रमण नहीं होता है।"

खंती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं बदंति बुद्धा।
नहि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयंतो।।

"तितिक्षा और क्षांति परम तप हैं।"

जो हो, उसे तथाता भाव से स्वीकार कर लेना। करने की बात पहले बतायीः बुरे को करना मत, भले को करना और चित्त का शोधन करना। अब कहते हैं, जो तुम पर हो--क्योंकि इतने से ही तो खतम नहीं होता। तुमने क्रोध नहीं किया यह तो ठीक है, लेकिन कोई आदमी ने तुम पर क्रोध किया, फिर क्या करोगे? तो कोई तुम पर क्रोध करे, कोई तुम्हें गाली दे--तितिक्षा और क्षांति, तो सहज भाव से स्वीकार कर लेना कि उसके भीतर क्रोध उठा, इसलिए उसने गाली दी। बेचारा! नाहक उसने कष्ट पाया। स्वीकार कर लेना। इसको तुम अपने भीतर कांटा मत बनने देना। ऐसा धैर्य, ऐसी क्षांति और ऐसी तितिक्षा।

"बुद्ध निर्वाण को परम कहते हैं।"

बुद्ध कहते हैं, होने योग्य तो एक ही चीज है, निर्वाण। बाकी जो होता है, उसको तो स्वीकार कर लेना--किसी ने गाली दी, किसी ने प्रशंसा की, किसी ने कहा आप बड़े सुंदर, किसी ने कहा आप बड़े कुरूप--यह सब कुछ होने जैसा नहीं, इसका कोई मूल्य भी नहीं है। इसको चुपचाप स्वीकार कर लेना कि ठीक, जैसी आपकी मर्जी; भले लगते, भले; बुरे लगते, बुरे। इस सब पर जरा भी श्रम मत लगाना और इस सब पर जरा भी दृष्टि मत देना। क्योंकि जो होने जैसा है, जो होना चाहिए, वह तो निर्वाण है। उसकी दिशा में अपनी सारी शक्ति को लगा देना।

"दूसरों का घात करने वाला प्रवजित नहीं होता है।"

और अक्सर लोग दूसरों का घात करने में अपनी शक्ति लगा रहे हैं। कोई किसी को मार डालना चाहता है, कोई किसी को हराना चाहता है, कोई किसी को पद से गिराना चाहता है, कोई किसी को पीछे कर देना चाहता है--दूसरों में उत्सुक है। अपने में उनकी कोई उत्सुकता ही नहीं है।

"दूसरे का घात करने वाला प्रवजित नहीं होता।"

प्रवज्या का अर्थ है, संन्यास। संन्यासी वही है, जो कहता है, मैं अपने निर्वाण की खोज कर रहा हूं। मेरे निर्वाण का किसी दूसरे से कोई लेना-देना नहीं है, कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। तुम जिस पद पर हो, मजे से रहो; तुम्हारे पास जो है, तुम मजे से भोगो; तुम जैसे हो, ठीक। यह तुम जानो। इसमें मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। संन्यासी का अर्थ है, जिसकी दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं। जो किसी तरह की ईर्ष्या में नहीं है।

लेकिन अक्सर हमारी हालतें उलटी हैं। हम दूसरे को मिटाने में अगर खुद भी मिट जाएं तो कोई फिकर नहीं।

मैंने सुना है, एक आदमी ने बड़े दिन भक्ति की, परमात्मा प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, मांग ले, क्या मांगता है? लेकिन एक बात ख्याल रखना, जो तुझे मिलेगा, तेरे पड़ोसियों को दुगुना मिलेगा। उस आदमी की छाती बैठ गयी। उसने कहा, यह भी कोई वरदान हुआ! अरे, अभिशाप कहो इसको! तो फिर मैं मांगूंगा कैसे? भगवान ने कहा, वह तू जान। लेकिन इतनी तेरी क्षमता होनी ही चाहिए, तो ही तू धार्मिक है। अन्यथा धार्मिक ही नहीं। यह मेरा वरदान कि जो तू मांगेगा, मिलेगा तुझे, दुगुना पड़ोसी को।

उसने किसी वकील से सलाह ली होगी कि करना क्या, इसमें से निकलना कैसे बाहर? वकील ने कहा, इसमें क्या रखा है! अरे, यह तो बाएं हाथ का खेल है। तू ऐसा कर, पहले देख तो कि यह होता भी कि नहीं। तू मांग कि सात मंजिल मकान बन जाए। मांगा, बन गया उसका सात मंजिल, लेकिन दोनों तरफ चौदह-चौदह मंजिल मकान पड़ोसियों के खड़े हो गए। पूरा गांव चौदह मंजिल का हो गया। एक वही गरीब रह गया--सात मंजिल का।

तो वकील ने कहा, अब ठीक। अब मांग कि मेरे घर के सामने एक कुआं खुद जाए, बड़ा कुआं। उसके घर के सामने एक कुआं खुद गया, पड़ोसियों के घर के सामने दो-दो कुएं खुद गए। उसने कहा कि अब मांग कि मेरी एक आंख फूट जाए। उसकी एक आंख फूट गयी, पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गयीं। वकील बड़ा होशियार रहा होगा! सुप्रीम कोर्ट का वकील रहा होगा।

बिचारे पड़ोसी अब गिरने लगे कुओं में, क्योंकि दो-दो कुएं सामने और दोनों आंखें फूट गयीं। और चौदह-चौदह मंजिल के मकान! कोई मंजिल से गिर पड़ा, कोई सीढ़ियों से गिर पड़ा--लिफ्ट उस समय थी नहीं। और लिफ्ट भी होती तो क्या सार था, क्योंकि लिफ्ट चलाने वाले भी अंधे हो जाते। एक अकेला वही बचा एक आंख वाला, उसकी प्रसन्नता का अंत नहीं। वह सम्राट की तरह घूमने लगा गांव में। एक वही था जो देख सकता था। हालांकि आधा ही देख सकता था अब, लेकिन उसका दुख नहीं था कि कनवा हो गया, एक आंख का हो गया, मजा यह था कि सबकी गयी। ख्याल करना, ऐसा व्यक्ति संन्यासी नहीं हो सकता।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, "दूसरों का घात करने वाला प्रवजित नहीं होता है और दूसरों को सताने वाला श्रमण नहीं होता है।"

ये दो बातें छोड़ देना। तो तुम संन्यासी होते हो।

"निंदा न करना, घात न करना, पातिमोक्ष में सम्वर रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकांतवास करना और चित्त योग में लगाना--यही बुद्धों का शासन है।"

अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तांंता च भत्तस्मिं पंतंच सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं।।

"निंदा न करना।"

क्योंकि निंदा का अर्थ है, तुम अभी दूसरे में उत्सुक हो, दूसरे को छोटा करने में उत्सुक हो। निंदा का मतलब ही इतना। इसीलिए तो इतना निंदा में रस है। हम कैसी निंदा बढ़ा-चढ़ाकर करते हैं। क्योंकि हमारे पास

एक ही तरकीब है कि अगर हम सिद्ध कर दें कि दूसरा बुरा है, तो तुलना में हम भले मालूम पड़ेंगे। हम सिद्ध कर दें कि सब चोर हैं, तो तुलना में हम साधु मालूम पड़ेंगे। इसलिए हम निंदा में इतना रस लेते हैं। निंदा का एक ही प्रयोजन है, दूसरों की बुराई इतनी फैला-बढ़ाकर करना कि धीरे-धीरे तुम भले मालूम होने लगो। यही दूसरे तुम्हारे साथ कर रहे हैं। तो एक निंदा का व्यवसाय चलता पूरे समाज में।

"निंदा न करना।"

क्योंकि संन्यस्त, प्रवजित, भिक्षु जो हो गया, अब उसकी आकांक्षा अपने को उठाने की है, दूसरे को गिराने की नहीं है।

"घात न करना।"

किसी को हानि न पहुंचाना। क्योंकि जितनी ऊर्जा दूसरे को घात करने में लगेगी, उतनी ऊर्जा तो ध्यान बन जाती, परम संपदा बन जाती, निर्वाण बन जाती।

"पातिमोक्ष में सम्वर रखना।"

पातिमोक्ष का अर्थ होता है, बुद्ध ने जो कहा है। बुद्ध अर्थात जागे हुए पुरुषों ने जो कहा है। उसको मानना, उसको स्वीकारना। क्योंकि बहुत बातें ऐसी भी उन्होंने कही हैं, जो तुम्हें आज समझ में शायद न भी आएं। प्रयोग से समझ में आएं, अनुभव से समझ में आएं। उन पर प्रयोग करके देखना। प्रयोग बिना किए निर्णय न लेना। हां या न कुछ भी नहीं।

जिसको वैज्ञानिक हाइपोथीसिस कहते हैं, कि कोई चीज की परिकल्पना। किसी ने कहा कि कमरे में कुर्सी रखी है, हमने कहा कि ठीक है, खोजने की दृष्टि से मान लेते हैं। मान नहीं लिया कि कुर्सी है, लेकिन खोजने की दृष्टि से मान लेते हैं--हाइपोथीसिस। अब हम कमरे में जाकर देखेंगे। अगर पाया कि कुर्सी है, तो जो परिकल्पना मानी थी, वह सत्य हो गयी। अगर पाया कि कुर्सी नहीं है, तो जो परिकल्पना मानी थी, वह असत्य हो गयी। लेकिन इसका नाम विश्वास नहीं है। हाइपोथीसिस का इतना ही मतलब है, प्रयोगार्थ स्वीकार कर लेते हैं कि ठीक है।

तो जो बुद्धपुरुषों ने कहा है--पातिमोक्ख--जो-जो उन्होंने कहा है, उसमें सभी तुम्हारी समझ में आएगा भी नहीं। क्योंकि तुम्हारी समझ सारी चीजों के अनुभव से भरी भी नहीं है, तो विश्वास की जरूरत नहीं है, प्रयोगार्थ स्वीकार कर लेना।

"भोजन में मात्रा जानना।"

बुद्ध को यह बात बार-बार कहनी पड़ी, "भोजन में मात्रा जानना।"

उस समय यह बड़ा भारी सवाल था। एक तरफ लोग थे जो खूब खाए जा रहे थे, जो सदा से हैं। और उस समय एक और पागलपन पैदा हुआ था--दूसरी तरफ लोग थे जो उपवास किए जा रहे थे। इन दोनों ने आदमी को विक्षिप्त कर रखा था। या तो ज्यादा खाने वाले लोग, या न खाने वाले लोग। ज्यादा खाने वाले लोग शरीर को मिटाए ले रहे थे और शरीर के साथ मूर्च्छित हुए जा रहे थे। न खाने वाले लोग शरीर की हत्या किए दे रहे थे और ऊर्जा इतनी क्षीण हुई जा रही थी कि ध्यान का कोई उपाय न था।

तो बुद्ध हर चीज में मात्रा के लिए कहते हैं कि मात्रा जानना, मध्य में रुक जाना, अति मत करना--अतिसर्वत्र वर्जयेत्।

"एकांतवास करना।"

और जहां मौका मिले, जैसी सुविधा बने, वहां अकेलेपन को खोजना। क्योंकि तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, जब तुम अकेले होओगे तभी उसे देख पाओगे। दूसरे की मौजूदगी तुम्हें बाहर ले जाती है। भीड़ में भी रहो तो भी अकेले रहना, यह बुद्ध का उपदेश है।

"और चित्त योग में लगाना।"

अभी चित्त संसार में लगा है, भोग में। धीरे-धीरे इसकी ऊर्जा को हटाना वहां से। धीरे-धीरे रत्ती कर-करके, बूंद कर-करके इसे ध्यान में, योग में, मोक्ष में लगाना।

"यही बुद्धों का शासन है।"

यह सूत्र भी--यह अंतिम सूत्र बुद्ध ने एक परिस्थिति में कहे थे, वह मैं आपको दोहरा दूं।

जंगल में बुद्ध बैठे हैं ध्यान करने और एक सर्पराज--सर्पों का राजा--फन फैलाकर खड़ा हो गया। उसने झुककर बुद्ध के चरणों में प्रणाम किए। बुद्ध ने आंख खोली, उन्होंने कहा, महाराज--क्योंकि देखा उसके माथे पर अदभुत मणि है, जो सिर्फ नागों में सम्राटों के माथे पर होती है--तो बुद्ध ने कहा, महाराज, क्या चाहते हैं? तो उस नाग ने कहा, मैं जन्मों-जन्मों से भटक रहा हूं। जो भी किया सब उलटा चला गया। कब तक सरकता रहूंगा जमीन पर? कब तक सरकता रहूंगा खाई-खंदकों में, अंधेरी गलियों में? कब तक सरकता रहूंगा? कब उठूंगा? कब उड़ सकूंगा? तुम्हें मैंने उड़ते देखा। तुम्हारे प्राणों की ऊर्जा को कहीं जाते देखा। इसलिए पूछता हूं। मुझे कुछ उपदेश है?

ये जो सूत्र हैंः

"सभी पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना और अपने चित्त का शोधन करते रहना--यही बुद्धों का शासन है।"

"तितिक्षा और क्षांति परम तप हैं, बुद्ध निर्वाण को परम कहते हैं, दूसरों का घात करने वाला प्रवजित नहीं होता और दूसरों को सताने वाला श्रमण नहीं है।"

"निंदा न करना, घात न करना, पातिमोक्ष में सम्वर रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकांतवास करना और चित्त योग में लगाना--यही बुद्धों का शासन है।"

ये उस सर्पराज को कहे गए थे।

सोचना इसे थोड़ा। हम भी सब जमीन पर सरकते हुए सर्प हैं। अभी हमने सिर भी उठाकर कहां आकाश की तरफ देखा? अभी तो अंधी गलियों-कूचों में, पोलों में, कोने-कांतरों में हम सरकते फिरते हैं।

फिर सर्प का प्रतीक ही क्यों चुना होगा? क्योंकि सर्प जन्म से ही दूसरे को चोट पहुंचाने का जहर लेकर आता है, इसलिए। उसके जहर की गांठ जन्म से ही उसके भीतर है। वह दूसरे को मारने में ही, दूसरे का घात करने में ही रस लेता है। यही तो गांठ हम भी लेकर आए हुए हैं। यह प्रतीक प्यारा है। और सर्प का प्रतीक सारे धर्मों ने चुना है। उसमें कुछ कारण है।

ईसाई कहते हैं कि सर्प ने भटकाया आदमी को। ईव को समझाया कि खा ले यह फल जो भगवान ने वर्जित किया है। ईव को फुसलाया सर्प ने। बुद्ध की इस कथा में सर्प कहता है कि कब तक मैं सरकता रहूंगा जमीन पर? हिंदू कहते हैं, कुंडलिनी जो ऊर्जा है मनुष्य के भीतर, वह सर्पाकार है। वह सर्प जैसी है। जब उठती है फन उठाकर तो उसका फन जब चोट करता है सहस्रार में तो सारे कमल खिल जाते हैं।

सर्प का प्रतीक आदमी के बहुत करीब है। उसमें कई खूबियां हैं। पहली बात, उसकी खूबी है कि सर्प बहुत चालाक। उस चालाकी के कारण ईसाइयों ने उसका प्रतीक बनाया कि उसने स्त्री को भरमाया, ईव को समझाया और अदम को ईश्वर की बगावत में जाने का प्रोत्साहन दिया। सर्प बड़ा शैतान, क्योंकि बड़ा चालाक प्राणी है। बड़ा चालबाज। भरोसे का नहीं। उस प्रतीक का उपयोग किया।

बुद्ध की इस कथा में सर्प का प्रयोग हो रहा है इस अर्थ में कि सबकी दशा ऐसी है। कि हम जन्म से ही जहर की ग्रंथि लेकर पैदा हुए। दूसरे को चोट पहुंचाने में ही समाप्त हुए जा रहे हैं। दूसरे को मार डालने में ही हमने अपना जीवन समझा है। इसलिए। लेकिन एक दिन सर्प भी थक जाता है। तुम कब थकोगे? एक दिन सर्प भी बुद्ध से पूछता है कि मैं कब तक ऐसे ही सरकता रहूंगा! तुम कब पूछोगे? इसलिए प्रतीक चुना।

हिंदुओं ने प्रतीक चुना है कि सर्प जब खड़ा हो जाता है... तो सर्प की बड़ी खूबियां हैं, उसमें हड्डी होती नहीं। उसके पास हड्डी बिल्कुल नहीं है, लेकिन सर्प खड़ा हो जाता है बिना हड्डी के। होना नहीं चाहिए वैज्ञानिक ढंग से, लेकिन सर्प पूंछ के बल खड़ा हो जाता है, फन उठाकर। और उसके पास कोई हड्डी नहीं है। तो चमत्कार है। ऐसा ही चमत्कार मनुष्य के भीतर घटता है कि जो ऊर्जा काम-ग्रंथि में पड़ी है, बिना किसी सहारे के, बेसहारे, बिना माध्यम के खड़ी हो जाती है, सर्प जैसी। फन जाकर चोट करता है ऊपर और आखिरी केंद्र खुल जाता है। इसलिए हिंदुओं ने उसका वैसा प्रयोग कर लिया है। लेकिन सर्प का प्रयोग प्रतीकात्मक है।

ये सूत्र बुद्ध ने सर्प को कहे थे। सभी सूत्र बुद्धों ने सर्पों को कहे हैं। क्योंकि मनुष्य अभी सर्प ही है। और इन सर्पों में भी कुछ कम, थोड़े से भाग्यवान सर्प पूछते हैं। नहीं तो पूछते ही नहीं। वे तो सोचते हैं, जैसा जी रहे हैं, वही ठीक है।

इन पथरीले वीरान पहाड़ों पर
जिंदगी थक गयी है चढ़ते-चढ़ते
क्या इस यात्रा का कोई अंत नहीं
हम गिर जाएंगे थककर यहीं कहीं
कोई सहयात्री साथ न आएगा
क्या जीवनभर कुछ हाथ न आएगा
क्या कभी किसी मंजिल तक पहुंचेंगे
या बिछ जाएंगे पथ गढ़ते-गढ़ते
इन पथरीले वीरान पहाड़ों पर
जिंदगी थक गयी है चढ़ते-चढ़ते
धुंधुआती दिशाएं, अंगारे, ये खंडित दर्पण
टूटे इकतारे, कहते इस पथ में हम ही नए नहीं
हम से भी आगे कितने लोग गए
पगचिह्न यहां ये किसके अंकित हैं
हम हार गए इनको पढ़ते-पढ़ते
इन पथरीले वीरान पहाड़ों पर
जिंदगी थक गयी है चढ़ते-चढ़ते

हम से किसने कह दिया कि चोटी पर
है एक रोशनी का रंगीन नगर
क्या सच निकलेगा उसका यही कथन
या निगल जाएगी हमको सिर्फ थकन
देखें सम्मुख घाटी है या कि शिखर
आ गए मोड़ पर हम बढ़ते-बढ़ते
इन पथरीले वीरान पहाड़ों पर
जिंदगी थक गयी है चढ़ते-चढ़ते

ऐसा जब तुम्हें दिखायी पड़ जाए कि सरकते-सरकते वीरान रास्तों पर थक गए हो, तब तुम किसी बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर पूछते हो, अब क्या करें? क्या सर्प ही बने रहेंगे हम, या उठने का कोई उपाय है?

उपाय है। सुख मत खोजो, दुख को देखो, दुख का कारण खोजो; दुख का कारण जानते दुख से मुक्त होने का उपाय मिल जाता; उपाय मिलते ही कौन नासमझ होगा जो उसका उपयोग न कर ले! उपयोग होते ही दुख-निरोध हो जाता है। वही दशा निर्वाण की है।

आज इतना ही।

चौसठवां प्रवचन

अहंकार की हर जीत हार है

पहला प्रश्नः बुद्ध ने संघं शरणं गच्छामि क्यों कहा? कृपाकर हमें इसका अभिप्राय समझाएं।

समर्पण अनिवार्य है। फिर चाहे मार्ग भक्ति का हो, चाहे ध्यान का। फर्क इतना ही पड़ेगा कि भक्ति के मार्ग पर समर्पण पहले है, पहले चरण में, और ध्यान के मार्ग पर समर्पण है अंतिम चरण में।

भक्ति कहती है, अहंकार को छोड़कर ही मंदिर में प्रवेश करो। क्योंकि जिसे छोड़ना ही है, उसे इतने दूर भी क्यों साथ ढोना? छोड़ ही दो। भक्ति पहले ही क्षण में अहंकार को गिरा देती है। भक्ति को सुविधा है, क्योंकि भगवान की धारणा है।

ध्यानी को वैसी सुविधा नहीं है। ध्यानी चलता है बिना किसी धारणा के। तो अहंकार बचा रहेगा। किसके चरणों में रखें अहंकार को? ध्यानी तो अनुभव के बाद ही, गहरे अनुभव में उतरकर ही, आखिरी घड़ी में, जब कुछ और शेष न रह जाएगा, सिर्फ सूक्ष्म अहंकार मात्र शेष रह जाएगा, वही पर्दा रहेगा। बहुत झीना पर्दा, इतना झीना, इतना पारदर्शी कि बहुतों को तो लगेगा कि यह पर्दा है ही नहीं। जैसे शुद्ध कांच। जब तक तुम पास ही न आ जाओगे, तुम्हें लगेगा कोई पर्दा है ही नहीं बीच में। सब साफ दिखायी पड़ रहा है। लेकिन जब तुम पास आओगे, तब टकराओगे। उस घड़ी में अहंकार को छोड़ना पड़ता है। अंतिम घड़ी में।

तो ध्यान-मार्ग भी अंततः कैसे तुम अहंकार को छोड़ोगे उसके लिए व्यवस्था जुटाता है। जुटानी ही पड़ेगी। यह बुद्ध की व्यवस्था है कि उन्होंने त्रि-शरण कहे। बुद्ध इन्हें त्रि-रत्न कहते हैं। हैं भी ये रत्न। इनसे बहुमूल्य और कुछ भी नहीं, क्योंकि इन्हीं को खोकर हमने सब खोया है। और इन्हीं को पाकर हम सब पा लेंगे। ये हैं तीन रत्न--बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि। और इनके पीछे एक तर्कसरणी है। समझो।

पहले तो बुद्ध के प्रति। बुद्ध का अर्थ गौतम बुद्ध नहीं है। इस भ्रांति में मत पड़ना। बुद्ध का अर्थ है, बुद्धत्व।

एक बार बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप तो कहते हैं कि किसी की शरण में जाने की जरूरत नहीं है और लोग आपके सामने ही आकर कहते हैं--बुद्धं शरणं गच्छामि? आप चुप रहते हैं। चुप्पी से तो समर्थन मिलता है। यह तो मौन समर्थन हो गया। आपको इंकार करना चाहिए।

तो गौतम बुद्ध ने कहा, वे मेरी शरण जाते हों तो मैं इंकार करूं, और मेरी शरण तो जाएंगे भी कैसे? क्योंकि मैं तो बचा भी नहीं। वे बुद्धत्व की शरण जाते हैं। जो बुद्ध हुए हैं अतीत में, जो बुद्ध आज हैं, और जो बुद्ध कभी होंगे, उन सभी के सारभूत तत्व का नाम बुद्धत्व है। जो कभी जागे और कभी जागेंगे और जाग रहे हैं, उस जागरण का नाम बुद्धत्व है।

तो पूछने वाले ने पूछा, फिर आपके ही चरणों में आकर क्यों कहते हैं? कहीं भी कह दें। तो उन्होंने कहा, वह उनसे पूछो, वह उनकी समस्या है। उन्हें सब जगह दिखायी नहीं पड़ता, उन्हें मुझमें दिखायी पड़ता है। चलो, यहीं से शुरुआत सही, कहीं से तो शुरुआत हो! झुकना कहीं तो सीखें। आज मुझमें दिखा है, कल और में भी दिखेगा, परसों और में भी दिखेगा, फिर उनकी दृष्टि बड़ी होती जाएगी। एक दफा दिख जाए हीरा, तो फिर तुम्हें बहुत जगह दिखायी पड़ेगा। और एक बार हीरे की ठीक-ठीक परख आ जाए, तो फिर जौहरी की दुकान पर

जो साफ-सुथरे, निखरे हीरे रखे हैं, उनमें ही नहीं, खदानों में भी जो हीरे पड़े हैं, जो अभी साफ-सुथरे नहीं हैं, उनमें भी हीरा दिखायी पड़ जाएगा। परख आ जाए।

तो बुद्ध में और साधारण व्यक्ति में इतना ही फर्क है कि साधारण व्यक्ति ऐसा हीरा है जो अभी खदान में पड़ा है, और बुद्ध ऐसे हीरे हैं जिसको साफ-सुथरा किया गया, तराशा गया, जिस पर चमक आ गयी है। बुद्ध ने अपने हीरे के साथ जो करना था कर लिया, तुमने अपने हीरे के साथ जो करना था अभी नहीं किया। लेकिन जिसको हीरा पहचान में आ गया, उसे तो तुममें भी हीरा दिखायी पड़ जाएगा।

तो बुद्ध ने कहा, अगर मुझमें उन्हें दिखायी पड़ती है बुद्धत्व की झलक, चलो, यही ठीक! आज यहां दिखायी पड़ती है, कल और भी कहीं दिखायी पड़ेगी, फिर दिखायी पड़ती जाएगी। फिर सब तरफ दिखायी पड़ने लगेगी।

तो पहला चरण है, एक के प्रति समर्पण। क्योंकि वहां से, उस झरोखे से तुम्हें सूरज दिखायी पड़ा। ख्याल रखना, जब तुम किसी झरोखे के पास खड़े होकर सूर्य को नमस्कार करते हो तो तुम झरोखे को नमस्कार नहीं कर रहे हो। हालांकि चाहे तुम्हें पहले ऐसा ही लगता हो कि इस झरोखे की बड़ी कृपा--इसी से तो सूरज दिखायी पड़ा न! नहीं तो अंधेरे में ही रहते--तो चाहे तुम झरोखे को धन्यवाद भी दो, लेकिन झरोखे के माध्यम से तुम धन्यवाद तो सूरज को ही दे रहे हो। झरोखे ने तो कुछ किया नहीं, सिर्फ द्वार दिया, बाधा नहीं बना। बुद्ध का इतना ही अर्थ है--जिसके भीतर सब बाधा गिर गयी है, तुम आर-पार देख सकते हो।

तो पहली समर्पण की भावना है--बुद्धं शरणं गच्छामि।

दूसरी समर्पण की धारणा है--संघं शरणं गच्छामि। संघं का अर्थ होता है, उन सबको जो जागे हैं। उन सबको जो जाग रहे हैं। उन सबको जो जागने के करीब आ रहे। उन सबको जो करवट ले रहे। उन सबको जिनके सपने में जागरण की पहली किरण पड़ गयी है। जिनकी नींद में खलल पड़ गयी है। तो संघ का स्थूल प्रतीक तो यह है कि जिन लोगों ने बुद्ध से दीक्षा ले ली है, उन समस्त संन्यासियों की मैं शरण जाता हूं। लेकिन इसका मूल अर्थ तो यही हुआ न कि जिन्होंने स्रोत में प्रवेश कर लिया, जो स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो गए। जिन्होंने संन्यास लिया है।

संन्यास तो अभीप्सा है, खबर है कि मैं अब अपने जीवन की धारा बदलता हूं। अब नहीं धन होगा मूल्यवान मेरे लिए। अब होगा ध्यान मूल्यवान मेरे लिए। अब नहीं खोजूंगा स्थूल को, सूक्ष्म की यात्रा पर जाता हूं। जिसको मृत्यु मिटा देती है, अब उस पर मेरी आंख खराब नहीं करूंगा, अब अमृत की खोज में जाता हूं। अंधेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ, असत्य से सत्य की तरफ, ऐसी जो प्रार्थना है वही तो संन्यास है। असतो मा सदगमय।

संघ का अर्थ है, वे सब जो स्रोत-आपन्न हो गए। वे सब, जिन्होंने निर्णय लिया है सत्य की खोज का। जो सत्य के अन्वेषण पर निकल गए हैं। उनकी शरण जाता हूं। थोड़ी दृष्टि बड़ी हुई, अब बुद्ध ही काफी नहीं। बुद्ध में तो दिखता ही है, लेकिन अब उनमें भी दिखायी पड़ने लगा जो बुद्ध के पास बैठे हैं।

होना भी यही चाहिए। जब बुद्ध के पास रहोगे तो उनकी सुगंध पकड़ेगी न तुम्हें। इस बगीचे से घूमकर निकलोगे, घर जाकर पहुंच जाओगे अपनी पुरानी गंदगी में, तो भी तुम पाओगे वस्त्रों में थोड़ी सी फूलों की गंध साथ चली आयी है। बुद्ध के पास बैठोगे-उठोगे, तो उनका स्वाद लगेगा, उनकी बूंदें तुम पर बरसेंगी, उनका स्पर्श तुम्हें होगा। जो हवा उन्हें छुएगी, वही हवा तुम्हें भी छुएगी। बुद्ध के पास उठोगे-बैठोगे, उनका रंग लगेगा, उनका ढंग लगेगा। बुद्ध के पास उठोगे-बैठोगे, तो बुद्धत्व संक्रामक है। याद रखना, बीमारी ही थोड़े ही लगती है,

स्वास्थ्य भी लग जाता है। पागलपन ही थोड़े ही लगता है; पागलों के साथ रहोगे, पागल हो जाओगे, मुक्तों के साथ रहोगे तो मुक्त हो जाओगे--होने लगोगे।

तो अब दृष्टि थोड़ी बड़ी हुई। अब बुद्ध ही नहीं दिखायी पड़ते, अब बुद्ध में वे सब दिखायी पड़ने लगे जो उनके आसपास हैं। जो सब बुद्ध की तरफ उन्मुख हैं। दूर है अभी मंजिल उनकी, चल पड़े हैं। बुद्ध पहुंच गए गंगासागर, गंगा गिर गयी सागर में, लेकिन गंगा में जो और लहरें चली जा रही हैं सागर की तरफ भागती हुई, वे भी पहुंच ही जाएंगी, पहुंचने को ही हैं, आज नहीं कल की ही बात है, समय का ही भेद है। पहले नमस्कार किया वृक्ष को, फिर नमस्कार किया बीज को, क्योंकि बीज भी वृक्ष तो हो ही जाएगा। देर-अबेर के लिए नमस्कार रोकोगे क्या! सिर्फ समय के कारण नमस्कार को रोकोगे क्या!

और जब एक बार नमस्कार करने का मजा आ जाता है, जब बुद्ध के चरणों में सिर रखने का मजा आ गया, तो मन करेगा जितने चरणों में सिर रखा जा सके, रखो। जब एक बार इतना मजा आया है और एक के पास इतना मजा आया है, काश, तुम्हारा सिर सभी के चरणों में लोटने लगे तो आनंद की धार बह उठेगी। इसलिए, संघं शरणं गच्छामि।

और भी एक कदम आगे बात उठती है, क्योंकि संघ की शरण जाने का अर्थ हुआ, जो सत्य की खोज कर रहे हैं उनकी शरण जाता हूं। बुद्ध की शरण जाने का अर्थ हुआ, जिसने सत्य पा लिया है उसकी शरण जाता हूं। और धम्मं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है, बुद्ध की शरण भी तो इसीलिए गए न कि उन्होंने सत्य को पा लिया, और संघ की शरण भी इसीलिए गए न कि वे सत्य की खोज में जा रहे हैं, तो सत्य की ही शरण जा रहे हो, चाहे बुद्ध की शरण जाओ, चाहे संघ की शरण जाओ। इसलिए, धम्मं शरणं गच्छामि।

धम्म का अर्थ होता है सत्य। जो परम सत्य है, वही धर्म है। इसलिए अंतिम रूप में आखिरी शरण है--धर्म की शरण जाता हूं; उस परम नियम की शरण जाता हूं जो संसार को चला रहा है; उस ऋत की शरण जाता हूं, ताओ की शरण जाता हूं, जो संसार को धारे हुए है। धर्म का अर्थ, जिसने संसार को धारण किया है। जिस पर सब खेल चल रहा है, उस परम में डूबता हूं।

बौद्ध उसे भगवान नहीं कहते, क्योंकि भक्त की वह भाषा नहीं है, वे उसे कहते हैं, धर्म। वह ज्ञानी की भाषा है, ध्यानी की भाषा है। वे कहते हैं, नियम, परम नियम, शाश्वत नियम। भक्त इसी को भगवान कहता है, फर्क कुछ भी नहीं है। भक्त कहता है, भगवान ने सबको धारा हुआ है। और ज्ञानी कहता है, धर्म ने सबको धारा हुआ है। शब्दों का भेद है। भक्त धर्म को रूप दे देता है, तो भगवान। प्रतिमा बना लेता है, तो भगवान। ज्ञानी प्रतिमा नहीं बनाता, नियम को शुद्ध नियम रहने देता है। रूप नहीं देता, व्याख्या नहीं देता।

तो तीसरा रत्न है--धम्मं शरणं गच्छामि। तीसरी शरण में जाकर तुम समस्त की शरण में चले गए--सार्वभौम है धर्म। पहले बुद्ध की शरण में गए, वह एक; फिर संघ की शरण में गए, अनेक; फिर धर्म की शरण में गए, सर्व। सार्वभौम। विसर्जन पूरा हो गया। इसके पार विसर्जन करने को कुछ है नहीं। तुम उससे एक हो गए, जो है।

ऐसे ये तीन रत्न हैं। इनके संबंध में कुछ और बातें भी समझ लेनी चाहिए। पहली बात, बुद्ध की शरण जाना सबसे सरल है। ऐसा रोज यहां होता है। कोई आकर मुझसे कहता है कि हमने समर्पण आपको किया है, हम लक्ष्मी की क्यों मानें? तो मैं उनसे कहता हूं, मुझे समर्पण करना सरल है। तुम लक्ष्मी को समर्पण करोगे तो और रस आएगा, और गहरा रस आएगा। मुझे समर्पण करना तो बहुत सुगम है। क्योंकि तुम मेरे इतने प्रेम में हो। तुम मेरे रस में ऐसे डूबे हो।

कोई भोजनालय में काम करता है, दीक्षा से उसकी नहीं बनती, तो मैं उससे कहता हूं, जाकर दीक्षा को समर्पण कर दो। वह कहता है, दीक्षा को! आपकी शरण में हम आए हैं, दीक्षा की शरण में नहीं। मैं उनसे कहता हूं, तो मैं ही तो तुमसे कह रहा न! तुम मेरी शरण आ गए, अब गए हाथ से, अब मैं कहता हूं, तुम जाओ दीक्षा के शरण में, तो मेरी मानोगे या नहीं? कहते हैं, मानेंगे तो जरूर लेकिन दीक्षा की शरण! दीक्षा तो हमारे ही जैसी है! कठिन हो गया दीक्षा की शरण जाना। लेकिन मैं कहता हूं, जाओ।

मेरी शरण आना तो बहुत सरल है, क्योंकि तुम मेरे लगाव में पड़े हो, तुम मेरे प्रेम में पड़े हो, तुम दीवाने हो, तो झुक गए। दीक्षा से तुम्हारा कोई ऐसा लगाव नहीं, ऐसा कोई दीवानापन नहीं, दीक्षा तो लगती ठीक तुम जैसी है, लेकिन अर्थ समझना। जब तक तुम तुम जैसों के शरण में नहीं जाओगे, तब तक तुमने अभी तक अपने को समझा ही नहीं। क्योंकि जो तुम जैसा है, वह तुम्हें आदर योग्य नहीं मालूम होता, इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि तुम स्वयं ही अभी अपनी आंखों में आदर योग्य नहीं हो। जब तुम कहते हो कि अपने ही जैसे की शरण जाएं, तो तुम क्या कह रहे हो, तुमने शायद सोचा नहीं। तुम यह कह रहे हो कि मैं तो निंदित, पापी, अपराधी, और मेरे ही जैसे किसी की शरण जाऊं! तो तुम्हारे मन में बड़ी आत्मग्लानि है। तुम्हारे मन में बड़ा आत्म-तिरस्कार है। अपमान है अपना।

और जिसके मन में अपने प्रति अपमान है, वह कैसे आत्मवान हो सकेगा? जो अपनी निंदा कर रहा है, जो अभी अपना सम्मान भी नहीं सीख सका, वह अपने भीतर कैसे प्रवेश कर सकेगा? जो अभी अपने को प्रेम भी नहीं कर सकता, वह किसको प्रेम कर सकेगा? कहने वाला तो यही कह रहा है कि शायद वह दीक्षा का असम्मान कर रहा है यह कहकर कि वह तो मेरे ही जैसी है, उसकी क्या शरण जाना! लेकिन वह अपना ही अपमान कर रहा है। वह घोषणा कर रहा है कि मैं दो कौड़ी का, और दीक्षा मेरे जैसी, तो मैं कैसे शरण जाऊं?

जिस दिन तुम अपने ही जैसों की शरण जाने लगोगे, उस दिन तुम्हारे जीवन में आत्म-गौरव आएगा। यह बात तुम्हें बड़ी विरोधाभासी लगेगी कि जिस दिन व्यक्ति समस्त के चरणों में झुक जाता है, उस दिन वह आत्म-गौरव को उपलब्ध हो गया। उसने कहा कि निम्नतम के भी शरण में मैं झुक जाता हूं, पत्थर के शरण झुक जाता हूं, क्योंकि अस्तित्व महिमावान है, निम्न यहां कोई हो ही कैसे सकता है! उस दिन उसे अपने भीतर की गरिमा का बोध होगा।

तो बुद्ध की शरण जाना तो बड़ा सरल है। सरल से शुरू करो मगर सरल पर अटके मत रह जाना। इसलिए संघं शरणं गच्छामि। संघ का मतलब, दीक्षा, लक्ष्मी, मैत्रेय, इनकी शरण जाओ, कभी-कभी अपनी ही शरण जाओ, कभी-कभी अपने ही पैर छू लो। क्योंकि तुम्हारे भीतर भी परमात्मा विराजमान है। लगेगा पागलपन, पहले तो दूसरे के पैर छूने में बड़ा पागलपन लगता है, फिर अपने पैर छूने में तो निश्चित ही पागलपन लगेगा। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, कभी-कभी अपने भी पैर छुओ। तुम्हारे भीतर भी परमात्मा ही विराजमान है--उतना ही जितना मेरे भीतर, उतना ही जितना बुद्ध के भीतर, उतना ही जितना महावीर के भीतर।

ऐसा हुआ एक बार, रामकृष्ण की किसी ने तस्वीर उतारी। वह तस्वीर लेकर आया तो रामकृष्ण ने झुककर उस तस्वीर के चरण छुए। खुद की तस्वीर! शिष्य जरा बेचैन हुए, उन्होंने कहा कि लोग पागल तो समझते ही हैं इन्हें, अब और बिल्कुल पागल समझेंगे, यह हद्द हो गयी। किसी ने जरा टेहुनी मारी कि परमहंसदेव, क्या कर रहे? खबर हो गयी लोगों को तो, लोग पागल मानते ही हैं, अब हद्द हो जाएगी कि अब अपनी ही तस्वीर के पैर छूने लगे। तो उन्होंने कहा कि मेरी तस्वीर! मेरी तस्वीर तो हो कैसे सकती है! क्योंकि मैं

तो देह नहीं हूं। लेकिन यह जो तस्वीर है, बड़ी समाधि की है। जिसकी भी ली गयी हो यह तस्वीर, यह आदमी बड़ी समाधि में रहा होगा! तो मैं तो समाधि को झुक रहा हूं। अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं ही समाधि में था कि कोई और समाधि में था। समाधि में कहां मैं, कहां तू? समाधि तो समाधि है।

कभी अपने पैर भी छूना, और तुम अपूर्व पुलक का अनुभव करोगे। कभी अपने जैसों के भी पैर छूना। अपने से बड़ों के पैर छूने में तो अहंकार गिरता नहीं। कैसे गिरेगा? जिसको तुम अपने से बड़ा मानते हो, उसके पैर छूने में कैसे अहंकार गिरेगा? जिसको तुम अपने जैसा मानते हो, या अपने से छोटा मानते हो, उसके पैर छूने में अहंकार गिरेगा।

मगर स्वाभाविक है, पहले तो यात्रा वहां से करनी होती है जो सुगम हो। इसलिए बुद्धं शरणं गच्छामि। पहले अपने से विराट के चरण छू लो। फिर संघं शरणं गच्छामि। फिर संघ में तो सब तरह के लोग होंगे, कोई तुम जैसा होगा, कोई तुमसे अच्छा होगा, कोई तुमसे गया-बीता होगा। संघ की शरण जाने का अर्थ है, अब मैं हिसाब नहीं रखता कि कौन बड़ा, कौन छोटा; कौन ऊपर, कौन नीचे; अब तो जो भी सत्य की खोज कर रहे हैं, सब की शरण जाता हूं।

और तीसरा, धम्मं शरणं। लेकिन संघ की शरण में भी सीमा है। अगर बुद्ध के मानने वाले बौद्ध भिक्षुओं की शरण जाते हैं, तो वे जैन भिक्षुओं की शरण तो न जाएंगे, हिंदू संन्यासियों की शरण तो न जाएंगे, मुसलमान फकीरों की शरण तो न जाएंगे, ईसाइयों की शरण तो न जाएंगे। सीमा है। और जहां सीमा है, वहां अभी हम परमात्मा से दूर हैं। इसलिए आखिरी कदम उठाया जाता है, सीमा तोड़ दी जाती है--धम्मं शरणं गच्छामि। अब कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई, कौन सिख, कौन जैन, कुछ भेद न रहा। हिंदू, मुसलमान, ईसाई की तो बात ही छोड़ो; पौधे, पशु, पक्षी, पत्थर, पहाड़, चांद-तारे, सबके भीतर जो एक ही सत्य समाया हुआ है, हम उसकी शरण जाते हैं।

ऐसे ये त्रि-रत्न हैं। ये बड़े बहुमूल्य हैं। इनका अर्थ समझोगे, तो इनके द्वारा कुंजी मिल सकती है।

दूसरा प्रश्नः कहते हैं कि पारस लोहे के गुण-अवगुण का विचार किए बिना उसे शुद्ध सोना बना देता है। फिर ऐसा क्यों है कि आपके पास पहुंचकर भी मैं अतृप्त ही बना हूं? क्या आपकी कृपा के लिए पात्रता प्राप्त करनी होगी?

पहली बात, पारस लोहे को सोना बना देता है, मिट्टी के ढेले को रखकर देखा पारस के पास? लाख सिर पटके तो मिट्टी का ढेला सोना नहीं बनेगा। लोहा तो होना ही चाहिए न!

और लोहे में क्या गुण-दोष होते हैं, जरा मुझे बताओ! लोहा लोहा होता है। तुमने नरसी मेहता का भजन सुना है? --इक लोहा पूजा में राखत, इक रहत बधिक घर परो। तो नरसी मेहता सोचते हैं कि जो हत्यारे के घर पड़ा हुआ लोहा है, जिससे वह जानवरों की गर्दन काटता है, वह बुरा। और जो लोहा पूजा में रखते हैं, वह भला। क्योंकि पूजा में रखा है।

यह बात जंचती नहीं। क्योंकि बुराई अगर होगी तो बधिक में होगी, लोहे में क्या होगी? लोहा तो लोहा है। चाहे तुम हत्या करो लोहे से, तो लोहा हत्या नहीं कर रहा है, ध्यान रखना। इसलिए बुराई लोहे की हो नहीं सकती। यह दुर्गुण लोहे का नहीं है। यह तो जिसके हाथ में लोहा पड़ गया था, उसका दुर्गुण है। एक ही तलवार है, उससे तुम किसी की गर्दन काट सकते हो और किसी की कटती गर्दन को कटने से रोक भी सकते हो। कोई

गुंडे हमला किए हुए हैं एक स्त्री पर और बलात्कार करने जा रहे हों और तुम्हारे हाथ में तलवार हो, तो तुम रोक दे सकते हो। तो तलवार उस कारण सज्जन न हो जाएगी। और किसी की हत्या कर दो तलवार से तो तलवार उस कारण दुर्जन न हो जाएगी। तलवार तो बस तलवार है। तलवार को क्या लेना-देना!

तो चाहे पूजा-घर में रखा हुआ लोहा हो और चाहे हत्यारे के घर रखा हुआ लोहा हो, लोहे में कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए पारस के पास दोनों लोहे ले आओ तो दोनों ही सोना हो जाते हैं। लेकिन संत के पास हत्यारे को लाओ और पूजा करने वाले को लाओ तो फर्क पड़ेगा। दोनों लोहों में तो कोई फर्क था ही नहीं, दोनों लोहे थे। तुमने लोहे पर झूठे गुण आरोपित कर लिए। हत्यारे का गुण तुमने लोहे पर आरोपित कर लिया। वह हत्यारे की बात थी।

तो पहली तो बात तुम ठीक से समझना कि पारस लोहे को सोना कर सकता है, मिट्टी के ढेले को नहीं। और अगर तुम सोना न बन पा रहे हो तो थोड़ा विचार करना--लोहा हो? लोहा अगर हो, तो पात्र हो। तो बन जाओगे। अगर लोहा ही नहीं हो, तब बड़ी मुश्किल है।

तुम्हारा मन यह होता है कि किसी पर टाल दो जिम्मेवारी। तुम्हारा मन यह कहेगा कि अभी तक नहीं बने सोना, मतलब साफ है कि जिसको पारस समझा वह पारस नहीं है। यही तो आदमी का मन है, जो जिम्मेवारियां टालता है। तुम कुछ करना नहीं चाहते, अब तुम प्रतीक्षा करते हो कि अगर हो जाए तो ठीक, न हो तो पारस की जिम्मेवारी।

इसी को तो मैं मिट्टी का लोंदा होना कहता हूं। मिट्टी के लोंदे होने का मतलब है, कुछ भी करने को नहीं, पड़े हैं मिट्टी के लोंदे की तरह--गोबर-गणेश! लगते हैं गणेश जी जैसे, बिल्कुल गणेश जी जैसे लगते, मगर हैं गोबर के। मिट्टी के लोंदे का अर्थ है कि तुमने अपने जीवन को अपने हाथ में लेना नहीं सीखा। तुम थपेड़ों पर जी रहे हो। कोई कर दे, तुम बस बैठे हो। तुम भिखारी हो। कोई दे दे तो ठीक, कोई न दे तो गाली-गलौज। लेकिन तुम उठकर कुछ भी करने की तैयारी में नहीं हो। यह तुम मिट्टी के लोंदे हो। पारस भी तुम्हें कुछ न कर पाएगा।

थोड़ा उठो। थोड़ा करने में लगो। थोड़ा जीवन को बदलने के लिए श्रम, था.ेडा ध्यान, थोड़ी प्रार्थना, थोड़ी पूजा।

बुद्ध ने कल कहा, कि गलत जो मालूम पड़े, उस आदत को तोड़ना। जो ठीक मालूम पड़े, उसके अभ्यास को गहरा करना। और चित्त को रोज-रोज निखारते जाना ताकि और-और साफ-साफ दिखायी पड़ने लगे कि क्या गलत है, क्या ठीक है।

अक्सर लोग सोचते हैं कि जैसे यह कोई मेरी जिम्मेवारी है। अगर तुम भटक गए, तो तुम भगवान के सामने यह न कह सकोगे कि हम क्या करें, कोई पारस मिला ही नहीं। तुम यह न कह सकोगे। अगर तुम ठीक से समझो, तो पारस भी तुम्हारे भीतर पड़ा है, तुम उसे खोजो। बिना खोजे न मिलेगा। पारस कहीं बाहर नहीं रखा है। पारस भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। उस पारस का नाम ही ध्यान है, सुरति। या जो भी नाम तुम देना चाहो, समाधि, संबोधि। उस पारस का नाम ही ये सब शब्द उपयोग किए गए हैं। उस पारस को खोजो, वह तुम्हारी चेतना में पड़ा है। तुम्हारी चेतना ही जैसे-जैसे निखार पर आती, शिखर बनता चेतना का, वैसे-वैसे पारस निर्मित हो जाता है। और चेतना का पारस निर्मित हो जाए तो जीवन का लोहा तत्क्षण सोना बन जाता है।

मेरे आधार पर तुम सोना नहीं बन सकते, मेरे आधार पर तुम अपने भीतर का पारस खोज सकते हो। गुरु तुम्हें, पारस नहीं बन सकता गुरु, लेकिन गुरु ने अपना पारस पा लिया है तो वह जानता है, कैसे पारस को पाया जाता है। वह तुम्हें बता सकता है कि तुम अपने पारस को कैसे पा सकते हो।

और अच्छा भी यही है कि गुरु पारस नहीं बनता, नहीं तो तुम तो नपुंसक के नपुंसक रह जाते। तुम्हारा क्या मूल्य? पारस ने तुम्हें सोना बना दिया और फिर कहीं कोई एंटी-पारस मिल जाता, तो फिर लोहा का लोहा कर देता। तुम वही के वही रहे। तुम कहते, अब हम क्या करें, हमारे हाथ में तो कुछ है नहीं। पारस मिल गया तो सोना बन गए, एंटी-पारस मिल गए! और ध्यान रखना, दुनिया में दोनों चीजें होती हैं। एंटी-पारस की बात शास्त्रों में नहीं है, क्योंकि शास्त्रों में बहुत सी बातें तुम्हारे लोभ के कारण लिखी गयी हैं। क्योंकि तुमने ही लिखी हैं। या तुम जैसों ने ही लिखी हैं। या तुम जैसों ने ही लिखवा ली हैं। तो एंटी-पारस की कोई बात नहीं है। लेकिन इस जगत में हर चीज का विरोधी होता है।

अगर ऐसा है कि पारस से लोहा सोना हो जाता है, तो जरूर कहीं कोई ऐसी कीमिया होगी जिससे सोना लोहा हो जाए। फिर तो तुम बिल्कुल ही नपुंसक हो गए, तुम्हारे हाथ में कुछ भी न रहा।

नहीं, इस तरह पारस से सोना बनना भी मत! अगर मैं कहूं भी कि मैं बनाने को तैयार हूं, तो कहना, रुको, मुझे खोजने दो खुद। क्योंकि अपने से बनूंगा तो फिर मुझे कोई मिटा न सकेगा। ऐसे किसी और से बन गया, तो मिट जाऊंगा। फिर कोई मिटा देगा। तो ऐसे बनने का कोई मूल्य नहीं है। यह बड़ा सस्ता बनना हुआ। और सत्य इतना सस्ता नहीं मिलता है।

पात्रता का इतना ही अर्थ होता है कि तुम उठो, आंख खोलो, थोड़ा चलो, मेरा हाथ तुम्हारा साथ देने को तैयार है, मैं तुम्हें दूर तक ले चलने को राजी हूं, लेकिन उठो, चलो। तुम सो रहे हो चादर ताने और तुम कहते हो, मंजिल नहीं मिलती! तुम यहां से हटना भी नहीं चाहते। तुम चाहते हो कोई स्ट्रेचर में डालकर और तुम्हें मंजिल पहुंचा दे। तो फिर मंजिल न हुई, अस्पताल होगा। फिर मंदिर नहीं होगा, अस्पताल होगा। अस्पताल जाना हो, तुम्हारी मर्जी! तो कोई स्ट्रेचर में डालकर और एंबुलेंस गाड़ी को बुलाकर ले जाएगा। तुम मुर्दा हो। तुम अर्थी बनकर जाना चाहते हो। चार आदमियों के कंधे पर सवार हो गए, अर्थी बन गए और चले!

एक सूफी फकीर मर रहा था। ठीक मरने के पहले वह उठ खड़ा हुआ अपनी शय्या से और उसने कहा, मेरे जूते कहां हैं? तो उसके शिष्यों ने कहा, क्या करते हैं आप? चिकित्सक कह रहे हैं कि अब आप बचेंगे नहीं। वे कहते हैं, वह तो मैं भी जानता हूं, चिकित्सक के कहने से क्या लेना-देना है! घड़ी मेरी करीब आ रही है, सूरज डूबने को हो रहा है, उसी के साथ मैं डूब जाऊंगा, जूते लाओ जल्दी! पर उन्होंने कहा, अब जूते लाकर करना क्या है, आप विश्राम करें। उसने कहा, अब विश्राम करके क्या करना है? मौत तो आ रही है। और मैं किसी के कंधे पर सवार होकर मरघट नहीं जाना चाहता। जूते ले आओ, मैं मरघट चलता हूं। अपनी कब्र खुद खोदूंगा। अपना जीवन खुद जीया, अपनी मौत भी खुद मरूंगा। उधार नहीं।

अजीब आदमी रहा होगा! वह गया। लोग तो चौंककर देखते रहे, ऐसी घटना तो कभी घटी न थी कि कोई आदमी खुद ही मरघट जा रहा है। मरघट तो लोग दूसरे के सिर पर चढ़कर जाते हैं। सदा से पुरानी आदत है। जीए भी दूसरों के सिर पर चढ़कर, मरते भी दूसरों के सिर पर चढ़कर चले जाते।

वह गया, उसने कुदाली हाथ में ले ली, उसने अपनी कब्र खोदी। और लोगों ने कहा, हम साथ दे दें! उसने कहा कि रुको, मेरे काम में बाधा मत डालो, मैं यह न चाहूंगा कि परमात्मा मुझसे कह सके कि मैंने किसी के कंधे पर किसी तरह की सवारी की। मैं जीवन अपने ढंग से जीया हूं, मरूंगा भी अपने ढंग से। उसने अपनी कब्र खोद ली, वह कब्र में लेट गया और उसने कहा कि नमस्कार, मित्रो! आंख बंद कर ली और मर गया। अगर उसका वश होता तो वह कब्र पर मिट्टी भी खुद फेंक लेता।

ऐसा व्यक्ति ही वस्तुतः प्राणवान है। जीयो अपने ढंग से और मरो भी अपने ढंग से। तो तुम्हारे जीवन में बड़ी सुगंध आएगी। यह भी क्या बात कि पारस छू दे और हम सोना बन जाएं! मिट्टी के लोंदे हो फिर तुम। फिर पारस भी काम न आएगा।

बुद्ध ने कहा है, बुद्धपुरुष केवल मार्ग दिखाते हैं, चलना तो तुम्हीं को पड़ेगा। पहुंचना भी तुमको पड़ेगा। उनके इशारों को समझ लो और चल पड़ो।

पूछते हो कि "मैं अब भी अतृप्त ही बना हूं।"

शायद यही कारण होगा कि तुम कुछ कर ही नहीं रहे हो। शायद यही कारण होगा कि तुमने मान लिया है कि अब पहुंच गए भगवान के सान्निध्य में, बात खतम हो गयी। अब और क्या करने को है! अब करो तुम। अब हम देखेंगे, क्या करते हो! और बाधा डालेंगे सब तरह की--करने भी न देंगे--करो तुम! सहयोग भी न देंगे, असहयोग भी करेंगे, फिर देखें क्या करते हो? ऐसे भाव से तो यात्रा नहीं होगी, अतृप्ति रहेगी।

तृप्ति चाहते हो--उठो, जागो, चलो।

तीसरा प्रश्नः मैं आर्यसमाजी हूं और आपका संन्यास लेने जा रहा हूं। आप अब तक अनेक महापुरुषों के बारे में बोल चुके हैं, लेकिन स्वामी दयानंद के बारे में कुछ नहीं बोले हैं। क्या स्वामी जी ने मानव-कल्याण के लिए कुछ भी योगदान नहीं किया?

पूछा है, ब्रह्मचारी हरिदेव ने। उत्तर इसीलिए दे रहा हूं, क्योंकि संन्यास के पहले तुम्हें यह बात साफ समझ लेनी चाहिए कि आर्यसमाज को मैं कोई धर्म नहीं मानता हूं। यह एक सामाजिक आंदोलन है। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। इसका संबंध समाज और राजनीति से है।

दूसरी बात, स्वामी दयानंद महापंडित थे, महात्मा भी, मगर बुद्धपुरुष नहीं। महापंडित थे, इसमें कोई रत्तीभर संदेह नहीं है। बहुत कम ऐसे महापंडित हुए हैं, जिनकी ऐसी स्पष्ट प्रतिभा हो, तर्क हो और शास्त्र के ऊपर जिनकी ऐसी प्रगाढ़ विश्लेषण की क्षमता हो। बहुत कम। तो उस अर्थ में दयानंद अपूर्व हैं, मगर महापंडित। और महापंडित के प्रति मेरे मन में कोई मूल्य नहीं है।

महापंडित बुद्धि की बात है। इससे हृदय रूपांतरित नहीं होता। और महापंडित सिर्फ तर्क ही तर्क में जीता है। उसके जीवन में कोई गहरा अनुभव नहीं होता। तो तर्क तो उनके पास बड़ा था, खंडन-मंडन की बड़ी क्षमता थी, लेकिन अनुभव कोई भी नहीं था। अगर अनुभव होता, तो उन्होंने कुछ और ही बात कही होती। फिर वे यह न कहते कि कुरान वेद के विपरीत है। फिर वे यह न कहते कि महावीर और बुद्ध वेद के विपरीत हैं। अगर उनका अनुभव होता, तो निश्चित वे जान लेते कि जो महावीर ने कहा है, भाषा अलग होगी; जो बुद्ध ने कहा है, उसकी भी भाषा अलग है; और जो मोहम्मद ने कहा है, उसकी भाषा अलग है; जो जीसस ने कहा, उसकी भाषा अलग है; लेकिन जो कहा है, वह वही है जो वेदों ने कहा है। भिन्न तो कोई कह कैसे सकता है!

तो उनका सारा जीवन खंडन में गया। बाइबिल गलत है, कुरान गलत है, धम्मपद गलत है, सब गलत हैं, सिर्फ वेद सही हैं। यह हिंदू राजनीति है। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

परमहंस रामकृष्णदेव ठीक विपरीत आदमी हैं। पंडित बिल्कुल नहीं हैं, लेकिन धार्मिक, संत। जानते कुछ नहीं हैं, दूसरी क्लास तक मुश्किल से पढ़े हैं। तो मैं रामकृष्ण पर तो बोलता हूं, लेकिन दयानंद को छोड़ता हूं। छोड़ता हूं सिर्फ इसीलिए कि नाहक क्यों किसी को दुखी करना! दयानंद के मानने वाले जो लोग हैं, वे नाहक

दुखी होंगे, उनको क्यों कष्ट देना! इसलिए छोड़ता हूं। क्योंकि अगर उनको लूंगा, तो मुझे उनके साथ ठीक-ठीक व्यवहार करना पड़ेगा। इसलिए छोड़ता हूं। ऐसे बात काटकर निकल जाता हूं।

लेकिन तुम चूंकि आर्यसमाजी हो और संन्यास भी लेने का सोचा है, इसलिए बात साफ कर लेनी जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि तुम आर्यसमाजी ही रहते हुए संन्यासी हो जाओ, तो संन्यास से कुछ परिणाम न होगा। क्योंकि आर्यसमाज वैसा ही सामाजिक आंदोलन है जैसे और सामाजिक आंदोलन चलते हैं। यह परमात्म-प्रेम में डूबना नहीं है। इसलिए आर्यसमाज बकवास पैदा करते हैं। बकवासी पैदा करते हैं। तर्कजाल खूब, लेकिन प्राणों की सुगंध बिल्कुल नहीं।

दयानंद महात्मा भी हैं, इसमें भी कोई शक नहीं है। लेकिन महात्मा आयोजित बात है। चेष्टा से, प्रयास से। उनके पास सुंदर चरित्र है, लेकिन आरोपित। योजना से, ठोंक-ठोंककर उन्होंने अपने चरित्र को खड़ा किया है। तुम उनके चेहरे पर भी वही भाव देखोगे। सरलता नहीं, बड़ी कठोरता। बच्चे जैसा भाव नहीं। महात्मा हैं, लेकिन महात्माओं का भी मेरे मन में कोई बड़ा मूल्य नहीं है। सच तो यह है कि जिसको सच में परमात्मा का होना हो, उसे दो चीजें छोड़नी पड़ती हैं--महापंडित होना और महात्मा होना। इन दो को जो छोड़ देता है और सरलचित्त हो जाता है, निर्दोष बच्चे की भांति, वही केवल परमात्मा को पाने में समर्थ हो पाता है।

तो तुम सोच लेना। कहीं ऐसा न हो कि संन्यास लेकर फिर तुम्हारे मन में दुविधा खड़ी हो। कोई जल्दी नहीं है, और सोच लेना। क्योंकि जब कोई ईसाई संन्यास लेने आता है, तो मैं उसे कभी नहीं कहता कि तुम्हें जीसस को छोड़ना पड़ेगा तो मुझे पाओगे। नहीं, मैं उससे कहता हूं, अगर तुमने जीसस को प्रेम किया है तो तुमने मुझे प्रेम किया है। अगर कोई सिख संन्यास लेने आता है, तो मैं उससे यह नहीं कहता कि तुम्हें नानक को छोड़ना पड़ेगा। उससे मैं यही कहता हूं कि तुमने अगर मुझको चाह लिया तो मेरी चाह में तुम नानक को पा लोगे। कोई मुसलमान संन्यास लेने आता है, तो मैं कभी उसे समझाने की फिकर नहीं करता कि मोहम्मद या कुरान से उसे कुछ नाते तोड़ने हैं। सच तो यह है कि वह मुझसे नाता जोड़कर जीवित कुरान से नाता जोड़ लेगा।

लेकिन आर्यसमाजी के साथ मामला दूसरा है। यह धर्म है ही नहीं। यह तो ऐसे ही है कि जैसे एक कम्युनिस्ट मेरे पास आए और कहे कि अब तक मैं कार्ल मार्क्स को मानता रहा हूं और संन्यास लेना चाहता हूं, आप क्या कहते हैं? तो मैं उससे कहूंगा, जरा सोचकर आना। क्योंकि कार्ल मार्क्स बड़ा विचारक, लेकिन कोई धार्मिक नहीं। कार्ल मार्क्स ने बड़ा सामाजिक आंदोलन पैदा किया और मनुष्य-जाति का किसी अर्थ में कल्याण भी किया, लेकिन फिर भी वह कल्याण धार्मिक नहीं है। वह कल्याण लौकिक है।

दयानंद ने भी बड़ी सेवा की हिंदू समाज की, लेकिन हिंदू समाज की। वह भी राजनीति है। उठा लिया हिंदू समाज को, एक संगठन में खड़ा कर दिया, एक नया बल दे दिया, एक नया अहंकार दे दिया हिंदू समाज को, कि तुम वेदपुत्र हो, अमृतस्य पुत्रः, कि तुम ऋषि-महर्षियों की संतान हो, ऐसा एक नया अहंकार दे दिया। लेकिन अहंकार तो कोई भी हो वह आदमी को धार्मिक नहीं बनाता। लोग सम्मान देते हैं इस तरह के लोगों को, क्योंकि स्वभावतः लोगों में अकड़ आ गयी, लोगों में फिर पुनरुज्जीवन आ गया। लोगों ने कहा कि ठीक, हम भी अपना गौरव खो बैठे थे, फिर से हमारा गौरव वापस मिला।

तो दयानंद ने हिंदू समाज की बड़ी सेवा की। लेकिन हिंदू समाज की सेवा धर्म की सेवा नहीं है। अक्सर तो ऐसा होता है कि हिंदू समाज की सेवा, जैन समाज की सेवा, ईसाई समाज की सेवा धर्म-विरोधी होंगी। क्योंकि धर्म की सेवा तो मनुष्य मात्र की सेवा है। उसमें हिंदू-मुसलमान-ईसाई का भेद नहीं होता।

तो तुम पूछते हो कि "स्वामी जी ने क्या मानव-कल्याण के लिए कुछ भी नहीं किया?"

मानव-कल्याण के लिए तो कुछ भी नहीं किया। हिंदू-कल्याण के लिए बहुत कुछ किया। मगर हिंदू-कल्याण मानव-कल्याण नहीं है। और अक्सर तो ऐसा होगा कि हिंदू-कल्याण मानव-कल्याण के विपरीत जाएगा। जाएगा ही। क्योंकि यह धारणा ही कि कोई हिंदू है, मनुष्य-जाति के विपरीत ले जाती है। यह तुम्हें तोड़ती है, जोड़ती नहीं।

तो मेरे मन में आर्यसमाज का धर्म की तरह कोई स्थान नहीं है। मैं आर्यसमाज को गिनता हूं समाजवाद, कम्यूनिज्म, ब्रह्मसमाज, इस तरह के आंदोलनों में एक। महत्वपूर्ण आंदोलन, मगर धर्म की दृष्टि से शून्य है उसका मूल्य। समाज और राजनीति की दृष्टि से मूल्य अलग हैं, लेकिन उन मूल्यों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

इसलिए मैं तुमसे कहना चाहूंगा, हरिदेव, कि तुम सोच लेना। मेरे पास संन्यस्त होने का अर्थ होता है कि फिर तुम आर्यसमाजी नहीं रहे। अगर आर्यसमाजी रहना हो, छोड़ो संन्यास की बात। यह दो टूक है, सीधी-सीधी बात है। अगर यह साफ न हो तो अभी रुको, जब साफ हो जाए तब संन्यास ले लेना।

मैं तुम्हारे जीवन में किसी तरह की दुविधा नहीं डालना चाहता कि तुम्हारा आधा मन आर्यसमाजी बना रहे और आधा मन संन्यासी हो जाए और तुम अड़चन में पड़ जाओ। मैं अड़चन नहीं लाना चाहता तुम्हारे जीवन में, मैं तो तुम्हारे जीवन में अड़चन मिटाना चाहता हूं। मैं तो चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में विश्राम आए, शांति आए, आनंद आए। तो मैं तुम्हें किसी दुविधा में डालना ही नहीं चाहता। मुझे संन्यासियों की संख्या बढ़ाने का कोई लोभ नहीं है।

इसलिए इस बात को तुम ठीक से सोच लेना। विचार कर लेना, जब तुम्हारे मन में साफ हो जाए कि तुममें हिम्मत है सामाजिक, राजनैतिक आंदोलनों की बकवास छोड़कर वस्तुतः उस परम के सागर में डूब जाने की, जहां न कोई आर्य है और न कोई अनार्य है; न कोई वेद है, न कोई कुरान है; तो फिर तुम आ जाओ, मेरे द्वार खुले हैं। फिर तुम्हारा स्वागत है।

चौथा प्रश्नः स्वप्न अगर सत्य की छाया है, तो क्या स्वप्न के सहारे सत्य को नहीं खोजा जा सकता है?

स्वप्न निश्चित ही सत्य की छाया है। इसलिए प्रश्न बड़ा मूल्यवान है कि अगर स्वप्न सत्य की छाया है, तो क्या स्वप्न के सहारे हम सत्य को नहीं खोज सकते हैं?

नहीं, स्वप्न सत्य की छाया है, स्वप्न को छोड़ोगे तो सत्य को खोज पाओगे। अगर छोड़ने को सहारा लेना कहते हो, तब तो ठीक। लेकिन अगर स्वप्न का सहारा लेकर बढ़े तो और स्वप्न में चले जाओगे।

फर्क समझो! आकाश में चांद है, शरद पूर्णिमा की रात है, और एक झील में चांद का प्रतिबिंब बन रहा है, छाया बन रही है। जो झील में चांद बन रहा है, वह असली चांद की ही छाया है, इसलिए जुड़ा तो असली चांद से ही है। हालांकि झूठ है। सब झूठ सच से जुड़े होते हैं। नहीं तो झूठ चलेंगे कैसे? बिना सच के झूठ चल नहीं सकता एक कदम। झूठ को उधार लेने पड़ते हैं पैर सच के। सच के सहारे ही चलता है। इसीलिए तो हर झूठा आदमी हर तरह का उपाय करता है कि मैं जो कह रहा हूं, बिल्कुल सच है। क्योंकि अगर वह यह सिद्ध न कर पाए कि यह सच है, तो उसकी झूठ चलेगी कैसे?

मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था। और गांव का जो सबसे भोला और सरल आदमी था, उसको उसने लूट लिया था। मजिस्ट्रेट ने कहा कि मुल्ला, थोड़ा तो विचार कर, यह आदमी गांव का सबसे सीधा, सरल, साधु चित्त आदमी है, तुझे यह मिला लूटने को! इतना बड़ा गांव बेईमानों का पड़ा है, किसी को भी लूट लेता।

उसने कहा, आप भी खूब बात कर रहे हैं! अरे, इसको न लूटो तो लूटो किसको? यह अकेला ही तो लुटने को राजी है। क्योंकि यह अकेला ही मुझ पर भरोसा करता है। इस गांव में और तो कोई मुझ पर भरोसा करने वाला नहीं। और जब तक कोई भरोसा न करे, लूटो कैसे? महाराज, आप भी खूब बातें कर रहे हैं! यह मैं जानता हूं कि सीधा-सरल है, इसीलिए तो लूटा। सच पूछो तो यह प्रमाण-पत्र है कि यह आदमी सीधा-सरल है। इसकी साधुता सिद्ध होती है, क्योंकि मैंने इसको लूटा, और यह लुट गया। और यह अभी भी मुझ पर भरोसा करता है। अगर अदालत से कभी छूटने का मौका मिला तो यह फिर मुझे मौका देगा--यह आदमी सच में सरल है।

मगर, सरल को ही लूटा जा सकता है, यह ख्याल किया? लूट के लिए भी कोई भरोसा करने वाला तो चाहिए न! झूठ के लिए भी कोई माने कि सच है, तो ही तो झूठ चलता है। अन्यथा झूठ नहीं चल सकता। चांद अगर आकाश में न हो तो झील में प्रतिबिंब तो नहीं बन सकता न! चांद के बिना तो नहीं बनता--अमावस की रात में तो नहीं बनता। तो एक बात तो तय है कि प्रतिबिंब आकाश के चांद से जुड़ा है। इसलिए हम प्रतिबिंब का आधार मानकर चांद की खोज कर सकते हैं।

लेकिन ख्याल रखना--अब फर्क समझना होगा--अगर तुमने प्रतिबिंब को आधार माना तो तुम क्या करोगे? पानी में डुबकी लगाओगे चांद को खोजने के लिए? तब तो चांद तो खो ही जाएगा, प्रतिबिंब भी खो जाएगा। क्योंकि जैसे ही तुम पानी में उतरे कि पानी डांवाडोल हुआ कि प्रतिबिंब भी बिखर गया। तो प्रतिबिंब का सहारा लेकर अगर तुम झील के भीतर उतरे, भीतर गए डुबकी मारकर कि देखें चांद कहां है, तो तुम चांद से बहुत दूर निकल जाओगे।

हां, प्रतिबिंब का सहारा लेने का इतना ही अर्थ होता है--चूंकि प्रतिबिंब उलटा है, इसलिए उलटे चलो। जहां प्रतिबिंब दिखायी पड़ता हो, उससे उलटे चलो, उससे विपरीत चलो, प्रतिबिंब को छोड़ो, तो तुम सत्य के करीब पहुंचोगे।

जैसे तुम दर्पण के सामने खड़े हो, दर्पण में दिखायी पड़ रहे हो--छोटे बच्चे धोखा खा जाते हैं। छोटे से बच्चे को पहली दफा जब दर्पण के सामने रखो, तो वह बड़ा हैरान होता है, टटोलकर देखता है। पीछे भी जाकर देखता है घसिटकर कि आईने के पीछे कोई बैठा है? उसकी बिल्कुल समझ में नहीं आता कि यह मामला है क्या? वह अपने को पहचानता भी नहीं, अभी अपनी शक्ल की भी पहचान नहीं कि यह मैं ही हूं! छूने की कोशिश करता है, खेलने की कोशिश करता है इस बच्चे के साथ, लेकिन कुछ पकड़ में नहीं आता। घबड़ा भी जाता है, रोने भी लगता है। और रोने लगता है तो बच्चा भी रोता है, और भी घबड़ाहट बढ़ जाती है। हंसता है तो बच्चा हंसता है। लेकिन छोटा बच्चा कोशिश करता है कि दर्पण में कोई छिपा है। वैसी ही हमारी कोशिश चल रही है।

हम नासमझ, अज्ञानी संसार के दर्पण में परमात्मा को खोज रहे हैं जगह-जगह। शायद धन में छिपा हो, पद में छिपा हो, प्रतिष्ठा में छिपा हो, मोह-ममता में छिपा हो। खोज रहे हैं। हर जगह दीवाल से टकरा जाते हैं। कभी कुछ मिलता नहीं, मगर खोज जारी रहती है।

अगर इसका सहारा लेना है तो सहारा लेने का एक ही मतलब होगा, इसके विपरीत चलो, इससे उलटे चलो। क्योंकि प्रतिबिंब उलटा बना है, इसलिए उलटे जाने से सत्य के करीब आओगे।

धूम-मेघ छाए आकाश
जन्मे हैं जंग लगी चिमनी के गर्भ से

जुड़ न सके पावस के रसमय संदर्भ से

आंधी में उड़ते ज्यों फटे हुए ताश

झुलस गए पौधे सब नदी पार खेत के

छूट गए ऊसर में चिह्न किसी प्रेत के

ओर-छोर फैला है सांवला प्रकाश

इतनी तो कभी न थीं बांहें असमर्थ

खोल नहीं पाती हैं जीने का अर्थ

खोयी प्रतिबिंबों में बिंब की तलाश

धूम-मेघ छाए आकाश

खोयी प्रतिबिंबों में बिंब की तलाश

जिसको हम खोज रहे हैं, जिस बिंब को हम खोज रहे हैं, जिस मूल को हम खोज रहे हैं, वह प्रतिबिंबों में खो गया है।

इतनी तो कभी न थीं बांहें असमर्थ

अब जब तुम दर्पण के सामने बैठकर अपनी ही छाया को दर्पण में पकड़ोगे तो लगेगा कि बांहें बिल्कुल असमर्थ हैं।

इतनी तो कभी न थीं बांहें असमर्थ

खोल नहीं पाती हैं जीने का अर्थ

खोयी प्रतिबिंबों में बिंब की तलाश

ऐसे जीवन का अर्थ खुलेगा भी नहीं। प्रतिबिंबों के सहारे सत्य खोजा जा सकता है, अगर तुम प्रतिबिंबों के विपरीत चलो। इसीलिए तो धन इकट्ठा करने से शायद सत्य के मिलने का उतना संबंध नहीं जुड़ता, जितना धन को दान कर देने से जुड़ता है। यह विपरीत चलना हुआ। साधारण मन तो कहता है, धन इकट्ठा करो। असाधारण मन कहता है, दान कर दो, मौत तो ले ही लेगी, छीन ही लेगी। इसके पहले कि छीन ले, लुटा दो। जो छिन ही जाएगा, उसको लुटाने का मजा तो कम से कम ले लो। जो मौत ले ही जाएगी... ।

एक अमरीका का बहुत बड़ा करोड़पति मरने के करीब था, तो उसका परिवार सब इकट्ठा हो गया। उसका वकील आया और उसने कहा, आप अपनी वसीयत करवा दें। तो उस करोड़पति ने आंख खोली और एक ही लाइन बोला, उसने कहा, वसीयत में लिखो कि मैं होशियार आदमी था, जो भी मैंने कमाया सब लुटा दिया। अब वसीयत में मेरे पास करने को कुछ है नहीं। जिस तरह मैंने कमाया, मेरे बच्चे भी उसी तरह कमाएं और जिस तरह मैंने लुटाया, उसी तरह मेरे बच्चे भी लुटा दें। मैं इतना नासमझ न था कि इकट्ठा करके और दूसरों के लिए छोड़ जाऊं। जब छोड़ ही जाना था तो मैंने लुटा दिया।

धन के संग्रह से शायद सत्य की झलक उतनी नहीं मिलती, जितना धन के त्याग से मिल जाती है। पद की पकड़ से शायद सत्य की उतनी झलक नहीं मिलती, जितना पद के त्याग से मिल जाती है।

इसलिए तो महावीर और बुद्ध सड़क के भिखारी हो गए, सिंहासन छोड़ दिया। तुम्हारे हिसाब से तो नासमझ ही थे। सिंहासन मिलता कहां! कितनी मुश्किल से मिलता है! मिला-मिलाया छोड़ दिया। पागल रहे होंगे। लेकिन छोड़कर कुछ और पाया जो बड़ा था, उलटे चले। आदमी का मन भीड़-भाड़ में जाने का होता है,

जो एकांत में चला जाता है, उसको मिलता। आदमी का मन तो होता है--भीड़-भाड़, अकेले में तो मन भांय-भांय करता है, घबड़ाहट होती है। अकेले बैठे नहीं कि चैन नहीं पड़ता है--कहां जाएं, कहां न जाएं? क्या करें, क्या न करें? किससे मिलें, किसको बुला लें? कोई तो चाहिए। मित्र न मिले तो दुश्मन सही, मगर कोई तो चाहिए। अकेले? अकेले में तो बड़ी घबड़ाहट होती है।

तो मनुष्य का मन तो भीड़ की तरफ जाता है। भीड़ में तुम परमात्मा को न पा सकोगे। भीड़ तो प्रतिबिंब देगी। भीड़ के विपरीत। इसलिए जिन्होंने ज्ञान को खोजा वे जंगल चले गए, पहाड़ चले गए, दूर एकांत में गुफाओं में बैठ गए। वे प्रतीक हैं इस बात के कि उलटे जा रहे हैं।

बुझा-बुझा मन
थका-थका तन
भटका हूं मैं कहां-कहां
किसने दी आवाज मुझे
मैं खिंचा चला आया पीछे
जैसे डोर किसी बंसी की
मछली को ऊपर खींचे
यह अबूझ बेनाम उदासी
यह तन से निर्वासित मन
यह संदर्भहीन पीड़ाएं
दर्पन में प्रतिबिंबित दर्पन
किसी हृदय में
किसी नजर में
खटका हूं मैं कहां-कहां
कितना विस्मय है
अपने में ही सीमित रह जाने में
जैसे दीया लिए हाथों में
उतर रहा तहखाने में
नंगे पांव झुलसते मरुथल में
निर्झर का अन्वेषण
आह, सृजन से पूर्व
मनःस्थितियों के दुर्निवार ये क्षण
कभी भाव पर
कभी बिंब पर
अटका हूं मैं कहां-कहां
बुझा-बुझा मन
थका-थका तन

भटका हूं मैं कहां-कहां

हमारी सारी भटकन क्या है? हमारी भटकन यही है कि जो है उसे न खोजकर हम उसकी छाया खोज रहे हैं।

इसीलिए तो इस देश में ज्ञानियों ने संसार को माया कहा है। माया का अर्थ है, जो नहीं है और प्रतीत होता है कि है। झील में दिखने वाला चांद है या नहीं है? अगर तुमसे कोई पूछे कि हां और न में जवाब दो, क्या करोगे? अगर वह कहे, हां और न में जवाब दो, ज्यादा बातचीत हम चाहते नहीं। झील में दिखायी पड़ने वाला चांद है या नहीं? तो क्या तुम कहोगे, है? या तुम कहोगे, नहीं? तुम कहोगे, भाई, है और नहीं में तो उत्तर नहीं हो सकता। हां और न में उत्तर नहीं हो सकता, थोड़ी सुविधा दो मुझे बोलने की। है भी और नहीं भी है। है भी, क्योंकि साफ दिखायी पड़ रहा है कि है। और मुझे पता है कि जब नहीं होता तब झील अलग ढंग की होती है। इसलिए है तो। और है भी नहीं, क्योंकि उतरकर बहुत बार देखा, कुछ पाया नहीं। तो माया है।

माया बड़ा अदभुत शब्द है। माया का अर्थ यह नहीं होता कि जो नहीं है, माया का अर्थ होता है, जो नहीं है और फिर भी है जैसा भासता है। जो है और फिर भी नहीं है। दोनों के मध्य में है माया--होने और न होने के। परमात्मा है और माया उसका प्रतिबिंब है। सिर्फ छाया है।

इसलिए जब तुम भीड़-भाड़ में भागकर, धन-पद-प्रतिष्ठा की दौड़ को दौड़कर थक जाओगे और अपने भीतर उतरने लगोगे, अपने एकांत में उतरोगे, उलटे चलोगे--

कितना विस्मय है
अपने में ही सीमित रह जाने में
तब तुम निश्चित विस्मय से भर जाओगे, अपूर्व आनंद से।
कितना विस्मय है
अपने में ही सीमित रह जाने में
जैसे दीया लिए हाथों में
उतर रहा तहखाने में

जैसे कोई दीया लेकर अपने ही भीतर के तहखाने में उतर रहा! उस दीए का नाम, बोध; उस दीए का नाम, ध्यान। उस ध्यान के दीए को लेकर जब कोई अपने ही भीतर के तहखाने में उतरता है, तब मिलन होता है उससे, जो है। तब शरद पूर्णिमा के चंद्रमा से मिलन होता है।

कभी भाव पर
कभी बिंब पर
अटका हूं मैं कहां-कहां
बुझा-बुझा मन
थका-थका तन
भटका हूं मैं कहां-कहां

यात्रा को उलटाओ। संन्यास और संसार विपरीत यात्राएं। संसार का अर्थ होता है, धन पर पकड़; संन्यास का अर्थ होता है--छोड़ना, पकड़ छोड़ना। संसार का अर्थ होता है, मेरा-तेरा, बहुत आग्रह से। संन्यास का अर्थ होता है, कौन मेरा, कौन तेरा! न कोई मेरा, न कोई तेरा। संसार का अर्थ होता है, क्षुद्र को इकट्ठा करते रहो, घर को बना लो कबाड़खाना, उसी कबाड़खाने में डूबो और मर जाओ। संन्यास का अर्थ होता है, सार को गहो, असार को छोड़ो। आम-आम चूस लो, गुठली-गुठली फेंक दो। संसार का अर्थ होता है, गुठलियां इकट्ठी करते रहो, आम चूसने की तो फुर्सत कहां है! गुठलियां इकट्ठी करते रहो और फिर सिर मारो और तड़फो और कहो किकृ

थका-थका तन
बुझा-बुझा मन
भटका हूं मैं कहां-कहां

और गुठलियां इकट्ठी कर ली हैं। और हर गुठली के साथ रस भी था। क्योंकि हर माया के साथ ब्रह्म जुड़ा है। और हर प्रतिबिंब का मूल है। मगर तुम उलटे चले गए।

जीने की प्रतिक्रिया में
मिट रहे हैं
जुड़ने की प्रतिक्रिया में
कट रहे हैं
क्यों न अब उलटे चलें हम
मिटें,
ताकि जी सकें हम
कटें,
ताकि जुड़ सकें हम

इस उलटी यात्रा को ही जिसने समझ लिया, वह सत्य से ज्यादा दूर न रह सकेगा। आंख तुमने हटा ली झील में बनते हुए प्रतिबिंब से, तो तत्क्षण तुम्हारी आंख आकाश में दौड़ते चांद को पकड़ लेगी। देर नहीं लगेगी। और आकाश का चांद कितना ही दूर हो, झील के चांद से पास है।

देखते नहीं, आदमी आकाश के चांद पर पहुंच गया। आदमी चल लिया आकाश के चांद पर। झील के चांद पर आदमी कभी नहीं पहुंच सकेगा। क्योंकि जो है ही नहीं, भासता मात्र है, उस पर कैसे चलोगे?

पांचवां प्रश्नः क्या सारी जिंदगी हारे ही हारे जीना होगा?

तुम पर निर्भर है। अगर जीत की बहुत आकांक्षा है तो हारे-हारे ही जीना होगा। अगर जीत की आकांक्षा छोड़ दो तो अभी जीत जाओ। फिर हार कैसी!

हार का अर्थ ही होता है कि जीतने की बड़ी अदम्य वासना है। उसी वासना के कारण हार अनुभव में आती है। कभी ख्याल किया, छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है, बाप ऐसा थोड़ा दो-चार हाथ-पैर चलाकर जल्दी से लेट जाता है, छोटा बच्चा छाती पर बैठ जाता है और चिल्लाता है और प्रसन्नता से नाचता है कि गिराया, बाप को चारों खाने चित्त कर दिया। और बाप नीचे पड़ा प्रसन्न हो रहा है। चारों खाने चित्त होने में प्रसन्न हो रहा है, बात क्या है! क्योंकि बाप जानता है, हार स्वीकार की है उसने। तो हार में भी हार नहीं है।

लेकिन अगर कोई दूसरा आदमी तुम्हारी छाती पर चढ़ जाए, तो फिर जी कचोटता है, हार हार मालूम होती है। हार इसीलिए मालूम होती है, क्योंकि तुम जीतना चाहते हो। अगर तुम हार को स्वीकार कर लो तो फिर हार कैसे मालूम होगी! तुम्हें अपमान इसीलिए तो अपमान मालूम होता है, क्योंकि तुम मान चाहते हो। अगर मान ही न चाहो तो अपमान कैसा!

इसे थोड़ा समझना! तुम्हें निर्धनता इसीलिए तो सालती है, खलती है, क्योंकि धन का पागलपन चढ़ा हुआ है। अगर धन का पागलपन न हो, तो निर्धनता क्यों सालेगी, क्यों खटकेगी? तुम्हें जो चीज अखरती हो, ख्याल कर लेना, उससे उलटे की तुम्हारे भीतर चाह है। फिर तुम्हें अखरती ही रहेगी, फिर तुम्हारे पास कितना ही हो जाए!

अमरीका का बड़ा करोड़पति एंड्रू कारनेगी मरा तो दस अरब रुपए छोड़कर मरा, लेकिन मरते वक्त भी बेचैन था और परेशान था। और जब उसकी आत्मकथा लिखने वाले लेखक ने उससे दो दिन पहले पूछा, कि आप तो प्रसन्न मर रहे होंगे! क्योंकि आप दुनिया के सबसे बड़े धनी हैं, इतना नगद पैसा किसी के पास नहीं है जितना आपके पास है! एंड्रू कारनेगी ने कहा, कहां की बातें कर रहे हो? मैं असफल आदमी! मैं रोता हुआ मर रहा हूं। क्योंकि मैंने योजना बनायी थी सौ अरब रुपए इकट्ठे करने की और दस ही अरब कर पाया। यह भी कोई जीत है, नब्बे अरब की हार है।

अब तुम सोचो, अगर सौ की योजना हो तो स्वभावतः दस अरब रुपए कुछ नहीं मालूम पड़ते। नब्बे अरब की हार! और अगर तुमने कुछ भी न पाना चाहा हो तो दस पैसे भी बहुत मालूम पड़ते हैं कि दस पैसे मिल गए। चाहा तो तुमने यह भी नहीं था।

इसलिए फकीर छोटी-छोटी चीज से प्रसन्न हो जाता है। संन्यासी छोटी-छोटी चीज से प्रसन्न हो जाता है। मान ही नहीं पाता कि मेरी कोई योग्यता तो थी ही नहीं और इतना मिल गया! कोई कारण तो न था कि मिले और मिल गया। तो उसे प्रभु की अनुकंपा मालूम होती है, प्रसाद मालूम होता है।

और दूसरी तरफ संसारी है, कितना ही मिलता चला जाए, और उसकी रींगा-झींगी, उसका रोना-धोना बना रहता है! वह सिर पीटता ही रहता है। कुछ न कुछ कमी खलती ही रहती है--कुछ और चाहिए, कुछ और चाहिए। चाह का कोई अंत नहीं है। इसलिए तुम कितना ही पा लो, चाह सदा आगे छलांग लगा जाती है और रोना जारी रहता है।

तुम पूछते हो कि "क्या सारी जिंदगी हारे ही हारे जीना होगा?"

मैं तुमसे कहता हूं, तुम पर निर्भर है। अगर जीतकर जीना है तो जीत की बात ही छोड़ दो। जीयो, जीत की बात ही छोड़ दो। इसी को तो समर्पण का जीवन कहते हैं। हार को स्वीकार कर लो। यहां जीत का मतलब ही क्या है! यहां कोई पराया है, जिससे जीतना है! यहां कोई दुश्मन है! यहां एक ही परमात्मा है, जीतना किससे है? उसके चरणों में सिर रख दो और तुम जीत गए। इसीलिए तो कहते हैं कि प्रेम में जो हार जाता है, वह जीत गया। प्रेम की हार जीत है।

तुम अहंकार की जीत पाना चाहते हो, हारोगे--हारते ही रहोगे, अहंकार की हर जीत से नयी हार निकलेगी। और प्रेम की हर हार नयी जीत का द्वार खोल देती है। इस विरोधाभास को समझना, यह जीवन का परम नियम है, क्योंकि यहां कोई पराया नहीं है। ये वृक्ष, ये चांद-तारे, ये लोग, ये पशु-पक्षी, ये सब तुम्हारे हैं, ये तुम हो, यह तुम्हारा ही फैलाव है। तुम इनके हो, ये तुम्हारे हैं, यहां अलग कौन है! यहां अलग-थलग होने का उपाय क्या है? किससे जीत रहे हो?

ऐसा समझो कि सागर की दो लहरें एक-दूसरे से कशमकश कर रही हैं, कुश्तम-कुश्ती कर रही हैं कि जीतना है और किसी को पता नहीं, दोनों को ख्याल नहीं कि हम एक ही सागर की लहरें हैं, जीतना किससे?

समझो कि मेरे बाएं और दाएं हाथ कुश्ती करने लगें--चाहो तो करवा सकते हो कुश्ती दोनों हाथों की, क्या अड़चन है, लड़ा दो! और तब मुश्किल खड़ी हो सकती है कि कौन जीते, कौन हारे! फिर तुम्हारी मर्जी, चाहे बाएं को जिता लो, चाहे दाएं को जिता लो। मगर दोनों हालत में बात फिजूल थी। दोनों हाथ तुम्हारे, कैसी हार, कैसी जीत! यहां दूसरा नहीं है, दूजा नहीं है।

इस अनुभव का नाम ही समर्पण है कि यहां कोई दूसरा नहीं है, हम ही हैं। तो न अब कोई हार है, अब न कोई जीत है।

तुम पर निर्भर है। समर्पण जिसने किया, वह जीत गया। जो हारा, वह जीत गया।

इस तरह तो दर्द घट सकता नहीं
इस तरह तो वक्त कट सकता नहीं
आस्तीनों से न आंसू पोंछिए
और ही तदबीर कोई सोचिए
यह अकेलापन अंधेरा यह उदासी यह घुटन
द्वार तो हैं बंद, भीतर किस तरह झांके किरन
बंद दरवाजे जरा से खोलिए
रोशनी के साथ हंसिए, बोलिए
मौन पीले पात सा झर जाएगा
तो हृदय का घाव खुद भर जाएगा
एक सीढ़ी है हृदय में भी महज घर में नहीं
सर्जना के दूत आते हैं सभी होकर वहीं
ये अहं कीशृंखलाएं तोड़िए
और कुछ नाता गली से जोड़िए
जब सड़क का शोर भीतर आएगा
तब अकेलापन स्वयं मर जाएगा
आइए कुछ रोज कोलाहल भरा जीवन जिएं
अंजुरी भर दूसरों के दर्द का अमृत पिएं
आइए बातून अफवाहें सुनें
फिर अनागत के नए सपने बुनें

यह स्लेटी कोहरा छंट जाएगा

तो हृदय का दर्द खुद घट जाएगा

तुमने अपने को अकेला मान रखा है, अलग मान रखा है, इससे तुम पीड़ित हो।

आइए कुछ रोज कोलाहल भरा जीवन जिएं

क्या मतलब? मतलब कि थोड़ी देर को इस विराट से अपने को जोड़ें, इन पक्षियों की चहचहाहट से जोड़ें, इन वृक्षों के फूलों से जोड़ें, इन चांद-तारों की किरणों से जोड़ें।

बंद दरवाजे जरा से खोलिए

रोशनी के साथ हंसिए, बोलिए

थोड़ा जुड़िए। ऐसे अलग-थलग छोटे से द्वीप बनकर मत रह जाइए, महाद्वीप बनिए। थोड़ा जोड़िए अपने को। एक क्षण तो अलग जी सकते नहीं, फिर अलग होने का मतलब क्या है?

श्वास तो प्रतिपल चाहिए न बाहर से, भोजन तो प्रतिदिन चाहिए न बाहर से, जल तो प्रतिदिन चाहिए न बाहर से! जो अभी बाहर था अभी भीतर हो जाता है, फिर भीतर था, फिर बाहर हो जाता है। बाहर-भीतर, बाहर-भीतर, लेन-देन पूरे समय चल रहा है। एक क्षण को तुम बाहर से टूटकर जी कैसे सकते हो? इसलिए न कुछ भीतर, न कुछ बाहर।

एक सीढ़ी है हृदय में भी महज घर में नहीं

सर्जना के दूत आते हैं सभी होकर वहीं

जरा भीतर झांकिए, एक सीढ़ी है, जहां से हम परमात्मा से जुड़े हैं, विराट से जुड़े हैं।

यह अकेलापन अंधेरा यह उदासी यह घुटन

द्वार तो हैं बंद, भीतर किस तरह झांके किरन

नहीं!

इस तरह तो दर्द घट सकता नहीं

इस तरह तो वक्त कट सकता नहीं

आस्तीनों से न आंसू पोंछिए

और ही तदबीर कोई सोचिए

क्या तदबीर करें कि जीवन हार-हार का न रह जाए? हार जाओ, फिर कोई हार नहीं। यही तदबीर है। मिट जाओ, फिर तुम्हें कोई न मिटा सकेगा, मौत भी न मिटा सकेगी। अहंकार को जाने दो। फिर तुम्हें मिटाने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं, न कोई हराने की सामर्थ्य किसी में है।

यह अहंकार ही अपमान करवाता है, यह अहंकार ही असफलता लाता है, यह अहंकार ही हराता है, यह अहंकार हजार जहर के घूंट पिलाता है, फिर भी तुम अमृत समझकर पीए जा रहे हो, तो हारोगे, तो रोओगे, तो तुम्हारा सारा जीवन आंसुओं की एक लंबीशृंखला हो जाएगी।

यहशृंखला फूलों में बदल सकती है। जरा सा रुख बदलिए। जरा द्वार खोलिए। जरा जुड़िए, मिलिए। जरा देखिए कि सब एक है। इस उदघोषणा का नाम ही वेदांत है। इस उदघोषणा का नाम ही धर्म है। इस उदघोषणा का नाम ही बुद्धत्व है।

छठवां प्रश्नः आपके पास आकर मुझे लगता है कि मैंने जीवन में सब कुछ पा लिया। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि यहां आकर मैंने अपना जीवन गंवा दिया।

दोनों ही बात सच हैं। और दोनों साथ ही होंगी तो ही हो सकती हैं। यहां आकर कुछ गंवाना होगा तभी तो कुछ पाओगे न! जितना गंवाओगे, उतना ही पाओगे। उसी अनुपात में पाओगे। जो कुछ भी न गंवाएंगे, वे कुछ भी न पाएंगे। वे खाली हाथ आएंगे और खाली हाथ जाएंगे। मुझ पर फिर नाराज मत होना। फिर यह मत कहना कि हम गए भी, आए भी, कितना गए, कितना आए, कुछ न मिला। गंवाओगे तो ही पाओगे। दांव पर लगाओगे तो ही पाओगे।

तो पूछा ठीक है, गीता ने पूछा है, "आपके पास आकर मुझे लगता है कि मैंने जीवन में सब कुछ पा लिया। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि यहां आकर मैंने अपना सारा जीवन गंवा दिया।"

इन दोनों में विरोध नहीं है। गंवाया, इसीलिए पाया। कुछ थोड़ा-बहुत, गीता, बचा रखा हो, उसको भी निकाल ले, उसको भी गंवा दे। जरूर थोड़ा-बहुत बचाया होगा, नहीं तो यह प्रश्न उठता नहीं। अगर बिल्कुल ही गंवा दिया होता तो यह प्रश्न ही नहीं उठता, तुझे खुद ही दिखायी पड़ जाता कि यह तो गंवाना पाना हो गया।

गंवा दो, रत्ती-रत्ती, तोला-तोला, कुछ बचाओ मत, तो मिल जाएगा सब। क्योंकि यह तो प्रक्रिया ही अपने को खोकर पाने की है। और गंवाकर पछताओगे न, इतना कहता हूं, बचाकर जरूर पछताओगे। फिर मत कहना। क्योंकि यह हो भी सकता है, यह अवसर आज है, कल न हो। फिर पछताओगे कि गंवा ही क्यों न दिया!

वह तितली कागजी थी
जो कभी मेरे मन-कुसुम को बेध गयी
वह आस्था मृगजल थी
जो आंखों के दर्पण में मोती-सी चमकी थी
वह विश्वास जो हिमालय-सा अडिग
पानी पर बहता हुआ काठ का टुकड़ा था
वह सत्य शिव सुंदर जो आत्मा से उदभूत
महज एक दिखावा था
मेरी जिंदगी में सभी कुछ जो था या है
झूठ निकला
मित्रो, औरों से तुम ठीक ही कहते होओगे
मैं मूर्ख निकला

अगर तुमने न गंवाया तो एक दिन तुम यही पाओगे कि तुमने बड़ी मूढ़ता कर ली। जो बचाया, पानी पर बहता हुआ काठ का टुकड़ा था। जो बचाया, आंखों के दर्पण में मोती-सी चमकी थी, वह आस्था मृगजल थी।

वह तितली कागजी थी

जो कभी मेरे मन-कुसुम को बेध गयी

महज एक दिखावा था

मेरी जिंदगी में सभी कुछ जो था या है

झूठ निकला

मित्रो, औरों से तुम ठीक ही कहते होओगे

मैं मूर्ख निकला

गंवा लो, तो तुम्हें यह पछतावा न होगा। और गंवाओगे क्या, तुम्हारे पास जो है काठ का टुकड़ा है। चाहे तुम सोना समझ रहे होओ। मगर तुम्हारे पास गंवाने को कुछ वास्तविक संपदा थोड़े ही है।

इसलिए मैं बार-बार कहता हूं कि जो नहीं है तुम्हारे पास, उसे जाने दो। है ही कहां? और तब तुम्हारे पास जो है, वह प्रगट हो जाएगा। इसलिए मैं ऐसा भी कहता हूं कि जो तुम्हारे पास नहीं है, उसे मुझे छीन लेने दो, ताकि मैं तुम्हें वह दे सकूं जो तुम्हारे पास है। लेकिन लोग बड़े घबड़ाते हैं। लोग ऐसे हैं कि सपने टूट जाते हैं तो उन पर भी रोते हैं।

छोटे-छोटे बच्चे देखे न, कभी-कभी छोटा बच्चा सुबह से उठकर रोने लगता है, क्योंकि वह सपने में एक बड़ी गुड़िया लिए खेल रहा था--बड़ी सुंदर गुड़िया थी--वह कहता है, कहां है मेरी गुड़िया? टटोलता है बिस्तर में। मां कहती है, सपना था, मगर वह सुनता नहीं। अभी सपने और सच में उसे भेद ही नहीं हुआ है।

सपनों पर भी लोग रोते हैं। बहुत कम लोग हैं जो वस्तुतः मानसिक रूप से प्रौढ़ हो पाते हैं। अधिक लोग तो सपनों पर ही रोते हैं। किसी का प्रेम था और टूट गया।

परसों एक युवक आया, किसी के प्रेम में पड़ गया है। कहने लगा, मर जाऊंगा अगर यह स्त्री न मिली। तेरी मर्जी! मगर कोई कभी मरता-वरता नहीं। एक आदमी ने--उससे मैंने कहा--एक स्त्री से ऐसे ही कहा था कि अगर तूने मुझे न चुना, या मेरे साथ विवाह न किया, मैं मर जाऊंगा। मान रखना, मर जाऊंगा, बचूंगा नहीं। और निश्चित वह मरा, साठ साल बाद।

मर जाऊंगा? यह स्त्री कल तक दिखी भी नहीं थी, तब तक जी रहे थे, कोई अड़चन न थी इसके न होने से। आज इसके होने से, लगता है अगर न मिली तो मर जाऊंगा। कल फिर इसे भूल जाओगे। ये सपने हैं, उठते हैं, जाते हैं, टूट जाते हैं, बबूले हैं। कल फिर भूल जाओगे। कल फिर किसी और स्त्री के मोह में पड़ जाओगे और यही फिर कहने लगोगे कि मर जाऊंगा अगर न मिली।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री से कह रहा था कि अगर तू मुझे न मिली तो मर जाऊंगा। तो उस स्त्री ने कहा, मुल्ला, सच कहते हो? उसने कहा, यह मेरी पुरानी आदत है, यह मैं कई स्त्रियों से कह चुका। यह कोई नया नहीं है, इसका मुझे पुराना अभ्यास है।

सपने पर तुम जान दांव पर लगाने को तैयार हो जाते हो। कोई कहता है, अगर पद न मिला तो मर जाऊंगा। कोई कहता है, अगर धन न मिला तो मर जाऊंगा। और अगर नहीं मिलते तो लोग बड़े रोते हैं।

छोड़ो भी, क्या सपनों के शव पर रोते हो
अरे, किरन का अतिथि द्वार पर खड़ा हुआ
तुम हो कि अंधेरे के स्वागत में लीन हुए
जीवन का मंगल-गीत बुलावा भेज रहा
तुम हो कि मर्सिया पढ़ते हो गमगीन हुए
पुतलियां दृगों की बांध रहीं नूतन पलना
तुम हो कि अभी तक पलकों में शव ढोते हो
छोड़ो भी, क्या सपनों के शव पर रोते हो
कम हो गया अगर तो नव मोती बींधो
पर न अधूरी छोड़ो जीवन की माला
आंसू पोंछो सब शोक भुला मुस्काओ तुम
वह सुनो प्रभाती गाता पथ में उजियाला
सपना ही तो टूटा है, नहीं हृदय टूटा
फिर क्यों जीवन के प्रति निराश तुम होते हो
छोड़ो भी, क्या सपनों के शव पर रोते हो

और लोग रोते हैं। खूब रोते हैं, जार-जार रोते हैं। जीवन में रोना मिटता ही नहीं। जब तक सपने साफ-साफ समझ में नहीं आते कि सपने हैं, तब तक आदमी रोता है। कभी इस सपने के टूट जाने पर, कभी उस सपने के टूट जाने पर। और सपने तो टूटेंगे ही, सपने तो टूटने को ही हैं। सपनों को तुम कितना ही सम्हालकर रखो, रख नहीं सकते, वे टूटेंगे ही। वे बड़े नाजुक हैं। कांच के बर्तन हैं। वे टूटेंगे ही, फिर रोओगे।

गीता से मैं कहना चाहूंगा, जो तूने छोड़ा उसमें था भी क्या? जो गया, उसमें था भी क्या? और गीता को मैं भलीभांति जानता हूं, बहुत वर्षों से जानता हूं, मैंने तो कभी कुछ देखा नहीं कि इसके पास कुछ था। मगर सपने होंगे, सपने बसाए होंगे मन में। स्त्री है, सपने बसाए होंगे--शादी-विवाह करेगी, किसी धनपति से विवाह करेगी, कोई बड़ा बंगला बनाएगी, केडिलक कार खड़ी करेगी, ऐसा होगा, वैसा होगा, ऐसे सपने स्त्रियां बनाती हैं।

स्त्रियों के सपने, पुरुषों के सपने थोड़े अलग-अलग होते हैं, पर सपने तो सपने हैं। बच्चे होंगे, ऐसे सपने उसने संजोए होंगे। वही सपने चले गए और तो कुछ था नहीं जाने को। न तो कोई मकान था, न कोई केडिलक गाड़ी थी, न कुछ था। और होते भी तो भी उनके होने में क्या होता है? और फिर भी नासमझ है। क्योंकि मुझे पता है, उसने पहले विवाह भी किया था, और दुखी हो गयी, बहुत दुखी हो गयी। अपने पति को लेकर एक बार मेरे पास आयी थी, वर्षों बीत गए। तब किसी तरह पति से उसकी झंझट छुड़वायी थी। उसको मुक्त करवाया था किसी तरह कि छूट जा, अब नहीं बनता दोनों का तो क्या सार है!

कुछ था क्या, जो छूट गया हो। है तो कुछ भी नहीं हाथ में, मगर आदमी मुट्ठी बंद रखता है, सोचता है, भीतर कुछ है।

दो पागल बैठे एक-दूसरे से बात कर रहे थे। एक मुट्ठी बांधकर बोला कि अच्छा शर्त लगाता हूं, बता दे कि मेरी मुट्ठी में क्या है तो यह दस रुपए का नोट। उस आदमी ने सोचा, उसने कहा कि भाई, कुछ थोड़ा इशारा तो

दो। थोड़े इंगित, मतलब अब एकदम से संसार इतना बड़ा है! इसमें कौन सी चीज तुम्हारी मुट्ठी में हो, क्या पता! कुछ इशारा। कम से कम तीन इशारे तो चाहिए ही। मगर पहला पागल बोला कि इशारे अगर चाहते हो फिर ये दस रुपए नहीं मिलेंगे। ये दस रुपए तो मिलते ही हैं बिना इशारे के अगर तुम बोल दो। तो उसने थोड़ा सोचा, उसने कहा कि हो न हो हाथी है तेरे हाथ में।

उस पहले पागल ने धीरे से मुट्ठी खोलकर देखी और उसने कहा कि मालूम होता है तूने किसी तरकीब से देख लिया।

अब मुट्ठी में हाथी होते नहीं। हो नहीं सकते। मगर मुट्ठी बंद हो, तो कुछ भी हो सकता है--कल्पना का जाल खुला है। तुमने कभी अपनी मुट्ठी खोलकर देखी, तुम्हारे पास है क्या?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, सब आपके चरणों में छोड़ते हैं। मैंने कहा, जरा रुको, यह है क्या? वह कहते हैं, नहीं, अब सभी छोड़ते हैं। मगर मैं... जरा हिसाब-किताब तो लगा लें कि है क्या? चिंता, बेचैनी, परेशानी, क्रोध, लोभ, माया, मोह, क्या छोड़ रहे हो? और ये छोड़कर कल ऐसा मत कहना कि देखो, हमने कितना आपके चरणों में छोड़ दिया। ये सब सांप-बिच्छू छोड़ रहे हो। कुछ और छोड़ने को है भी नहीं। और कल ऐसे घूमने लगोगे कि सब दान कर आए, सब छोड़ दिया, उनके चरणों में सब रख आए। रखने को क्या है? क्या छोड़ते हो?

अगर तुम थोड़ा होश से समझोगे, मुट्ठी खोलकर देखोगे, तो तुम चरणों में झुकोगे और कहोगे कि मेरे पास तो चरणों में रखने को कुछ भी नहीं है, अपने को खाली झुका रहा हूं। लेकिन मुश्किल से कभी कोई आदमी ऐसा कहता है कि अपने को खाली झुका रहा हूं। वह अपने सपनों को ही संपत्ति मान रहा है।

तो गीता, क्या था तेरे पास जिसको तू सोचती है कि खो गया? कुछ नहीं था। कुछ नहीं होने की अवस्था को समझा लेने के लिए कुछ सपने सजा रखे थे, मान रखा था कि ऐसा-ऐसा है, वे सपने टूट गए। वे टूट ही जाने चाहिए थे। इसलिए लगता है कि--

"कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि यहां आकर मैंने अपना जीवन गंवा दिया।"

जरूर, एक तरह का जीवन तूने गंवा दिया, पागलपन का जीवन तूने गंवा दिया। एक तरह का जीवन जो तेरे पिता जीए, पिता के पिता जीए, वह तूने गंवा दिया। लेकिन तेरे पिता ने क्या पाया, तुझे पता? मरने के आखिरी दम तक संन्यास की हिम्मत न जुटा सके। आखिरी बार जब मुझे मिलने आए, मैंने उनसे कहा कि अब ज्यादा देर मत करो। तो उनको बात समझ में भी आयी, कहने लगे, हां, शरीर भी कमजोर होता जाता है, लेना तो है संन्यास, मगर जरा ठहरें। अब उनको कुछ बाधा भी न थी संन्यास लेने में। जरा ठहरें! जरा ठहरे और एक सप्ताह के भीतर तो वे चले गए। अब ऐसा अवसर उन्हें दुबारा कभी आएगा, कब आएगा, कहना बहुत मुश्किल है!

अगर तू मुझसे पूछे गीता, तो तेरे पिता ने गंवाया, तूने कुछ नहीं गंवाया है। और जो भूल तेरे पिता ने की, उसके लिए वे पछताएंगे जन्मों-जन्मों तक। क्योंकि वे आदमी खोजी थे, चाहते थे, मगर साहस न जुटा पाए। उतरने का मन था, लेकिन डांवाडोल होते रहे। तूने हिम्मत की और डूब गयी। खोया कुछ भी नहीं है। या जो कुछ भी नहीं जैसा था वही खोया है। और जो तुझे मिला है, उसका तो तू अभी ठीक-ठीक मूल्यांकन भी नहीं कर सकती कि क्या मिला है। क्योंकि अभी तो प्रत्यभिज्ञा का उपाय भी तेरे पास नहीं है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे साफ होगा कि क्या मिला है।

यह तो ऐसे ही है कि जैसे एक फकीर को हम एकदम से साम्राज्य दे दें, तो उसकी समझ में ही न आएगा पहले कि क्या मिला। सिंहासन पर बिठा दें तो वह बड़ा बेचैन ही होगा कि मामला क्या है, यह क्या दरबार, यह क्या राजमहल, यह धन-दौलत, यह सब क्या है! क्या मिला है, उसको एकदम से समझ में ही नहीं आएगा। वक्त लगेगा हिसाब-किताब जोड़ने में, पहचान करने में, इस नयी परिस्थिति में डूबने में वक्त लगेगा।

जो माया का जगत था, उससे तेरे थोड़े हाथ छूटे; और जो सत्य का जगत है, उस तरफ थोड़ी जीवन की यात्रा आगे बढ़ी है। अब पीछे लौट-लौटकर मत देखो। जो गया, जाने दो। वह कुछ था ही नहीं, इसीलिए गया। जो अपना है, वह कभी जाता ही नहीं। इसे कसौटी समझो। जो वस्तुतः अपना है, उसे खोने का उपाय नहीं है, वह हमारा स्वभाव है। और जो खो जाए, वह अपना था ही नहीं। वह जितनी जल्दी खो गया उतना अच्छा, उतना कम समय व्यर्थ हुआ, प्रभु की अनुकंपा है।

ऐसा मानकर, जो खोता हो उसे खो जाने देना और जो नया आता हो उसके स्वागत को तैयार रहना।

आखिरी प्रश्नः धारणा के बिना कैसे कोई जानेगा कि क्या पथ है और क्या कुपथ; क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य; क्या पुण्य है और क्या पाप; और अंततः क्या द्रष्टा है और क्या दृश्य?

धारणा के बिना जानने की जरूरत ही नहीं है। क्योंकि धारणा के बिना तुम हो गए कि तुम जहां हो वही पथ है। तुम जो हो, वही द्रष्टा है।

कल मैं पढ़ता था मिर्जा गालिब के संबंध में। मिर्जा गालिब तो पियक्कड़ थे, शराबी थे। एक आदमी आ गया--पंडिताऊ किस्म का आदमी, धार्मिक किस्म का आदमी--वह शराब के खिलाफ समझाने लगा। बड़ी बातें करने लगा शराब के खिलाफ। मिर्जा बड़ी देर तक सुनते रहे, फिर बोले कि भाई, एक बात तो बता कि अगर कोई शराब पीता ही रहे तो सबसे बड़ा हर्जा क्या है? सबसे बड़ा नुकसान क्या है? तो उस आदमी ने कहा, सबसे बड़ा नुकसान यह है कि शराबी आदमी कभी परमात्मा की प्रार्थना नहीं करता, कर नहीं सकता। तो मिर्जा ने जोर से ताली बजायी और कहा, अरे पागल, शराबी प्रार्थना करेगा भी किस चीज के लिए? जो चाहिए वह मिला ही हुआ है। यह तो तुम लोग करो प्रार्थना वगैरह। शराबी को प्रार्थना करने को है ही क्या और!

तुम पूछते हो कि "जिसकी धारणा खो गयी हो, वह कैसे जानेगा कि पथ क्या है?"

जानने की जरूरत ही नहीं है। जिसकी धारणा खो गयी उसका अर्थ है, मन खो गया। क्योंकि मन धारणाओं का संग्रह है। जिसका मन खो गया, वह पथ पर है। उसी को बुद्ध ने सम्यक पथ कहा है। ठीक-ठीक मार्ग कहा है। जहां मन न रहा, वहां गैर ठीक होने का उपाय न रहा।

तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। समझो कि एक आदमी चश्मा लगाने का आदी है और कोई उससे कहे कि तेरी आंख ठीक हो जाएगी, तू चश्मा छोड़! तो वह कहे मैं चश्मा छोड़ दूं तो फिर देखूंगा कैसे? हम उसको कह रहे हैं कि तेरी आंख ठीक हो जाएगी, तू चश्मा छोड़! वह कहता है, आंख ठीक हो जाएगी, वह तो ठीक, लेकिन फिर मैं देखूंगा कैसे? उसने सदा चश्मे से देखा है। वह सोचता है, चश्मे के बिना देखना होगा ही कैसे?

मन से ही हमने सदा जाना है, क्या ठीक और क्या गलत--हालांकि जान कभी नहीं पाए, मान लिया है कि यह ठीक और यह गलत। हमें कभी दर्शन तो हुआ नहीं ठीक-ठीक कि क्या गलत है और क्या ठीक है। फिर मन कहता है, यह ठीक, मगर करते कहां हम! करते तो वही जो मन कहता है कि ठीक नहीं है। करते कुछ, कहते

कुछ, मन की यही तो सब बिबूचन है, विडंबना है। मन गया कि वही होता है जो होना चाहिए। व्याख्या नहीं रह जाती, सत्य दिखायी पड़ता है, व्याख्या खो जाती है। व्याख्या और सत्य में बड़ा फर्क है।

एक गुलाब का फूल खिला, तुम कहते हो, अगर हमने सुंदर-असुंदर की धारणा छोड़ दी तो फिर हम कैसे इसके सौंदर्य का मजा लेंगे। तुमने अभी इसका मजा लिया ही नहीं है। जब तुम कहते हो, यह सुंदर है, तभी मजा खो गया। एक ऐसा भी मजा है, जब न तो सुंदर का शब्द उठता है, न असुंदर का। फूल होता है, तुम होते हो, दोनों के बीच अपार लेन-देन होता है, एक शब्द नहीं उठता, न सुंदर का न असुंदर का। तब तुम्हें इसके सौंदर्य का वास्तविक अनुभव होता है। कहते नहीं तुम कि सुंदर है, कहने की जरूरत नहीं है, स्वाद लेते हो। जब तुम कहते हो, सुंदर है, तब तो तुम सिर्फ थोथी बात कर रहे हो--तुम्हें कुछ अनुभव नहीं हो रहा है, तुमने बाप-दादों से सुना है, गांव के लोगों से सुना है, गुलाब का फूल सुंदर होता है, तो तुम कह रहे हो सुंदर है।

तुमने देखा, अभी नयी-नयी फैशन दुनिया में चली है--कैक्टस। लोग घर में कैक्टस लगाने लगे। गुलाब तो गया! अब गुलाब को कौन पूछता है! गुलाब तो पुरानी परंपरा की बात हो गयी। गुलाब तो हट गए हैं बड़े बंगलों से। यह गुलाब तो दकियानूसी हो गया है। कितने पुराने दिनों से लोग गुलाब की प्रशंसा कर रहे हैं, हटाओ! कैक्टस आ गया है। नागफनी! जिसको कभी लोग घर में नहीं लाते थे। गांव के बाहर खेत-खलिहान के आसपास लगाते थे कि जानवर वगैरह न घुस जाएं। नागफनी को कौन घर में लाता था!

अब नागफनी सम्राट होकर विराजी है। बैठकघरों में बैठी है! और लोग कहते हैं आकर, आह! कैसी प्यारी नागफनी है। और इन्हीं लोगों ने कभी इसके पहले नहीं कहा था कि प्यारी नागफनी! हवा बदल गयी। अब गुलाब की प्रतिष्ठा नहीं रही। नागफनी की प्रतिष्ठा हो गयी। लोग तो शब्दों से जीते हैं, प्रचार से जीते हैं। जिस चीज का प्रचार हो जाता है, उसी को सुंदर-असुंदर कहने लगते हैं, सौंदर्य-असौंदर्य का अनुभव थोड़े ही है कुछ।

एक ऐसा अनुभव भी है जहां शब्द बनते ही नहीं। निःशब्द रहते हैं प्राण। अनुभव इतना सघन होता है कि शब्द बनाने की फुरसत किसे होती है! सब ठगा और अवाक रह जाता है! तब एक चीज दिखायी पड़ती है जो वास्तविक है।

मैंने सुना, एक वैज्ञानिक था--बड़ा वैज्ञानिक। खासकर विद्युत के यंत्रों में उसकी बड़ी क्षमता थी। वह अपनी लड़की के संबंध में बड़ा चिंतित था, क्योंकि एक लड़का उसकी लड़की के पीछे पड़ा था। पुराने ढंग का बाप होता, डंडे मारकर निकाल देता। पुराने ढंग का भी नहीं था, आधुनिक आदमी थी। पर आधुनिकता तो ऊपर रहती है, भीतर तो पुराना ही चलता रहता है। तो भीतर तो बाप को अड़चन भी होती थी कि यह कहां... उसको वह कहता था, वह बंदर कहां है? --वह लड़के को। कि वह फिर आ गया बंदर। वह उसको बिल्कुल बर्दाश्त के बाहर था। और वह घंटों बैठकर लड़की से बैठकखाने में गपशप करता, आधी-आधी रात तक दोनों बैठे रहते। आखिर उसकी बर्दाश्त के बाहर हो गया, उसको यह बड़ी बेचैनी रहने लगी कि ये दोनों करते क्या हैं बैठकर?

आधुनिक बाप था, तो बीच में जाकर खड़ा भी नहीं हो सकता था, पुराने जमाने के दिन गए कि बीच में जाकर खड़ा हो जाए। क्योंकि उससे आधुनिकता मरती है कि लोग कहते हैं--यह भी क्या बात है, लड़की तो प्रेम करेगी ही! और बंदर! बंदर तो सभी हैं, डार्विन ने सिद्ध ही कर दिया है, अब इसमें क्या! सभी बंदर की औलाद हैं, तो यह भी सही। फिर लड़की को पसंद है तो तुम्हें क्या बाधा?

तो उसने एक तरकीब बनायी--वैज्ञानिक था बड़ा! उसने जिस कमरे में लड़का और लड़की बैठकर प्रेमालाप चलाते थे, उसमें एक छोटा सा यंत्र लगा दिया सीलिंग पर। और अपने कमरे में एक रडार का पर्दा

लगा दिया। उस यंत्र से उसके रडार पर रंग बन जाते। अगर लड़का लड़की का हाथ पकड़ता, तो स्वभावतः लड़का-लड़की जवान, अभी प्रेम में पड़े, तो काफी गर्मी पैदा होती जब हाथ पकड़ते--तो वह जो गर्मी को पकड़ने वाला यंत्र था, वह जल्दी से गर्मी पकड़ लेता और रडार के पर्दे पर लाल रंग आ जाता। तो वह समझ जाता कि अच्छा, हाथ पकड़ा उस बंदर के बच्चे ने! अगर वे एक-दूसरे का चुंबन लेते तो हरा रंग आ जाता। तो वह बंदर का बच्चा चुंबन ले रहा है लड़की का! या कभी आलिंगन करते, तो नीला रंग आ जाता। ऐसे उसने रंग बना रखे थे।

एक दिन वैज्ञानिकों की एक कांफ्रेंस चल रही थी तो उसे जाना पड़ा। वह बड़ा बेचैनी में गया, क्योंकि वह बंदर, जब वह बाहर जा रहा था, वह अंदर घुस रहा था। तो उसने अपने छोटे बेटे को कहा, सुन बेटा, तू जाकर अंदर बैठ जा, वहां पर्दा लगा है, उस पर देखते रहना और यह कागज ले ले, इस पर नोट करते जाना कि कौन सा रंग किस क्रम से आया। बेटे को कुछ पता नहीं था कि यह रंगों का मतलब क्या है। बेटा तो समझा कि बाप एक काम दे गया है तो वह बड़ी मुस्तैदी से जाकर बैठ गया और रंग लिखने लगा कि कौन सा रंग पहले, कौन सा पीछे, कब क्या आया। और बाप जल्दी से गया कांफ्रेंस में, वह किसी तरह खतम करके, उसको तो बेचैनी यही थी कि वहां रंग कौन से आ रहे हैं? लेकिन इससे पहले कि वह घर आए, बेटा भागता हुआ कांफ्रेंस भवन में पहुंच गया। बाप ने पूछा, क्या हुआ, ऐसा भागा हुआ क्यों आ रहा है? उसने कहा, अरे पिता जी, गजब हो गया! उसके बाप ने पूछा, क्या हुआ, जल्दी बोल! अरे, उसने कहा, इंद्रधनुष आया है! तो उसको कुछ पता नहीं था। सभी रंग एक साथ आ रहे हैं!

इस बच्चे को कोई व्याख्या तो नहीं है, लेकिन जो है वह तो दिखायी पड़ रहा है। बाप के मन में व्याख्या है, बाप ने तो सिर पीट लिया। वह लड़के की तो समझ में नहीं आया, उसने कहा, आप क्यों सिर पीट रहे हैं? अरे, इतना गजब का इंद्रधनुष बना है कि देखते रह जाओ! मैं तो भागा आया कि आप चूक जाएंगे, चलिए! लड़के की प्रसन्नता।

जब सारी धारणाएं खो जाती हैं, जब कोई धारणा नहीं रह जाती--क्या अच्छा, क्या बुरा, क्या सुंदर, क्या असुंदर, क्या नीति, क्या अनीति--तब जीवन में जो है, जैसा है, अपूर्व रूप से प्रगट होता है; और कोई व्याख्या नहीं होती। तुम होते हो और जीवन का सत्य होता है--जैसा है, वैसा ही। इसलिए इससे भयभीत न होओ। सब धारणाएं सीमा बनाती हैं और सब व्याख्याएं क्षुद्र हैं। निर्व्याख्य ही विराट है।

एक पंख सूरज
एक पंख चांद
हवा पर उड़ता है
समय का यान
आओ, इसके पंखों को काटें
गति दें थाम
हारे-थके जीवन को
करने दें विश्राम
दर्पण में रूप है, गंध नहीं
प्यार आकाश पर जीता है
कोई अनुबंध नहीं

दर्पण और अनुबंध
समय की चोट से टूट जाते हैं
गंध और आकाश सदा फैलते हैं
और फैलते ही जाते हैं

सीमाएं तोड़ो! अनुबंध, कंडीशन कि परमात्मा ऐसा होगा तो ही परमात्मा है, सत्य ऐसा होगा तो ही सत्य है, प्रेम ऐसा होगा तो ही प्रेम है, ऐसे अनुबंध तोड़ो। जो है, उसे जानो। जो है जैसा, उसे जानो।

दर्पण में रूप है, गंध नहीं
प्यार आकाश पर जीता है
कोई अनुबंध नहीं

ऐसी धारणाओं के दर्पण में जो रूप बनते हैं, उनमें कोई गंध नहीं होती है, वे निर्जीव हैं, मुर्दा हैं।

प्यार आकाश पर जीता है
कोई अनुबंध नहीं

प्यार कोई शर्त नहीं है, खुला मुक्त आकाश है। ध्यान भी बेशर्त है। और ये दो ही चीजें तो हैं इस जगत में जो बहुमूल्य हैं--या तो प्रेम हो जाए बेशर्त, तो तुम भक्त हो गए; ध्यान हो जाए बेशर्त, तो तुम ज्ञानी हो गए।

दर्पण और अनुबंध
समय की चोट से टूट जाते हैं

धारणाएं तो सब टूटती-फूटती रहती हैं। तुम्हारी बनायी हैं, कब तक चलेंगी?

गंध और आकाश सदा फैलते हैं
और फैलते ही जाते हैं

ऐसा कुछ करो कि तुम फैलते ही जाओ, सदा फैलते ही चले जाओ। असीम तुम्हारा घर बने। अलक्ष्य तुम्हारा लक्ष्य हो। अदृश्य में तुम डूबो, डुबकी लगाओ। अथाह में तुम खोओ, सदा के लिए खो जाओ। उसके लिए धारणा छोड़नी हो--छोड़नी होगी। मन तोड़ना होगा--तोड़ना ही होगा। आदमी ने जो-जो सोच रखा है, वह हटाना पड़ेगा, ताकि परमात्मा का जो जैसा है, बिना हमारी सोच की बाधा के हमें दिखायी पड़ जाए।

इसे भक्त प्रेम कहता है, ज्ञानी ध्यान कहता है। तुम्हें जो रुच जाए, उस तरफ से चलो। मगर मन को तो जाना ही पड़ेगा। जब तक मन है, तब तक प्रभु नहीं। जब प्रभु आता है, तो मन नहीं।

उसे बुलाना है तो मन को विदा करो। इस द्वार से मन गया, उस द्वार से प्रभु का पदार्पण होता है।

आज इतना ही।

पैंसठवां प्रवचन

अमृत से परिचयः मौत के क्षण निस्तरंग चित्त पर

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखाकामा इति विंॎय पंडितो।। 162।।

अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासंबुद्धसावको।। 163।।

वहुं वे सरणं यंति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।। 164।।

नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 165।।

यो च बुद्धंच धम्मंच संघंच सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पांॎय पस्सति।। 166।।

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियंचट्ठंगिके मग्गं दुक्खूपसमगामिनं।। 167।।

एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 168।

काफी के प्यालों में कब तक डुबाओगे
अंतरंग कडुवापन
मुझसे यह पूछा है उकतायी शाम ने
और मैं निरुत्तर हूं
उन्हीं-उन्हीं सड़कों पर रोज-रोज घूमना
बेगाने दृश्यों को आंखों से चूमना
व्यर्थ है, निरर्थक है, कब तक बहलाएंगी
सजी हुई दुकानें
भड़कीले विज्ञापन
मुझसे यह पूछा है घबरायी शाम ने

और मैं निरुत्तर हूं
थकी हुई आंखों में चुभती है रोशनी
ठंडा अंधियार नहीं
डरे हुए बच्चे की चुप्पी का
कोलाहल कोई उपचार नहीं
ऊबी तन्हाई के वास्ते क्या मतलब रखता है
भीड़ों का सम्मोहन
मुझसे यह पूछा है धुंधलायी शाम ने
और मैं निरुत्तर हूं
केवल कोहरा नहीं भटकाता पांवों को
क्षितिज स्वयं
और भी निरीह बना देता है व्यक्ति को
क्षुद्र अहं
आरोपित गीतों से कब तक झुठलाओगे
सहजन्मा सूनापन
मुझसे यह पूछा है संवलायी शाम ने
और मैं निरुत्तर हूं

आदमी के पास जब तक जीवन का उत्तर न हो, तब तक जो कुछ भी आदमी करे, सभी व्यर्थ हो जाता है।

सुकरात का प्रसिद्ध वचन है कि जो जीवन ठीक से जाना नहीं गया, पहचाना नहीं गया, वह जीवन जीना व्यर्थ है। जिसको जागकर नहीं जीआ गया, उसे जीआ ही नहीं गया।

सोए-सोए जीते हैं हम। चलते भी, उठते भी, काम भी करते, जन्म से लेकर मौत तक की लंबी यात्रा पूरी भी करते, लेकिन पहुंचते कहां हैं? पहुंचते कहीं भी नहीं। यात्रा पूरी हो जाती, हम चुक जाते और मंजिल तो कभी आती नहीं। ऐसे जीवन को, ऐसे उत्तरहीन जीवन को, ऐसे अर्थहीन जीवन को कब तक जीवन मानकर बैठे रहोगे?

और फिर इस जीवन को अगर जीवन मान लिया, तो अपने को झुठलाने के हजार उपाय करने पड़ते हैं। क्योंकि लाख कोशिश करो तो भी कहीं भीतर किसी तल पर तुम्हें लगता रहता है, कुछ व्यर्थ हो रहा है, कुछ नाहक किए जा रहे हैं। तो उसे झुठलाने को शराब पीओ, संगीत सुनो, वेश्यागामी बनो। उसे झुठलाने को और नए झूठ गढ़ो। उसे भुलाने को विस्मरण के नए उपाय खोजो। उन उपायों को लोग मनोरंजन कहते हैं। मनोरंजन के सभी उपाय आत्म-विस्मरण के उपाय हैं।

बुद्धपुरुष कहे जाते, भीतर देखो, हम भीतर देखते नहीं, क्योंकि भीतर तो अंधियारा है। बुद्धपुरुष कहते, भीतर उजियारा है, हम भीतर देखने में डरते हैं, क्योंकि भीतर तो अंधियारे के सिवाय कुछ दिखायी नहीं पड़ता।

इस अंधियारी रात से जो गुजरेगा, वही भीतर की सुबह को उपलब्ध होता है। जो इस अंधियारी रात से डरकर बाहर लौट गया, उसकी तो सुबह कभी भी नहीं आती। फिर बिना प्रकाश के तृप्ति नहीं है।

बिना जीवन का सम्यक बोध पाए तुम जो भी करोगे, सब व्यर्थ जाएगा। सम्यक बोध के बाद तुम जो भी करोगे, सार्थक होने लगेगा। फिर तुम्हारे हाथ में पारस पत्थर है, तुम जो छुओगे, सोना हो जाएगा। मूर्च्छा ऐसी है कि तुम जो छुओगे, सोना भी छुओगे तो मिट्टी हो जाएगी।

देखते नहीं, धनी हैं लोग और कैसी निर्धनता भीतर घिरी है। पद पर हैं और भीतर कैसे दीन हैं। सब है और बिल्कुल खाली हैं। इसी दौड़ में तुम पड़े हो। इसी दौड़ में प्रत्येक पड़ा है। क्यों? क्योंकि जन्म के साथ तुम्हें जिनका सत्संग मिलता है--अगर उसको सत्संग कहें--तो वे सभी दौड़ रहे हैं। उनके दौड़ने की संक्रामक बीमारी हर बच्चे को लग जाती है। हम पागलों की भीड़ में पैदा होते हैं, तो पागलों का रोग हमें लग जाता है।

स्वभावतः बच्चा वही सीखता है जो दूसरे कर रहे हैं। बाप कर रहा, भाई कर रहा, परिवार कर रहा, समाज कर रहा, दुनिया कर रही, बच्चा वही करने लगता है जो सारी दुनिया कर रही है। होश आते-आते आदतें मजबूत हो जाती हैं। होश आते-आते गलत करने में आदमी बहुत कुशल हो जाता है। इतना कुशल हो जाता है कि अब उससे लौटना भी मुश्किल हो जाता है। उस कुशलता में प्रतिष्ठा मिल जाती है।

एक कवि बड़ा उदास था। किसी मित्र ने उससे पूछा कि इतने उदास क्यों हो? उसने कहा, मैं उदास इसलिए हूं कि कवि मुझे होना ही नहीं था। और कविता मेरे भीतर से सहज आती भी नहीं। तुकबंद हूं मैं, जबरदस्ती तुकें बांधता रहता हूं। तो उसके मित्र ने कहा, तो फिर छोड़ क्यों नहीं देते? दुनिया में लाख काम हैं, कोई कविता ही एक काम है! मुझे देखो, मैं तो कोई कवि नहीं हूं, मैं भी जी रहा हूं। उस कवि ने कहा, अब बहुत मुश्किल है, अब मैं प्रसिद्ध हो चुका हूं। अब लोग मुझे कवि की तरह सम्मान देते हैं। अब मैं प्रतिष्ठित हो चुका हूं, अब लौटना मुश्किल है। अब यह प्रतिष्ठा नहीं गंवा सकता हूं। और भीतर रस भी नहीं आता है।

तब तुम एक दुविधा में पड़ गए। तब तुम्हारे गले में फांसी लगी। जो कर रहे हो, उसमें रस नहीं है। जो हो, उसमें रस नहीं है। जिसमें रस हो सकता था, उसके करने की भाषा भूल गए। जिसमें रस होता, वह कभी किया नहीं, उस दिशा में कभी जीवन को बहाया नहीं, इसलिए लोग इतने उदास हैं। इतने थके-मांदे हैं, इतने टूटे-फूटे हैं, इतना भीतर मरुस्थल जैसा सन्नाटा है। कहीं कोई भीतर संगीत नहीं बजता, सुर नहीं फूटते, रस नहीं बहता।

धर्म की खोज पुनः उस रस की खोज है, जिससे हम वंचित हो गए हैं, जो हमारी निजी संपदा है, जो होना ही चाहिए। उपनिषद कहते हैंः रसो वै सः। उस परमात्मा का स्वभाव रसरूप है। उसी रस की खोज है धर्म।

बुद्ध ने आज के सूत्रों में उस रस की खोज के लिए कुछ बड़ी बहुमूल्य बातें कही हैं।

पहले सूत्र--

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखाकामा इति विंञय पंडितो।।
अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासंबुद्धसावको।।

"यदि रुपयों की वर्षा भी हो तो भी मनुष्य की कामों से तृप्ति नहीं होती। सभी काम अल्पस्वाद और दुखदायी हैं, ऐसा जानकर पंडित देवलोक के भोगों में भी रति नहीं करता है। और सम्यक संबुद्ध का श्रावक तृष्णा का क्षय करने में लगता है।"

इसके पहले कि हम सूत्र समझें, सूत्र की पृष्ठभूमि समझ लेनी चाहिए--कब बुद्ध ने यह सूत्र कहा, कब यह गाथा कही?

एक भिक्षु था बुद्ध का, उसका नाम था, दहर। उस भिक्षु का पिता मरते समय अपने बेटे को देखना चाहता था, लेकिन दहर गांव के बाहर गया था। तो देखना चाहते हुए भी पिता देख नहीं पाया। मरते-मरते इस बेटे का नाम ही उसकी जबान पर, उसके मन, उसके चित्त में था। नाम लेकर रोते-रोते ही वह मरा। मरने के पहले उसने अपने छोटे बेटे को सौ स्वर्णमुद्राएं दीं और कहा कि जब दहर आए तो मेरी तरफ से उसे भेंट कर देना।

पीछे कुछ दिनों बाद दहर गांव वापस लौटा। उसके छोटे भाई ने रोकर सारा समाचार कहा और उन स्वर्णमुद्राओं को दिया। लेकिन दहर ने स्वर्णमुद्राएं फेंक दीं। भिक्षु कहीं स्वर्णमुद्राएं छूता! और उसने कहा कि तू भी किस तरह की बात कर रहा है, मुझे भ्रष्ट करना चाहता है? कामिनी और कांचन तो त्याज्य हैं। यह मिट्टी है, तू इनको सोना समझता है?

इस इनकार में बोध कम था, अहंकार ज्यादा था। वह कुछ दिनों तक अन्य भिक्षुओं से अपने इस त्याग की घमंडपूर्वक चर्चा भी करता रहा। लेकिन कुछ दिनों बाद वह उदास रहने लगा। वे स्वर्णमुद्राएं उसका पीछा करने लगीं। रात उनके सपने भी आते। दिन में विचार भी बार-बार आता। सोचने लगा, क्यों छोड़ दीं स्वर्णमुद्राएं? किसको पता चलता, ले ही लेता! सम्हालकर रख लेता, वक्त-बेवक्त काम पड़ जातीं। फिर रोज-रोज यह भिक्षा मांगना, दीन की भांति घर-घर से भिक्षा मांगना, इससे तो बेहतर था कि उन स्वर्णमुद्राओं के सहारे सुख-सुविधा से जीता। रखा भी क्या है इस भिक्षु होने में! मुझसे बड़ी भूल हो गयी। और एक रात यह विचार इतनी तीव्रता से उसे पकड़ा कि उसने सोच ही लिया कि कल सुबह बुद्ध से क्षमा मांगकर, भिक्षु का भेष त्यागकर गृहस्थ हो जाऊंगा।

भिक्षुओं ने जाकर बुद्ध को खबर दी। उन्होंने कहा, यह होगा, ऐसा निश्चित ही था। धन के त्याग में जो प्रशंसा लेना चाहता है, वह धन में अपने रस की घोषणा करता है। भोगी और त्यागी में बहुत भेद नहीं है। भोगी धन को पकड़ता, त्यागी धन को छोड़ता, लेकिन दोनों के मन में धन का मूल्य है। दोनों मानते हैं कि धन कुछ है, धन धन है। भोगी लोलुप होकर दौड़ता है धन की तरफ, त्यागी भयभीत होकर भागता है धन की तरफ से। दोनों की दिशाएं अलग-अलग, लेकिन दोनों का राग-रंग एक ही है। धन अभी सार्थक है, व्यर्थ नहीं हुआ। इसलिए मैं सोचता था कि यह घड़ी आएगी। असली बोध तो त्याग और भोग, दोनों से मुक्ति है। असली बोध न तो धन को पकड़ता है, न धन को छोड़ता है; धन में न पकड़ने योग्य कुछ है न छोड़ने योग्य कुछ है।

फिर उन्होंने दहर को बुलाकर कहा, पागल, इतनी सी स्वर्णमुद्राओं से होगा भी क्या! सौ स्वर्णमुद्राएं कितने दिन चलेंगी? इससे तेरी तृष्णा तृप्त होगी? तृष्णा दुष्पूर है। ये थोड़ी सी स्वर्णमुद्राएं तो और भी अग्नि में घी का काम करेंगी।

और तब उन्होंने यह गाथा कही। ये भिक्षु दहर को कहे गए वचन हैं।

तो पहले तो इस घटना को ठीक से समझ लें, आत्मसात कर लें। पहली बात, पिता मर रहा है, लेकिन अपना स्मरण नहीं है उसे। मरते वक्त भी आदमी और का ही स्मरण करता रहता है। यह भी कैसा पागलपन है! जीवन गंवाते हम, मौत का अपूर्व क्षण भी गंवा देते हैं--दूसरे का ही स्मरण चल रहा है मरते क्षण भी, रो रहा है बेटे के लिए। अपने लिए कब रोओगे? मरते क्षण भी बेटे की याद कर रहा है, अपनी याद कब करोगे? जीवन भी गंवाया दूसरों की याद में, मरने की घड़ी भी होश नहीं आता! मौत जैसी पीड़ादायी घड़ी में भी तुम जागते नहीं! मौत का त्रिशूल तुम्हारे प्राणों में छिदा जाता है, फिर भी तुम जागते नहीं, तुम्हारी नींद अदभुत है।

मरते समय आदमी अक्सर ही वही-वही याद करता-करता मरता है, जो जीवनभर किया, जो जीवनभर का सार-निचोड़ है। अनेक लोग सोचते हैं कि मरते समय प्रभु का स्मरण कर लेंगे। इतना आसान नहीं। अगर जीवन भर प्रभु का स्मरण किया हो, तो ही मरते समय स्मरण प्रभु का होगा। क्योंकि मृत्यु में तो वही सिकुड़कर बीज बन जाता है जो जीवनभर बोया है। मृत्यु तो तुम्हारे सारे जीवन की परीक्षा है, परीक्षा की घड़ी है। ऐसा थोड़े ही कि जीवनभर कुछ भी किया और मृत्यु के क्षण में प्रभु को स्मरण कर लिया। किसको धोखा दे रहे हो! मृत्यु तो सील-मोहर बंद कर देगी, तुमने जीवनभर जो किया है, उस पर पूरी सील-मोहर लगा देगी कि यह तुम्हारी कथा है। मृत्यु तो संक्षिप्त में, एक वक्तव्य में तुम्हारे जीवन को निचोड़ लेगी।

लेकिन लोभी आदमी सोचता है, कल। प्रभु का स्मरण करेंगे, जरूर करेंगे, कल। अभी तो घर है, द्वार है, बच्चे हैं, बेटे हैं, पत्नी है, दुकान है, बाजार है, अभी तो और हजार काम हैं। प्रभु को देख लेंगे आखिर में। तुम्हारी जीवन की फेहरिश्त में प्रभु का नाम अंत में लिखा है।

और जिसकी जीवन-फेहरिश्त पर प्रभु का नाम अंत में लिखा है, वह कभी स्मरण न कर सकेगा। वह जीवन की फेहरिश्त कभी पूरी ही नहीं होती। वह फेहरिश्त बढ़ती चली जाती है। वह बड़ी होती चली जाती है। एक में से दो चीजें, दो में से चार, चार में से दस, दस में से हजार निकलती आती हैं। हर रास्ते से दो नए रास्ते निकल आते हैं और हर शाखा दो शाखाओं में टूट जाती है और तुम दौड़ते चले जाते हो, दौड़ते चले जाते हो। जाल बड़ा होता चला जाता है। और जीवन की संपदा और शक्ति और ऊर्जा कम होती चली जाती है। और तुम सोचते हो, अंत में प्रभु का स्मरण कर लेंगे। या अपना स्मरण कर लेंगे। या अंत में कर लेंगे ध्यान।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि संन्यास तो लेना है, लेकिन अभी नहीं। अभी तो बहुत कुछ जीवन में करने को पड़ा है। जैसे कि संन्यास तब लेना है जब जीवन में कुछ करने को न रह जाएगा। कभी ऐसा हुआ है? कभी किसी के जीवन में ऐसा हुआ है कि ऐसी घड़ी आ गयी हो कि अब करने को जीवन में कुछ भी नहीं रह गया? कभी ऐसा नहीं हुआ। जीवन ऐसा मौका ही नहीं देता। जीवन तो एक काम पूरा नहीं हुआ कि दस नए काम शुरू करवा देता है। एक वासना चुकने के करीब आती नहीं कि दस वासनाएं पैदा हो जाती हैं।

वासना बड़ी जन्मदात्री है। दस बच्चे पैदा कर जाती है। ध्यान बांझ है। विचार बांझ नहीं है। समाधि बांझ है, उसमें से फिर कुछ पैदा नहीं होता। लेकिन वासना बांझ नहीं है। वासना तो खूब पैदा करती है--एक वासना से दूसरी, दूसरी से तीसरी, चलता जाता है।शृंखला का कोई अंत नहीं।

ऐसा ही समझो कि तुमने एक कंकड़ झील में फेंका, शांत झील, एक कंकड़ फेंका। जरा सी लहर उठती है, लेकिन एक लहर दूसरी लहर को उठाती है, दूसरी तीसरी को उठाती है--एक छोटा सा कंकड़ मीलों लंबी झील पर लहरें उठा देता है। ऐसी वासना है। एक छोटा सा भाव वासना का और लहर ही लहर तुम्हारी चेतना की झील पर फैल जाती है। वासना उठानी तो बहुत आसान, हटानी बहुत कठिन। क्योंकि जब तुम उठाते हो तब छोटा सा कंकड़ काम दे देता है, लेकिन जब बिठाने चलोगे तो सारी झील! झील बड़ी है, सारी लहरों को

बिठाना बहुत मुश्किल हो जाता है। और लोग सोचते हैं कि अंत में याद कर लेंगे। और इन्हीं लोगों ने इस तरह की कहानियां भी गढ़ रखी हैं कि अंत में याद करने से सब हो जाता है।

तुमने कहानी सुनी है न अजामिल की, कि अजामिल मरा। उसने कभी जीवन में परमात्मा का नाम न लिया, लेकिन उसके बेटे का नाम नारायण था। मरते वक्त उसने बुलाया, नारायण! नारायण तू कहां है? और ऊपर के नारायण समझे कि मुझे बुला रहा है। वह अपने बेटे को बुला रहा था, उसको ऊपर के नारायण से कुछ लेना-देना न था। मर गया नारायण को पुकारते और ऊपर के नारायण धोखे में आ गए और वह स्वर्ग गया।

यह जिन ने कहानी गढ़ी है, इनसे सावधान रहना! इस तरह के लोगों से सावधान रहना! किसको तुम धोखा दे रहे हो? और अगर तुम्हारा परमात्मा इस तरह धोखे में आता है तो दो कौड़ी का परमात्मा है। इस तरह के परमात्मा का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारी आत्मा जिस दशा में होगी, वही अंकित होगा अस्तित्व पर, उससे अन्यथा कुछ भी अंकित नहीं हो सकता।

तो यह दहर का बाप मर रहा था। बेटा भिक्षु हो गया है, तो भी इसे याद नहीं आती कि कुछ अपनी सोचे, कुछ अपनी सुध ले। बल्कि मरते वक्त आदमी और-और तीव्रता से दूसरी बातें सोचने लगता है। यह भी एक तरकीब है, ताकि मौत दिखायी न पड़े। जैसे-जैसे मौत करीब आने लगती है आदमी की, वैसे-वैसे आदमी सब तरह से अपने को उलझा लेता है विचारों में, ताकि मौत दिखायी न पड़े। यह भी सांत्वना की तरकीब है। यह अपने को दूसरी दिशा में लगा लेने का उपाय है।

तो मरता था, बेटे को देखना चाहता था। मौत भी तुम्हें नहीं बताती कि सब संबंध टूट जाने वाले हैं, सब संबंध मनगढ़ंत हैं। कौन बेटा, कौन बाप! मौत आ गयी, तुम चलने को तैयार हो गए हो, फिर भी इस संसार में पैर रोपे रखना चाहते हो। मरता था बाप, बेटे को देखना चाहता था, लेकिन भिक्षु गया था गांव के बाहर, तो बाप रोता हुआ, अपने बेटे का नाम ले-लेकर मर गया। और सौ स्वर्णमुद्राएं छोड़ गया। खुद भी जीवनभर धन इकट्ठा किया होगा और अब सब धन छूटा जा रहा है तो भी अभी उसे समझ में नहीं आया कि धन निर्मूल्य है। अभी वह धन छोड़ जाता है अपने बेटे के लिए।

अगर बाप में थोड़ी समझ हो तो बेटे के लिए बोध छोड़ जाएगा, धन क्या छोड़ जाना! धन में खुद अपना जीवन गंवाया और अब बेटे के लिए भी उपाय किए जा रहे हो! अगर बाप में थोड़ा बोध हो तो अपने जीवन की पूरी असली संपदा--असली संपदा यानी अनुभव की संपदा--कि धन व्यर्थ है, कि भोग व्यर्थ है, कि दौड़ व्यर्थ है, कि दौड़ा-धापी, आपाधापी, सब कुछ काम नहीं आती, मौत सब छीन लेती है, ऐसा सूत्र अपने बेटे को छोड़ जाएगा। मरते वक्त अगर बाप में थोड़ी भी समझ हो तो वह कह जाएगा कि मेरे बेटे को इतनी बात कह देना कि जो-जो मैंने किया, सब व्यर्थ गया, तू समय मत गंवाना, इसमें मत उलझना।

लेकिन कब बाप ऐसी समझ की बात कह पाते हैं! हालांकि हर बाप समझता है कि वह समझदार है। उम्र बढ़ने से कोई समझदार नहीं होता, बूढ़ा होने से कोई समझदार नहीं होता, समझदारी का बुढ़ापे से कुछ लेना-देना नहीं है। समझदारी कुछ और ही बात है। अनुभवों की बहुत बड़ीशृंखला से कोई समझदार नहीं होता, लेकिन अनुभवों के बीच में से सारसूत्र खोज लेने से कोई समझदार होता है।

तुमने एक बार क्रोध किया, तुमने दो बार क्रोध किया, तुमने हजार बार क्रोध किया, इससे थोड़े ही समझ बढ़ेगी। सच तो यह है कि तुमने हजार बार क्रोध किया, यह यही बताता है कि तुम्हारी समझ घटी, बढ़ी नहीं। समझदार होते तो एक बार क्रोध कर लेते और समझ जाते कि बात व्यर्थ है। दुबारा करने की क्या जरूरत पड़ती! दुबारा करना पड़ा, क्योंकि पहली बार समझ न आयी। तीसरी बार करना पड़ा, क्योंकि दूसरी बार

समझ न आयी। लाख बार करना पड़ा। और जैसे-जैसे समझ न आयी वैसे-वैसे तुम्हारा क्रोध करने का अभ्यास बढ़ता गया। आखिर में तुम पाते हो, क्रोध तो बहुत किया, लेकिन समझे कुछ भी नहीं। लोभ तो बहुत किया, समझे कुछ भी नहीं। काम में बहुत तड़फे, लेकिन समझे कुछ भी नहीं।

तो उम्र को तुम समझदारी मत समझ लेना। उस भूल में मत पड़ना। इस संसार में लोग उस भूल में पड़ जाते हैं। लोग सोचते हैं कि उम्र बड़ी हो गयी तो समझदार हो गए। समझदारी अनुभव के प्रति जागने से पैदा होती है, मात्र अनुभव की राशि बड़ी होती चली जाए, इससे पैदा नहीं होती। जो तुम कर रहे हो, जो तुम्हारे जीवन में हो रहा है, उसे खूब बोधपूर्वक करो, उसे खूब समझकर करो, सब तरफ से परख करके करो। एक बार जो किया है, फिर उसका खूब विश्लेषण करो, निदान करो कि क्या मिला, क्या पाया, क्या हुआ? अगर कुछ न पाया हो, तो दुबारा थोड़ी सावधानी रखो। नहीं तो जाल अंधी आदत का बड़ा हो जाएगा।

मर रहा है बाप, सब संपत्ति छूटी जा रही है, मरते वक्त भी इस व्यर्थ की संपदा को बेटे के लिए छोड़ जाता है। तुमसे मैं कहूंगा, ऐसा मत करना। तुम्हारे भी बेटे होंगे, उनके लिए कुछ और बहुमूल्य छोड़ जाना, कोई और बड़ी वसीयत छोड़ जाना।

कुछ दिनों बाद बेटा वापस लौटा--भिक्षु दहर गांव आया। तो उसके छोटे भाई ने रोकर समाचार कहा, उन स्वर्णमुद्राओं को दिया, लेकिन भिक्षु ने स्वर्णमुद्राएं फेंक दीं।

यह बात भी अज्ञान की है। अगर स्वर्णमुद्राओं में कुछ भी नहीं है, तो फेंकने का इतना उत्साह क्या। इसलिए मैं कहता हूं कि घर छोड़कर भागना मत, क्योंकि घर छोड़ने का उत्साह यही बताता है कि तुम्हें अब भी घर में कुछ दिखायी पड़ता है। मैं तो कहता हूं, घर में कुछ है ही नहीं, भागकर जाना कहां है? है ही नहीं वहां कुछ, हिमालय पर तुम हो ही, घर में सूना है, कुछ भी नहीं है वहां।

इसलिए मैं कहता हूं, पत्नी को छोड़कर मत भाग जाना। पत्नी की मान्यता गिर जाए, बस काफी है। पत्नी के प्रति पत्नी-भाव गिर जाए, बस काफी है। पत्नी में भी परमात्मा दिखायी पड़ने लगे, बस काफी है। मेरा-तेरा गिर जाए, वही झूठ है। लेकिन वह झूठ तो नहीं छोड़ते। अगर तुम हिमालय भी भाग गए, तो भी तुम्हारी पत्नी तुम्हारी है, यह झूठ तो तुम्हारे साथ जाता है, पत्नी छोड़ जाते हो।

स्वामी राम के जीवन में एक उल्लेख है, वह अमरीका से लौटे हैं। सरदार पूर्णसिंह उनके शिष्य थे और उनके पास हिमालय में रहते थे। एक दिन उनकी पत्नी दूर पंजाब से मिलने आयी। पत्नी बड़ी गरीब हालत में थी। स्वामी राम छोड़कर घर भाग गए, पत्नी किसी तरह पाल रही थी बच्चों को, किसी तरह अपना जीवन चला रही थी। किसी तरह थोड़े पैसे इकट्ठे करके कि स्वामी राम वापस आए हैं, उनके दर्शन कर आए, वह हिमालय गयी।

स्वामी राम को पता चला तो उन्होंने सरदार पूर्णसिंह को कहा कि यह झंझट कहां से आ गयी। मैं इससे मिलना नहीं चाहता। तुम किसी तरह इसको टालो। सरदार पूर्णसिंह तो बहुत हैरान हुए, क्योंकि स्वामी राम ने कभी किसी से मिलने से इनकार नहीं किया। कोई भी आया, पुरुष हो कि स्त्री। इस स्त्री से मिलने के इनकार का तो मतलब ही यही होता है कि इसके प्रति अभी भी पत्नी-भाव है। और तो क्या अर्थ होता है! अगर पत्नी-भाव गिर गया तो यह भी वैसी स्त्री है जैसी और स्त्रियां हैं। जब किसी और से मिलने में कोई रुकावट नहीं, तो इससे मिलने में क्या रुकावट है? इस बिचारी का क्या कसूर है?

तो सरदार पूर्णसिंह ने कहा कि अगर आप इस स्त्री से नहीं मिलेंगे, तो मैं आपको छोड़कर जाता हूं। मेरी श्रद्धा डांवाडोल हो गयी। क्योंकि आप तो कहते हैं कि सब छोड़ चुके, अगर छोड़ चुके तो यह भाव अब तक मन में क्यों है कि यह झंझट कहां से आ गयी? तो झंझट जरूर कहीं भीतर है।

स्वामी राम को भी समझ में आया--वह बड़े समझदार, बोधवान व्यक्ति थे। उनकी आंख से आंसू गिर गए और उन्होंने कहा, तुम ठीक कहते हो, थोड़ी झंझट मेरे भीतर थी। तुमने मुझे खूब ठीक समय पर चेताया। तुमने मुझे चेता दिया। उसे बुलाओ। वह आयी तो उसके पैर छुए। और उसी दिन उन्होंने संन्यासी का जो पुराना रूप-ढंग था, वह छोड़ दिया। क्योंकि उन्होंने कहा कि उसमें वह जो त्याग की अकड़ है, वही भ्रांत है।

तुम जानकर यह हैरान होओगे कि स्वामी राम गैरिक वस्त्रों में नहीं मरे। जब वह मरे तो वह साधारण वस्त्र पहने हुए थे। पर मैं तुमसे कहता हूं कि वह परम संन्यासी होकर मरे। उनको एक बात समझ में आ गयी कि यह भी अकड़ है मेरी कि मैं त्यागी, कि मैंने सब छोड़ दिया, इसमें भी भ्रांति है। छोड़ने को क्या है, पकड़ने को क्या है!

तो यह जो भिक्षु दहर ने स्वर्णमुद्राएं फेंक दीं, यह तो लक्षण है इस बात का कि इसे स्वर्णमुद्राओं में अभी भी रस है। छिपा हुआ रस है, दबाया हुआ रस है, दमन किया हुआ रस है, अचेतन में दबा पड़ा है, ऊपर तो छोड़ दिया है, मगर भीतर है।

तुम इस बात को जरा जांचना अपने जीवन में, तुम जिन चीजों से भागते हो, उनमें तुम्हारा रस होगा। अगर एक सुंदर स्त्री राह से गुजरती है, और तुम आंखें बचा लेते हो, आंख बचाने से क्या होगा? तुम्हारा आंख बचाना बता रहा है कि तुम्हारा सुंदर स्त्री में रस है। अगर रस खतम हो गया है, तो आंख बचाने की झंझट भी क्या है? किससे आंख बचानी, क्यों बचानी! तुम ऐसे ही चलते रहोगे जैसे तुम चल रहे थे, एक सुंदर स्त्री निकली कि कुरूप स्त्री निकली, स्त्री निकली कि पुरुष निकला, कौन निकला, कौन नहीं निकला, तुम क्या हिसाब रखोगे!

लेकिन सुंदर स्त्री देखकर तुम आंख बचा लेते हो। क्यों? किससे आंख बचा रहे हो? सुंदर स्त्री से या अपनी अचेतन कामना से? अचेतन कामना से अगर आंख बचा रहे हो, तो कब तक बचाओगे? वह अचेतन कामना बार-बार आएगी, बार-बार आएगी, इकट्ठी होकर और मजबूत होगी, और बलशाली हो जाएगी।

नहीं, आंखें मत बचाओ। यह धोखा महंगा पड़ेगा। अगर स्त्री में रस है, तो समझने की कोशिश करो। फिर से समझने की कोशिश करो कि रस क्यों है? इस रस पर ध्यान को लगाओ, पहचानो कि रस क्यों है? और तुम्हारे ध्यान की गहराई बढ़ते-बढ़ते एक दिन तुम पाओगे--रस जा चुका। क्योंकि रस भ्रांति है। इसलिए जाएगा ही। रस तो अंधेरा जैसा है, रोशनी ले आओगे तो अंधेरा चला जाएगा।

और जब रस चला जाएगा, तब तुम्हारे जीवन में एक क्रांति घटित होती है, तब तुम बाहर-भीतर एक जैसे होते हो, तब चेतन-अचेतन की सीमा टूट जाती है, तब तुम्हारा अंतःकरण एक होता है। और उस एकता में ही आनंद है। उस एकता में ही तुम्हारे सब खंड, तुम्हारी सब विक्षिप्तताएं गिर जाती हैं, तुम अखंड हो जाते हो। तुम अद्वैत को उपलब्ध हो जाते हो। उस स्थिति का नाम ही ब्रह्मभाव है।

इसने फेंक दीं स्वर्णमुद्राएं, नाराज हुआ और कहा कि तूने मुझे समझा क्या है? मैं त्यागी हूं, स्वर्णमुद्राएं मुझे देता है, नासमझ! इनमें रखा क्या है, यह तो मिट्टी है।

मगर मिट्टी को तो इस भांति कोई फेंकता नहीं। या कि फेंकते हो? अगर मिट्टी मैं तुम्हारे हाथ में दे दूं तो तुम फेंकोगे? तुम शायद रख दोगे, तुम कहोगे, मिट्टी है। बात खतम हो गयी। फेंकने में तो जोश-खरोश है, फेंकने में तो उत्साह है, फेंकने में तो मजा है, फेंकना तो खबर दे रहा है कि तुम डर गए हो। जल्दी छूट जाओ, कहीं

ज्यादा देर हाथ में रह गयीं स्वर्णमुद्राएं, तो कहीं ऐसा न हो कि मुट्ठी बंध जाए। इसके पहले कि मुट्ठी बंधे, फेंक दो। लेकिन मुट्ठी तो बंध ही गयी। तुम्हारे फेंकने में ही बंध गयी। इस भ्रांति को अपने जीवन में ख्याल में रखना, यह सबकी भ्रांति है, इसलिए इस कहानी को मैं विश्लिष्ट कर रहा हूं, ताकि तुम्हें समझ में आ जाए।

स्वाभाविक था कि वह भिक्षुओं से अपने त्याग की घमंडपूर्वक चर्चा करने लगा। वह कहने लगा, देखा, यूं फेंक दीं सौ स्वर्णमुद्राएं! जानते हो सौ स्वर्णमुद्राएं कितनी होती हैं? उस जमाने में सौ स्वर्णमुद्राएं बहुत थीं। पूरा जीवन आदमी मजे से रह सकता था। काफी थीं। तो वह चर्चा करने लगा। शायद धीरे-धीरे वह सौ की दो सौ बताने लगा हो, पांच सौ बताने लगा हो, हजार बताने लगा हो, कि देखा! क्योंकि ऐसे ही तो बढ़ता है आदमी। धीरे-धीरे झूठ बड़ा होता जाता है। अब तो फेंक ही चुका था, सौ थीं कि हजार, हिसाब भी भूल गया होगा, कहने लगा होगा--हजारों स्वर्णमुद्राएं फेंक दीं।

मैं एक सज्जन को जानता हूं, जिन्होंने घर-द्वार छोड़ दिया। होमियोपैथी के डाक्टर थे। अब आप समझते हैं कि होमियोपैथी के डाक्टर की कोई खास कमाई तो होती नहीं। होमियोपैथी के डाक्टर की कमाई एलोपैथी के कंपाउंडर से कम होती है। कुछ चलती-वलती भी दुकान नहीं थी, उनको मैं भलीभांति जानता था। कोई दुकान चलती भी नहीं थी, ऐसे ही मक्खियां उड़ाया करते थे और अखबार पढ़ा करते थे। फिर पत्नी मर गयी, सो उन्होंने संन्यास ले लिया।

जब दो साल बाद मेरा उनसे मिलना हुआ तो वह किसी को कह रहे थे--वह तो मैं संयोग से पहुंच गया--किसी को कह रहे थे, कि देखा, मैंने लाखों पर लात मार दी। मैंने उनसे कहा कि महाराज, मैं आपको भलीभांति जानता था। उन्होंने न सोचा था कि मैं ऐसी बात बीच में उठा दूंगा। उनके शिष्य वगैरह बैठे थे और उन्होंने सोचा कि यह तो शिष्टाचारवश भी कोई नहीं कहेगा, इसलिए वे कह गए थे। अब कोई हिसाब से थोड़े ही कहा था, लाखों यानी कोई ऐसा थोड़े ही कि लाखों, थोड़े झिझके। मैंने कहा कि आप जरा ठीक से कहें, कितने रुपए पोस्ट आफिस में थे जब आपने छोड़े? क्योंकि मुझे पक्का पता है। अगर रुपए होते तो आप छोड़ते ही नहीं, यह भी मुझे पता है। कुछ था ही नहीं, छोड़ने का मजा ले लिया है। लाखों छोड़ दिए आप कहते हैं! लाखों होते तो आप बैठकर होमियोपैथी की प्रैक्टिस करते? किसको दे आए लाखों? कहां हैं वह लाखों?

बहुत नाराज हो गए। गुस्से में आ गए। मैंने कहा कि गुस्से की कोई बात नहीं है, लेकिन कैसे आपने बढ़ा लिया यह? क्योंकि जहां तक मुझे ख्याल है, तीन सौ चौदह रुपए आपके पोस्ट आफिस में जमा थे। क्योंकि मुझसे आपकी रोज बात होती रहती थी। और जब आपने देखा कि यह भी खतम होने के करीब आ रहे हैं, तो आपने यह त्याग ले लिया। और जहां तक मैं जानता हूं, वह पोस्ट आफिस की किताब अब भी आप अपने साथ रखे होंगे, छोड़े कहां हैं? वक्त-बेवक्त कब काम पड़ जाए!

और फिर मैंने कहा, समझ लो कि लाखों भी थे, तो आप कह रहे हैं कि लाखों पर लात मार दी, तो दो साल हो गए, अब तक इसकी बात क्यों कर रहे हैं? जब लात मार ही दी तो मार ही दी, बात खतम हो गयी। अब कोई लात मार दी तो वह दो साल तक गुणगान थोड़े ही करता रहता है। छोड़ो! लग गयी लात, बात खतम हो गयी। लगी कि नहीं लगी? लग नहीं पायी। एक तो थे ही नहीं, दूसरे लात भी नहीं लग पायी, किस झूठ में अपने को रचाए बैठे हो!

उस समय तो नाराज हो गए, लेकिन फिर सोचा होगा। ऐसे आदमी सरल हैं। रात मुझे फिर बुलाया, कहा, क्षमा करना। ठीक मुझे याद दिला दी, सच में कहां के लाख। और तीन सौ चौदह, तुमने भी हद्द कर दी कि

याद रखा! और कापी भी मेरे पास है, वह भी सच है। छोड़ा भी कुछ नहीं। पर मैं पहले हजारों कहता था, फिर कब लाखों हो गए, मुझे पता नहीं है।

ऐसा आदमी चलता है।

तो हो सकता है, वह दहर धीरे-धीरे कहने लगा हो, लाखों पर लात मार दी, हजारों पर लात मार दी। मगर भीतर जो रस था, वह पीछा तो छोड़ नहीं देगा। वासनाएं इतनी आसानी से तो छूटतीं नहीं। इतना सुगम और सस्ता अगर होता तो दुनिया में सभी लोग वासनामुक्त हो जाते।

तो धीरे-धीरे कुछ दिनों बाद वह उदास रहने लगा, क्योंकि बार-बार उन्हीं रुपयों की बात करता था। शायद चर्चा करता था जब दूसरों से, तब भी तो याद ही करने का एक ढंग था, वह भी तो एक याद करने का ढंग था। कहते-कहते कि कितना बड़ा त्याग किया, खुद को भी लगने लगा होगा कि काहे को किया इतना बड़ा त्याग! गांव-गांव जाकर भिक्षा मांगनी पड़ती है!

बुद्ध ने अपने संन्यासी को भिक्षु बना दिया था। कारण से। हिंदू अपने संन्यासी को स्वामी कहते हैं। उसका भी कारण है। क्योंकि हिंदू कहते हैं, जो अपना मालिक हो गया, वह स्वामी। और बुद्ध ने अपने संन्यासी को भिक्षु कहा, वह भी कारण से। दूसरी तरफ से। जो संसार में है, जिसकी कोई पकड़ न रह गयी, जो संसार के सामने बिल्कुल भिखारी हो गया, जिसका संसार में कुछ भी न रहा। और ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं--जिसका संसार में कुछ भी नहीं रह गया, जो संसार की दृष्टि से भिखारी हो गया, वही भीतर की दृष्टि से मालिक होता है।

तो हिंदुओं ने भीतर से पकड़ी बात, स्वामी कहा। बुद्ध ने बाहर से पकड़ी बात और भिक्षु कहा! लेकिन बुद्ध की बात ज्यादा उपयोगी है। पहले तो वही याद रखनी चाहिए, तभी भीतर का स्वामित्व पैदा होगा। पहले तो आदमी को संसार की दृष्टि में बिल्कुल दीन हो जाना है। कुछ है ही नहीं, ऐसे दीन हो जाना है। त्याग भी नहीं, कुछ भी नहीं, एक खाली, कोरी स्लेट जिस पर कुछ नहीं लिखा हुआ है। ऐसा भिक्षु का अर्थ है कि जिसने सब मान लिया कि यहां कुछ भी नहीं है, अपना क्या, अपनी मालकियत का उपाय कहां है?

तो सोचने लगा होगा कभी राह पर भीख मांगते। किसी द्वार पर भीख मांगता होगा, कोई कह देता होगा, आगे जाओ, तो याद आती होगी सौ स्वर्णमुद्राओं की। वह घाव बन गया। दो-दो पैसे मांगने पड़ते हैं, रोज रोटी मांगनी पड़ती है, तो सोचने लगा होगा--स्वाभाविक, तुम भी होते तो सोचने लगते--कि क्या रखा है इसमें! इससे तो बेहतर हुआ होता कि वे सौ स्वर्णमुद्राएं ले ली होतीं, मजा करते, अपने घर चादर तानकर, ओढ़कर सोते, कुछ करने की जरूरत नहीं थी जिंदगीभर। अब यह रोज-रोज मांगना--बुढ़ापा भी करीब आ रहा होगा--फिर बुढ़ापे में भी मांगना पड़ेगा। कभी बीमार भी हो जाता है भिक्षु, मांगने नहीं भी जा सकता, तो भूखा भी रह जाना पड़ता है।

और बुद्ध कहते थे, कल के लिए इकट्ठा भी मत करना। आज जो मिल गया, भोजन कर लिया, अगर कुछ बच गया तो बांट देना। कल फिर मांग लेना। रोज-रोज जीना, क्षण-क्षण जीना, कल का हिसाब मत रखना, भविष्य है कहां? भविष्य में तो सिर्फ मौत है। मौत तुम्हें खाली पाए। मौत जब आए तो तुम्हारे हाथ में कुछ भी न पाए, तो मौत तुमसे कुछ भी न छीन सकेगी। मौत जब आए, तुम्हें शून्यभाव में पाए, तो तुम अचानक हैरान हो जाओगे कि मौत आयी भी और तुम मरे भी नहीं और तुम्हारे भीतर कुछ अमृत स्वर बजने लगा।

अक्सर यही होता है कि मौत जब आती है तब हम चिंतित हो जाते हैं--मेरे मकान का क्या होगा? मेरे बेटे का क्या होगा? मेरी दुकान का क्या होगा? इसलिए हम चूक जाते हैं भीतर के अमृत को देखने में। हम उन्हीं

चीजों में उलझ जाते हैं जो मौत हमसे छीन लेगी। यह पत्नी, ये बेटे, यह धन, यह दौलत, ये सब जा रहे हैं, हम इसी में उलझ जाते हैं। हम हिसाब लगाने लगते हैं कि जीवनभर गंवाया, इतना कमाया; मौत यूं लिए जा रही है!

वह जो क्षणभर का मौका मिलता है, जब मौत हमसे सब छीनती है, अगर उस वक्त हमारे पास कुछ भी न हो--मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम मकान में न रहो, दुकान में न रहो--अगर सिर्फ तुम्हारे पास यह साफ बोध हो कि अपना यहां कुछ भी नहीं है, खाली हाथ आए थे, खाली हाथ जाना है, मौत क्या खाक छीन लेगी! हमने कभी अपना कुछ बनाया ही नहीं तो मौत क्या छीन लेगी! हम अकेले आए, अकेले जाते, ऐसी भावदशा हो, तो जब मौत तुमसे छीनने की कोशिश करेगी, तब तुम्हारी सारी दृष्टि अपने भीतर के अमृत पर पड़ेगी।

मौत शरीर छीन लेगी, मौत और क्या छीन सकती है! लेकिन तुम शरीर तो नहीं हो। उस घड़ी अगर संसार का प्रपंच तुम्हारे मन में न रहा, मन शांत रहा, तो तुम अमृत के दर्शन को उपलब्ध हो जाओगे। तो मौत फिर मोक्ष बन जाती है। जीने की भी एक कला है और मरने की भी एक कला है। न तो लोग जीते ठीक से, न लोग मरते ठीक से।

तो वह सोचने लगा कि दीन की भांति जीने से तो अच्छा था कि स्वर्णमुद्राएं ले लेता। फिर एक रात तो बात बहुत हो गयी, सो ही न सका होगा, सोचते-सोचते उसने तय ही कर लिया, सुबह अपने मित्रों को कहा कि आज तो जाकर भगवान के चरणों में निवेदन कर दूंगा कि सम्हालो अपना यह संन्यास, अब मैं तो चला, वे स्वर्णमुद्राएं मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं। मैं सुख से जीयूंगा, हो गया अब बहुत। यह झंझट अपने से नहीं होती! फिर सार भी क्या है? पाया भी क्या?

मेरे पास लोग आ जाते हैं, कि संन्यास लिया था सालभर हो गया, अभी तक कुछ मिला नहीं। तो छोड़ दें संन्यास? मैं उनसे पूछता हूं, संसार में रहते जन्म-जन्म हो गए, कुछ न मिला, और संन्यास सालभर हुआ और कुछ न मिला और छोड़ने की तैयारी है, तो शायद लिया ही न होगा।

छोड़ते वही हैं जिन्होंने कभी लिया ही नहीं। जिसने लिया है, छोड़ने को है भी क्या! संसार में पकड़ने को बाकी क्या है? जिसने समझकर लिया कि संसार में कुछ भी नहीं है--अब संन्यास का और क्या मतलब होता है--संन्यास का इतना ही अर्थ होता है, संसार में कुछ भी नहीं है। अगर तुम कहते हो कि संन्यास छोड़ना है, तो इसका अर्थ हुआ कि संन्यास छोड़ना है अर्थात संसार में कुछ है, वापस जाते हैं।

यह दहर भिक्षु वस्तुतः संन्यासी नहीं था। होता तो यह बात ही न उठती। होता तो दीनता पता ही न चलती। लेकिन ये सौ स्वर्णमुद्राओं ने सब डांवाडोल कर दिया। छोटी-छोटी बातें दिक्कत में डाल देती हैं।

मेरे एक मित्र सामने बैठे हैं। संन्यासी थे, फिर कुछ छोटी सी बात के लिए छोड़ दिया। छोटी सी बात, सौ स्वर्णमुद्राओं की ही बात! अड़चन थी। संन्यासी रहकर शायद समाज में जो मिल सकता था, वह नहीं मिल रहा था। किसी कालेज के प्रिंसिपल हो सकते थे, वह नहीं हो पा रहे थे, असुविधा आ रही थी, छोड़ दिया। लेकिन प्रिंसिपल होकर क्या हो जाएगा? धन पा लोगे थोड़ा ज्यादा तो क्या हो जाएगा?

ऐसे आदमी अपने को गंवाता है। और ध्यान रखना कि संन्यास कोई साल, दो साल, तीन साल का संबंध नहीं है, यह तो बोध है कि संसार में कुछ भी नहीं है। तो एक दफा जो संन्यास में उतरा सो उतरा, लौटने की कोई जगह नहीं है। पीछे जाएगा कहां? लौटने को कोई स्थान नहीं बचता।

तो उसकी तकलीफ तुम समझना, वह तकलीफ तुम्हारी भी है, बहुतों की है। आज तुमने संन्यास ले लिया है, कल तुम जिस दफ्तर में काम करते हो, अगर उन्होंने कहा कि देखो, अगर संन्यासी रहे तो पदोन्नति नहीं

होगी। रहे आओ! क्लर्क हो तो क्लर्क ही रहोगे, हेडक्लर्क न हो पाओगे। शिक्षक हो तो शिक्षक रहोगे, हेडमास्टर न हो पाओगे। बाधा डालेंगे, अड़चन डालेंगे। मन कई बार होगा कि यह कहां की झंझट में पड़ गए, छोड़कर हेडमास्टर ही हो जाते। लेकिन हेडमास्टर हो जाओगे, कि हेडक्लर्क हो जाओगे, पाओगे क्या? थोड़ी स्वर्णमुद्राएं और। मौत सब छीन लेगी, थोड़ी कि ज्यादा। कोई अंतर नहीं करेगी मौत।

तो उस आदमी की तकलीफ समझना, वह तुम्हारी भी तकलीफ है। भिक्षुओं ने बुद्ध को खबर दी। बुद्ध ने कहा, ऐसा होगा, यह निश्चित था। क्योंकि धन के त्याग में जो प्रशंसा लेना चाहता है, वह धन में अपने रस की घोषणा करता है। धन छोड़ने में प्रशंसा क्या है? तो जब इसने धन फेंका और कहा कि हटाओ, यह मिट्टी है और जब यह लोगों से कहने लगा कि देखो मैंने कैसा धन छोड़ दिया, कैसा महात्यागी हूं, तभी से मैं सोच रहा हूं कि आज नहीं कल, यह भिक्षु संन्यास छोड़ने की तैयारी करेगा। भोगी और त्यागी में बहुत भेद नहीं। असली बात तो तब घटती है जब बोधपूर्वक तुम्हें दिखायी पड़ता है कि संसार खाली है, यहां कुछ भी नहीं है। तब न तो छोड़ना है, न पकड़ना है। तब एक नया ढंग है जीवन का, होने की एक नयी शैली है।

फिर उन्होंने दहर को बुलाकर कहा, पागल, इतनी सी स्वर्णमुद्राओं से क्या होगा? सौ स्वर्णमुद्राएं, चलो, ठीक, लेकिन इससे क्या होगा! इससे तेरी तृष्णा तृप्त होगी? सौ मिल जाने पर तू और न मांगेगा? जब एक-एक स्वर्णमुद्रा खतम होने लगेगी खर्च से, तो तेरे मन में पीड़ा न आएगी कि अब थोड़ा कमाकर सौ तो कम से कम पूरी रखूं, नहीं तो ऐसे तो धीरे-धीरे सब खतम हो जाएगा, एक दिन फिर तू भिखारी का भिखारी हो जाएगा। और वह भिखारी भिखारीपन होगा, और यह भिक्षुपन भिक्षुपन है। इन दोनों में फर्क है। भिखारी और भिक्षु में फर्क है। भिखारी वह है, जिससे धन छिन गया। और भिक्षु वह है, जिसने धन की व्यर्थता जानकर छोड़ दिया। तो भिखारी दीन है, भिक्षु दीन नहीं है। भिखारी रो रहा है, भिक्षु प्रसन्न है। भिखारी अपमानजनक शब्द है, भिक्षु सम्मानजनक शब्द है।

इसलिए हमने बुद्ध को भिक्षु कहा, महावीर को भिक्षु कहा, हमने बड़ा सम्मान दिया। सम्राटों से ज्यादा सम्मान हमने भिक्षुओं को दिया।

दुनिया की और किसी भाषा में भिखारी के लिए दो शब्द नहीं हैं, सिर्फ भारत की भाषा में हैं। क्योंकि दुनिया ने कभी बुद्ध जैसा भिक्षु जाना ही नहीं। दूसरे मुल्कों ने ऐसा भिक्षु जाना ही नहीं। उन्होंने तो भिखारी जाने हैं। बड़ी कठिनाई होती है। पश्चिम की भाषाओं में जब अनुवाद करते हैं लोग बुद्ध का साहित्य, तो उनको बड़ी कठिनाई होती है कि भिक्षु को क्या कहें, बैगर कहें? यह बात जंचती नहीं। भिखारी कहें! यह बात तो जंचती नहीं। यह तो बात, यह भिखारी है ही नहीं आदमी, यह तो मालिक है। इससे बड़ा मालिक और कौन होगा? यह तो सम्राट है। यह तो शहंशाहों का शहंशाह है। चक्रवर्ती इसके पैरों में सिर झुकाते हैं, इसको भिखारी कहें? नहीं, भिखारी तो नहीं कह सकते हैं। फिर इसको कहें क्या? कोई दूसरा शब्द नहीं है। भिक्षु बड़ा अदभुत शब्द है।

दोनों का शाब्दिक अर्थ तो एक ही है, लेकिन अस्तित्वगत अर्थ बड़ा भिन्न है। कहां भिखारी, कहां भिक्षु! भिखारी वह है, जिसका सब खो गया, रो रहा है, उदास, खिन्नमना। भिक्षु वह है, जिसने देखकर कि सब व्यर्थ है, अपने हाथ हटा लिए। आनंदित है कि झंझट, व्यर्थ का उपद्रव, व्यर्थ का प्रपंच--जाग गया, प्रभु की अनुकंपा।

तो कहा, इन सौ स्वर्णमुद्राओं से तेरी तृष्णा मिट जाएगी? तृष्णा तृप्त होगी? तृष्णा तो कभी तृप्त होती नहीं। तृष्णा दुष्पूर है। उसे कभी कोई भर नहीं पाया। सौ स्वर्णमुद्राओं से तू सोचता है भर जाएगी? तो मेरी तरफ देख, बुद्ध ने कहा होगा, मेरे पास तो अरबों-खरबों स्वर्णमुद्राएं थीं। तो मैंने गलती की छोड़कर? मेरे पास

तो बहुत था, पर दिखा कि उतने से भी भरेगा नहीं मन। तो तू सौ स्वर्णमुद्राओं से भर लेगा! यह तेरे मन की प्यास इतनी बड़ी है और यह तू सौ बूंदों से भर लेगा! सागर छोड़कर मैं आ रहा हूं, मैं तुझसे कहता हूं कि सागर से भी नहीं भरती। यह भरती ही नहीं, यह दुष्पूर है। क्योंकि मन में कोई पेंदी नहीं है। कितना ही डालते चले जाओ, सब गिरता चला जाता है। मन खाली का खाली रहता है। हां, इतना हो सकता है कि ये थोड़ी सी स्वर्णमुद्राएं तेरी अग्नि में और घी का काम कर दें, और उसे प्रज्वलित कर दें। फिर तेरी मर्जी।

तब उन्होंने ये गाथाएं कहीं--

"यदि स्वर्ण की वर्षा हो तो भी मनुष्य की कामों से तृप्ति नहीं होती।"

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।

सौ से तो क्या होगा, अगर वर्षा भी हो जाए, वर्षा ही होती रहे स्वर्णमुद्राओं की तेरे घर पर, तो भी तेरी तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि मैं ऐसे ही घर से आता हूं जहां स्वर्ण की वर्षा ही हो रही थी। मेरी तरफ देख, बुद्ध ने कहा।

"सभी काम अल्पस्वाद और दुखदायी हैं।"

स्वाद है काम में, कामना में, वासना में, लेकिन अल्पस्वाद है। जब जीभ पर रखते हो तभी क्षणभर को लगता है, मीठा; और फिर तत्क्षण कड़वा हो जाता है। वह मीठा बहाना है।

तुमने देखा न, डाक्टर गोलियां देता है, कड़वी गोलियां, उनके ऊपर शक्कर की थोड़ी सी पर्त चढ़ी होती है, शक्कर का कोट चढ़ा होता है। उस शक्कर के कोट की वजह से तुम गटक जाते हो। जरा मुंह में रखकर देखना, थोड़ी देर रखे रहना, शक्कर का कोट गल जाने देना, तब तुम्हारा मुंह एकदम कडुवेपन से भर जाएगा। ऐसा ही है, जिसको तुम सुख कहते हो, वह शक्कर की पर्त है। जहर पी रहे हो सुख के नाम से। अल्पस्वाद!

अप्पस्सादा दुखाकामा इति विंंय पंडितो।

और पंडित, बुद्ध कहते हैं, वही है--वह नहीं जिसको बहुत शास्त्रों का ज्ञान है--पंडित वही है, जो इस बात को जानता है कि सभी काम अल्पस्वाद हैं और दुखदायी हैं, अंततः दुखदायी हैं।

क्या तुमने भी ऐसा जीवन में नहीं पाया? जहां-जहां सुख पाया, वहीं-वहीं दुख नहीं पाया? जिस-जिस से सुख की आशा बांधी, उसी-उसी से दुख नहीं मिला? जहां सुख की आशा ने पैर जमाए, वहीं तुमने दुख का नर्क नहीं पाया? अपने भीतर ही तलाशो, क्योंकि ये जो बुद्ध के वचन हैं, ये कोई तर्क, सिद्धांत और शास्त्र की बात नहीं है, यह तो जीवन का शुद्ध अनुभव है। बुद्ध तो बड़े वैज्ञानिक हैं, वह तो उतना ही कहते हैं जितना जीवन का अनुभव है। तुम भी पाओगे, तुम भी अपने अनुभव से गवाही दे सकोगे कि बुद्ध ठीक कहते हैं।

"ऐसा जानकर पंडित देवलोकों के भोगों में भी रति नहीं करता है।"

इस संसार का सुख तो व्यर्थ है ही, बुद्ध कहते हैं, स्वर्ग का सुख भी व्यर्थ है। क्योंकि वह बहुत काल तक चलता है, लेकिन फिर एक दिन चुक ही जाता है। और जब सुख चुकता है तो आदमी पुनः दुख में गिर जाता है। कुछ ऐसा सुख खोज, जो फिर कभी चुके न। कुछ ऐसा सुख खोज कि जो सिर्फ शक्कर की पर्त न हो। कुछ ऐसा सुख खोज जिसमें जहर हो ही न, अमृत हो, कुछ ऐसा सुख खोज। उसी सुख की खोज धर्म है।

"और सम्यक संबुद्ध का श्रावक तृष्णा का क्षय करने में लगता है।"

इसलिए जो बुद्धपुरुषों के सत्संग में पड़ा है, सम्यक संबुद्ध का श्रावक, जिसने बुद्धपुरुष की वाणी सुनी है, जिसके कानों में बुद्ध की वाणी का अमृत पड़ा है, वह तृष्णा का क्षय करने में लगता है, पागल! सौ स्वर्णमुद्राओं से कुछ भी न होगा।

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
हो जाए वर्षा स्वर्ण की तो भी कुछ नहीं।

अप्पस्सादा दुखाकामा इति विंंय पंडितो।।

पंडित यहां की तो बात ही छोड़, स्वर्ग का सुख भी नहीं मांगता है। तू मूढ़ मत बन। पंडित शब्द आता है प्रज्ञा से। जिसकी प्रज्ञा जाग्रत हो गयी, वही पंडित।

अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासंबुुद्धसावको।।

और तू तो बुद्ध का श्रावक, बुद्ध को सुनने वाला, बुद्ध को छोड़कर सौ स्वर्णमुद्राओं को चुनने जा रहा है, पागल! अमृत को छोड़कर जहर की तरफ लुभा रहा है, पागल!

एक स्वर पास आता रहा रात भर
दूर मन-प्राण जाता रहा रात भर
गीत कोई कहीं गुनगुनाता रहा
मैं घरौंदे बनाता रहा रात भर
माधवी की मधुर गंध आती रही
उस सनातन तृषा को जगाती रही
चांदनी शौक सांकल हिला देह की
क्षण यहां क्षण वहां मुस्कुराती रही
और रूठी हुई फूल की स्वामिनी को
बियाबां मनाता रहा रात भर
गीत कोई कहीं गुनगुनाता रहा
मैं घरौंदे बनाता रहा रात भर
चांद की हाट सजती-संवरती रही
एक तस्वीर बनती-बिगड़ती रही
कुछ उमड़ता-घुमड़ता रहा प्राण में
लोचनों में सुई एक गड़ती रही

एक अंधे कुएं में पड़ा चंद्रमा
राह अपनी न पाता रहा रात भर
गीत कोई कहीं गुनगुनाता रहा
मैं घरौंदे बनाता रहा रात भर
कुछ कहे-अनकहे एक वचन के लिए
कुछ गढ़े-अनगढ़े एक सपन के लिए
स्नेह के सिर्फ दो-चार कण के लिए
सिर्फ अपनत्व की एक छुअन के लिए
एक संभावना की किरण देखकर
कश्तियां मैं बहाता रहा रात भर
गीत कोई कहीं गुनगुनाता रहा
मैं घरौंदे बनाता रहा रात भर
बारजे पर खड़ी उमर ढलती रही
हर घड़ी सामने से निकलती रही
आंख फाड़े निहारा करी कामना
जंगलों में कहीं रेल चलती रही
बस हवा चीखती जंगलों में रही
बस दीया टिमटिमाता रहा रात भर
एक संभावना की किरण देखकर
कश्तियां मैं बहाता रहा रात भर
गीत कोई कहीं गुनगुनाता रहा
मैं घरौंदे बनाता रहा रात भर

ऐसा ही है हमारा जीवन। मिट्टी के घर, बालू के घर। ऐसा ही है हमारा जीवन, कागज की कश्तियां तैराते, सपनों के जाल बुनते। और अपने ही बुने जालों में भटक जाते।

दूसरा सूत्र--

"मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, उद्यान, वृक्ष और चैत्य आदि की शरण में जाता है। लेकिन यह शरण मंगलदायी नहीं है, यह शरण उत्तम नहीं है, क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुखों से मुक्ति नहीं मिलती।"

वहुं वे सरणं यंति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।।

आदमी भय के कारण ही भगवानों की पूजा कर रहा है। भय के कारण उसने मंदिर बनाए, भय के कारण प्रार्थनाएं खोजीं।

वहुं वे सरणं यंति पब्बतानि वनानि च।

कभी वृक्ष की पूजा करता है, कभी पत्थर की पूजा करता है, लेकिन गौर से देखना! कभी मंदिर में मूर्ति रखकर पूजा करता है, कभी मस्जिद में बिना मूर्ति के पूजा करता है, लेकिन गौर से देखना! मंदिर में, कि मस्जिद में, कि गुरुद्वारे में, कि चैत्यालय में, कि शिवालय में, कि गिरजे में, आदमी भय के कारण ही घुटने टेके खड़ा है। और बुद्ध कहते हैं, जो भय के कारण घुटने टेके खड़ा है, वह सत्य को कभी भी न जान पाएगा।

नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।

"यह उत्तम शरण नहीं है, यह मंगलदायी शरण नहीं है, क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुखों से मुक्ति नहीं मिलती है।"

यह सूत्र एक विशिष्ट परिस्थिति में बुद्ध ने कहा। कब गाथा कही, उसे समझ लें--

कौशल-नरेश प्रसेनजित के पिता का अग्निदत्त नामक ब्राह्मण पुरोहित था। जब कौशल-नरेश के पिता का देहांत हो गया, तब वह कौशल-नरेश के सत्कार-सम्मान करने पर भी घर-द्वार छोड़कर परिव्राजक बन गया। वह पंडित, अग्निदत्त। उसके पांडित्य की कीर्ति तो चारों ओर फैली ही थी, अब इस महात्याग ने तो सोने में सुगंध का काम किया। अतः वह थोड़े ही दिनों में हजारों शिष्यों से घिर गया। वह घूम-घूम कर उपदेश देता--तीर्थों की शरण जाओ, पवित्र नद-नदियों की शरण जाओ, मूर्ति-मंदिरों की शरण जाओ, श्रुति-स्मृतियों की शरण जाओ, यज्ञ, विधि-विधानों की शरण जाओ, ऐसे परम आनंद को उपलब्ध होओगे। ऐसी उसकी शिक्षा थी।

न तो स्वयं आनंद को उपलब्ध हुआ था, न उसे पता था कि आनंद को उपलब्ध होने का क्या मार्ग है। पंडित था बड़ा, शास्त्र पढ़े थे, विधि-विधान, यज्ञ का बोध था उसे, क्रियाकांडी था, शास्त्रों का उल्लेख कर सकता था, शास्त्रों के उद्धरण दे सकता था। स्मृति उसकी बड़ी प्रखर थी। सम्राट का पुरोहित था, तो वैसे ही प्रतिष्ठित था, और जब सब त्याग कर दिया उसने, तब तो उसकी प्रतिष्ठा का क्या कहना! हजारों लोग उसके शिष्य होने लगे। न केवल वह यह कहता कि नदी, पहाड़ों, मंदिरों, मूर्तियों, श्रुति-स्मृतियों-शास्त्रों की शरण जाओ, वह बुद्ध के विपरीत भी कहता।

बुद्ध के विपरीत कहने का कारण बिल्कुल साफ था। क्योंकि एक तो बुद्ध कहते, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र है, न कोई क्षत्रिय, न कोई वैश्य, आदमी बस आदमी है। तो अग्निदत्त को यह बात तो पसंद न पड़ती--किसी ब्राह्मण को पसंद नहीं पड़ती, जब तक कि ब्राह्मण में थोड़ी समझ न हो। क्योंकि उसका तो मजा ही यही है कि और कोई ब्राह्मण नहीं है, मैं ब्राह्मण हूं। और बुद्ध ने तो बड़ी अनूठी बात कही, बुद्ध ने तो कहा कि सब पैदा होते से शूद्र ही होते हैं। सब शूद्र ही की तरह पैदा होते हैं, ब्राह्मण तो कोई कभी बन पाता है जब ब्रह्म को जानता है। जो ब्रह्म को जान ले, वह ब्राह्मण। ब्राह्मण कोई जन्म से नहीं होता, बोध से होता है। तो ब्राह्मणों को तो बहुत बात अखर रही थी।

फिर बुद्ध कहते थे, शास्त्रों में कुछ भी नहीं है। वेदों में कुछ भी नहीं है। जो है तुम्हारे चैतन्य में है। जो है तुममें है। यह बात भी बड़ी अखरने वाली थी। अगर तुम मुसलमान से कहो कि कुरान में कुछ भी नहीं है, वह

नाराज हो जाएगा। अगर हिंदू से कहो, वेद में कुछ नहीं है, वह नाराज हो जाएगा। और की तो छोड़ो, अगर तुम बौद्ध से कहो, धम्मपद में कुछ भी नहीं, तो वह नाराज हो जाएगा। यद्यपि शास्त्र में कुछ भी नहीं है। जो है तुम्हारे चैतन्य में है। और जब तुम्हारे चैतन्य में जगता है, तो शास्त्र में भी दिखायी पड़ने लगता है। और जब तक चैतन्य में न जगे, कोई शास्त्र तुम्हें जगा नहीं सकता है।

तो बुद्ध शास्त्र-विरोधी हैं; वर्ण-विरोधी, आश्रम-विरोधी। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि जिसको भी संन्यास लेना है, तब वह एक क्षण की देर न करे। हिंदू तो कहते थे, बुढ़ापे में लेना संन्यास। उन्होंने तो आश्रम बांट रखे थे--पच्चीस साल तक ब्रह्मचारी रहो, फिर पच्चीस साल तक गृहस्थ रहो, फिर पच्चीस साल तक वानप्रस्थ रहो, फिर अगर बच रहे, पचहत्तर साल के बाद अगर बच रहे, तो संन्यासी हो जाओ।

ऐसा लगता है कि यह तो बहुत मुश्किल था। क्योंकि वैज्ञानिक खोजों से पता चलता है कि पुराने जमाने में, आज से पांच हजार साल पहले, अधिक से अधिक उम्र तक आदमी चालीस साल तक पहुंचता था। कभी-कभी कोई इसके पार जाता था। बहुत मुश्किल से इसके पार जाता था। हड्डियां मिली हैं जो अब तक खोजों से, उनमें कभी भी चालीस साल से पुरानी हड्डी नहीं मिली।

तो यह तो बात बड़ी उलझन की थी। कभी-कभी होता था, कोई आदमी अस्सी जीता था, कोई सौ भी जीता था। वह अब भी होता है। अब भी कोई आदमी अस्सी जीता है, कोई सौ जीता है, लेकिन औसत उम्र तो अब भी वहीं अटकी हुई है। हिंदुस्तान में औसत उम्र चौंतीस साल है, अभी भी। इतनी वैज्ञानिक औषधियों की खोज के बाद भी।

तो औसत उम्र चालीस साल से ज्यादा नहीं थी। तो सौ साल का होना तो बड़ी देर की बात थी, बड़ी मुश्किल बात थी। पहले तो पचहत्तर के जब तुम हो जाओगे तब संन्यास की आज्ञा थी, तो संन्यासी कौन हो पाता! कोई बिल्कुल बूढ़े-ठूढ़े, बच गए अगर, अगर जिंदगी ने न मार डाला, तो। और वह भी अनिवार्य तो नहीं। क्योंकि मैं पचहत्तर साल के लोगों को भी देखता हूं, वे भी अभी सोच नहीं रहे संन्यास की।

बुद्ध ने यह धारा तोड़ दी। बुद्ध ने कहा, यह सब तो आदमियों को वंचित रखना है। जिसको जब संन्यासी होना हो। अगर दस साल का बच्चा संन्यासी होना चाहता है, तो बुद्ध ने कहा, मैं संन्यास दूंगा। क्योंकि कौन तय कर सकता है कि कल वह बचेगा कि नहीं?

मेरे से लोग आकर पूछते हैं कि आप छोटे बच्चे को संन्यास दे देते हैं! मैं कहता हूं, सवाल यह है कि अगर वह कल बचेगा इसका पक्का हो, तो कल दे देंगे, लेकिन कल का कुछ भी पक्का नहीं है। परसों का कुछ भी पक्का नहीं है। समय तो यूं बहा जा रहा है और कभी भी मौत आ सकती है। और मौत कोई आश्रम को मानती नहीं कि हम सौ साल के बाद आएंगे। क्योंकि मौत कोई हिंदू थोड़े ही है!

तो बुद्ध ने कहा, जिसको जब संन्यास लेना है, जिस घड़ी, वह उसी घड़ी संन्यास ले ले। यह बड़ी उपद्रव की बात थी। इससे पूरा हिंदू ढांचा अस्तव्यस्त हो गया। वर्ण तुड़वा दिए, आश्रम तुड़वा दिए। वर्णाश्रम तो हिंदू-धर्म का आधार है।

तो नाराज थे पंडित, नाराज थे ब्राह्मण, नाराज थे पुरोहित। और उनका सब व्यवसाय ही छीन लिया। क्योंकि पुरोहित जीता ही इस बात पर है, ब्राह्मण जीता ही इस बात पर है कि शास्त्र सुनो, सत्यनारायण की कथा करवाओ--इससे सब हो जाएगा--कि गंगा जाओ, त्रिवेणी पर नहाओ, कुंभ मेले में जाओ--सब हो जाएगा, पाप धुल जाएंगे--कि पत्थर की पूजा करो, कि मंदिर की पूजा करो, ऐसे ब्राह्मण जीता रहा है। यह उसका व्यवसाय है।

तो बुद्ध ने तो जड़ काट दी, सारा व्यवसाय उखाड़ दिया। बुद्ध कहते हैं, अपने भीतर जाओ! अपने भीतर जाने के लिए किसी पुरोहित की कोई जरूरत नहीं है। बुद्ध कहते हैं, तुम्हारा भगवान तुम्हारे भीतर। किसी को बीच में लेने की आवश्यकता नहीं है। इशारा समझ लो और अंदर चले जाओ।

तो नाराज था वह। और जैसा बुद्ध कहते थे, बुद्धत्व की शरण जाओ। ऐसा वह कहता था, बुद्धत्व की शरण से क्या होगा, तुम शास्त्र की शरण जाओ, परंपरा की शरण जाओ।

एक बार यह अग्निदत्त अपने शिष्यों सहित श्रावस्ती के पास विहार कर रहा था और भगवान बुद्ध भी श्रावस्ती में विराजमान थे। तो भगवान ने अपने एक प्रमुख शिष्य मौद्गलायन को बुलाकर कहा--मौद्गलायन भगवान के जीते जी संबोधि को उपलब्ध हो गया था; वह परमज्ञान को उपलब्ध हो गया था--तो उन्होंने मौद्गलायन को बुलाकर कहा कि जाओ, इस बेचारे अग्निदत्त को भी जगाओ! फिर अगर जरूरत पड़ी तो मैं भी आऊंगा। तो मौद्गलायन गए।

लेकिन सोयों को जगाना इतना आसान तो नहीं। फिर सोए हुए पंडित हों तो और भी मुश्किल है। और फिर उनके पास शिष्यों की भीड़ हो तब तो फिर करीब-करीब असंभव है। लेकिन भगवान ने कहा तो मौद्गलायन गए। अग्निदत्त ने तो उनमें जरा भी रुचि न ली। उसने तो उनसे बैठने को भी न कहा। वह तो विवाद पर तैयार हो गया। वह तो विवाद करने न आए थे। वह तो कोई संदेश देने आए थे, लेकिन वह संदेश सुनने को भी राजी न था। ऐसे बातचीत में रात हो गयी, तो मौद्गलायन ने कहा कि मुझे कम से कम रात तो आपके आश्रम में रुक जाने दें। लेकिन अग्निदत्त ने कहा, इस आश्रम में इस तरह के लोगों के रुकने की कोई संभावना नहीं। तुम भ्रष्ट हो और तुम दूसरों को भ्रष्ट करना चाहते हो।

एक बुद्धपुरुष को भी देखकर पंडित पहचान न सका, पंडित की आंखें ऐसी अंधी होती हैं। शास्त्रों से इतनी भरी होती हैं कि सामने ज्योति खड़ी हो तो भी दिखायी नहीं पड़ती।

मजबूरी थी तो मौद्गलायन पास में ही बालुका की एक राशि पर नदी के किनारे जाकर सो रहे। ठंडी रात थी। और अग्निदत्त और उसके शिष्य बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि उस बालुका राशि पर कोई जाता नहीं था, वहां एक नागराज का निवास था। और वह नागराज बड़ा खतरनाक था। और आदमी वहां पहुंच जाए तो खतम ही, जिंदा वहां से कोई लौटता नहीं था। तो उन्होंने सोचा, चलो झंझट टली! और यह भी कैसे आदमी को बुद्ध ने भेजा, जिसको इतना भी बोध नहीं है कि कहां सोने जा रहा है! यहां मौत आएगी।

सुबह तो जल्दी-जल्दी शिष्य उठे अग्निदत्त के और देखने गए कि देखें, मरा हुआ पड़ा होगा बेचारा! वहां जाकर देखे तो चकित हो गए। वह तो ध्यान लगाए बैठे हैं और नागराज अपना फन उनके ऊपर किए रक्षा कर रहा है। चकित! भागे सभी शिष्य। अग्निदत्त अकेला रह गया अपने आसन पर बैठा। उसे बड़ा बुरा भी लगा, बड़ी ग्लानि भी हुई और उत्सुकता भी जगी, वह भी देखना चाहता था--था तो वैसा ही जैसे बच्चे होते हैं, कोई बोध तो उसे था नहीं। उत्सुकता, कुतूहल, वह भी पीछे से आया। चुपचाप आकर देखा, हुआ चमत्कृत! मौद्गलायन को देखकर जो जरा भी प्रभावित न हुआ था, वह भी इस चमत्कार को देखकर प्रभावित हुआ। मूढ़ों के प्रभावित होने के अपने ढंग होते हैं। सारे शिष्य मौद्गलायन के चरणों में गिर पड़े। खैर, अग्निदत्त इतनी हिम्मत तो नहीं किया, लेकिन दुखी बहुत हुआ। नाराज भी बहुत मन में हुआ कि ये शिष्य उसके चरण में झुक रहे हैं।

तभी बुद्ध का आगमन हुआ। जब बुद्ध आकर खड़े हो गए, मौद्गलायन ने आंखें खोलीं, वह उनके चरणों में गिरा--मौद्गलायन अपने गुरु के चरणों में गिरा। तब तो शिष्य बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि जब यह शिष्य इतना चमत्कारी, तो इसके गुरु का क्या कहना! वे सब बुद्ध के चरणों में गिरे।

अग्निदत्त ने डरते-डरते बुद्ध से पूछा कि यह चमत्कार क्या है? बुद्ध ने कहा कि यह चमत्कार दूसरी तरफ से सोचो, इससे भी बड़ा चमत्कार हुआ कि तुम मनुष्य हो और न पहचान सके और सर्प ने पहचान लिया।

इधर सोचो। आदमी कैसा गया-बीता हो सकता है! पशु पहचान लेता है कभी-कभी, क्योंकि पशु निर्मल होता है, निर्दोष होता है। पशु को न तो वेद मालूम हैं, न पुराण मालूम हैं; न पशु हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है; पशु सरल है। यह नाग भी पहचान सका। यह तरंग जो मौद्गलायन के आसपास है, यह नाग भी पहचान सका।

और अक्सर नाग पहचान लेते हैं। इस बात को तुम चमत्कार ही मत समझना, यह कोई पहली दफे घटी घटना नहीं है, यह भारत में बहुत दफे घटी है। बहुत से जैन तीर्थंकरों के साथ घटी है। यह बहुत बार घटी है। नाग में कुछ खूबियां हैं!

तुम चकित होओगे यह बात जानकर कि वैज्ञानिक कहते हैं कि नाग के पास कान नहीं होता। इसलिए पहले तो वैज्ञानिक बहुत हैरान हुए थे यह बात जानकर कि जब मदारी अपनी तूंबी बजाता है, तो नाग फन क्यों हिलाने लगता है? क्योंकि उसके पास कान तो है ही नहीं, तो ध्वनि तो सुन ही नहीं सकता नाग। नाग तो बिल्कुल बहरा है, बज्र बहरा, ध्वनि तो उसके भीतर पहुंच ही नहीं सकती, तो वैज्ञानिक तो बड़े हैरान थे कि मामला क्या है! तो पहले तो उन्होंने सोचा कि शायद वह मदारी जो अपना सिर हिलाता है, उसको देखकर नाग भी सिर हिलाने लगता है--क्योंकि सुन तो सकता ही नहीं है।

तो फिर उन्होंने मदारियों से तूंबी बजवायी और कहा कि सिर मत हिलाना और तूंबी मत हिलाना, लेकिन नाग ने तब भी फन हिलाए। तब खोजबीन और आगे बढ़ी। अब तथ्य समझ में आ गया है। नाग के पास कान तो नहीं हैं, लेकिन उसका पूरा शरीर इतना संवेदनशील है कि ध्वनि को पकड़ता है--पूरा शरीर। ऐसा कहो कि उसका पूरा शरीर कान का काम करता है। कान भी है तो चमड़ी ही, हड्डी और चमड़ी। तुम्हारा छोटा सा कान सुनता है, उसका पूरा शरीर सुनता है--अलग से कान की उसे जरूरत नहीं है। यह नवीनतम खोज है।

और भारत में यह अनुभव बहुत बार हुआ है कि बुद्धपुरुषों के पास, जहां आदमी नहीं पहचान पाए, वहां नाग पहचान गए। क्योंकि बुद्धपुरुषों की जो तरंग है, उनके आसपास जो विद्युत है, वह जो सूक्ष्म लहर है, वह लहर नाग का पूरा शरीर पकड़ लेता है। वह मस्त हो जाता है। वह डूब जाता है।

हिंदुओं ने इसलिए नाग की पूजा शुरू की, क्योंकि नाग अनूठा है। ऐसा कोई दूसरा पशु-पक्षी या जानवर नहीं, जैसा नाग है। उसमें कुछ खूबियां हैं। और सबसे बड़ी खूबी यह है कि बुद्धपुरुषों के पहचान की क्षमता है उसमें। जो बुद्धपुरुषों को पहचान लेता हो, उसमें कुछ न कुछ बुद्धत्व की किरण होनी चाहिए।

बुद्ध ने कहा, पागल, तू इससे प्रभावित हो रहा है, लेकिन यह नहीं सोचता कि मौद्गलायन तेरे पास आया, मैंने उसे भेजा और तू अंधे की तरह रहा, तूने देखा नहीं। ऐसी अवस्था में अग्निदत्त किंकर्तव्यविमूढ़ बुद्ध के सामने खड़ा रह गया। एक मन झुकने का होने लगा, एक मन अकड़ने का। ब्राह्मण कैसे झुक जाए क्षत्रिय के पैर में? पंडित, ज्ञानी अपने को मानता था, इतने शिष्य, कैसे झुक जाए? लेकिन भीतर कोई चीज झुकने को भी होने लगी।

तब बुद्ध ने पूछा कि अग्निदत्त, तेरी शिक्षा का सार क्या है? तू लोगों को क्या समझाता है? तो उसने अपना सूत्र दोहराया--तीर्थों की शरण जाओ, पवित्र नद-नदियों की शरण जाओ, मूर्ति-मंदिरों की शरण जाओ, श्रुति-स्मृतियों की शरण जाओ, यज्ञ-विधि-विधानों की शरण जाओ, ऐसे परम आनंद को उपलब्ध होओगे। बुद्ध ने कहा, पागल, इन शरणों से कोई कभी दुख से छुटकारा पाया है। तूने पाया? तू अपनी कह, तुझे दुख से

छुटकारा मिला है? तेरे जीवन में आनंद की किरण उतरी है? और कम से कम एक बार बेईमानी मत कर। मैं तेरा साक्षी तेरे सामने खड़ा हूं, तूने सुख पाया है? अपने भीतर देख! और जो तुझे नहीं मिला, तो तेरी शिक्षा से दूसरों को कैसे मिल जाएगा?

काश, दुनिया के बहुत से गुरु इस बात को थोड़ा देख लें अपने भीतर, तो बहुत लोगों की भटकन बच जाए।

तब बुद्ध ने यह गाथा कही--

वहुं वे सरणं यंति पब्बतानि वनानि च।

"मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, उद्यान, वृक्ष और चैत्य आदि की शरण में जाता है।"

आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।।

यह सब भय के कारण हो रहा है, यह किसी समझ के कारण नहीं।

"लेकिन यह शरण मंगलदायी नहीं है।"

मनुष्य वृक्ष के सामने झुके, कि पहाड़ के सामने झुके, कि नदी के सामने झुके, इससे क्या होगा? मनुष्य बुद्धत्व के आगे झुके तो कुछ हो सकता है।

नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।

"ऐसे दुखों से मुक्ति नहीं मिलती।"

"जो जागे हुओं की शरण में गया, जो जागे हुओं के समूह की शरण में गया और जो जागने के परमसूत्र धर्म की शरण में गया, जिसने आर्य-सत्यों को सम्यक प्रज्ञा से देख लिया, जिसने दुख, दुख की उत्पत्ति, दुख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग को देख लिया, वही सच्ची शरण गया। यही मंगलदायी शरण है, यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर सभी दुखों से मुक्त हुआ जा सकता है।"

यो च बुद्धंच धम्मंच संघंच सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पांय पस्सति।।

जो बुद्ध, संघ, धर्म की शरण गया, जिसने चार आर्य-सत्यों को प्रज्ञा से पहचाना, बोध से पहचाना।

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।

कि दुख है, कि दुख से मुक्ति है, कि दुख की उत्पत्ति का कारण है, कि दुख से उत्पन्न हुई अवस्था से पार जाने के लिए अष्टांगिक मार्ग है।

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियंचट्ठंगिके मग्गं दुक्खूपसमगामिनं।।
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।

यह है ऊंची शरण। यह है झुकने योग्य झुकना। यह है समर्पण का द्वार।

एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।

और तुझसे मैं कहता, अग्निदत्त, कि ऐसा करके कोई सब दुखों के पार हो जाता है, आनंद को उपलब्ध होता है।

जो आठ, बुद्ध ने आर्य-अष्टांगिक मार्ग कहा है, उस संबंध में थोड़ी सी बात समझ लेनी चाहिए।

पहला सूत्र है आठ अंगों में--सम्यक दृष्टि। जो है, वही देखना। जैसा है, वैसा ही देखना। अन्यथा न करना। कोई धारणा बीच में न लानी। कामना, वासना, धारणा को बीच में न लाना। जो है, जैसा है, वैसा ही देखना। अब यह अग्निदत्त बुद्ध के सामने खड़ा है, लेकिन जो है, जैसा है, वैसा नहीं देख रहा है। सोचता है यह क्षत्रिय है, सोचता है यह वेद-विरोधी है; ये धारणाएं हैं। नागराज पहचान सके मौद्गलायन को और अग्निदत्त चूक गया! कैसे चूका होगा? धारणाओं के कारण। काश, धारणाओं को हटाकर, धारणाओं के मेघों को हटाकर देखता, तो जो था वह उसे भी दिखायी पड़ जाता। इसको कहते हैं--सम्यक दृष्टि।

दूसरा है--सम्यक संकल्प। हठ मत करना। अक्सर लोग हठ को संकल्प मान लेते हैं और हठी आदमी को कहते हैं, यह संकल्पवान है। जिद्दी को संकल्पवान कहते हैं। जिद्द को, हठ को संकल्प मत मान लेना। जिद्द तो अहंकार है। संकल्प में कोई अहंकार नहीं होता। हठ और संकल्प में यही फर्क है। हठ में असली मुद्दा अहंकार का है। आदमी कहता है, ऐसा करके दिखाऊंगा, ऐसा करके रहूंगा। क्या कर रहा है, इसकी बहुत फिकर नहीं है, लेकिन यह अहंकार का दावा है कि यह करके रहूंगा, नहीं कर पाया तो बड़ी ग्लानि हो जाएगी। धन में रस नहीं है, लेकिन धनी होकर दिखाना है। पद में रस नहीं है, लेकिन पदवान होकर दिखाना है। कुछ करके दिखाना है। यह जो बात है, यह असम्यक संकल्प है।

बुद्ध कहते हैं, सम्यक संकल्प का अर्थ होता है जो करने योग्य है, वह करना है। और जो करने योग्य है, उस पर पूरा जीवन दांव पर लगा देना है। लेकिन किसी अहंकार के कारण नहीं, वह करने योग्य है, इसलिए।

तीसरा है--सम्यक वाणी। जो है वही कहना। जैसा है, वैसा ही कहना। अन्यथा नहीं, बदलकर नहीं; ऊपर कुछ, भीतर कुछ, ऐसा नहीं। क्योंकि अगर तुम सत्य की खोज में चले हो, तो पहली तो शर्त पूरी करनी पड़ेगी कि तुम सच्चे हो जाओ। जो सच्चा हो गया है, सत्य का उसी से संबंध जुड़ेगा। जो झूठा है, उससे सत्य का संबंध न जुड़ सकेगा।

मैंने सुना है, एक छोटा बच्चा घर में आए मेहमानों से बोला, आप सब यहां मरने के लिए आए हैं क्या अंकल? चार वर्षीय राजू की यह बात सुनकर सब मेहमान हैरान रह गए। दादी ने तो बहुत डांटा राजू को और

कहा कि यह क्या बोल रहा है? राजू ने कहा, मुझे क्या मालूम, मां ही कह रही थीं मुझे सुबह कि अगर मुझे पता होता कि ये सब यहां आकर मरेंगे तो मैं छुट्टियों में कहीं और चली जाती।

मेहमान घर में आता है, तो भाव कुछ, कहते कुछ, बताते कुछ। सुबह किसी को मिल जाते हो तो मन तो यह होता है--कहां से इस दुष्ट की शकल दिखायी पड़ गयी, मगर ऊपर से कहते हो कि दर्शन हुए बड़े दुर्लभ, बड़े दिनों में दिखायी पड़े, बड़ी कृपा हुई! और भीतर यह कि यह दुष्ट न दिखायी पड़ता तो अच्छा, पता नहीं मुकदमा जीतेंगे कि हारेंगे, यह सुबह से कहां दर्शन हो गए!

सम्यक वाणी का अर्थ होता है, जैसा है--चाहे जो भी कीमत चुकानी पड़े--पाखंड नहीं। अगर कोई बात पसंद नहीं पड़ती तो निवेदन कर देना कि पसंद नहीं पड़ती। अगर कोई बात पसंद पड़ती है तो निवेदन कर देना कि पसंद पड़ती है। झुठलाना मत। झूठे पाखंड अपने आसपास खड़े मत करना।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक बहुत पुराना मित्र उसके घर आया। तपाक से मुल्ला उठा, पहले हाथ से हाथ मिलाया और फिर गले से गले मिला, फिर प्रसन्नता के अतिरेक में उसे गोद में उठाकर ड्राइंगरूम तक लाया। अंदर आया तो पत्नी ने कुढ़कर पूछा कि मुल्ला, जब मेरी कोई सहेली आती तो तुम्हें जैसे सांप सूंघ जाता है। तब भी कभी प्रसन्न हुए हो इतना? मुल्ला ने कहा, भाग्यवान, कुछ मत पूछ! प्रसन्न तो इससे भी ज्यादा होता हूं, मगर प्रगट नहीं कर सकता। अगर तू कह दे कि प्रगट करने की छूट है, तो अगली दफा देखना। तेरी सहेली को जो पकडूंगा, गोद में बिठाऊंगा तो छोडूंगा ही नहीं। मन तो यही होता है कि खूब प्रसन्न होएं, लेकिन तेरे डर के कारण नहीं हो पाते।

तुम अपने जीवन में थोड़ा देखना, तुम कुछ हो भीतर, बाहर कुछ बताए चले जाते हो। धीरे-धीरे यह बाहर की पर्त इतनी मजबूत हो जाती है कि तुम भूल ही जाते हो कि तुम भीतर क्या हो। सम्यक वाणी का अर्थ होता है, धीरे-धीरे सभी अर्थों में, दृष्टि में, संकल्प में, वाणी में हृदय की अंतरतम अवस्था को झलकने देना।

चौथा है--सम्यक कर्मांत। वही करना जो वस्तुतः तुम्हारा हृदय करने को कहता है। व्यर्थ की बातें मत किए चले जाना। किसी ने कह दिया, तो कर लिया।

अक्सर तुम करते हो ऐसा। पड़ोसी एक मोटर खरीद लाया, कार खरीद लाया, अब तुमको भी खरीदनी है। तुम्हें एक दिन पहले तक कोई कार नहीं खरीदनी थी, तुम बिल्कुल मजे में जी रहे थे। अब एक झंझट आ गयी। पड़ोसी का अनुकरण करना है। अधिक लोग अनुकरण में ही मारे जाते हैं।

सम्यक कर्मांत का अर्थ होता है, वही करना है जो तुम्हें करने योग्य लगता है। ऐसे हर किसी की बात में मत पड़ जाना, नहीं तो तुम्हारी छीछालेदर हो जाएगी। हजारों लोग हजारों ढंग के काम कर रहे हैं, अगर तुम हर दिशा में दौड़ने लगे, तो तुम्हारा कर्म धीरे-धीरे बिखर जाएगा। तुम्हारी धारा हजार खंडों में टूट जाएगी, तुम सागर तक न पहुंच पाओगे। सम्यक कर्मांत का अर्थ है, एक दिशा पर नजर रखना, जो तुम्हें करना है, वही करना। और-और दिशाओं में अपने जीवन-श्रम को मत बंट जाने देना। तब तुम्हारे भीतर एक समंजन, एक समरसता पैदा होगी।

अभी तो ऐसा है कि बहुत खंड हैं, कुछ कहते, कुछ सोचते, कुछ करते। आज कुछ करते, कल कुछ करते, परसों कुछ करने लगते। इधर एक मकान उठाना शुरू किया, फिर आधा छोड़ दिया, फिर दूसरा मकान बनाने लगे। इधर एक कुआं खोदा दो हाथ, फिर छोड़ दिया, फिर दूसरा कुआं खोदने लगे। ऐसे करते तो तुम बहुत हो, लेकिन फल हाथ नहीं आता। फल आने के लिए सातत्य चाहिए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करना कई दफे शुरू करते हैं, फिर बंद हो जाता है। एक दिन करते, दो दिन करते, फिर टूट जाता है। फिर लौटते, फिर करते, फिर टूट जाता। तो फिर नहीं होगा। जीवन में एक सातत्य, एक संकल्प, जो चुना है करने के लिए उसे करते रहने का धीरज, प्रतीक्षा, सहिष्णुता। आज ही फल तो नहीं आ जाएगा। बीज बोए हैं तो वक्त लगेगा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मौसम आएगा ठीक, अनुकूल, तब बीज अंकुरित होंगे, फिर वृक्ष बड़े होंगे, वर्षों लगेंगे तब कहीं फल होंगे--प्रतीक्षा करनी होगी।

पांचवां है--सम्यक आजीव। बुद्ध कहते हैं, हर किसी चीज को आजीविका मत बना लेना। अब कोई आदमी कसाई बनकर अपनी रोटी कमा रहा है। यह भी कोई कमाना हुआ! रोटी ही कमानी थी, हजार ढंग से कमा सकते थे, कसाई होने की क्या जरूरत थी? यह बड़ी असम्यक आजीविका है। कि कोई स्त्री वेश्या होकर रोटी कमा रही है! कोई सम्यक आजीविका खोजना। रोटी तो कमानी ही है, यह बात सच है, लेकिन सम्यक खोजना।

और ध्यान रखना, अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो तुम्हारे जीवन में शांति होगी। अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो सत्य और तुम्हारे बीच अनेक बाधाएं कम हो जाएंगी। अब अगर कोई आदमी झूठ का ही धंधा कर रहा है--समझो कि वकील है--अब बड़ा मुश्किल होगा इसको जीवन में सत्य को लाना। इसका धंधा ही झूठ है। झूठ इसकी आजीविका है। झूठ में जितना पारंगत होगा, उतनी ही सफलता मिलने वाली है। अब सत्य से तो यह डरेगा। सत्य का तो कोई संबंध ही नहीं इसकी आजीविका से। इसको तो झूठ को ही सत्य सिद्ध करना है। और ध्यान रखना, वही वकील सफल होता है, जो अदालत में झूठ को सत्य सिद्ध ही नहीं करता, बल्कि इस तरह सिद्ध करता है कि लगे कि सत्य है ही। खुद भी आंदोलित दिखायी पड़ता है, कि उसे पक्का भरोसा है कि यह सच है। झूठ को बोलते वक्त ऐसे बोलता है कि जैसे वह खुद आंखों से देखा है, सामने मौजूद था। क्योंकि अगर वकील खुद ही आश्वस्त नहीं है तो अदालत को आश्वस्त नहीं कर पाएगा। अगर भीतर खुद ही जान रहा है कि यह झूठ है, तो झूठ की खबर मिलती रहेगी उसके चेहरे से, ढंग से, जानेगा कि यह मामला तो हारे ही हैं, जीतना मुश्किल है। तो उदास होगा, प्रफुल्लता न होगी, बल न होगा, वाणी में प्रभाव न होगा।

सम्यक आजीव का अर्थ है, सृजनात्मक आजीविका। ऐसी कुछ आजीविका चुनना, जो तुम्हारे जीवन को परमात्मा की तरफ ले जाने में सृजनात्मक हो, विध्वंसात्मक न हो।

छठवां है--सम्यक व्यायाम। अति न करना, बुद्ध कहते हैं। कुछ लोग हैं आलसी और कुछ लोग हैं अति कर्मठ। दोनों ही नुकसान में पड़ जाते हैं। आलसी उठता ही नहीं, तो पहुंचे कैसे! कर्मठ मंजिल के सामने से भी निकल जाता है दौड़ता हुआ, रुके कैसे, वह रुक ही नहीं सकता। रुकने की उन्हें आदत नहीं है।

मैं दोनों तरह के लोगों को जानता हूं, दोनों ध्यान में नहीं पहुंच पाते। आलसी कुछ करता ही नहीं, कर्मठ ज्यादा कर जाता है! तुम अगर तीर लेकर निशाना लगाने गए हो, तो निशाना सम्यक होना चाहिए। अगर थोड़ा नीचे पड़ा तो भी चूक जाएगा तीर, अगर थोड़ा ऊपर पड़ गया तो भी चूक जाएगा तीर। और जब तुम तीर को चलाओ तब प्रत्यंचा सम्यक खिंचनी चाहिए। अगर थोड़ी कम खिंची, तो पहले ही गिर जाएगा तीर। अगर थोड़ी ज्यादा खिंच गयी, तो आगे निकल जाएगा तीर।

इसलिए बुद्ध का जोर अति वर्जित करने पर है। बुद्ध कहते हैं, सम्यकत्व, मध्य, मज्झिम निकाय। सम्यक व्यायाम।

और सातवां है--सम्यक स्मृति। व्यर्थ को भूलना और सार्थक को सम्हालना। तुम अक्सर उलटा करते हो, सार्थक तो भूल जाते हो, व्यर्थ को याद रखते हो। कुछ ऐसा है कि हीरे-हीरे तो छोड़ देते हो, कूड़ा-कचरा सब

इकट्ठा कर लेते हो। जीवन में जो भी बहुमूल्य है, उसको तो बिसार देते हो। सबसे ज्यादा बहुमूल्य तो तुम्हारी चेतना है, उसको तो तुम बिल्कुल बिसारकर बैठ गए हो और ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो और उनका हिसाब लगा रहे हो। तिजोड़ी में कितने रुपए हैं, तुम्हें पता है, लेकिन तुम्हारे भीतर कौन बैठा है, यह तुम्हें पता नहीं है। इसको बुद्ध ने कहा, सम्यक स्मृति।

बुद्ध के स्मृति शब्द से ही संतों का सुरति शब्द आया। सुरति स्मृति का ही अपभ्रंश है। जिसको कबीर सुरति कहते हैं, वह बुद्ध की स्मृति ही है। उसको ही थोड़ा मीठा कर लिया--सुरति, अपनी याद, अपनी पहचान।

और आठवां है--सम्यक समाधि। बुद्ध समाधि में भी कहते हैं सम्यक, ख्याल रखना। क्यों? क्योंकि ऐसी भी समाधियां हैं जो सम्यक नहीं हैं--जड़ समाधि। एक आदमी मूर्च्छित पड़ जाता है, इसको बुद्ध सम्यक समाधि नहीं कहते। ऐसा आदमी गहरी निद्रा में पड़ गया, बेहोशी। मन के तो पार चला गया है, लेकिन ऊपर नहीं गया, नीचे चला गया। मन तो बंद हो गया, क्योंकि गहरी मूर्च्छा में मन तो बंद हो जाएगा, लेकिन यह बंद होना कुछ काम का न हुआ। मन बंद हो जाए और होश भी बना रहे। मन तो चुप हो जाए, विचार तो बंद हो जाएं, लेकिन बोध न खो जाए।

तीन स्थितियां हैं मन की। स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति। स्वप्न तो बंद होना चाहिए--चाहे सम्यक समाधि हो, चाहे असम्यक समाधि हो, स्वप्न तो दोनों में बंद हो जाएगा, विचार की तरंगें बंद हो जाएंगी। लेकिन जड़ समाधि में आदमी गहरी मूर्च्छा में पड़ गया, सुषुप्ति में डूब गया, उसे होश ही नहीं है। जब वापस लौटेगा तो निश्चित ही शांत लौटेगा, बड़ा प्रसन्न लौटेगा, क्योंकि इतना विश्राम मिल गया। लेकिन यह कोई बात न हुई! यह तो नींद का ही प्रयोग हुआ। यह तो योगतंद्रा हुई। असली बात तो तब घटेगी जब तुम भीतर जाओ और होशपूर्वक जाओ। तब तुम प्रसन्न भी लौटोगे, आनंदित भी लौटोगे और प्रज्ञावान होकर भी लौटोगे। तुम बाहर आओगे, तुम्हारी ज्योति और होगी। तुम्हारी प्रभा और होगी। तुम्हारे चारों तरफ रोशनी होगी। तुम्हारे चारों तरफ जीवन में सुगंध होगी।

ऐसा समझो कि एक आदमी को हम स्ट्रेचर पर लिटा लें, क्लोरोफॉर्म दे दें और फिर बगीचे में घुमा दें। तो निश्चित ही उसकी नाक तो काम कर ही रही है, फूलों की गंध भी उसके भीतर जाएगी--उसे पता नहीं चलेगा। और वृक्षों की ताजी हवा भी उसको लगेगी, शीतल भी होगा--उसे पता नहीं चलेगा। फिर जैसे-जैसे वह होश में आने लगे, हम जल्दी उसे बगीचे के बाहर ले जाएं। आंख खोलकर वह कहेगा, अच्छा लगा। कुछ-कुछ भनक याद आएगी--ताजा था, सुगंध थी, मगर ज्यादा कुछ पकड़ में न आएगी। और किस रास्ते गया और किस रास्ते लौटा, यह भी पता नहीं होगा। फिर खुद न जा सकेगा। अगर उसको तुम छोड़ दो जाने को तो खुद न जा सकेगा, रास्ते का पता नहीं है।

दो तरह की समाधियां हैं। जड़ समाधि, आदमी गांजा पीकर जड़ समाधि में चला जाता है, अफीम खाकर जड़ समाधि में चला जाता है; मारीजुआना, एल. एस. डी., मेस्कलीन, इनको लेकर जड़ समाधि में चला जाता है। अभी पश्चिम में जड़ समाधि का खूब प्रभाव चल रहा है। भारत में तो रहा ही बहुत दिनों से--गंजेड़ी, भंगेड़ी, सब तरह के साधु-संन्यासी तुम्हें मिल जाएंगे। वह जड़ समाधियां हैं।

बुद्ध ने उनका बड़ा विरोध किया। बुद्ध ने कहा, यह भी कोई बात है, माना कि सुख मिलता है, इसमें कोई शक नहीं है--तुम भी अगर भंग खाकर डूब गए मस्ती में तो सुख मिलता है। गांजे की दम लगा ली तो डूब गए, एक तरह का सुख मिलता है। शराब भी इसी तरह के सुख को देती है--भूल गए सब, डूब गए अपने में, मगर यह डुबकी नींद की है। यह कोई डुबकी हुई! यह कुछ मनुष्य योग्य हुआ! ऊपर उठो, जागते हुए भीतर जाओ। दीया

लेकर भीतर जाओ। मशाल लेकर भीतर जाओ। ताकि सब रास्ता भी उजाला हो जाए और तुम्हें पता भी हो जाए, तो जब जाना हो तब चले जाओ। और तुम फिर किसी चीज पर निर्भर भी न रहोगे।

तो तुमने देखा, हिंदू साधु-संन्यासी तुम्हें मिल जाएंगे कुंभ के मेले में--दम लग रही, सत्संग हो रहा। दम मारो दम! सत्संग हो रहा है, ब्रह्मचर्चा चल रही है! यह कुछ नयी बात नहीं है, इस मुल्क में पांच हजार साल से चल रही है। ये सब समझते हैं कि ये सब शंकर जी के शिष्य हैं। बम भोले!

इसका बुद्ध ने बहुत विरोध किया। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि असली ही बात चूकी जा रही है। असली बात है, जाग्रत होकर आनंद को उपलब्ध हो जाना। उसको उन्होंने सम्यक समाधि कहा।

यह आर्य-अष्टांगिक मार्ग। बुद्ध कहते हैं, चार आर्य-सत्य हैं--दुख है, दुख की उत्पत्ति है, दुख से मुक्ति है और मुक्तिगामी आर्य-अष्टांगिक मार्ग है। ये आठ अंग हैं उस दुख-मुक्ति के लिए।

ऐसी ये दो गाथाएं। ये महत्वपूर्ण हैं। इन पर खूब ध्यान करना।

अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूं
ऐसा बुद्ध का संदेश--
अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूं
कल्पना में आज तक उड़ते रहे तुम
साधना से सिहरकर मुड़ते रहे तुम
अब तुम्हें आकाश में उड़ने न दूंगा
आज धरती पर बसाने आ रहा हूं
सुख नहीं यह नींद में सपने संजोना
दुख नहीं यह सीस पर गुरुभार ढोना
शूल तुम जिसको समझते थे अभी तक
फूल मैं उसको बनाने आ रहा हूं
देखकर मझधार को घबड़ा न जाना
हाथ ले पतवार को घब.ड़ा न जाना
मैं किनारे पर तुम्हें थकने न दूंगा
पार मैं तुमको लगाने आ रहा हूं
तोड़ दो मन में कसी सबशृंखलाएं
तोड़ दो मन में बसी सब संकीर्णताएं
बिंदु बनकर मैं तुम्हें ढलने न दूंगा

सिंधु बन तुमको उठाने आ रहा हूं
तुम उठो धरती उठे नभ सिर उठाए
तुम चलो गति में नयी गति झनझनाए
विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूंगा
प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूं
अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूं

आज इतना ही।

छियासठवां प्रवचन

शून्य है आवास पूर्ण का

पहला प्रश्नः कोई व्यक्ति आपके पास किस तरह आए, किस तरह बैठे, सांस की गति कैसी रखे, आंखें खुली रखे या बंद? कभी लगता है कि आपकी ओर से आने वाली अदृश्य तरंगों को ग्रहण करने में कोई बाधा आ जाती है और वे तरंगें बाहर ही रह जाती हैं। उन्हें ग्रहण करने के योग्य कोई स्वयं को कैसे बनाए? कृपापूर्वक इस संबंध में हमें उपदेश दें।

पूछा है समाधि ने। प्रश्न महत्वपूर्ण है। सभी के काम का है।

पहली बात, जो व्यक्ति कुछ लेने की भावना से आएगा वह चूक जाएगा। वहीं सबसे बड़ी कठिनाई है। लोभ बाधा बन जाता है। तो पहली तो आधारभूत बात यह है कि यहां मेरे पास कुछ लेने की भावना से मत आना। लेने की भावना का तनाव भीतर रहा तो वही तनाव तरंगों को प्रविष्ट नहीं होने देता। तब तुम सुनने में कम उत्सुक हो, लेने में ज्यादा उत्सुक हो। तब तुम यहां नहीं हो, तुम्हारा मन भविष्य में चला गया, परिणाम में, कि कितना इकट्ठा कर लूं, कितना पा लूं, कितनी इन तरंगों को समेट लूं, कितना इस प्रसाद को अपने हृदय में भर लूं, चूक जाओगे।

मुझे तो ऐसे सुनना जैसे कोई पक्षियों के गीत को सुनता है--लेने को कुछ भी नहीं है। तब मिलेगा बहुत। तब अपरंपार मिलेगा। तब तुम भर जाओगे। लेने आए, खाली हाथ लौट जाओगे।

तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। क्योंकि जब मिलता है, तो लेने का मन पैदा होता है--और लेने का मन पैदा होता है। तुम्हारी अड़चन मुझे साफ है। ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी अड़चन मेरे ख्याल में नहीं है। जहां मिलता है, वहां मन होता है और ले लें। और लेने के कारण जो मिलने वाला था वह तो मिलेगा नहीं, जो मिलता था वह भी चूक जाएगा। तो सबसे बड़ी बात है, लोभ को छोड़कर आना।

मेरे साथ आनंदित होओ, मेरे उत्सव में सम्मिलित होओ, लेकिन उत्सव से कुछ लेने का भाव मन में रखो ही मत। लेने की भावना से ही संसार पैदा हो जाता है। वही तो वासना है। और वासना दुष्पूर है।

पहली बात, यहां ऐसे बैठो, खाली, न कुछ लेना, न कुछ देना। सुबह का सूरज निकला है, खाली तुमने उसके दर्शन किए, रात चांद ऊगा है, तुमने आंखें उठाकर आकाश में उसके सौंदर्य को देखा, लेना क्या है, ले क्या लोगे, लेने की वृत्ति की गुंजाइश कहां है? पक्षी गीत गा रहे, या कि जलप्रपात की मर्मर ध्वनि, या कि नदी की कलकल ध्वनि सुनायी पड़ रही है, लेने को क्या है? डूबने को कुछ है, लेने को कुछ भी नहीं है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिस पर तुम मुट्ठी बांध लो। मुट्ठी बांधी कि चूके। मुट्ठी खुली रहे तो भर जाएगी।

धीरे-धीरे इस बात की तरफ अपने को राजी करो। तो यहां ऐसे बैठो--खाली, रिक्त, भविष्य की कोई चिंता नहीं, विचार नहीं; जो यहां घट रहा है, मेरी मौजूदगी में, सम्मिलित हो जाओ। तुम्हारी मौजूदगी और मेरी मौजूदगी मिल जाए, तो तरंगें प्रविष्ट हो जाएंगी। वे तुम्हारे अंतरतम तक को नचा देंगी। उल्लास पैदा होगा, अपूर्व प्रतीतियां होंगी।

मगर, जब मैं कह रहा हूं अपूर्व प्रतीतियां होंगी, तो सावधान! तुम्हारा मन कहीं यह न कहने लगे कि यही तो हम चाहते हैं। अपूर्व प्रतीतियां चाहिए। अनूठे अनुभव चाहिए। इसी के लिए तो आए हैं। फिर तुम चूके। यह बड़ी दुविधा की बात है। जीसस ने कहा है, जो बचाएगा, खो देगा; जो खो देगा, बचा लेगा। पहली बात।

दूसरी बात, यहां जब तुम बैठो तो शिथिल बैठो, शिथिलगात। तने हुए नहीं, अकड़े हुए नहीं। कहीं जा तो रहे नहीं हम, दौड़ने की तो कोई जरूरत नहीं है, इसलिए तैयार होने का कोई कारण नहीं है। शांत बैठें, शिथिल बैठें, डूब रहें, डुबकी लगा लें। विश्राम में बैठो।

आश्रम का अर्थ ही यही है कि जहां जाकर तुम विश्राम से बैठ सको। जहां व्यवसाय नहीं है, जहां आपाधापी नहीं है। यहां तुमसे मैं कुछ करने को नहीं कह रहा हूं कि तुम कुछ करो। सारी शिक्षा न करने की है, अक्रिया की है। करते तो तुम बहुत हो, कर-करके तो चूके हो। कर-करके तो सब नष्ट किया। जन्मों-जन्मों से कर रहे हो। यहां घड़ीभर जब मेरे पास होते हो तब कुछ मत करो। जैसे छोटे बच्चे खिलौनों से खेलते हैं, ऐसे तुम बैठ जाओ। ये जो शब्द मैं तुमसे बोल रहा हूं, खिलौने हैं। इनसे खेल लो। भूल जाओ आगा-पीछा, शिथिलगात, हल्के, तने हुए नहीं। विद्यार्थी की तरह मत बैठो यहां, सीखने को यहां क्या है? यहां तो कुछ अनसीखा करना है, कुछ भूलना है। यहां कुछ विस्मरण करना है, याद नहीं करना है।

तो एक तो याद करने का ढंग होता है, तब आदमी तना बैठता है कि कोई बात चूक न जाए। यहां तो तुम बिल्कुल शांत बैठो--हल्के, शिथिल, विश्राम में। एक विराम की दशा हो मन की। फिर उस विराम की दशा में आंखें खुली रहें तो ठीक, बंद हो जाएं तो ठीक। तुम कौन बीच में आंखें खोलने वाले या बंद करने वाले? तुमने अगर खोलकर रखीं तो तनाव हो जाएगा, तुमने अगर बंद कर लीं तो तनाव हो जाएगा। तुमने कुछ भी किया तो तनाव आ जाता है। कर्ता आया कि तनाव आया। आंखें बंद हो जाएं सुनते-सुनते कभी, तो बंद हो जाने दो। यहां तक भी कि कभी-कभी सुनते अगर झपकी लग जाए, तो लग जाने दो। क्योंकि अगर वही उपयोगी है तो वही होगा। कभी-कभी विश्राम की ऐसी दशा आ सकती है कि तुम तंद्रा में खो गए। लेकिन जो तुम होश में जागकर न पा सकते, वह तंद्रा में मिल जाएगा। शायद तुम्हारी नींद में ज्यादा सरलता से तरंगें प्रवेश कर जाएं, क्योंकि तुम द्वार पर पहरेदार की तरह बैठे न होओगे।

इसलिए तुम अपनी तरफ से नियंत्रण मत करो। आंख खुली तो ठीक, आंख बंद हो गयी तो ठीक, झपकी भी लग गयी तो भी ठीक। मैं तो बरस रहा हूं, तुम्हें झपकी भी लग गयी, कोई हर्जा नहीं। तुम और साधु-संन्यासियों के पास जाओगे तो वे कहेंगे कि झपकी, कभी भूलकर नहीं! जागे रहना, आंखें खुली रखना।

यहां मैं कुछ तुम्हें और ही सिखा रहा हूं। वह भिन्न है। यहां मैं तुम्हें विश्राम सिखा रहा हूं। अक्सर ऐसा हो जाएगा कि तना हुआ मन जब तुम ढीला छोड़ दोगे, तो कभी-कभी आंख भी बंद हो जाएगी। कभी-कभी आंख बंद करके जागे भी रहोगे, कभी-कभी आंख बंद करके सो भी जाओगे, कोई हर्जा नहीं। स्नान तुम्हारा तब भी होगा। कभी आंख खुल जाए तो ठीक, बंद हो जाए तो ठीक। सहज होने दो। स्व-स्फुरणा से चलने दो जीवन की धारा को।

एक घंटा, डेढ़ घंटा जब तुम मेरे पास हो, तब तो कम से कम तुम ऐसे सरल हो जाओ जैसा कि प्रकृति चाहती है कि तुम होओ। वृक्षों की भांति। हवा आयी तो वृक्ष को बाएं झुका गयी तो वृक्ष बाएं झुक जाता है, वह यह तो नहीं कहता कि मैं नहीं झुकूंगा। हवा आयी, दाएं झुका गयी, तो दाएं झुक जाता है। कुछ पत्ते गिर गए हवा के झोंके में तो गिर जाते हैं, वृक्ष रोक तो नहीं देता। ऐसे ही तुम हो जाओ। इधर झुकाऊं इधर झुक जाओ, उधर झुकाऊं उधर झुक जाओ।

यह तो शरीर की बात हुई, ऐसी ही स्थिति मन की भी हो।

जब मैं कुछ बोल रहा हूं, तो तुम भीतर यह मत सोचो कि ठीक कि गलत। यहां ठीक और गलत का हिसाब किसको है! तुम्हें कोई निर्णायक बनाकर बिठाया भी नहीं है, तुम कोई मेरी परीक्षा लेने आए भी नहीं। परीक्षा लेने आए तो तुम आए ही नहीं। तो तुम न आते तो अच्छा था, तुम नाहक अपना समय खराब कर रहे हो। और एक जगह रोक रखी है जहां कोई और होता तो शायद ज्यादा डूबता। ऐसा अनाचार न करो। यहां जो मैं कह रहा हूं, यह ठीक है या गलत है, इसके हिसाब में ही मत पड़ो। न तो यह ठीक है, न यह गलत है।

असल में जो मैं कह रहा हूं, वह तो प्रयोजन ही नहीं है। कहना तो सिर्फ बहाना है, ताकि तुम्हारा मन इस बहाने में उलझ जाए और मन इतना उलझ जाए कि तुम्हारे हृदय से मेरा सीधा मिलन होने लगे। जब मन बिल्कुल उलझा होता है, तल्लीन होता है, तो हृदय के द्वार खुल जाते हैं। जब मन तल्लीन नहीं होता तो हृदय के द्वार पर खड़ा रहता है, संगीन लिए पहरेदार की तरह। वह हर कुछ भीतर नहीं जाने देता। वह डरा हुआ है। मन तो बहुत भयभीत है। हृदय बहुत साहसी है, मन बहुत कायर है। तो मन एक-एक चीज को जांचकर भीतर जाने देता है--कौन अपना, कौन अपना नहीं; कौन हमारे शास्त्र से बात मेल खाती है, कौन मेल नहीं खाती है; कौन सा सत्य जो हम अब तक मानते रहे हैं, उसके अनुकूल पड़ता है कि प्रतिकूल पड़ता है; मन तो ऐसे ही हिसाब-किताब लगाता रहता है। मन बड़ा हिसाबी-किताबी है।

अगर तुम इस हिसाब-किताब में पड़े तो समय तुमने व्यर्थ ही गंवा दिया। यह सत्संग है, यहां कोई चर्चा ही नहीं चल रही है--चर्चा तो ऊपर-ऊपर है। कुछ लोग हैं जो चर्चा सुनने आए हैं। ठीक है, वे चर्चा सुनकर चले जाएंगे। उन्होंने कचरा बटोरा। वे व्यर्थ को सम्हालकर ले गए। कुछ और हैं जो सत्संग को आए हैं। उन्हें इससे कुछ लेना-देना नहीं है कि मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है कि गलत है, सुन रहे हैं। अगर तुम इतने निर्विचार से सुन सको, निष्पक्ष होकर सुन सको, निर्णायक न बनो, तो अचानक तुम पाओगे, जो सच है वह दिखायी पड़ता है कि सच है। जो सच नहीं है, वह दिखायी पड़ता है कि सच नहीं है। यह इतना स्पष्ट हो जाता है उस उजली दशा में, मन की उस उजियारी दशा में, जहां तुम विचार नहीं कर रहे, विचार का धुआं नहीं है, वहां यह बात इतनी साफ हो जाती है--सत्य सीधा दिखायी पड़ जाता है कि सत्य है, तुम्हें सोचना नहीं पड़ता कि है सत्य या नहीं। तुम सोचोगे भी कैसे? तुम्हें सत्य का कुछ पता है? तुम किस आधार पर सोचोगे?

मेरे पास जो लोग सोचते बैठे रहते हैं, वे चूक जाते हैं। कई दफा तो ऐसा हो जाता है कि वर्षों हो गए उन्हें मुझे सुनते, लेकिन वे चूकते चले जाते हैं, वे सोच रहे हैं। उन्होंने छोड़ा नहीं है मेरे साथ अपने को। उन्होंने मेरा हाथ हाथ में नहीं लिया है। कुछ तो ऐसे हैं कि संन्यास भी ले लिया है, तो भी मेरे हाथ में उनका हाथ नहीं है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उनका हाथ तुम्हें मेरे हाथ में दिखायी पड़ता होगा, लेकिन उन्होंने अपना हाथ मेरे हाथ में छोड़ा नहीं है। अगर मौका उनको लगे कि कुछ गलत बात हो रही है तो अपना हाथ तत्क्षण खींच लेते हैं। मेरे हाथ में छोड़ा नहीं है, गलत और सही सब के संगी-साथी नहीं हैं, चुन-चुनकर, जो उन्हें ठीक लगता है। इसका मतलब हुआ, शिष्यत्व अभी पैदा नहीं हुआ। विद्यार्थी हैं, शिष्य नहीं हैं। सो ऐसे लोग तो चूकते चले जाएंगे।

तो समाधि को मैं कहूंगा कि इस भांति सुन कि तुझे कुछ निर्णय करने की जरूरत ही नहीं है। जहां निर्णय नहीं करना है, वहां चित्त शांत हो जाता है, द्वंद्व बंद हो जाता है। उस निर्द्वंद्व दशा में जो सत्य है सत्य जैसा दिखायी पड़ता है, जो असत्य है असत्य जैसा दिखायी पड़ता है, तुम्हें कुछ सोच-विचार नहीं करना पड़ता। वह दर्शन है। और जहां दर्शन है, वहीं क्रांति है।

पूछा है कि "कभी-कभी ऐसा लगता है कि अदृश्य तरंगें आती हैं, लेकिन कुछ बाधा पड़ जाती है।"

इन चीजों से बाधा पड़ती होगी। या तो सोच-विचार आ जाता होगा, या लोभ आ जाता होगा, या अहंकार आ जाता होगा कि यह बात तो मेरे खिलाफ है, इसको कैसे मानूं? या तुम्हारी पुरानी धारणाएं बीच में आकर खड़ी हो जाती होंगी।

शिथिलगात, बिना किसी लोभ के, बिना निर्णायक बने सुन सको तो समर्पण में सुना। और तब तुम्हारे जीवन में एक बड़े चकित कर देने वाले सत्य का अवतरण होगा कि सोच-विचार कर-करके जब इतना समय गंवाया तब सत्य दिखायी नहीं पड़ता था, अब बिना किसी बात को गंवाए, बिना किसी ऊर्जा को गंवाए सत्य दिखायी पड़ता है। आंख चाहिए सत्य को देखने के लिए। और आंख तभी होती है, जब तुम निर्मल हो।

तो हिंदू की तरह मत सुनो, मुसलमान की तरह मत सुनो, सिख की तरह मत सुनो, सिर्फ सुनो। और धीरे-धीरे तुम्हें यह भी दिखायी पड़ने लगेगा कि जो मैं कह रहा हूं, वह तो प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन कुछ और है, कहना तो बहाना है। और जिस दिन तुम्हें मेरा प्रयोजन दिखायी पड़ने लगेगा--कुछ और, एक आदान-प्रदान है, ऊर्जा का ऊर्जा से, हृदय का हृदय से। जिस दिन उस आदान-प्रदान का सेतु तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा, उस दिन तुम हंसोगे कि नाहक जो हम सुनते थे उसमें हमने इतना समय गंवाया; ठीक कि गलत, ऐसा क्यों कहा, वैसा क्यों कहा, वह तो प्रयोजन ही नहीं था।

छोटे बच्चों की किताबें देखीं, छोटे बच्चों की किताबों में रंगीन तस्वीरें रखनी पड़ती हैं, बड़ी-बड़ी तस्वीरें रखनी पड़ती हैं। आम, तो पूरा पृष्ठ आम की तस्वीर से भरना पड़ता है। क्योंकि बच्चा अभी आम की तस्वीर समझ सकता है, आम शब्द को तो अभी देर है समझने में। तस्वीर के बहाने आम को समझेगा। फिर जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगेगा, आम की तस्वीर छोटी होने लगती है। फिर जैसे ही बच्चा बड़ा हो गया, पढ़ने में कुशल हो गया, आम की तस्वीर विदा हो गयी। पहले पढ़ता था, आ आम का, अब आम को छोड़ देगा, अब सीधा आ पढ़ लेगा; अब आ आम का है, ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं रही।

शब्द से बोलता हूं, क्योंकि तुम अभी छोटे बच्चों की भांति हो। अगर तुम प्रौढ़ हो गए, ध्यान में उतर गए, तो तुमसे निःशब्द बोलने लगूंगा। यहां दो तरह के लोग बैठे हैं। जो थोड़े ध्यान में गए हैं, उन्हें मेरे शब्दों को सुनने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ रही है। वे मुझे सुन रहे हैं, वे मेरे निःशब्द को सुन रहे हैं। उनसे मेरा नाता मौन का है। इसलिए तुम कभी-कभी चौंकोगे भी कि कोई इतना भावविभोर हो गया है, तुम उसके पास ही बैठे थे, तुम्हें कुछ भी न हुआ, बात क्या है! तुम कभी चौंकोगे कि कोई रो रहा है, आंख से आंसू बहे जा रहे हैं, और तुम्हारी आंख तो जरा भी गीली नहीं हुई। तुम्हें यह भी समझ में नहीं आता कि ऐसी तो कोई बात कही भी नहीं थी जिससे आंख गीली हो जाए!

असल में अलग-अलग बात चल रही है। उससे कुछ और बात चल रही है, तुमसे कुछ और बात चल रही है। तुमसे जो बात चल रही है उसमें आंखें गीली होतीं ही नहीं। उससे जो बात चल रही है, उसमें आंखें गीली होती हैं--उससे हार्दिक लेन-देन चल रहा है।

झेन संप्रदाय को जन्म देने वाले बोधिधर्म का प्रसिद्ध वचन है कि एक तो शास्त्र से दी जाती है बात, शब्द से दी जाती है; और एक ऐसी बात है जो शब्दातीत है, शास्त्रातीत है--असली वही है। एक तो ऐसी बात है जो कहकर कही जाती है और एक ऐसी बात है जो अनकहे कही जाती है।

अनकहा भी यहां घट रहा है। जब तक तुम उसे न सुन लो, तब तक मुझे सुना, इस तरह की भ्रांति अपने मन में लाना ही मत। तब तक तुम आम की तस्वीर देखते रहे, आम शब्द का पढ़ना तुम्हें न आया।

ये तो बहाने हैं। इसलिए रोज बोले चला जाता हूं। क्योंकि जो बोलना ही समझ सकते हैं, अभी उनसे बोलना ही पड़ेगा। धीरे-धीरे तुममें से जिनकी थोड़ी गहराई बढ़ती जाती है, वे चुपचाप अपने में लीन होते जाते हैं। उनको रस इस बात में है कि वे मेरी मौजूदगी में यहां बैठ लेते हैं। सुना, नहीं सुना, महत्वपूर्ण नहीं है। तब खूब सत्संग होगा।

और जब तुम सब तैयार हो जाओगे, तो मैं बोलना बंद कर दूंगा, तब मैं यहां चुपचाप आकर बैठ जाऊंगा और तुम डोलोगे, तुम नाचोगे। उसी की प्रतीक्षा है।

बोलना मुझे भी कष्टपूर्ण है। बोलने में मुझे कुछ रस नहीं है। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं, वह कहा नहीं जा सकता; और जो मुझे कहना पड़ता है, वह मैं कभी कहना नहीं चाहता था। लेकिन प्रतीक्षा करता हूं कि धीरे-धीरे एक बड़ी जमात तैयार हो जाए। क्योंकि अगर अभी मैं बोलना बंद कर दूं तो थोड़े से ही लोगों के काम का रह जाऊंगा--बहुत थोड़े से लोगों के काम का--तो पहले जमात तो तैयार कर लूं जो कि अनबोले को समझ सकेगी। यह उसकी तैयारी चल रही है। जिस दिन पाऊंगा कि अब काफी लोग हो गए जो कि बिना बोले समझ सकते हैं, उसी दिन मैं चुप हो जाऊंगा। उसके पहले समझने की तैयारी कर लो, अन्यथा फिर तुम्हारे लिए कोई उपाय न रह जाएगा। जिस दिन मैं चुप हुआ, हुआ। उसके पहले तुम सीख लो चुप्पी को समझने का राज। तब तक जितना इस शब्द की तस्वीर का उपयोग कर सकते हो, कर लो, फिर मुझसे मत कहना कि आप तो चुप बैठ गए, हमें तो चुप्पी कुछ समझ में नहीं आती।

तुम सौभाग्यशाली हो, क्योंकि कुछ लोग तब आएंगे जब मैं चुप होकर बैठ जाऊंगा। तब उनको सिखाने को कुछ भी न होगा। तब अगर वे बैठ गए और सीख लिया तो सीख लिया! अभी तो मैं हाथ पकड़वा-पकड़वाकर लिखा रहा हूं। अभी हाथ पकड़-पकड़कर चला रहा हूं। तुम सौभाग्यशाली हो! इस सौभाग्य का पूरा उपयोग कर लेना उचित है।

दूसरा प्रश्नः आपकी बातों में कभी-कभी राजनीति की गंध क्यों मालूम होती है?

होगी गंध तुम्हारे भीतर। तुम्हारी व्याख्याओं में होगी। तुम्हारे मन की धारणाओं में होगी। तो तुम वही सुन लोगे जो तुम्हारे भीतर छिपा है। और ऐसा तो बहुत कठिन है आदमी पाना जिसके भीतर किसी न किसी तरह की राजनीति न पड़ी हो। तो अगर मैं कभी राजनीति शब्द का भी उपयोग कर दूं तो तुम्हारे भीतर जल्दी से तहलका मच जाता है।

धर्म शब्द सुनकर तुम्हारे भीतर कुछ नहीं होता। परमात्मा शब्द सुनकर तुम्हारे भीतर कोई लहर पैदा नहीं होती। राजनीति शब्द सुनकर ही तुम्हारे भीतर तरंगें आ जाती हैं। उसमें तुम्हारा रस है। राजनीति शब्द सुनकर ही तुम तालियां पीटने लगते हो, उसमें तुम्हारा रस है। तुम उसे समझ पाते हो। वह तुम्हारी बुद्धि के भीतर है। वह तुम्हारी समझ के भीतर है। फिर उसकी तुम व्याख्या भी कर लेते हो। क्योंकि यह तो तुम मानोगे कि शायद धार्मिक तुम नहीं होओ, लेकिन राजनीति तो तुम भी काफी बघारते हो, काफी जानते हो, काफी बात करते हो--अखबार तो तुम भी पढ़ते ही हो न! चौबीस घंटे बात तो करते ही हो न! उसमें तो तुम बड़े कुशल हो। तो एक शब्द भी सुना कि तुम्हारे भीतर जल्दी से एक यात्रा शुरू हो जाती है। वह यात्रा तुम्हारी ही है, तुम उसे मुझ पर मत आरोपित करना।

कभी-कभी मैं जानकर राजनीति शब्द का और कभी-कभी जानकर राजनीति के संबंध में कुछ वक्तव्य भी दे देता हूं।

एक पागल आदमी एक पागलखाने के बाहर खिड़की के ऊपर बैठा हाथ में मछली पकड़ने की बंसी लिए है। आटा लगाकर कांटे में खिड़की से लटकाए हुए बैठा था। मुल्ला नसरुद्दीन वहां से निकला तो उसने मजाक में पूछा कि कितनी मछलियां पकड़ीं? उसने कहा, तुम्हें मिलाकर ग्यारह। मुल्ला ने पूछा, मतलब? उसने कहा, दस और पूछ चुके हैं। उस पागल ने कहा कि तुम भी भीतर क्यों नहीं आ जाते? यहां कहां मछली? तो मुल्ला ने कहा, फिर बैठे क्यों हो यह बंसी लिए हुए? तुमको पकड़ने के लिए, देख रहा हूं कितने नासमझ यहां से निकलते हैं!

कभी-कभी मैं चोट कर देता हूं। तत्क्षण मेरे हाथ में पकड़ में आ जाती हैं मछलियां कि किन-किन को चोट लगी? कौन-कौन बौखला गए? पत्र आने लगते हैं, प्रश्न आने लगते हैं कि आपने बहुत ऐसा कर दिया, ठीक नहीं किया।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर कव्वालियों का प्रोग्राम था। बड़े-बड़े नामी कव्वाल आए हुए थे। मेहमान कव्वालियों से झूम रहे थे। ऐसे में जब एक कव्वाल ने यह पंक्ति पढ़ी--खुदा जाने पर्दे में क्या हो रहा है, हर तरफ से वाह-वाह का शोर उठा। और बार-बार कव्वाल ने इस पंक्ति को दोहराया--खुदा जाने पर्दे में क्या हो रहा है, खुदा जाने पर्दे में क्या हो रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन, जिसके घर यह आयोजन हो रहा था, बड़े गुस्से में भर गया--खुदा जाने पर्दे में क्या हो रहा है! --यह बदतमीज कव्वाल, इसको इतनी भी समझ नहीं है कि मैंने ही बुलाया और मेरी ही फजीहत करवा रहा है कि खुदा जाने पर्दे में क्या हो रहा है!

आखिर एक सीमा थी। और जब लोग फिर कहने लगे कि वाह-वाह, फिर से हो जाए, तो वह उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, ठहर, एक सीमा होती है बर्दाश्त की और शिष्टाचार की भी एक जरूरत है, एक आवश्यकता है। और जल्दी से मुल्ला उठा और उसने पर्दा उठाकर कहा कि देखिए, कव्वाल साहब! कोई हसरत न रह जाए कि पर्दे में क्या हो रहा है! पर्दे में कुछ नहीं हो रहा है, देख लीजिए, मेरी पत्नी छालियां कुतर रही है।

अपनी-अपनी समझ है। मुल्ला समझा कि शायद मेरी पत्नी के संबंध में कुछ कह रहा है कि पर्दे के भीतर पता नहीं क्या हो रहा है!

तुम्हारी समझ तुम्हारे जीवन में व्याख्याएं बनाती है। तुम मेरे पास भी हो, लेकिन मेरे पास हो थोड़े ही। तुम मुझे भी नहीं समझ पाते। मेरे पास वर्षों रहकर भी तुम यह नहीं समझ पाते कि मुझे राजनीति से क्या लेना-देना हो सकता है! लेकिन तुमने हाथ मेरे हाथ में तो छोड़ा नहीं है। तुम तो बैठे हो वहां सजग होकर कि कोई मौका मिल जाए, कोई बात जो तुम्हारी पकड़ में आ जाती हो आ जाए, तो तुम जल्दी से उस पर छलांग ले लेते हो। लाख तुमसे कहूं--ध्यान करो, तब तुम नहीं पूछते कि आप ध्यान की इतनी बातें क्यों करते हैं? कि आपकी बातों से ध्यान की गंध आती है! एक दफा भी आदमी ने नहीं पूछा अब तक कि आपकी बातों से ध्यान की गंध आती है। आएगी कहां, तुम्हारे भीतर हो तो ही आएगी न! लेकिन कभी इस दो-चार साल में कभी एकाध दफा राजनीति पर मैं कुछ कह देता हूं, कि तत्क्षण... आज न-मालूम कितने प्रश्न आ गए हैं।

स्वामी विष्णु चैतन्य भी पूछ लिए हैं, कि आपका मन राजनीति के प्रति पक्षपात से भरा हुआ है, पूर्वाग्रह से भरा हुआ है।

न तो पूर्वाग्रह का मतलब तुम्हें पता है, न तुम्हें अपने पूर्वाग्रहों का बोध है। एक बात तुमसे कहना चाहूंगा कि अगर तुम्हें मुझमें राजनीति की गंध आती हो, तो जितनी जल्दी यहां से भाग सको, भाग जाओ। क्योंकि

राजनीति की जहां भी गंध आए, वहां रुकना मत। खतरनाक है यह बात। भाग ही जाओ। स्वामी विष्णु चैतन्य, जितनी जल्दी भाग सको यहां से भाग जाओ। क्योंकि जहां राजनीति की गंध है, वहां खतरा है। कहीं लग न जाए तुम्हें राजनीति की गंध। कहीं यह रोग तुम्हें पकड़ न जाए।

अपने को खोजने की थोड़ी कोशिश करो। कहां से यह गंध आ रही है? इतनी बार तुम्हें कहा हूं कि अपने को बीच में लाकर मुझे मत सुनो। मगर जब मैं धर्म की बात करता हूं तो तुम कभी ऐसे सवाल नहीं पूछते, क्योंकि वे तुम्हारी समझ में नहीं आते, वे तुम्हारे सिर के ऊपर से निकल जाते हैं। तुम्हारी समझ में वही बात आती है जो आ सकती है। तब तुम जल्दी से पकड़ लेते हो। और तुम्हारे भीतर बड़ा ऊहापोह मच जाता है कि अरे!

तुम्हें यह तो कभी ख्याल में ही नहीं आता कि तुम किस तरह के शिष्य हो, तुम्हें यह तो कभी ख्याल ही नहीं आता कि तुम्हारा शिष्यत्व अभी है ही नहीं, लेकिन तुम्हें यह ख्याल जरूर आ जाता है कि यह गुरु तो राजनीति में पड़ा है! गुरु कैसा होना चाहिए, इसका तो तुम्हें पूरा-पूरा हिसाब है। शिष्य कैसा होना चाहिए, इसका तुम्हें कोई हिसाब नहीं है।

और तुम ध्यान रखना, मैं इस तरह की बातें कहता रहता हूं और कहता रहूंगा। यह मेरी महत्वपूर्ण विधियों में से एक विधि रही है। जब मैं कुछ लोगों से छुटकारा पाना चाहता हूं तो मैं कुछ उपाय करता हूं।

जब मेरे पास गांधीवादियों की एक जमात इकट्ठी हो गयी और मुझे लगा कि वह तो किसी मतलब की नहीं है, तो मैं गांधी की आलोचना किया। गांधी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं था, मगर गांधी की आलोचना करते ही से नब्बे प्रतिशत गांधीवादी हट गए। जो दस प्रतिशत बचे, वे सच में ही काम के आदमी थे। उनका लगाव मुझसे था। मेरी सदा तलाश चल रही है कि जिसका लगाव मुझसे है, मैं उसी पर मेहनत करना चाहता हूं। बाकी पर मैं मेहनत नहीं करना चाहता।

जब गांधीवादी हट गए तो मैंने उनकी फिकर छोड़ दी। जब मैं गांधीवादी के विपरीत बोल रहा था और गांधी की आलोचना कर रहा था, स्वभावतः समाजवादी और कम्युनिस्ट, सब मेरे पास आ गए। उनको लगा, यह आदमी ठीक है। तब मैं समाजवाद के खिलाफ बोला, जब मैंने देखा कि बहुत समाजवादी इकट्ठे हो गए और उनकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। समाजवाद के खिलाफ बोला, समाजवादी भाग गए। उनमें से कोई दस प्रतिशत बच रहे। जो बच रहे, वे मेरे थे। जो भाग गए, वे मेरे थे ही नहीं, उनकी भीड़ मैं इकट्ठी भी क्यों रखूं? वे आज नहीं कल भाग ही जाने वाले थे। वे किसी और ही कारण से आए थे। उनका कारण था कि मैं गांधी के खिलाफ बोला, उन्हें मुझमें कोई रस न था।

मेरी निरंतर चेष्टा है कि मैं उन पर ही मेहनत करूं, जिनको मुझमें रस है। मैं उन थोड़े से लोगों को दे देना चाहता हूं जो दिया जा सकता है। लेकिन यह उन्हीं को दिया जा सकता है, यह वसीयत उन्हीं की हो सकती है, जो पूरे-पूरे मेरे साथ हैं, जो सौ प्रतिशत मेरे साथ हैं। जो नरक भी मेरे साथ जाने को तैयार हैं, वही मेरे साथ स्वर्ग जाने के हकदार होंगे। जो बीच में खड़े हो गए और कहने लगे कि आप तो नर्क चले, हम नहीं जाते, तो इनको मैं स्वर्ग भी ले जाने वाला साथ नहीं हूं, ये मेरे साथ स्वर्ग भी जाने के हकदार नहीं हैं।

तो कभी मैं ऐसी बातें भी कहूंगा--कहता ही रहूंगा--कभी-कभी छांटने के लिए उपयोगी हैं। उन बातों में मुझे कुछ रस नहीं है। यह तो तुम बहुत बाद में समझ पाओगे--अगर कभी समझ पाए सौभाग्य से--कि मैं कभी कौन सी बात कहता हूं, क्यों कहता हूं? तुम अगर अपनी व्याख्याएं बीच में न लाओ तो बहुत आसानी होगी, तुम ज्यादा ढंग से समझ पाओगे। पूर्वाग्रह तुम्हारे हैं। पक्षपात तुम्हारे हैं। राजनीति तुम्हारे भीतर पड़ी है।

तीसरा प्रश्नः संन्यास-जीवन पर सांसारिक आकांक्षाओं और उससे उत्पन्न सफलताओं और असफलताओं का क्या प्रभाव होता है?

संन्यास का अर्थ ही होता है कि सफलता-असफलता के प्रति अप्रभावित हो जाना। संन्यास का अर्थ ही होता है, दुख हो कि सुख, विजय मिले कि हार, समभाव को उपलब्ध हो जाना। उस समभाव की अवस्था ही तो संन्यास है।

तुम्हारा प्रश्न है कि संसार की सफलताओं, असफलताओं, आकांक्षाओं और उनसे उत्पन्न उलझनों का संन्यास के ऊपर क्या प्रभाव होता है?

तुम संन्यास का अर्थ ही न समझे, संन्यास की व्याख्या ही न समझे। संन्यास की तो व्याख्या ही यही है कि अब कोई आकांक्षा न रही। इसका यह अर्थ नहीं है कि संन्यासी कुछ भी न करेगा। प्रभु जो करवाएगा, करेगा। लेकिन अपनी आकांक्षा से न करेगा, उसकी मर्जी से करेगा। फिर उसको जिताना हो तो जिता दे और हराना हो तो हरा दे। जीत भी उसकी और हार भी उसकी। सफलता भी उसकी, असफलता भी उसकी।

संन्यासी अपने को बीच से हटा लेता है, निमित्त मात्र हो जाता है। वह कहता है, जो तुम्हें करवाना हो, जैसा गीत मेरी बांसुरी से गाना हो, गा लो। मैं तो पोली बांस की पोंगरी हूं। तुम्हें सुंदर गीत गाना हो, सुंदर गीत गा लो। तुम्हें असुंदर गीत गाना हो, असुंदर गीत गा लो। मुझे क्या लेना-देना! मेरा काम इतना है कि तुम जो गाओ, उसे हो जाने दूं, उसे प्रविष्ट हो जाने दूं। जगत में तुम्हें मुझसे जो काम लेना हो, ले लो। ऐसी भावदशा को मैं संन्यास कहता हूं।

इसलिए संन्यासी करेगा तो बहुत, उससे होगा तो बहुत, लेकिन कर्ताभाव उसमें नहीं है। कर्ता तो एक ही है--परमात्मा। हमसे जो भी होता है, वही कर रहा है। और जब ऐसी भावदशा, तो उलझन कैसी? उलझन तो तब पैदा होती है, जब मुझे लगता है, मैं कर रहा हूं--जीतूंगा कि हारूंगा, पाऊंगा कि खोऊंगा; कहीं ऐसा करूं तो चूक न जाऊं, वैसा करूं तो कोई भूल न हो जाए! चिंता, उलझन तो इसलिए पैदा होती है कि मैंने कर्तृत्व का भाव अपने ऊपर लिया है।

कर्ता परमात्मा है तो मेरी क्या चिंता! किया, रात सो गए, सुबह उठे, फिर किया, रात फिर सो गए। संन्यासी के स्वप्न भी विदा हो जाते हैं। हो जाने चाहिए। क्योंकि चिंता कुछ है ही नहीं, जो करवाता है, कर लेते हैं। झोपड़ी में रखता है, झोपड़ी में रह लेते हैं। महल में रखता है तो महल में रह लेते हैं। सिंहासन पर बिठा देगा तो सिंहासन पर बैठ जाते हैं। उतार देगा तो उतर जाते हैं। न अपनी मर्जी से आए, न अपनी मर्जी से जाते हैं। ऐसी भावदशा को मैं संन्यास कहता हूं।

नहीं कर सकता पथभ्रष्ट आत्मदीप चिनगारी को

महकते चंदन का मादक स्पर्श

फिर कितनी ही मादक आकांक्षाएं तुम्हें चारों तरफ बवंडर बनाकर घेरे रहें, और कितनी ही उलझनें तुम्हारे चारों तरफ खड़ी रहें, तुम उनके बाहर ही होते हो। भीतर होकर भी बाहर होते हो। संसार में होकर भी संसार में न होना संन्यास है।

नहीं गंदला पाती प्रतिबिंबों की भीड़

दर्पण का पानी

कितने लोग निकल जाते हैं दर्पण के सामने से, इससे कुछ दर्पण का पानी थोड़े ही गंदला हो जाता है! ऐसा संन्यासी है, दर्पण की भांति जीता है। सफलता आयी, असफलता आयी, सुख आया, दुख आया, सम्मान, अपमान, सब गुजर जाता है। और संन्यासी के दर्पण का पानी स्वच्छ का स्वच्छ, जैसा का तैसा। कबीर ने कहा, जस का तस। जैसा था, ठीक वैसा। जरा भी फर्क नहीं पड़ता। भीड़ नहीं थी तब वैसा था, भीड़ चली गयी तब वैसा है। खाली का खाली।

धूप ही चांदनी है
बदल दिए हैं माध्यम ने गुणधर्म

तुमने कभी ख्याल किया, रात जिसको तुम चांदनी कहते हो, कितनी शीतल, कैसी मादक! लेकिन है वही धूप का रूप, जिसको तुम भरी दोपहरी में धूप कहते हो और बाहर निकलने में डरते हो और धूप के नीचे खड़े होने में जलते हो, वही है चांदनी भी। फर्क कुछ भी नहीं है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि चांद सूरज की रोशनी को पीता और रात उंडेल लेता।

धूप ही चांदनी है
बदल दिए हैं माध्यम ने गुणधर्म

चांद से प्रतिफलित होकर धूप ही जब रात को आती है, तो शीतल हो जाती है। वही जलाती है, वही घाव भर देती है। यही वासनाएं, यही आकांक्षाएं, यही चिंताएं, ध्यान के माध्यम से इनका गुणधर्म बदल जाता है।

तुम्हारे लिए सफलता तुम्हारी है, इसलिए परेशान हो रहे हो। ध्यानी को तो पता चलता है, मैं हूं ही नहीं, खालीपन हूं एक, सफलता किसकी, असफलता किसकी! सफलता होती है और बेचैन नहीं कर पाती। असफलता होती है और बेचैन नहीं कर पाती। न तो सफलता उन्मत्त कर देती है कि पागल बना दे, कि मैं देखो सफल हो गया। और न असफलता पागल करती है कि देखो मैं हार गया, अभिशाप से भर गया। हार-जीत दोनों आते हैं और गुजर जाते हैं।

धूप ही चांदनी है
बदल दिए हैं माध्यम ने गुणधर्म

थोड़ा सा फर्क पड़ा है संसारी और संन्यासी में। संसारी यानी बिना ध्यान का व्यक्ति, और संन्यासीः संसारी धन ध्यान। बस इतना फर्क पड़ा है, थोड़ा ध्यान जुड़ गया। इसलिए तो ध्यान पर मेरा इतना जोर है। और किसी चीज पर जोर नहीं है। तुमसे और तो कुछ करने को कहा भी नहीं है। घर छोड़ो, दुकान छोड़ो, बाजार छोड़ो, कुछ भी नहीं कहा है। क्योंकि मैं जानता हूं, अगर ध्यान आ जाए, उतना गुणधर्म तुम्हारा बदल जाए, उतना माध्यम नया हो जाए, सब बदल जाएगा--दुकान पर बैठे-बैठे तुम मंदिर में हो जाओगे। और अभी तो तुम मंदिर में भी बैठ जाओ जाकर तो भी दुकान ही चलती है।

तो इसे ख्याल रखो, संन्यास का अर्थ हैः अप्रभावित होने की कला। अछूते रहने की कला। क्वांरे रहने की कला।

कबीर ने कहा है--खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया, वह जतन संन्यास है। ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं रे चदरिया। जैसा जीवन मिला था, उसे वैसा का वैसा रख दिया--ऐसे जतन से ओढ़ा। जतन शब्द बड़ा प्यारा है। होशपूर्वक ओढ़ा, बोधपूर्वक ओढ़ा। मूर्च्छा में नहीं जीए, जागकर जीए।

चौथा प्रश्नः संन्यास क्या वे ही लोग लेते हैं जिन्हें जीवन की व्यर्थता का बोध हो गया?

और कौन लेगा? संन्यास कोई खिलवाड़ तो नहीं। संन्यास कोई बच्चों का खेल तो नहीं। जिन्हें जीवन की व्यर्थता का बोध हो गया है, जिन्हें यह बात दिखायी पड़ गयी कि जीवन में दौड़ो कितना ही, पहुंचोगे कहीं भी नहीं; कमाओ कितना ही, अंततः सब कमाना गंवाना सिद्ध होगा। जिन्हें यह दिख गया है कि यहां दूर के ढोल सुहावने हैं, पास आने पर सब व्यर्थ हो जाते हैं; जिन्हें जीवन की मृगमरीचिका का बोध हो गया है, वे ही तो संन्यासी होते हैं। संन्यास का अर्थ ही क्या है? संसार की व्यर्थता का बोध ही संन्यास है।

तुम भी खूब अदभुत प्रश्न पूछ रहे हो, "संन्यास क्या वे ही लोग लेते हैं जिन्हें जीवन की व्यर्थता का बोध हो गया है?"

जिनको अभी जीवन में आशा है, वे तो लेंगे क्यों! यह तो सीधी-सीधी बात है।

एक कारीगर बड़ी देर से घंटाघर की घड़ी की मरम्मत कर रहा था। जब वह घड़ी ठीक कर चुका, तो पसीने से लथपथ सीढ़ी से नीचे उतरा। मुल्ला नसरुद्दीन, जो बड़ी देर से राह पर खड़ा-खड़ा इस आदमी को देख रहा था, पूछा उस आदमी से, क्यों भाई, क्या घड़ी खराब हो गयी थी? यह सुनकर कारीगर झुंझला उठा, मगर बड़ी शांति से बोला, जी नहीं, असल में मेरी आंखें कमजोर हैं इसलिए वक्त देखने के लिए ऊपर चढ़ा था।

अब सीधी-सादी बात है। एक आदमी घंटाघर की घड़ी घंटेभर से देख रहा है, कुछ कर रहा है, अब इसमें पूछना क्या है? कि क्यों भाई, घड़ी क्या बिगड़ गयी थी? उसने ठीक ही जवाब दिया कि नहीं, जरा आंखें खराब हो गयी हैं, सो सीढ़ी लगाकर घंटेभर से देखने की कोशिश कर रहा था कि कितने बजे हैं।

संन्यास का अर्थ ही इतना है कि जहां हमें कल तक आशा थी, वहां आशा न रही। यह एक रूपांतरण है। जहां-जहां हमने सोचा था सुख है, वहां सुख नहीं है। धन में सोचा, पद में सोचा, प्रतिष्ठा में सोचा, मोह में, मद-मत्सर में सोचा, नहीं है। नहीं है, तब भी तो एक जीवन होगा। संसार में सुख नहीं है, तब एक नए जीवन की शुरुआत होती है--सुख भीतर है, सुख स्वयं में है, सुख आंतरिक संपदा है, स्वभाव है।

पांचवां प्रश्नः कृपापूर्वक समझाएं कि ज्ञान मिलने पर आनंद मिलता है या आनंद मिलने से ज्ञान मिलता है?

ऐसे प्रश्न लोगों के मन में बहुत उठते हैं कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले? मगर करोगे भी क्या जानकर? और सार भी क्या होगा जानकर? अगर पक्का पता भी चल जाए कि मुर्गी पहले, कि अंडा पहले, फिर क्या करोगे? इससे क्या हल होगा? इससे तुम्हारे जीवन में कौन सी क्रांति हो जाएगी? मगर बुद्धि इस तरह के फिजूल के प्रश्न उठाने में बड़ी कुशल है, जिनका कोई सार ही नहीं है।

एक गांव में मैं मेहमान था। गांव के दो बूढ़े रात मुझे मिलने आए, दोनों पड़ोसी। और उन्होंने कहा, हम आपकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे थे। आप आ गए, सो अच्छा हुआ, एक प्रश्न का हल कर दें, तीस साल से हम झगड़ रहे हैं। उनमें एक जैन था और एक हिंदू। और हम झगड़ रहे हैं इस पर कि ईश्वर ने दुनिया बनायी या नहीं बनायी? अब जैन कहता है कि नहीं बनायी, ईश्वर है ही नहीं, बनाने वाला कोई है ही नहीं, सृष्टि सदा से चलती रही। और हिंदू कहता, ऐसा कैसे हो सकता है कि बिना बनाए कोई चीज हो जाए! ऐसा कहीं होता है! घड़ी है तो घड़ी बनाने वाला है। और घड़ा है तो घड़ा बनाने वाला है। बनाने वाला तो होना ही चाहिए। और हिंदू कहता है कि ईश्वर ने बनायी। चाहे ईश्वर दिखायी न पड़े, लेकिन कर्ता का स्पष्ट लक्षण है। सब जगह छाप है। और हम तीस साल से झगड़ रहे हैं, इसका कोई हल नहीं होता।

मैंने उनसे पूछा कि समझ लो कि इसका हल हो जाए, फिर क्या करोगे? समझ लो कि यह बात पक्की हो गयी कि ईश्वर ने बनाया है, फिर तुम क्या करने वाले हो? उन्होंने कहा, करने को क्या है? या यह तय हो जाए कि ईश्वर ने नहीं बनाया है, तो क्या करोगे? तुम्हारे जीवन में इससे कौन सी क्रांति होगी? जिस बात से कोई क्रांति होने वाली नहीं है, उस पर समय क्यों खराब करते हो? इस तरह की फिजूल की बातें खुजली को खुजलाने जैसी हैं। नाहक समय खराब होता है, और दर्द और बढ़ जाएगा--वह जो मिठास लगती है थोड़ा सा खुजलाने में, वह महंगी है। सौदा महंगा है।

बुद्ध के पास जब भी कोई आता और प्रश्न पूछता तो वह पहली बात यही पूछते, इस प्रश्न के उत्तर से तुझे क्या होगा, यह तू पहले बता! नहीं तो मेरा समय खराब न कर और अपना समय खराब न कर। इस प्रश्न के उत्तर से तुझे क्या होगा? क्या मोक्ष मिलेगा, आनंद मिलेगा, मुक्ति मिलेगी, दुख से छुटकारा होगा, दुख-निरोध होगा, इस प्रश्न के उत्तर से तुझे क्या होगा?

अगर कोई कहता कि नहीं, सिर्फ कुतूहलवश पूछते हैं, कि ईश्वर के कितने हाथ हैं, हजार हाथ हैं? अब नौ सौ निन्यानबे हों तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है! और एक हजार एक हुए तो तुम्हारा क्या जाता है! कितने चेहरे हैं, तीन हैं कि नहीं; कितने रूप हैं, लोग न मालूम कितनी व्यर्थ की बातों में समय खराब कर रहे हैं! और ऐसे ही नहीं खराब कर रहे हैं, उसके पीछे कुछ कारण हैं।

इन व्यर्थ की बातों में उलझकर वे सार्थक से बचते रहे हैं। यह सार्थक से पलायन है। यह सुविधा है तुम्हारी। तुम व्यर्थ की बातों में उलझा लेते हो अपने को और सोचते हो कि बड़ी महत्वपूर्ण चिंतना में लगे हो। और पूरे समय जब तुम इस व्यर्थ की बात में समय खो रहे हो, महत्वपूर्ण पड़ा है किनारे पर, जिसका तुमने ध्यान किया होता तो जीवन में क्रांति घट जाती।

अब पूछते हो, "समझाएं कृपापूर्वक कि ज्ञान मिलने पर आनंद मिलता है, या आनंद मिलने से ज्ञान मिलता है?"

ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब तुम अगर मुझसे पूछो कि सिक्के का सीधा पहलू पहले मिलता है कि उलटा पहलू पहले मिलता है? पहले का और पीछे का सवाल ही नहीं उठता, दोनों पहलू साथ ही तुम्हारे हाथ में आते हैं।

अगर मैं तुमको एक रुपया दूंगा तो ऐसा थोड़े ही है कि पहले एक पहलू दूंगा और फिर दूसरा पहलू दूंगा! ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि एक पहलू ऊपर हो, एक पहलू नीचे हो, इतना हो सकता है। कि सीधा सिक्का ऊपर से दिखायी पड़ता हो, पीठ पीछे की तरफ हो, यह हो सकता है। मगर तुम्हारी हथेली में तो दोनों साथ ही साथ पड़ेंगे न!

और इतना ही फर्क है। भक्त पहले आनंद को पाता है, फिर उसे ज्ञान का पता चलता है। आनंद का पहलू ऊपर होता है भक्त के लिए और ज्ञान का पहलू नीचे। और ज्ञानी के लिए ज्ञान का पहलू ऊपर होता है, आनंद का पहलू नीचे। तो ज्ञानी पहले ज्ञान पाता है। ज्ञानी पहले ध्यान में जाता है, तब एक दिन अचानक पाता है कि अरे, ध्यान तो मिला ही मिला, इसके ही उलटे में आनंद भी मिल गया है। और भक्त पहले आनंद में रसलीन होता है, डूबता है मस्ती में, एक दिन अचानक पाता है आश्चर्य से चकित होकर कि मैं तो आनंद में डूब रहा था, डुबकी लगाते-लगाते यह ज्ञान मेरे हाथ कहां से आ गया! दोनों चौंकते हैं।

ज्ञान और आनंद अलग-अलग नहीं हैं।

छठवां प्रश्नः मैं अब तक शास्त्रों में उलझा रहा, अब आपकी बात जंचती है कि शास्त्रों में कुछ भी नहीं है। संन्यास के लिए सोच-विचार करता हूं, दो साल ऐसे ही बीत गए। लेकिन सोचता हूं कि जब तक सौ फीसदी मन राजी न हो जाए, तब तक संन्यास लेना ठीक भी नहीं है। आप क्या कहते हैं?

इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि फिर संन्यास कभी होगा नहीं। तो आधी जिंदगी शास्त्रों में गंवा दी, अब आधी जिंदगी संन्यास के संबंध में सोच-विचार करने में गंवाना है?

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र से आधे घंटे से फोन पर बात कर रहा था। पत्नी मेज पर खाना लिए इंतजार कर रही थी। जब बहुत देर हो गयी तो परेशान होकर बोली, बस भी करो, बहुत हो गयी, बहुत बात हो गयी! मुल्ला नसरुद्दीन ने माउथपीस पर हाथ रखते हुए कहा, डिस्टर्ब मत कर, बाधा मत डाल, पता है कितने विद्वान आदमी से बात कर रहा हूं--जिनकी आधी जिंदगी शोध करते हुए बीती। तो उसकी पत्नी ने चिल्लाकर कहा, तो क्या बाकी आधी जिंदगी फोन पर बात करते रहने का इरादा है? वह आधी ही खराब हुई, अब आधी तो और खराब न करो। और भोजन ठंडा हो जाएगा। आधी जिंदगी अगर फोन करने का इरादा है।

संन्यास का भाव ही कहीं ठंडा न हो जाए! भोजन कहीं ठंडा न हो जाए। जब भाव गर्म हो, तब छलांग लेनी चाहिए। क्योंकि गर्म भोजन ही पचता है। ठंडा भोजन जहर हो जाता है। और ठंडा ही नहीं यह तो बहुत बासा हो जाएगा, दो साल तो तुम्हें हो ही गए सोचते। अब क्या इरादा है, कब तक सोचोगे? सोचना क्या है?

तुम्हारी तकलीफ मेरे ख्याल में है, तुम सोच रहे हो कि जब पूरा मन राजी हो जाएगा सौ प्रतिशत, तब लेंगे। लेकिन जिंदगी में तुमने कभी पाया कि मन किसी भी चीज के लिए सौ प्रतिशत राजी होता हो? किसी भी चीज के लिए। यह मन का ढंग ही नहीं है। यह मन का स्वभाव ही नहीं है कि वह सौ प्रतिशत राजी हो जाए। अगर मन सौ प्रतिशत राजी हो जाए तो मन तो अद्वैत हो गया फिर।

मन का तो स्वभाव द्वैत है, दुई। मन तो हर चीज में दो भाव पैदा करता है, करूं न करूं; यहां जाऊं, वहां जाऊं; ऐसा करूं, वैसा करूं? मन तो एक साथ ही विपरीत बातें सोचता है। मन कभी भी द्वंद्व के बाहर तो होता ही नहीं। तुम तो सौ प्रतिशत की आशा कर रहे हो, जो बुद्धों को नहीं हुआ, वह तुम सोच रहे हो तुम कर लोगे! वह कभी हुआ ही नहीं, वह हो ही नहीं सकता। मन का स्वभाव चीजों को दो में तोड़ देने का है, द्वैत में तोड़ देने का है।

इसलिए तुमने कभी कोई छोटी-मोटी बात भी करके देखी जिसमें मन सौ प्रतिशत राजी हो? यह साड़ी पहनूं कि यह, और मन इसमें ही झंझट में पड़ जाता है। इस सिनेमा को देखने जाऊं या उस सिनेमा को, मन उसमें ही द्वंद्व में पड़ जाता है। इस स्त्री से विवाह करूं कि उस स्त्री से, और मन उसी में द्वंद्व में पड़ जाता है।

द्वंद्व तो मन की आदत है। द्वंद्व के द्वारा ही तो मन जीता है। द्वंद्व तो मन का भोजन है, उसकी पुष्टि है। इसीलिए तो मन से जीने वाला आदमी कभी निर्द्वंद्व नहीं हो पाता। कुछ भी करो, पछतावा रहता है। इस स्त्री से शादी करो तो पछतावा है, क्योंकि पीछे मन में सोच आने लगता है कि दूसरी से कर लिया होता तो अच्छा होता, यह कहां उपद्रव में पड़ गए! दूसरी से करते तो भी यही होता, यही पश्चात्ताप। मन की मानकर तो जो भी करोगे, पश्चात्ताप होगा। क्योंकि मन का आधा हिस्सा तो इनकार ही कर रहा था कि करो मत, ऐसा करो मत। जब कर लोगे तो वह आधा हिस्सा बदला लेगा, वह कहेगा--अब कहो, फंसे! पहले ही समझाया था, मान लेते तो अच्छा था, न माना, अब भुगतो!

दुबारा इस मन की मानकर देख लेना, और तुम पाओगे कि यह भी भुगतवा देता है। और दुनिया इसी तरह चलती है, दुनिया में इसी तरह हिसाब चलता है। दुनिया में इसी तरह आदमी एक से ऊब जाता है, दूसरे को पकड़ लेता है, दूसरे से ऊब जाता है, इसको पकड़ लेता है। ऐसा बदलता रहता है, लेकिन एक सत्य को नहीं देख पाता कि यह मन सदा द्वंद्व में है। इसलिए द्वंद्व के कारण कभी भी शांति तो हो न सकेगी। सौ प्रतिशत तो मन कभी होता नहीं।

तो मैं तुमसे इतना ही कह देना चाहता हूं कि अगर इक्यावन प्रतिशत मन संन्यास लेना चाहता है तो ले लो। इक्यावन प्रतिशत, मैं कहता हूं, अगर मन लेना चाहता हो तो ले लो। क्योंकि कब यह जो इक्यावन प्रतिशत है यह गिरकर उनचास प्रतिशत हो जाए, कहा नहीं जा सकता। रोज बदलती है मन की हवा। यह तो बाजार-भाव है। आज अच्छी बात लगी मेरी कोई, मन हो गया संन्यास ले लें, आज किसी संन्यासी को मगनभाव देखा, मन हुआ संन्यास ले लें। कल किसी संन्यासी को उदास देखा, मन हो गया छोड़ो भी, कहां की झंझट में पड़े थे! यह आदमी संन्यासी होकर भी उदास है, तो हमको भी क्या मिलने वाला है!

मन तो ऐसे बदलता रहता है। यह मन में जो मात्राएं हैं, ये ठहरी हुई कभी नहीं रहतीं। ये मन की जो मात्राएं हैं, बड़ी राजनीतिक हैं, ये तो पार्लियामेंट के सदस्य समझो। किस पार्टी में कब चले जाएंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। बाबू जी अभी यहां, बाबू जी अभी गये! बहुत कठिन है। यह तो डांवाडोल होता ही रहता है। यह पार्टी बदलने की आदत मन की बड़ी प्राचीन है।

तो जब शुभ करने का मन आए तो कर लेना। बुद्धपुरुष कहते रहे हैं सदा से कि जब शुभ करने का मन हो तो देर मत करना, और जब अशुभ करने का मन हो तो जरा देर करना। हम उलटा करते रहे हैं सदा से। जब शुभ करने का मन होता है, हम बैठकर विचार करते हैं, और जब अशुभ करने का मन होता है तब हम एक क्षण विचार नहीं करते, तत्क्षण करते हैं। तुमने कभी सोचा कि जब क्रोध करने का विचार उठता है, जब सौ प्रतिशत क्रोध होगा तब करेंगे। नहीं, इतनी कहां फुरसत! अभी किसी ने गाली दी है, अभी क्रोध न करोगे, तो कल तक तो ठंडा हो जाएगा, फिर क्या मतलब! ताजा-ताजा हो गया तो हो गया।

बुद्धपुरुष कहते हैं, बुरे को करना हो तो थोड़ा रुक जाना, सोच लेना, क्योंकि अगर सोचने के लिए रुके तो बुरा कभी तुमसे होगा नहीं। तुम भले के साथ यह तरकीब लगाते हो। दान करना हो तो तुम कहते हो, जरा सोच तो लें, घर जाकर पत्नी-बच्चों से बात कर लें और रात जरा सो जाएं मन में विचार रखकर, सुबह सोचकर फिर ठीक से... सुबह तक तुम बदल जाओगे। दान करना हो तो कर देना। गाली देना हो तो जरा रुक जाना, पत्नी-बच्चों से पूछ लेना, रात सो जाना, सुबह प्रार्थना करके फिर विचार कर लेना, फिर न माने मन तो कर लेना, गाली दे देना। लेकिन तुम सदा पाओगे, अगर जरा रुक गए तो जिस चीज में रुक गए वही रुक जाती है--भले में, या बुरे में।

संन्यास में अगर रुके तो रुक गए। तो इतनी ही जांच-पड़ताल कर लो--यह मैं नहीं कहता हूं कि तुम्हारा तीस प्रतिशत मन कहता हो, संन्यास ले लो; और सत्तर प्रतिशत कहता हो कि न लो, तो मैं नहीं कहता कि लो। क्योंकि फिर यह सत्तर प्रतिशत तो अभी से विरोध में खड़ा है, खतरे तो आने ही वाले हैं। सत्तर प्रतिशत मन कहता हो कि संन्यास ले लो, तो भी झंझटें आएंगी, लेने के बाद आएंगी, क्योंकि वह तीस प्रतिशत बदला लेगा। लेकिन उससे सुलझा जा सकता है। लेकिन अगर तीस प्रतिशत मन कहता है, ले लो; और सत्तर कहता है, मत लो; तो मत लेना, कभी मत लेना, ऐसी भूल कभी मत करना। क्योंकि इतनी छोटी अल्पमतीय मात्रा से टिक न पाओगे, यह बह जाएगी।

तो इतना ही सोच लो--सौ प्रतिशत की प्रतीक्षा मत करो--इक्यावन प्रतिशत अगर मन कहता है, तो ले लो। और एक बात और ख्याल में रख लेना, जब इक्यावन प्रतिशत मन कहता है संन्यास लो और उनचास प्रतिशत मन कहता है मत लो, तो अगर तुम रुके तो तुम उनचास प्रतिशत की मानकर रुक रहे हो। तो तुम अल्पमत की मानकर रुक रहे हो। और अल्पमत की मानकर रुक जाना घातक है। सौभाग्य से ऐसा क्षण आता है कि शुभ करने की प्रबल आकांक्षा पैदा होती है। कभी-कभी ऐसी ऊंचाई होती है।

तो अगर सच में ही भाव उठा--सौ प्रतिशत नहीं कह रहा हूं--सच में ही भाव उठा, भीतर एक आंदोलन चल रहा है, तो उसे ठंडा मत करो।

ख्याल रहे, शुभ करके पछताना अच्छा--कम से कम शुभ हुआ तो। अशुभ न करके पछताना अच्छा--कम से कम अशुभ टला तो। किसी ने राह पर गाली दी और तुमने गाली का उत्तर गाली से न दिया, पीछे तुम पछताए कि दे दिया होता उत्तर तो अच्छा था--यह बेहतर। अशुभ न करके पछताना बेहतर। तुमने किसी को दान दे दिया, फिर पीछे पछताए। शुभ करके पछताना बेहतर। हो तो गया।

ऐसे ही अभ्यास बढ़ते-बढ़ते, बढ़ते-बढ़ते, शुभ की मात्रा तुम्हारे भीतर घनी होती जाएगी। इसको रत्ती-रत्ती उठाना पड़ता है। क्योंकि जन्मों-जन्मों से अशुभ का अभ्यास है। अशुभ की तो बड़ी पुरानी परंपरा है और शुभ की कोई परंपरा नहीं है। शुभ तो नयी कोंपल है और अशुभ तो पुराना पत्थर है। शुभ को जिताना है, तो सारी ऊर्जा जिस प्रकार से बन सके, शुभ की तरफ बहने दो, जब बन सके तब बहने दो, जितना जल शुभ की धारा में पड़ सके पड़ने दो, और अशुभ से जितने बच सको बचो। एक दिन क्रांति घट जाती है--तुम्हारे जीवन की अधिक धारा शुभ की तरफ बहने लगती है।

यही तो बुद्ध ने कहा, बुरे को जागकर देखना, करना मत, भले को जागकर देखना और करना और चित्त को रोज-रोज शुद्ध करते जाना।

सातवां प्रश्नः आपने कहा कि गुलाब के सिंहासन पर अब नागफनी विराजमान हो गयी है। ऐसा क्यों हुआ?

ऐसा मन के कारण होता है। मन का एक नियम है कि जो तुम करते हो, उससे ऊब जाते हो। एक ही तरह के वस्त्र पहने-पहने मन ऊब जाता है, कहता है, दूसरे वस्त्र बनवा लो। एक ही कार चलाते-चलाते मन ऊब जाता है, कहता है, दूसरी कार खरीद लो। एक ही मकान में रहते-रहते मन ऊब जाता है, कहता है, दूसरा मकान खोज लो। एक ही पत्नी से ऊब जाता है, एक ही पति से ऊब जाता है, यहां तक कि एक ही गुरु से ऊब जाता है, कहता

है, अब दूसरा गुरु खोज लो। मन का स्वभाव यही है। क्षणभंगुर है मन। परिवर्तनशील है मन। मन हमेशा सनसनी की तलाश में है--कुछ सनसनीखेज, कुछ नया।

गुलाब से ऊब गए लोग, नागफनी को रख लिया। अब नागफनी से ऊब जाएंगे और गुलाब को रख लेंगे। इसलिए तो दुनिया के बड़े-बड़े देशों में दो राजनैतिक पार्टियां होती हैं। हो ही जाती हैं अंततः दो राजनैतिक पार्टियां--ज्यादा देर तक ज्यादा पार्टियां टिक नहीं सकती हैं--क्योंकि दो के साथ मन का खेल सुविधा से चलता है। एक से ऊब गए, पांच साल एक को ताकत में रख लिया, उससे ऊब गए, दूसरी पार्टी आ गयी ताकत में। पांच साल में वह तुम्हें उबा देगी, फिर पहली पार्टी आ गयी ताकत में। आदमी ऊबता रहता है, बदलता रहता है।

इस ऊब को समझना।

एक लड़का अपने कुत्ते का इलाज कराने पशु-चिकित्सालय ले गया। डाक्टर ने नाम पूछा, तो उसने जवाब दिया--टोनी। कुत्ते का नहीं, डाक्टर ने कहा, तुम्हारा नाम पूछ रहा हूं। अपना ही बता रहा हूं, डाक्टर साहब, कुत्ते का नाम तो मुन्ना है।

बदल गयी दुनिया। पहले बच्चों का नाम मुन्ना हुआ करता था, अब बच्चे टोनी हो गए। पहले कुत्ते का नाम टोनी हुआ करता था, अब कुत्ते मुन्नालाल हो गए। बदलाहट होती रहती है। आदमी का मन ऐसा करता रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नवाब के घर नौकर था। नवाब का बहुत चहेता था। एक दिन नवाब के साथ भोजन करने बैठा था--अक्सर नवाब के साथ भोजन करता। भिंडी बनी थी। तो नवाब ने पूछा कि मुल्ला, भिंडी के संबंध में क्या कहते हो, बहुत बढ़िया बनी है और मुझे बहुत पसंद है। मुल्ला ने कहा, अजी साहब, भिंडी का क्या कहना! शास्त्रों में इसका तो ऐसा वर्णन है, वनस्पति-शास्त्र इसकी प्रशंसा से भरा पड़ा है! भिंडी तो जैसे आप नवाबों में नवाब, ऐसे भिंडी सब्जियों में सब्जी। यह तो सिरमौर है, शिरोमणि।

रसोइए ने भी सुन लिया कि जब ऐसी शिरोमणि है तो उसने दूसरे दिन भी भिंडी बना दी। तीसरे दिन भी भिंडी बना दी। चौथे दिन भी भिंडी बना दी। पांचवें दिन तो नवाब चिल्लाया कि तेरा दिमाग खराब हो गया है? क्या मुझे मार डालेगा? भिंडी, भिंडी, भिंडी। मुल्ला तुम क्या कहते हो? मुल्ला ने कहा, साहब, जहर है भिंडी। यह तो आदमी को मारने का उपाय है। यह रसोइया आपकी जान लेना चाहता है, और मेरी भी ले लेगा आपके साथ।

नवाब ने कहा, अरे नसरुद्दीन, पहले तो तुम कहते थे यह भिंडी सिरमौर है, सब्जियों में सब्जी, जैसे नवाबों में नवाब, अब तुम एकदम जहर कहने लगे! मुल्ला ने कहा, हुजूर, मैं आपका नौकर हूं, भिंडी का नौकर नहीं। मैं आपकी सेवा करता हूं, कोई भिंडी से मुझे क्या लेना-देना! अरे, आपने कहा ठीक, तो हमने कहा ठीक। हम तो जी हुजूर हैं! जो हुकुम! अब आप जब नाराज हो गए तो हम नाराज हो गए।

पांच दिन भिंडी खाओगे तो ऊब जाओगे। बदलाहट चाहिए। मन बदलाहट मांगता है, क्योंकि मन बदलाहट है। शाश्वत चेतना है। जो चैतन्य से जुड़ेगा, वह धीरे-धीरे शाश्वत से जुड़ जाएगा। इसलिए मैंने तुमसे कहा, गुरु तक को बदलने का मन होने लगता है। दो-चार साल एक गुरु के पास, तुम देखते हो, लोग बदलते रहते हैं गुरु।

यहां मेरे पास लोग आते रहते हैं, जो लोग आते हैं, अक्सर ऐसे ही होते हैं--कोई महर्षि महेश योगी के पास रहा, कोई कृष्णमूर्ति के पास रहा, कोई प्रभुपाद के पास रहा, कोई कहीं, कोई कहीं, और कुछ तो ऐसे आते हैं जो सभी के पास रह चुके हैं। उनको मैं जानता हूं कि वे यात्री हैं, वे यहां भी कुछ दिन रहेंगे और अपना फिर

कहीं चले जाएंगे। उन पर कुछ ज्यादा भरोसा करने का सवाल नहीं है। वे चले जा रहे हैं एक जगह से दूसरी जगह!

एक और संबंध है, जो मन का नहीं। अगर तुम्हारा प्रेम मन का है, तो तुम पत्नियां बदलोगे, पति बदलोगे--वही तो पश्चिम में हो रहा है। अगर तुम्हारा प्रेम हार्दिक है, आत्मिक है, तो बदलाहट का कोई सवाल ही नहीं है। अगर तुम्हारी श्रद्धा भी मन की है तो बदलोगे--आज यह गुरु कल वह गुरु। लेकिन अगर श्रद्धा हार्दिक है, आत्मिक है, तो बात खतम हो गयी।

मन की इस प्रक्रिया को समझना। मन के साथ कुछ भी चीज ज्यादा देर नहीं ठहर सकती है। और अगर तुम किसी भी चीज के साथ ज्यादा देर ठहर जाओ, तो लाभ होगा, क्योंकि मन गिरेगा। अगर तुम किसी चीज के साथ ज्यादा देर ठहर जाओ तो मन का गिरना निश्चित है। क्योंकि मन पहले पूरी कोशिश करेगा कि हटो, हटो, बदलो, कहीं और चलो, कुछ और देखो, अब यहीं-यहीं क्या रखा है? अगर तुम रुके ही रहे, रुके ही रहे, रुके ही रहे, तब मन थककर गिर जाएगा। और जहां मन गिर जाता है, वहां समाधि है।

इसलिए सभी धर्मों ने इस तरह की प्रक्रियाएं खोजी हैं जिनसे मन थक जाए। संन्यासी देखते हैं? आपको मैंने कहा कि गेरुवा वस्त्र। मुझसे लोग पूछते हैं कि आपको और रंगों से कोई एतराज है?

एतराज मुझे किसी रंग से नहीं है, लेकिन कोई एक रंग चुनना ही था, ताकि एक रंग तुम्हारे मन को थका डाले। ऊबोगे तुम--रोज-रोज गेरुवा, रोज-रोज गेरुवा! तो उसमें से भी लोग तरकीब निकाल लेते हैं--गेरुवे में भी कई रंग तो होते ही हैं--तो वे तरकीब निकाल लेते हैं, थोड़ा फीका, थोड़ा गहरा, थोड़ा ऐसा, थोड़ा वैसा, थोड़ा ज्यादा लाल, थोड़ा कम लाल, वे तरकीब निकाल लेते हैं। फिर साड़ियां इकट्ठी हो जाती हैं। उसमें से तरकीब निकाल ली कि यह ठीक है, कोई बात नहीं, कभी यह पहन लेंगे, कभी ऐसा पहन लेंगे।

तरकीब असल में यह है कि वस्त्र को अगर तुमने एक ही रंग स्वीकार कर लिया, तो धीरे-धीरे वस्त्र की चाह ही भूल जाएगी, वस्त्र का ख्याल ही मिट जाएगा। जिनको ऐसा हुआ है, उन्होंने मुझसे आकर कहा भी है कि एक आश्चर्य की बात घटी है कि बाजार हम पहले जाते थे--खासकर स्त्रियों को--कि पहले हम बाजार जाते थे तो हर दुकान पर कौन सी साड़ी नयी, एकदम दिखायी पड़ती थी, अब नहीं दिखायी पड़ती। अब गुजर जाते हैं, कपड़े की दुकान ही नहीं दिखायी पड़ती! लेना-देना क्या है, जब अपना एक ही कपड़ा है तो बात खतम हो गयी।

अगर कपड़ा एक ही रंग का पहना... जैनों ने, बौद्धों ने, हिंदुओं ने, सूफियों ने, ईसाइयों ने, सभी ने एक रंग चुन लिया था अपने फकीरों के लिए, क्योंकि उस एक रंग के कारण मन की जो रंग-रंग बदलने की आदत है, उसको तोड़ने में सहायता मिलती है। फिर सभी ने एक ढंग चुन लिया था अपने संन्यासी के लिए कि सुबह पांच बजे उठना, फिर रोज पांच बजे उठना। तो धीरे-धीरे पांच कि छह कि सात, ऐसा कोई विकल्प ही नहीं रहा। धीरे-धीरे एक घड़ी आती है कि विकल्प रह ही नहीं जाता, चुपचाप सहज उठ आते पांच बजे, सोच-विचार का कोई उपाय न रहा। रोज रात इतने बजे सो जाना, तो उतने बजे सो जाते। धीरे-धीरे विकल्प मिट जाता है। एक निश्चित भोजन करना है, वह भोजन कर लेते, शरीर की पूर्ति हो गयी, मन को खिलवाड़ का मौका न रहा। भोजन, वस्त्र, निद्रा, उठना, बैठना, चलना, धीरे-धीरे सब एक सीमा में, मर्यादा में आ जाता है।

इस मर्यादा को ध्यान रखना, यह शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। जब सब चीजें एक सीमा में और मर्यादा में आ जाती हैं तो मन को उछल-कूद करने की जगह नहीं रह जाती--मर्यादा सिकुड़ती जाती है, सिकुड़ती जाती है और एक दिन मर्यादा मन की फांसी बन जाती है। मर्यादा कस जाती मन के ऊपर और मन मर जाता है। और मन के मरते ही तुम्हारे भीतर जो जागता है, वही तुम हो--तत्वमसि--वही तुम्हारा स्वभाव है।

तुम पूछते हो, "गुलाब के सिंहासन पर अब नागफनी विराजमान हो गयी, ऐसा क्यों हुआ?"

आदमी के मन के कारण, तुम्हारे मन के कारण। फिर नागफनी उतरेगी, सदा नहीं विराजी रहेगी; फिर गुलाब आएगा, देर-अबेर। तुम फैशन देखते हो, ऐसे ही चलता रोज। एक चीज फैशन में थी, फिर एकदम चली जाती। दो-चार-दस साल बाद फिर वापस। दो-चार-दस साल के लिए बिल्कुल फैशन के बाहर हो जाती है। जो उसका उपयोग करे, वह समझ में आता है कि दकियानूस। देखा, कुछ दिन पहले स्त्रियां नथनी पहनती थीं, वह चली गयी फैशन के बाहर। फिर जो नथनी पहने, वह दकियानूस, गंवार, गांव की, अकल नहीं, आधुनिकता का कुछ पता नहीं। फिर नथनी लौटने लगी। अब नाक भी नहीं छिदी है तो ऊपर से जबरदस्ती नथनी चिपकाए हुए हैं। वह फिर फैशन में आने लगी। कान नंगे हो गए थे, फिर चीजें लटकने लगीं, वही चीजें--लाओगे भी कहां से बार-बार।

अगर तुम आदमी का पूरा इतिहास देखो तो आदमी उन्हीं बातों को हजारों बार कर चुका है। बार-बार नया लाओगे भी कहां से!

इस देश की बड़ी पुरानी कहावत है कि सूरज के तले कुछ भी नया नहीं। हो भी नहीं सकता। सब फैशन हो चुके हैं। आदमी जो आज कर रहा है, सब कर चुका है। बहुत बार कर चुका है। फिर भूल जाता है। दस-पांच साल में विस्मरण हो जाता है, फिर फैशन वापस आ गयी। फिर लगती है नयी। नयी कुछ भी नहीं है। फिर खो जाएगी, फिर लौट आएगी। ऐसा चलता रहता।

इसे ख्याल में लेना और इससे सावधान होना। इस तरह आदमी का मनोरंजन होता रहता है। जीवन-क्रांति तो नहीं होती, मनोरंजन होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन को रात में नींद न आने की बीमारी थी। तंग आकर डाक्टर के पास पहुंचा। डाक्टर ने सोच-समझकर नुस्खा लिखा--कहा कि जिस रात नींद न आ रही हो, तो आप हर घंटे के बाद शराब का एक पैग पी लें। हालांकि यह कोई इलाज नहीं, इससे आप सो भी नहीं सकेंगे, लेकिन कम से कम आपका जागना मनोरंजन में बदल जाएगा।

यह जिंदगी दुखभरी है। कपड़े बदलो, कार बदलो, मकान बदलो, पत्नी, पति बदलो, बदलते रहो, इससे कुछ होगा नहीं। इससे कुछ आनंद न मिलेगा। लेकिन कम से कम यह जो उदासी है, थोड़े मनोरंजन में बदल जाएगी, थोड़ी पुलक रहेगी। एक कार से दूसरी कार घर लाने के बीच थोड़ी सी पुलक रहती है, घंटे-दो घंटे, दिन-दो दिन पुलक-पुलक मालूम होती है, फिर ठंडी हो जाती है। फिर बदल लेना।

अमरीका में लोग हर वर्ष कार बदल लेते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि पिछले वर्ष की कार ज्यादा मजबूत थी, वह बेचकर और कमजोर कार ले आते हैं। मगर फिर भी बदल लेते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है, तुमने देखा होगा कि एक आदमी अपनी नौकरानी के प्रेम में पड़ गया--सुंदर पत्नी है, सारा पड़ोस उसकी पत्नी के लिए दीवाना है और वे अपनी नौकरानी के पीछे दीवाने हो गए हैं। और तुम सिर ठोंक लेते हो कि इस आदमी को हुआ क्या है, एक साधारण सी नौकरानी, काली-कलूटी, उसके पीछे पागल हुआ जा रहा है। इसकी पत्नी इतनी सुंदर, इसको हुआ क्या है!

तुमको समझ में नहीं आ रहा--भिंडी, भिंडी, भिंडी... क्या करोगे! वह बदशकल औरत भी सुंदर दिखायी पड़ने लगती है। भिंडी, भिंडी, भिंडी... करेला तक आदमी खाने को राजी हो जाता है कि चलो कम से कम बदलाहट तो होगी!

इस मन से थोड़े सावधान होना। यह मन तुम्हें भटकाता रहा है। और मन अपना शिकंजा तुम पर छोड़ता नहीं, क्योंकि तुम इसकी बदलाहटों को मान लेते हो। यह कहता है कि अच्छा ठीक, यह स्त्री नहीं जंच रही है अब, तो कोई स्त्रियां दुनिया में कम हैं। दुनिया पड़ी है, तू क्यों परेशान हो रहा है! यह स्त्री पहले ही से गड़बड़ थी, मैंने पहले ही कहा था--आधा मन तो पहले ही से कह रहा था--और मैंने पहले ही कहा था। इसलिए मन को एक बड़ी सुविधा है कि मैंने पहले ही कहा था, वह हमेशा कह सकता है। और अब तो सिद्ध हो गया, अब बदल ले। लोग धंधा बदल लेते हैं, काम बदल लेते हैं, गांव बदल लेते हैं, बदलते चले जाते हैं। इस तरह मनोरंजन होता रहता है और जीवन नष्ट होता चला जाता है।

मनोरंजन से सावधान! मनोरंजन घातक है। मनोरंजन नहीं करना है, मनोघात करना है। मनोनाश करना है। मन को जड़मूल से उखाड़ देना है। तो ही तुम आनंद को उपलब्ध हो सकोगे।

भीतर है अंध कुआं
बाहर है सिर्फ धुआं
रमे कहां मेरा मन
दूरागत ध्वनियों की
गूंज सुनी जाती है
निशि के रीतेपन में
अनदेखे सपनों की
छायाएं पड़ती हैं
झीलों के दर्पण में
झूठे यह सभी वहम
जर्जर संपूर्ण अहम्
भ्रमे कहां मेरा मन
धुंधलायी सड़कों पर
कुम्हलाए चेहरे हैं
शाम की उदासी है
घिरती अंधियारी के
धूल भरे जूड़े में
गुथा फूल बासी है
दृश्य सभी उजड़े हैं
रंग सभी उखड़े हैं
जमे कहां मेरा मन
अंजुरी में भरे हुए
पूजा के पानी-सा
समय बहा जा रहा
मुझे कुछ कहना था

नहीं कहा जा रहा
दीवारें-छतें ढहीं
बुनियादें कांप रहीं
थमे कहां मेरा मन

मन थमता ही नहीं। असल में मन की दीवारें कांपती ही रहती हैं। मन कंपन का नाम है। जो तुम्हारे भीतर कंप रहा है, वही मन है। और जो तुम्हारे भीतर अकंप है, वही आत्मा है। इसलिए सारा योग, सारे धर्म, सारी ध्यान की विधियां एक ही बात कहती हैं--अकंप हो जाओ, कंपो मत। लहरों को शांत करो, लहराओ मत, लहर-शून्य हो जाओ। और यह मन तो रोज नयी लहरें उठाता है। पढ़ लिया अखबार में एक विज्ञापन और दीवाने हो गए कि अब यह खरीदना ही पड़ेगा। अब बिना खरीदे नहीं रहा जा सकता। देख ली किसी के पास कोई चीज, तुम्हें भी खरीदनी पड़ेगी। ऐसे तुम अपने को छितराए चले जाते हो। समेटो।

न नागफनी से कुछ मिलने को है, न गुलाब से कुछ मिलने को है। नागफनी नागफनी है, गुलाब गुलाब है। किसी को सिंहासन पर रखने की कोई जरूरत नहीं, नागफनी को अपनी जगह रहने दो, गुलाब को अपनी जगह रहने दो। तुम्हारा सिंहासन खाली हो, तो खाली सिंहासन पर परमात्मा आ जाए। रिक्त सिंहासन, शून्य सिंहासन परमात्मा के लिए आने का द्वार बन जाता है। शून्य सिंहासन, कुछ मत बिठाओ तुम्हारे सिंहासन पर, तो परमात्मा बैठेगा। नागफनी बिठा लो कि गुलाब, कुछ फर्क नहीं पड़ता। नागफनी-गुलाब की साजिश है। जब गुलाब ऊपर होता है, नागफनी उसका विरोध करती है। जब नागफनी ऊपर हो जाती है, गुलाब उसका विरोध करेगा। उन दोनों की साजिश है। उन दोनों ने आपस में बंटवारा किया है।

मैंने सुना, एक रात एक आदमी को दो आदमियों ने आकर नमस्कार किया। अंधेरी रात थी, रास्ता सन्नाटा था, दोनों आदमियों ने एकदम झुककर नमस्कार किया और कहा, महानुभाव, क्या आपके पास एक पैसे का सिक्का होगा? उस आदमी ने कहा कि इस अंधेरी रात में और एक पैसे के सिक्के का क्या करना है? उन्होंने कहा, नहीं, कुछ जरा सा काम है। असल में हम दोनों में झगड़ा हो रहा है, वह कुछ तय करना है। उसने पूछा, तय क्या करना है? तो उन्होंने कहा, मामला यह है कि कौन तुम्हारी घड़ी रखेगा और कौन तुम्हारा पाकेट रखेगा, इस पर हम लोगों को तय करना है, तो सिक्का पास में नहीं है। तो सिक्के को हम फेंककर उलट-पुलटकर लेंगे, अभी तय हो जाएगा। सिक्का दो।

इसी को लूटना है! यही तय करना है कि कौन इसका मनीबैग रखेगा और कौन इसकी घड़ी रखेगा। अब यह तय नहीं हो पा रहा, इसी से सिक्का मांग रहे हैं! मगर यही चल रहा है। नागफनी समझा रही है गुलाब के खिलाफ, गुलाब समझा रहा नागफनी के खिलाफ, तुम्हीं को। दोनों का इरादा तुम्हारी छाती पर बैठने का है। दोनों के बीच साजिश है। झगड़ा यही है कि कौन तुम्हारा मालिक हो। और कोई झगड़ा नहीं है, और तो दोस्ती है।

जिस दिन तुम यह समझोगे कि सारा झगड़ा संसार में एक ही चल रहा है कि कौन तुम्हारा मालिक हो, उस दिन तुम सारी मालकियत के बीच से बाहर हट जाओगे। इसमें तुम्हारा कोई भी हित नहीं है। धन तुम्हारी मालकियत करे कि पद तुम्हारी मालकियत करे, कि कौन तुम्हारी छाती पर बैठे, इससे क्या फर्क पड़ता है, तुम तो दबे ही रहोगे। तुम जिस दिन किसी को छाती पर नहीं बिठाते, न हिंदू को, न मुसलमान को, न वेद को, न

कुरान को, न बाइबिल को, तुम सब उतारकर रख देते हो, तुम कहते हो, मैं सूना रहूंगा। उस सूने में ही उतरता है पूर्ण।

आखिरी प्रश्नः
कभी-कभी मेरे दिल में यह ख्याल आता है,
जैसे आपको बनाया गया हो मेरे लिए
आप अब से पहले सितारों में बस रहे थे कहीं,
आपको जमीं पर बुलाया गया हो मेरे लिए

ख्याल ही न रहे यह, ऐसा होने दो। कविता ही न रहे यह, जीवन बने। तब तो बड़ा सार्थक हो जाए। अगर तुम्हारे हृदय में यह बात बैठ गयी है किकृ

"कभी-कभी मेरे दिल में यह ख्याल आता है,
जैसे आपको बनाया गया हो मेरे लिए"

ख्याल भर में मत उलझे रहना, ख्याल धोखा दे जाएगा। तो फिर मैं जो कह रहा हूं, उसको जीवन में उतार लो, तो मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, उस तरफ चल पड़ो, तो प्रमाण होगा, तो सबूत होगा। अपनी कविता के लिए तुम्हें प्रमाण जुटाने होंगे। तुम्हें सबूत देना होगा।

"आप अब से पहले सितारों में बस रहे थे कहीं,
आपको जमीं पर बुलाया गया हो मेरे लिए"

मैं तो यहीं था, लेकिन कुछ मेरे भीतर आया है जो सितारों में बस रहा था, वह तुम्हारे भीतर भी आ सकता है। तुम भी माध्यम बन सकते हो उसके। बनना ही चाहिए, तो ही प्रफुल्लता होगी, तो ही तुम्हारे जीवन में उत्सव होगा, संगीत होगा, नृत्य होगा। जो सितारों में बसा है, वह तुम्हारे प्राणों के लिए ही है, उतरने को आतुर है, तुम जगह खाली करो, तुम जरा अहंकार को हटाओ, तुम द्वार खोलो।

ऐसा अगर लगा है, सच में लगा है, कविता ही नहीं, तो फिर मेरी सुनो। सुनो ही नहीं, गुनो भी।

धरा पुकारने लगी
गगन पुकारने लगा--
उठो मनुष्य,
चेतना का स्वन पुकारने लगा!
नए दिवस के आदि में
निशा का अंत हो गया
हंसी विभा

समस्त सृष्टि में वसंत हो गया

गली-गली खिले सुमन

यहां चमन, वहां चमन

फबन धरा की देख लो

गगन पुकारने लगा--

उठो मनुष्य,

चेतना का स्वन पुकारने लगा!

हरे-भरे सुरंग भरे

असंख्य स्वप्न को जुटा

पड़े रहे हो सेज पर

अमोल जिंदगी लुटा

स्वप्न तो नहीं स्वजन

कुव्यंग व्यंग का छलन

लुटे गए बहुत

उठो, सृजन पुकारने लगा--

उठो मनुष्य,

चेतना का स्वन पुकारने लगा!

कि दागदार जिंदगी की

मांग अब संवर रही

अभी उठेगी पालकी

कि ढोलकी उभर रही

पायलों का रुनुन-झुनुन--

पिया मिलन, पिया मिलन

उठो बरात देख लो

सगुन पुकारने लगा

धरा पुकारने लगी

गगन पुकारने लगा--

उठो मनुष्य,

चेतना का स्वन पुकारने लगा!

तो सुनो, गुनो, मेरी पुकार सुनो, तो ही प्रमाण होगा कि मैं तुम्हारे लिए हूं। कहने से नहीं कुछ होगा, कुछ करना होगा। कृत्य से सबूत जुटाना होगा, साक्षी बनना होगा। अन्यथा कविताएं कभी-कभी खूब झुठला जाती हैं। अच्छे-अच्छे गीत कभी-कभी बहुत भुला जाते हैं। अच्छे-अच्छे शब्दों का जाल कभी-कभी सपने बनकर तुम्हें खूब भटका देता है। प्रीतिकर है तुमने जो कहा, मगर और भी प्र्ीतिकर हो जाएगा अगर तुम वैसा कर भी सको।

उठो!

आज इतना ही।

सड़सठवां प्रवचन

अंतस्-केंद्र पर अमृत है

दुल्लभो पुरिसाजां◌ं न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।। 169।।

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो।। 170।।

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपंचसमतिक्कंते तिण्णसोकपरिद्दवे।। 171।।

ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुं◌ं संखातुं इमेतंपि केतचि।। 172।।

एक प्राचीन रूसी कथा है। एक बड़े टोकरे में बहुत से मुर्गे आपस में लड़ रहे थे। नीचे वाला खुली हवा में सांस लेने के लिए अपने ऊपर वाले को गिराकर ऊपर आने के लिए फड़फड़ाता है। सब भूख-प्यास से व्याकुल हैं। इतने में कसाई छुरी लेकर आ जाता है, एक-एक मुर्गे की गर्दन पकड़कर टोकरे से बाहर खींचकर वापस काटकर फेंकता जाता है। कटे हुए मुर्गों के शरीर से गर्म लहू की धार फूटती है। भीतर के अन्य जिंदा मुर्गे अपने-अपने पेट की आग बुझाने के लिए उस पर टूट पड़ते हैं। इनकी जिंदा चोंचों की छीना-झपटी में मरा कटा मुर्गे का सिर गेंद की तरह उछलता-लुढ़कता है। कसाई लगातार टोकरे के मुर्गे काटता जाता है। टोकरे के भीतर हिस्सा बांटने वालों की संख्या भी घटती जाती है। इस खुशी में बाकी बचे मुर्गों के बीच से एकाध की बांग भी सुनायी पड़ती है। अंत में टोकरा सारे कटे मुर्गों से भर जाता है। चारों ओर खामोशी है, कोई झगड़ा या शोर नहीं है।

इस रूसी कथा का नाम है--जीवन।

ऐसा जीवन है। सब यहां मृत्यु की प्रतीक्षा में हैं। प्रतिपल किसी की गर्दन कट जाती है। लेकिन जिनकी गर्दन अभी तक नहीं कटी है, वे संघर्ष में रत हैं, वे प्रतिस्पर्धा में जुटे हैं। जितने दिन, जितने क्षण उनके हाथ में हैं, इनका उन्हें उपयोग कर लेना है। इस उपयोग का एक ही अर्थ है कि किसी तरह अपने जीवन को सुरक्षित कर लेना है, जो कि सुरक्षित हो ही नहीं सकता।

मौत तो निश्चित है। मृत्यु तो आकर ही रहेगी। मृत्यु तो एक अर्थ में आ ही गयी है। क्यू में खड़े हैं हम। और प्रतिपल क्यू छोटा होता जाता है, हम करीब आते जाते हैं। मौत ने अपनी तलवार उठाकर ही रखी है, वह हमारी गर्दन पर ही लटक रही है, किसी भी क्षण गिर सकती है। लेकिन जब तक नहीं गिरी है, तब तक हम जीवन की आपाधापी में बड़े व्यस्त हैं--और बटोर लूं, और इकट्ठा कर लूं, और थोड़े बड़े पद पर पहुंच जाऊं, और थोड़ी प्रतिष्ठा हो जाए, और थोड़ा मान-मर्यादा मिल जाए। और अंत में सब मौत छीन लेगी।

जिन्हें मृत्यु का दर्शन हो गया, जिन्होंने ऐसा देख लिया कि मृत्यु सब छीन लेगी, उनके जीवन में संन्यास का पदार्पण होता है। उनके जीवन में एक क्रांति घटती है। इस क्रांति को बुद्ध ने एक विशिष्ट नाम दिया है, उसे वे कहते हैं--परावृत्ति।

इस शब्द को समझ लेना चाहिए, यह शब्द बड़ा बहुमूल्य है।

हिंदुओं के पास एक शब्द है, निवृत्ति। जैसा हिंदुओं का निवृत्ति शब्द महत्वपूर्ण है, वैसा बौद्धों का परावृत्ति शब्द महत्वपूर्ण है। और निवृत्ति से परावृत्ति ज्यादा महत्वपूर्ण शब्द है। निवृत्ति का अर्थ होता है, संसार से विराग, संसार की वृत्तियों में रस का त्याग। मगर त्याग में दमन भी हो सकता है। निवृत्ति अक्सर दमन पर खड़ी होती है। परावृत्ति का अर्थ संसार का त्याग नहीं है, अपनी तरफ लौटना। जोर है--भीतर की तरफ लौटना।

साधारणतः हमारी जीवन-ऊर्जा बाहर की तरफ जा रही है, यह वृत्ति है। इसे बाहर की तरफ न जाने देना निवृत्ति है। इसे भीतर की तरफ मोड़ लेना परावृत्ति है। और यह भीतर की तरफ मुड़ जाए तो बाहर अपने आप ही नहीं जाएगी। जब अपने आप बाहर न जाए, तो परावृत्ति। जब रोकना पड़े बाहर जाने से, तो निवृत्ति।

तो निवृत्ति में तो दमन होगा। निवृत्ति में तो जबरदस्ती होगी। मन तो जाना चाहता था, तुमने बांध-बूंधकर रोक लिया। मन तो भागता था, तुमने किसी तरह कील ठोंक दी। मन तो दौड़ा-दौड़ा था, तुम किसी तरह सम्हालकर उसकी छाती पर बैठ गए। यह बैठना बहुत सुख नहीं देगा। और जिसे तुमने जबरदस्ती बांध लिया है, वह छूटेगा। और जिस पर तुम जबरदस्ती सवार हो गए हो, आज नहीं कल कमजोरी के किसी क्षण में तुम्हें गिरा देगा। फिर घोड़े भागने लगेंगे, फिर इंद्रियां सजग हो जाएंगी, फिर वृत्तियां वापस लौट आएंगी। जब तक परावृत्ति न हो जाए, तब तक निवृत्ति हो नहीं सकती। जो मन अभी बाहर की तरफ भागने में रसातुर है, ऐसा ही रसातुर भीतर की तरफ जाने को हो जाए तो परावृत्ति।

और परावृत्ति ही मृत्यु के पार ले जाती है, क्योंकि बाहर है मृत्यु और भीतर है जीवन। तुम्हारे अंतस्तल के केंद्र पर परम जीवन है, अमृत है। वहां कभी मृत्यु घटी नहीं है, कभी घटेगी भी नहीं। घट सकती नहीं। वहां तुम परमात्मा हो। वहां भगवत्ता तुम्हारी है। वहां तुम शाश्वत हो, सनातन हो और सदा रहोगे। वहां तुम समय के पार हो।

बाहर तो समय है। जितने अपने से दूर गए, उतने ही परिवर्तन की दुनिया में गए। जितने अपने से दूर गए, उतना ही भटके क्षणभंगुर में, लहरों में खोए। जितना अपने पास आए, लहरों से मुक्त हुए। और जब ठीक अपने केंद्र पर आ गए, तो सब लहरें शांत हो जाती हैं। उस गहराई में कोई लहर नहीं है, कोई तरंग नहीं है। उस आंतरिक गहराई में पहुंच जाने की प्रक्रिया का नाम परावृत्ति है।

निवृत्ति शब्द से ज्यादा मूल्यवान है परावृत्ति शब्द, क्योंकि निवृत्ति में दमन है, परावृत्ति में मुक्ति है। निवृत्ति छाया की तरह आनी चाहिए--परावृत्ति की छाया। अक्सर लोग उलटा करते हैं, लोग सोचते हैं, निवृत्ति की छाया की तरह परावृत्ति आएगी। लोग सोचते हैं, हम बाहर से अपने मन को रोक लेंगे तो मन भीतर जाने लगेगा।

नहीं, तुम जितना बाहर से अपने मन को रोकोगे, मन और भी, और भी बाहर जाएगा, और भी हठपूर्वक बाहर जाएगा। तुम करके देखो। जिस चीज को तुम चेष्टापूर्वक छोड़ोगे, मन वहीं-वहीं लौट-लौटकर जाएगा। तुम जिस बात को जबरदस्ती निषेध कर दोगे, उससे मुक्ति न हो सकेगी, वह बात तुम्हारा पीछा करेगी। सोए, जागे, दिन में, रात में द्वार खटखटाएगी।

निवृत्ति से कोई परावृत्ति की तरफ नहीं जाता। हां, परावृत्ति आ जाए तो निवृत्ति घटती है।

ऐसे ही हमारे पास और भी एक शब्दावली है--राग, विराग, वीतराग। राग का अर्थ होता है, बाहर जाना, दूसरे से जुड़ जाना। विराग का अर्थ होता है, दूसरे से टूट जाना। और वीतराग का अर्थ होता है, अपने से जुड़ जाना। राग अर्थात वृत्ति। विराग अर्थात निवृत्ति। वीतराग अर्थात परावृत्ति।

बुद्ध की सारी देशना परावृत्ति के लिए या वीतरागता के लिए है--तुम कैसे अपने से जुड़ जाओ। इसलिए बुद्ध का सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान है परावृत्ति की प्रक्रिया। ध्यान का अर्थ है, तुम्हारी आंखों में तुम्हीं भर रह जाओ, और कुछ न रहे। तुम ही शेष रहो, और कुछ शेष न रहे। उस शून्यदशा में जहां तुम ही विराजमान हो और कोई भी नहीं--न कोई विचार उठता, न कोई भाव उठता, न कोई विषय, न कोई वस्तु की स्मृति आती, वहां आत्म-स्मृति आती है। वहां सम्यक-स्मृति पैदा होती है। सुरति पैदा होती है। वहां तुम अपने रस में डोलने लगते हो।

उस रस को ही खोजो तो धार्मिक हो। उस रस की खोज में निकल पड़ो तो संन्यासी हो। उससे विपरीत कुछ खोजते रहे तो समय गंवा रहे हो।

आज के सूत्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। पहला सूत्र--

दुल्लभो पुरिसाजां‍ं न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।।

"पुरुषश्रेष्ठ दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता। वह धीर जहां उत्पन्न होता है, उस कुल में सुख बढ़ता है।"

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्री समग्गानं तपो सुखो।।

"बुद्धों का उत्पन्न होना सुखदायी है। सद्धर्म का उपदेश सुखदायी है। संघ में एकता सुखदायी है। एकतायुक्त तप सुखदायी है।"

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपंचसमतिक्कंते तिण्णसोकपरिद्दवे।।
ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुं‍ं संखातुं इमेतंपि केतचि।।

"जो संसार-प्रपंच को अतिक्रमण कर गए, जो शोक और भय को पार कर गए, ऐसे पूजनीय बुद्धों अथवा श्रावकों की, या उन जैसे मुक्त और निर्भय पुरुष की पूजा के पुण्य का परिणाम इतना है, यह किसी से कहा नहीं जा सकता।"

इन सूत्रों का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ, उन्हें समझें पहले।

पहली परिस्थिति--

एक दिन बुद्ध ने श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ घोड़ों की बात कही।

मैं बहुत बार तुम्हें कहा भी हूं, कि बुद्ध कहते हैं, अश्व वही है जो कोड़े की छाया से चल पड़े। उससे कम श्रेष्ठ वह है जिसे कोड़े की फटकार चलाने के लिए जरूरी हो। उससे कम श्रेष्ठ वह है जिस घोड़े को कोड़े की चोट मारनी जरूरी हो। उससे कम श्रेष्ठ वह है जो मारे-मारे न चले। चले भी तो जबरदस्ती चले।

बुद्ध कह रहे थे, श्रेष्ठतम अश्व कौन है। आनंद ने पूछा, भगवान, आपने बताया कि श्रेष्ठ अश्व कौन है और कहां उत्पन्न होता है, कैसे उत्पन्न होता है, लेकिन आपने कभी नहीं बताया कि उत्तम पुरुष कौन है और उत्तम पुरुष कहां उत्पन्न होता है। तो शास्ता ने कहा, आनंद, उत्तम पुरुष सर्वत्र उत्पन्न नहीं होते। वे मध्यदेश में ही उत्पन्न होते हैं और जन्म से ही महाधनवान होते हैं, वे क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होते हैं।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

दुल्लभो पुरिसाजां‍ं न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।।

"पुरुषश्रेष्ठ दुर्लभ है, सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह धीर जहां उत्पन्न होता, उस कुल में सुख बढ़ता है।"

इस गाथा का अर्थ बौद्धों ने अब तक जैसा किया है, वैसा नहीं है। सीधा-सीधा अर्थ तो साफ मालूम पड़ता है कि बुद्ध महाधनवान घर में पैदा होते हैं। फिर कबीर का क्या होगा! फिर क्राइस्ट का क्या होगा! फिर फरीद का क्या होगा! फिर मोहम्मद का क्या होगा! ये तो महाधनवान घरों में पैदा नहीं हुए। तो फिर बुद्धपुरुष नहीं हैं ये? यह तो बड़ी संकीर्णता हो जाएगी। जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजपुत्र हैं, सही। हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के बेटे हैं, सही। और बुद्ध भी राजपुत्र हैं, सही। इसलिए स्वभावतः इस वचन का यही अर्थ लिया गया है अब तक कि बुद्धपुरुष राजघरों में ही पैदा होते हैं--महाधनवान।

लेकिन अब तो दुनिया से राजा मिट गए, मिटते चले जा रहे हैं! दुनिया में आने वाले भविष्य में केवल पांच राजा बचेंगे--चार ताश के पत्तों के और एक इंग्लैंड का। बाकी तो और कोई बच सकता नहीं। बाकी तो सब गए! तो बुद्धपुरुषों को पैदा होने की जगह--या तो पत्तों के घरों में पैदा हों, या इंग्लैंड के राजघराने में पैदा हों। और जैसे पत्तों के राजा झूठे, ऐसा इंग्लैंड का राजा झूठा, इसीलिए बचेगा। बचने का और कोई खास कारण नहीं है। है ही नहीं, इसलिए बच जाएगा। न कुछ है, प्रतीकात्मक है।

तो दुनिया में अब बुद्धपुरुष पैदा नहीं होंगे? भूल है। कहीं अनर्थ हो गया शब्द का। मैं महाधनवान का अर्थ करता हूं--जन्म से ही महाधनवान होते हैं, इसका अर्थ हुआ कि बुद्धपुरुष आकस्मिक पैदा नहीं होते, जन्मों-जन्मों की संपदा लेकर पैदा होते हैं। संपदा भीतर है। संपदा आंतरिक है। महाधनवान ही पैदा होते हैं। शायद बस आखिरी तिनका रखा जाना है और ऊंट बैठ जाएगा। सब हो चुका है, शायद थोड़ी सी कमी रह गयी है, निन्यानबे डिग्री पर उबल रहा है पानी, एक डिग्री और, और फिर दुबारा जन्म नहीं होगा।

यही अर्थ है महाधनवान का। ऐसा कम से कम मैं अर्थ करता हूं। महाधनवान का यही अर्थ है कि बुद्धपुरुष दरिद्र पैदा नहीं होते। यह दरिद्रता धन की दरिद्रता नहीं है, यह अंतर्धन की। यह महाऐश्वर्य धन का ऐश्वर्य नहीं है, यह महाऐश्वर्य ध्यान का ऐश्वर्य है, समाधि का ऐश्वर्य है, भीतर की शांति और आनंद का ऐश्वर्य है।

इसलिए कबीर भी महाधनवान ही पैदा होते हैं। क्राइस्ट भी महाधनवान ही पैदा होते हैं। महाधनवान होने का अर्थ है, अपनी संपदा अपने भीतर लेकर पैदा होते हैं। खाली हाथ पैदा नहीं होते, भरे हाथ पैदा होते हैं। हाथ करीब-करीब पूरे भरे हैं, जरा सी कमी रह गयी है, वह इस जीवन में पूरी हो जाएगी, फिर दुबारा पैदा नहीं होंगे। क्योंकि जो पूरा-पूरा हो गया, उसके आने की फिर कोई जरूरत नहीं रह जाती।

तो मैं तुमसे कहता हूं, भविष्य में भी बुद्धपुरुष होते रहेंगे, राजा रहें, न रहें। धनवान रहें, न रहें, बुद्धपुरुष होते रहेंगे। क्योंकि बुद्धपुरुष के होने का धन से क्या संबंध हो सकता है! भीतरी धन से निश्चित संबंध है, बाहरी धन से कोई संबंध नहीं हो सकता।

दूसरी बात बुद्ध कहते हैंः आनंद, उत्तमपुरुष सर्वत्र उत्पन्न नहीं होते।

यह तो सच है। बुद्धत्व हर कहीं थोड़े ही घट जाता है। जन्मों-जन्मों की साधना, जन्मों-जन्मों की पात्रता, जन्मों-जन्मों तक जो ग्राहकता अर्जित की है, ध्यान किया है, तपश्चर्या की है, उस पात्रता में ही घटना घटती है, हर कहीं नहीं घट जाती। जिसने बीज बोए हैं, वही तो फसल काटेगा न! और जिसने श्रम किया है, वही तो फल पाएगा न! तो सर्वत्र यह घटना नहीं घटती।

हर एक व्यक्ति बुद्ध हो सकता है, मगर हो नहीं पाता। कोई-कोई कभी-कभी हो पाता है, विरला हो पाता है। होना तो सभी की संभावना है, लेकिन संभावनाओं को सत्य बनाना आसान तो नहीं। संभावनाओं को सत्य बनाने के लिए तो पूरे जीवन को दांव पर लगाना पड़ता है। तो जन्मों-जन्मों की छोटी-छोटी बातों का मूल्य है। छोटी-छोटी बातें इकट्ठी होती चली जाती हैं। छोटी-छोटी बातों के परिणाम तुम्हारे जीवन को रूपांतरित करते जाते हैं।

तुमने किसी को गाली दे दी, किसी का अपमान कर दिया, यह बात ऐसे ही न चली जाएगी। गाली देने में, अपमान करने में तुम्हारी चेतना को भी कुछ हो गया। तुमने किसी को दान दे दिया, किसी को प्रेम किया, किसी के ऊपर करुणा की, यह बात इतने में ही समाप्त नहीं हो गयी, ऐसा करने में तुम भी बदले।

तो तुम्हारे छोटे-छोटे कृत्य तुम्हारी जीवनधारा को बदलते जाते हैं। एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम्हारी जीवनधारा उस जगह पहुंच जाती है, शुभ की ऐसी प्रकीर्ण घड़ी आती है, जहां सत्य तुम्हारे घर में मेहमान हो सकता है, जहां भगवान तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है कि मुझे भीतर आ जाने दो। सिंहासन तैयार हो गया तो मेहमान आ जाता है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, सर्वत्र उत्पन्न नहीं होते।

लेकिन बौद्धों ने इसका क्या अर्थ लिया, जानते हैं? हिंदुओं ने इसका क्या अर्थ लिया? उन्होंने कहा कि बुद्धपुरुष भारत में ही पैदा होते हैं--सर्वत्र पैदा नहीं होते। जातीय अहंकार, राष्ट्रीय अहंकार! भारत में ही पैदा होते हैं! यही है पवित्रतम देश। यही है धर्मभूमि। सदियों से भारत का अहंकार अपने आपकी पूजा करता रहा है। भारत का अहंकार कहता रहा है कि देवता भी यहां पैदा होने को तरसते हैं, क्योंकि यहां बुद्धपुरुष पैदा होते हैं।

फिर क्राइस्ट को क्या कहोगे? फिर जरथुस्त्र को क्या कहोगे? फिर मोहम्मद का क्या करोगे? और फिर बुद्ध के चले जाने के बाद जो बुद्धों की असली परंपरा चली, वह तो चीन में चली और जापान में चली और बर्मा में चली और लंका में चली! और सैकड़ों व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। वे सब भारत के बाहर उपलब्ध हुए। उनको क्या कहोगे?

नहीं, ऐसी संकीर्ण बात इसका अर्थ नहीं हो सकती। भारतीय मन को यह बात सुख देती है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार को तृप्त करती है। मैं इसके लिए राजी नहीं हूं। बुद्धपुरुष सर्वत्र पैदा नहीं होते, यह सच है। सभी के भीतर यह घटना नहीं घटती, इसमें सच्चाई ज्यादा खोजने की जरूरत ही नहीं है, साफ ही है बात, करोड़ों में

कभी कोई एक होता है। लेकिन वह एक भारत में होता है, ऐसी भ्रांति मत पालना। वह एक कहीं भी हो सकता है, जहां कोई तैयार होगा वहां हो जाएगा।

दूसरी बात--वे मध्यदेश में ही उत्पन्न होते हैं। यह मध्यदेश ने बड़ी झंझट खड़ी की है बौद्धशास्त्रों में। उन्होंने तो हिसाब-किताब भी आंककर बता दिया है कि कितना योजन लंबा और कितना योजन चौड़ा मध्यदेश है। तो मध्यदेश में बिहार आ जाता है, उत्तरप्रदेश आ जाता है, थोड़ा सा मध्यप्रदेश का हिस्सा आ जाता है, बस यह मध्यदेश है। तो पंजाब में पैदा नहीं हो सकते, सिंध में पैदा नहीं हो सकते, बंगाल में पैदा नहीं हो सकते। ये तो सीमांत देश हो गए। ये मध्यदेश न रहे। यह बात बड़ी ओछी है। ऐसा अर्थ करना उचित नहीं है।

लेकिन मैं झंझट भी समझता हूं कि बौद्ध टीकाकारों की झंझट भी रही कि फिर मध्यदेश का अर्थ क्या करें? कहा है बुद्ध ने, यह सच है।

मैं कुछ अर्थ करता हूं, वह समझने की कोशिश करो।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा भौतिकशास्त्री है--ली कांते दूनाय। उसने एक अनूठी बात कही--ली कांते दूनाय को पढ़ते वक्त अचानक मुझे लगा कि यह तो मध्यदेश की बात कर रहा है। मगर बुद्ध और ली कांते दूनाय में तो पच्चीस सौ साल का फासला है। और बिना ली कांते दूनाय के बुद्ध के मध्यदेश की परिभाषा नहीं हो सकती। इसलिए मैं क्षमा करता हूं, जिन्होंने दो हजार पांच सौ साल में मध्यदेश की इस तरह की व्याख्या की है। उन पर मैं नाराज नहीं हूं, क्योंकि वे कुछ कर नहीं सकते थे।

एक अनूठी बात दूनाय ने खोजी है और वह यह कि मनुष्य अस्तित्व में ठीक मध्य में है। मध्यदेश है। छोटे से छोटा है परमाणु, एटम और बड़े से बड़ा है विश्व। और ली कांते दूनाय ने सिद्ध किया है कि मनुष्य इनके, दोनों के ठीक बीच में मध्यदेश है। ठीक बीच में है। इसका अर्थ होता है, परमाणु में और मनुष्य के बीच में जो अनुपात है, मनुष्य जितने गुना बड़ा है परमाणु से, उतने ही गुना बड़ा विश्व है मनुष्य से। मनुष्य ठीक मध्य में खड़ा है--एक छोर पर परमाणु है, परमाणु और मनुष्य के बीच जितना फासला है, उतना ही फासला मनुष्य और विश्व की परिधि के बीच है। वे फासले बराबर हैं। और मनुष्य ठीक मध्य में खड़ा है।

ली कांते दूनाय को पढ़ते वक्त अचानक मुझे धम्मपद का यह वचन याद आया। शायद ली कांते दूनाय को तो बुद्ध के इस वचन का कोई पता भी न होगा। हो भी नहीं सकता। लेकिन यह मध्यदेश का अर्थ हो सकता है--होना चाहिए--कि बुद्धपुरुष मनुष्य में ही पैदा होते हैं, मनुष्य-योनि में ही पैदा होते हैं।

अब तक सुना भी नहीं गया कि कोई हाथी, कोई घोड़ा बुद्धपुरुष हुआ हो। देवता भी बुद्धपुरुष नहीं होते। मनुष्य से पीछे भी कोई बुद्धपुरुष नहीं होता, मनुष्य के आगे भी कोई बुद्धपुरुष नहीं होता, मनुष्य चौराहा है, चौरस्ता है। मनुष्य की कुछ खूबी है, वह समझ लेनी चाहिए, वह क्यों मध्यदेश है?

मध्यदेश की कुछ खूबी है, कुछ अड़चन भी है मध्यदेश की। मध्यदेश का मतलब होता है, बीच में खड़े हैं। न इस तरफ हैं, न उस तरफ, चौराहे पर खड़े हैं। मनुष्य का अर्थ है, अभी कहीं गए नहीं, खड़े हैं, सीढ़ी के बीच में हैं, दोनों तरफ जाने की सुविधा है--निम्नतम होना चाहें तो मनुष्य से ज्यादा नीच और कोई भी नहीं हो सकता। मनुष्य पशुओं से भी नीचा गिर जाता है। जब तुम कभी-कभी कहते हो, मनुष्य ने पशुओं जैसा व्यवहार किया, तो तुम कभी सोचना कि पशुओं ने ऐसा व्यवहार कभी किया है?

टालस्टाय ने लिखा है कि जब भी कोई कहता है कि इस मनुष्य ने पशुओं जैसा व्यवहार किया तो मुझे क्रोध आता है कि यह आदमी पशुओं के साथ ज्यादती कर रहा है। क्योंकि जैसे व्यवहार मनुष्य ने किए हैं, वैसे तो पशुओं ने कभी नहीं किए।

कौन से पशु ने एडोल्फ हिटलर जैसा काम किया है--या चंगेज खां, या तैमूर लंग, या जोसेफ स्टैलिन--किस पशु ने ऐसा काम किया है? किसी पशु ने ऐसा काम नहीं किया। पशु मारता है जरूर, हिंसा भी करता है, लेकिन भोजन के अतिरिक्त और किसी कारण से नहीं। अगर सिंह का पेट भरा हो, तो तुम उसके पास से निकल सकते हो, वह हमला भी नहीं करेगा।

सिर्फ आदमी अजीब है, यह खिलवाड़ में भी मारता है, यह कहता है, हम शिकार करने जा रहे हैं! इसको कोई प्रयोजन नहीं है, यह मारकर खाएगा भी नहीं, भूखा भी नहीं है, भरा पेट है, लेकिन खेल के लिए जा रहा है! और जब यह आदमी जाकर जंगल में किसी जानवर को मार लेता है, तो कहता है, खूब मजा आया! शिकार हुई! और अगर जंगली जानवर इसको मार ले, तब यह नहीं कहता कि खूब मजा आया, शिकार हुई। जंगली जानवर ने शिकार की, तब शिकार नहीं कहता। और जंगली जानवर कभी शिकार के लिए शिकार नहीं करता, जब भूखा होता है तभी।

मैंने सुना है, एक दिन एक सिंह और एक खरगोश एक होटल में गए। दोनों बैठ गए, तो खरगोश ने बेयरे को बुलाया और कहा कि नाश्ता ले आओ। तो बेयरे ने पूछा, और आपके मित्र क्या लेंगे? खरगोश ने कहा, बात ही मत करो, अगर मित्र भूखे होते तो तुम सोचते हो मैं यहां इनके पास बैठा होता! वह नाश्ता कर चुके होते! मित्र भूखे नहीं हैं, तभी तो मैं इनके पास बैठा हूं।

जानवर तो केवल तभी मारता है जब भूखा होता है। आदमी खेल में, खिलवाड़ में मारता है। हिंसा खिलवाड़ है। दूसरे का जीवन जाता है, तुम्हारे लिए खेल है!

फिर कोई जानवर अपनी ही जाति के जानवरों को नहीं मारता--कोई सिंह सिंह को नहीं मारता है, और कोई सांप किसी सांप को नहीं काटता, और कोई बंदर कभी किसी बंदर की गर्दन काटते नहीं देखा गया है। आदमी अकेला जानवर है जो आदमियों को काटता है। और एक-दो में नहीं, करोड़ों में काट डालता है। इसके पागलपन की कोई सीमा नहीं है।

तो अगर आदमी गिरे तो पशु से बदतर हो जाता है, और अगर आदमी उठे तो परमात्मा के ऊपर हो जाता है। बुद्धत्व का अर्थ है, उठना; पशुत्व का अर्थ है, गिरना; और मनुष्य मध्य में है। इसलिए दोनों तरफ की यात्रा बराबर दूरी पर है। जितनी मेहनत करने से आदमी परमात्मा होता है, उतनी ही मेहनत करने से पशु भी हो जाता है। तुम यह मत सोचना कि एडोल्फ हिटलर कोई मेहनत नहीं करता है, मेहनत तो बड़ी करता है तब हो पाता है। यह मेहनत उतनी ही है जितनी मेहनत बुद्ध ने की भगवान होने के लिए, उतनी ही मेहनत से यह पशु हो जाता है।

उतने ही श्रम से तुम ध्यान की संपदा पा लोगे, जितने श्रम से तुम अपने को गंवा दोगे। तुम पर निर्भर है, तुम ठीक मध्य में खड़े हो, उतने ही कदम उठाकर तुम पशु के पास पहुंच जाओगे, पशु से भी नीचे। और उतने ही कदम उठाकर तुम परमात्मा हो जा सकते हो। यह अर्थ है मध्यदेश का। और स्वभावतः मध्य में से ही चौराहा जाता है।

पुरुषश्रेष्ठ दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह मध्यदेश में ही उत्पन्न होता है और जन्म से ही महाधनवान होता है।

तो मनुष्य की महिमा भी अपार है, क्योंकि यहीं से द्वार खुलता है। और मनुष्य का खतरा भी बहुत बड़ा है, क्योंकि यहीं से कोई गिरता है। तो सम्हलकर कदम रखना, एक-एक कदम फूंक-फूंककर रखना। क्योंकि सीढ़ी यहीं से नीचे भी जाती है, जरा चूके कि चले जाओगे।

और सदा ख्याल रखना, गिरना सुगम मालूम पड़ता है, क्योंकि गिरने में लगता है कुछ करना नहीं पड़ता, उठना कठिन मालूम पड़ता है। यद्यपि गिरना भी सुगम नहीं है, उसमें भी बड़ी कठिनाई है, बड़ी चिंता, बड़ा दुख, बड़ी पीड़ा। लेकिन साधारणतः ऐसा लगता है कि गिरने में आसानी है--उतार है। चढ़ाव पर कठिनाई मालूम पड़ती है। लेकिन चढ़ाव का मजा भी है। क्योंकि शिखर करीब आने लगता है आनंद का, आनंद की हवाएं बहने लगती हैं, सुगंध भरने लगती है, रोशनी की दुनिया खुलने लगती।

तो चढ़ाव की कठिनाई है, चढ़ाव का मजा है। उतार की सरलता है, उतार की अड़चन है। मगर हिसाब अगर पूरा करोगे तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि बराबर आता है हिसाब। बुरे होने में जितना श्रम पड़ता है, उतना ही श्रम भले होने में पड़ता है। इसलिए वे नासमझ हैं, जो बुरे होने में श्रम लगा रहे हैं। उतने में ही तो फूल खिल जाते। जितने श्रम से तुम दूसरों को मार रहे हो, उतने में तो अपना पुनर्जन्म हो जाता।

और भी आगे बुद्ध ने कहा कि वे क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होते हैं।

इसकी भी झंझट रही है सदियों तक। क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होते हैं। तो फिर वैश्य और शूद्रों का क्या? फिर रैदास तो शूद्र हैं। रैदास का क्या! तो क्या फिर वैश्यों और शूद्रों में कभी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुआ?

ब्राह्मण और क्षत्रिय तो ऐसा मानना चाहेंगे कि नहीं, कोई कभी उत्पन्न नहीं हुआ। लेकिन यह बात गलत है। जीसस तो बढ़ई हैं। मोहम्मद व्यवसायी हैं। मोहम्मद व्यवसाय ही करते थे, जब उन्हें पहली दफा इलहाम हुआ। तो यह अर्थ तो नहीं हो सकता। और यह अर्थ इसलिए भी नहीं हो सकता कि बुद्ध ने तो बार-बार इनकार किया है कि मैं वर्णों को मानता नहीं, मैं मानता नहीं कि कोई ब्राह्मण है, कि कोई शूद्र है, कि कोई क्षत्रिय है। जन्म से तो कोई वर्ण हैं नहीं, इसलिए बुद्ध के वचन का यह अर्थ तो हो नहीं सकता। बुद्ध ने तो वर्णों की पूरी धारणा को ही इनकार किया है--वही तो उनकी क्रांति थी। फिर बुद्ध का क्या अर्थ होगा?

मैं कुछ अर्थ करता हूं, वह अर्थ ऐसा कि वही व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, जिसमें ब्राह्मण के जैसी ब्रह्म को खोजने की आकांक्षा हो, और क्षत्रिय जितना साहस हो जीवन को दांव पर लगा देने का। मैं इसकी भी फिकर नहीं करता कि बौद्ध पंडित मुझसे राजी होंगे कि नहीं--पंडितों की मैं फिकर ही नहीं करता हूं। लेकिन मेरा यह अर्थ है। क्षत्रिय से मेरा अर्थ है, साहस। वह प्रतीक है साहस का। दांव पर लगाने की बात है।

यही मैं भी मानता हूं कि व्यवसायी बुद्धि का आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो सकता। मैं यह नहीं कहता कि वैश्य उपलब्ध नहीं हो सकता, लेकिन व्यवसायी बुद्धि का आदमी नहीं उपलब्ध हो सकता। क्योंकि व्यवसायी कभी हिम्मत ही नहीं करता, वह कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लगाता रहता है, हिम्मत क्या करे! जुआरी उपलब्ध हो सकता है, वह सब दांव पर लगाने की हिम्मत करता है--वह कहता है, या इस तरफ, या उस तरफ। या तो पार हो जाएंगे, या डूब जाएंगे, ठीक।

व्यवसायी सोचता है कि लाभ कितना होगा, हानि कितनी होगी, पैसा घर में ही रखें तो इतना तो ब्याज ही आ जाएगा, धंधा करने से क्या सार है! धंधे में कुछ ज्यादा मिलता हो तो ही। लेकिन वह यह भी देखता रहता है कि कहीं ज्यादा मिलने के लोभ में ऐसा न हो कि खो जाए। तो इतनी दूर भी नहीं जाता। वह चालाकी से चलता है। क्षत्रिय और वैश्य का यही फर्क है।

तो व्यवसायी तो नहीं कभी सत्य को उपलब्ध हो पाता, यह मैं भी कहता हूं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वैश्य उपलब्ध नहीं हो पाता। क्योंकि बहुत वैश्य हो सकते हैं जो क्षत्रिय जैसा साहस रखते हों और

बहुत से क्षत्रिय हो सकते हैं जो कि वणिक की बुद्धि के हों। कोई क्षत्रिय होने से थोड़े ही क्षत्रिय हो जाता है, साहस चाहिए। क्षत्रिय भी तो कायर होते हैं। इसलिए असली सवाल साहस का है।

और निश्चित ही ब्राह्मण जैसी ब्रह्म की खोज चाहिए। सभी ब्राह्मण में होती भी नहीं। इसलिए जिनमें ब्रह्म की खोज होती है, अभीप्सा होती है, उन्हीं को ब्राह्मण कहना उचित है। उन्हीं को बुद्ध ने भी ब्राह्मण कहा है। ब्रह्म के तलाशी, ब्रह्म को पा लेने वाले ब्राह्मण। शब्द भी साफ है। किसी खास घर में पैदा होने से तो कोई ब्राह्मण नहीं होता। लेकिन किसी खास भावदशा में पैदा हो जाने से ब्राह्मण होता है।

तो यह मैं भी कहता हूं कि ब्राह्मण ही उपलब्ध होंगे, लेकिन ब्राह्मण से जन्मवाची अर्थ मत लेना; ब्रह्म के तलाशी, सत्य के खोजी। स्वभावतः जिसने खोज ही नहीं की, वह पहुंचेगा कैसे? जो चला ही नहीं, वह पहुंचेगा क्यों?

और शूद्र कभी उपलब्ध नहीं हो सकते बुद्धत्व को, इसका मतलब भी जन्मवाची मत लेना। शूद्र का अर्थ ही वही है, जो क्षुद्र में उलझे हैं। छोटी-मोटी चीजों में उलझे हैं। एक मकान बना लें, भोजन मिल जाए, अच्छे वस्त्र मिल जाएं, बस खतम हुआ--जीवन का सार समाप्त हुआ, जीवन की इति आ गयी। क्षुद्र में जिनका उलझाव है, वे ही शूद्र। विराट में जिनका लगाव है, वे ही ब्राह्मण।

तो इस अर्थ में बुद्ध ने ठीक ही किया कि वैश्य और शूद्र को छोड़ दिया। उन्होंने कहा, वे क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होते हैं। ठीक ही किया। क्योंकि बहुत से शूद्र भी ब्राह्मण हो सकते हैं, और बहुत से ब्राह्मण भी शूद्र हो सकते हैं। बहुत से वैश्य क्षत्रिय हो सकते हैं, बहुत से क्षत्रिय वैश्य हो सकते हैं। इसे ख्याल में लेना, तब एक अलग अर्थ प्रगट होगा।

तो दो गुण चाहिए। बिना दो गुणों के न होगा। ब्रह्म की खोज हो और साहस न हो, तो तुम बैठे रहोगे, तुम्हारी खोज नपुंसक रहेगी। तुम बैठे घर में माला फेरते रहोगे। तुम किसी अनजान पथ पर प्रवेश न करोगे। तो अकेली खोज की आकांक्षा काफी नहीं है, खोज के लिए जाना भी पड़ेगा। फिर कोई दूसरा हो सकता है खोज के लिए तो निकल पड़ा है, लेकिन खोज की कोई प्रगाढ़ आकांक्षा नहीं है। तो वह भटकेगा। वह पहुंचेगा नहीं। सिर्फ घर से निकल पड़ने से थोड़े ही कोई पहुंच जाता है। दिशा भी साफ चाहिए, दृष्टिकोण सुथरा चाहिए। आंखें शुद्ध चाहिए, मन पवित्र चाहिए, प्यास ज्वलंत चाहिए।

तो जहां खोज और प्यास का मिलन होता है, जहां कोई व्यक्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों होता है, वहीं घटना घटती है, वहीं बुद्धत्व पैदा होता है--उसी कुल में।

इस घड़ी में आनंद को जवाब देते हुए बुद्ध ने यह गाथा कही थी--

दुल्लभो पुरिसाजां ं न सो सब्बत्थ जायति।

सभी जगह तो बुद्ध पैदा नहीं होते, पुरुषश्रेष्ठ तो दुर्लभ है, और बुद्धत्व को ही बुद्ध कहते हैं पुरुषश्रेष्ठ। मनुष्य तो सभी हैं, लेकिन जब तक तुम्हारे जीवन में बुद्धत्व की किरण न हो, तब तक तुम श्रेष्ठ नहीं हो। तब तक तुम नाममात्र के आदमी हो। कामचलाऊ आदमी हो। तुम्हारे भीतर अभी श्रेष्ठ का अवतरण नहीं हुआ। तुम्हारे भीतर का दीया नहीं जला। तुम्हारी बुद्धि अभी निखरी नहीं। तुम्हारी बुद्धि पर हजार-हजार कालिख पुती है और तुम्हारी बुद्धि पर हजार-हजार पर्दे पड़े हैं।

श्रेष्ठ पुरुष का अर्थ है, जो बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, जिसके भीतर का बोध जागा, जिसके जीवन में किरणें फैलीं, जिसके भीतर का दीया जला और अब जिसका जीवन एक रोशनी है। इस रोशनी के बाद तुम जो भी करोगे उस सबमें श्रेष्ठता आ जाएगी। तुम जो भी करोगे वह श्रेष्ठ हो जाएगा। तुम मिट्टी छुओगे, सोना हो जाएगी। तुम्हारा स्पर्श अमृत का स्पर्श हो जाएगा। और तब तुम्हारे लिए कोई कितना ही दुख दे, कोई कितनी ही पीड़ा दे, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा, तुम्हारी श्रेष्ठता को कोई डिगा न सकेगा।

जिसने इंसानों की तकसीम के सदमे झेले

फिर भी इंसां की अखौवत का परस्तार रहा

यह बुद्धत्व की परिभाषा है--आदमियों ने जिसे सताया, परेशान किया...

जिसने इंसानों की तकसीम के सदमे झेले

फिर भी इंसां की अखौवत का परस्तार रहा

फिर भी उसकी अनुकंपा अकंप रही। फिर भी आदमी का भला हो, यही उसकी आकांक्षा रही।

जीसस को सूली पर लटकाया, तो भी आखिरी समय जीसस ने यही कहा--हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते क्या कर रहे हैं। और जिनके लिए वह क्षमा मांग रहे थे, वे पत्थर फेंक रहे थे, सड़े-गले फल फेंक रहे थे, गंदगी फेंक रहे थे, जूते फेंक रहे थे। जितना अपमान हो सकता था जीसस का, कर रहे थे। मरते हुए आदमी के साथ दुर्व्यवहार कर रहे थे--जीते जी भी दुर्व्यवहार किया, मरते क्षण में भी उनको दया न आयी।

जीसस को प्यास लगी है, सूली पर लटके हैं--वह सूली जो यहूदी देते थे उन दिनों, आदमी जल्दी नहीं मरता था; हाथ ठोंक देते, पैर ठोंक देते कीलों से, कभी छह घंटे लगते मरने में, कभी आठ घंटे लगते, कभी आदमी चौबीस घंटे लटका रहता; खून बहता रहता, जब सारा खून बह जाता शरीर से तब आदमी मरता; वह आजकल जैसी सूली नहीं थी जो क्षण में हो जाती है, बड़ी पीड़ादायी थी--तो खून बहने लगा है उनकी देह से और बड़ी गहरी प्यास लगी। लगती है प्यास, जब खून बहेगा तो पानी कम होने लगता है, क्योंकि खून के साथ शरीर का पानी बहने लगता है। तो उन्हें बड़ी तीव्र प्यास लगी है, उनका कंठ जल रहा है प्यास से, भरी दुपहरी है और उन्होंने जोर से चिल्लाकर कहा कि मुझे प्यास लगी है। तो किसी ने गंदी नाली में एक मशाल डालकर मशाल बुझा दी और मशाल के ऊपर जो गंदगी लग गयी, पानी लग गया नाली का, वह उठाकर जीसस के चेहरे के पास कर दिया कि इसे चाट लो, इससे थोड़ी प्यास बुझ जाएगी। इनके लिए वह प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।

जिसने इंसानों की तकसीम के सदमे झेले

फिर भी इंसां की अखौवत का परस्तार रहा

ऐसा व्यक्ति श्रेष्ठ है। उसे न कोई अपना है, न कोई पराया है।

द्वार के लिए न भीतर है न बाहर

द्वैत दर्शन में है

तुम घर के भीतर बैठे हो, बच्चा बाहर खेल रहा है, तुम कहते हो बाहर खेल रहा है। बच्चा भीतर आ गया, तुम कहते हो भीतर आ गया। लेकिन द्वार से पूछो कि क्या बाहर है, क्या भीतर है, तो द्वार के लिए तो दोनों बराबर दूरी पर हैं बाहर और भीतर।

द्वार के लिए न भीतर है न बाहर

द्वैत दर्शन में है

जो द्वार बनकर खड़ा हो गया है उसे न कोई अपना है, न कोई पराया; न कुछ बाहर है, न भीतर है; न कुछ सुख है, न दुख; उसका द्वंद्व गया, द्वैत गया, अब तो उसे एक ही दिखायी पड़ता है। इस एक की प्रतीति का नाम श्रेष्ठत्व है।

और बुद्ध ने कहा, ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति सब जगह उत्पन्न नहीं होता। फिर जब कभी ऐसा अनूठा व्यक्ति कहीं पैदा होता है--

"वह धीर जहां उत्पन्न होता है, उस कुल में सुख बढ़ता है।"

कुल का अर्थ भी समझना, उसके भी साथ भूल होती रही है।

उसका अर्थ हुआ कि जिस घर में बुद्ध पैदा होते हैं उसमें सुख बढ़ता है, वह तो ठीक ही है, बुद्ध की मौजूदगी जहां होगी वहां सुख बढ़ेगा। अकारण भी कोई बुद्ध के करीब से गुजर जाएगा तो भी सुख की एक झलक, सुख का एक झोंका उसे लग जाएगा। बुद्ध के पास न जानकर भी आए हुए आदमी को थोड़ी सी सुगंध तो लग ही जाएगी। तो जिस घर में बुद्ध पैदा होंगे उस घर में तो सुख होगा, यह ठीक है, मगर यह बात असली नहीं है। बुद्ध की भाषा में कुल का कुछ और अर्थ होता है।

बुद्ध कहते हैं कि तुम्हारे भीतर कोई थिर आत्मा नहीं है, तुम्हारे भीतर कोई ठोस आत्मा नहीं है, तुम्हारे भीतर एक संतति है। जैसे हम सांझ को दीया जलाते हैं; शाम को दीया जलाया, फिर सुबह अगर कोई तुमसे पूछे कि क्या यह वही दीया है जो रात तुमने जलाया था, तो तुम क्या कहोगे? तुम अगर थोड़ा सोच-विचार करोगे तो तुम कहोगे कि दीया तो वही है एक अर्थ में, लेकिन एक अर्थ में नहीं भी है, क्योंकि जो ज्योति हमने जलायी थी वह तो कभी की बुझ चुकी। दूसरी ज्योति आ रही है प्रतिक्षण। जो ज्योति हमने जलायी थी वह तो हवा में लीन होती जा रही है और दूसरी ज्योति आती जा रही है। तो यह दीया इस अर्थ में वही है कि इस दीए में जो ज्योति अभी जल रही है, वह उसी ज्योति की संतति है, उसी कुल में आयी है, मगर वह ज्योति तो कभी की जा चुकी। हजारों ज्योतियां आ चुकीं रात में और जा चुकीं।

जैसे नदी है। तुम कहते हो, यह गंगा है। तुम कहो कि हम पिछले वर्ष भी यहां आए थे, यह वही नदी है। तो बुद्ध कहते हैं, यह वही नदी है? ठीक से सोचकर कह रहे हो? नहीं, उसी नदी के कुल में है। वह नदी तो कब की बह गयी! जो तुम देख गए थे सालभर पहले, वह तो सागर में गिर चुकी। हां, उसी की धारा में बहने वाली नदी है, उसी से जुड़ी है--उससे भिन्न भी नहीं है, उसके साथ एक भी नहीं है।

इसको बुद्ध ने संतति का नियम कहा है। इसको बुद्ध कहते हैं, कुल।

तुम जब पैदा हुए थे, तुम वही हो? कितनी तो धारा बह चुकी, कितनी तो नदी बह चुकी! गंगा का कितना पानी तो बह चुका! तुम जवान हो गए अब, कितने बह गए! बूढ़े होओगे तब तुम यही रहोगे? बहुत कुछ बह चुका होगा। लेकिन एक अर्थ में तुम यही रहोगे, क्योंकि एक ही धारा है। जो पैदा हुआ था, वही तो नहीं मरेगा; जो बच्चा पैदा हुआ था सत्तर साल पहले, वही थोड़े ही मरेगा, सत्तर साल में सब बदल गया, लेकिन फिर भी एक अर्थ में वही मरेगा, वही धारा टूटेगी।

इस धारा के सिद्धांत को बुद्ध ने बड़ा मूल्य दिया है। यह उनकी अनूठी खोज है। इसका अर्थ हुआ कि इस जगत में कोई भी चीज थिर नहीं है, तुम भी थिर नहीं हो, अथिरता इस जगत का स्वभाव है। परिवर्तन इस जगत का स्वभाव है। इसके पहले भी लोगों ने कहा है कि जगत का स्वभाव परिवर्तन है, लेकिन तुमको बचा लिया था--उन्होंने कहा था, तुम नहीं बदलते, सब बदल रहा है, तुम थिर हो। लेकिन बुद्ध कहते हैं, तुम भी थिर नहीं हो, तुम भी बदल रहे हो। और जो नहीं बदल रहा है, उसका तो तुम्हें पता ही नहीं है। और जब तक तुम हो, तब तक उसका पता भी नहीं चलेगा। जब तुम बिल्कुल ऐसा अनुभव कर लोगे कि मैं भी इस बदलते जगत की ही एक छाया हूं, और तुम भी इस जगत की बदलाहट के साथ बदलते जाओगे और धीरे-धीरे यह मोह छोड़ दोगे कि मैं थिर हूं, तब तुम्हें कुछ दिखायी पड़ेगा। कुछ, जो शाश्वत है।

लेकिन उसकी बुद्ध ने चर्चा नहीं की। क्योंकि वह कहते हैं, चर्चा करते से ही गलती हो जाती है। जिसकी भी हम चर्चा कर सकते हैं, वही अशाश्वत हो जाता है। इसलिए उसे चर्चा के बाहर छोड़ दिया है। है कुछ, अनिर्वचनीय, नित्य, मगर उसकी चर्चा नहीं की है। तुम तो जिसे अभी जानते हो कि मैं हूं, यह बदल रहा है। तुम एक धारा हो, एक संतति हो। जैसे दीए की ज्योति, या नदी। इस बात को ख्याल में लोगे तो अर्थ साफ हो जाएगा।

"वह धीर जहां उत्पन्न होता है... ।"

यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।

"... उस कुल में सुख बढ़ता है।"

जहां बुद्धत्व का पदार्पण हो गया, फिर उसके बाद तुम्हारे भीतर जो संतति चलती है, जो धारा आती है, तुम जो रोज-रोज पैदा होते हो, उसमें रोज-रोज सुख बढ़ता चला जाता है। आज और, कल और, परसों और। तुम बदलते जाते हो लेकिन सुख घना होता जाता है। सुख बढ़ता ही चला जाता है। और एक ऐसी घड़ी आती है जहां सुख महासुख हो जाता है। उस महासुख की घड़ी को ही निर्वाण की घड़ी कहा है। समाधि की घड़ी कहो, जीवन-मुक्त की दशा कहो, या जो भी नाम देना हो।

दूसरा सूत्र--

"बुद्धों का उत्पन्न होना सुखदायी है, सद्धर्म का उपदेश सुखदायी है, संघ में एकता सुखदायी है, एकतायुक्त तप सुखदायी है।"

दूसरे सूत्र की परिस्थिति--कब बुद्ध ने यह गाथा कही?

एक दिन बहुत से भिक्षु बैठे बातें कर रहे थे। उनकी चर्चा का विषय था संसार में सुख क्या है? किसी ने कहा, राज्य-सुख के समान दूसरा सुख नहीं। और किसी ने कहा, कामसुख के सामने राजसुख में क्या रखा है! कामसुख की बड़ी प्रशंसा की। और किसी और ने यश की प्रशंसा की, और किसी और ने पद की। फिर कोई भोजनभट्ट था, उसने भोजन की खूब चर्चा की। फिर कोई वस्त्रों का दीवाना था, तो उसने वस्त्रों की खूब प्रशंसा की। ऐसे विवाद छिड़ गया। और तभी बुद्ध अचानक वहां आ गए। पीछे खड़े होकर भिक्षुओं की यह सब चर्चा और विवाद सुनते रहे। फिर उन्होंने कहा, भिक्षुओ, भिक्षु होकर भी यह सब तुम क्या कह रहे हो! यह सारा

संसार दुख में है। सुख है आभास, दुख है सत्य। सुख नहीं है, ऐसा नहीं, पर संसार में तो नहीं है। फिर सुख कहां है? बुद्धोत्पाद सुख है, धर्मश्रवण सुख है, समाधि सुख है। और तब उन्होंने यह गाथा कही।

तो पहले तो इस परिस्थिति को ठीक से अंकित हो जाने दें मन पर--

एक दिन बहुत से भिक्षु बैठे बात कर रहे थे। पहली तो बात यह है कि भिक्षु बैठकर गपशप करें, यही भिक्षु के लिए योग्य नहीं। भिक्षु चुप बैठें, यही योग्य है। भिक्षु मौन हों, यही योग्य है। भिक्षु उतना ही बोलें जितना अनिवार्य है, अपरिहार्य है, यही योग्य है। भिक्षु होने के बाद बहुत बातें छोड़नी हैं, उनमें व्यर्थ की चर्चा भी छोड़नी है। नहीं तो फिर सांसारिक और संन्यासी में क्या फर्क रहा! फिर संसार की ही बातें भिक्षु भी कर रहे हों तो अंतर वेश का ही हुआ, अंतरात्मा का नहीं।

तो पहली तो बात बहुत से भिक्षु बैठे बातें कर रहे थे। भिक्षु जब बैठें, चुप बैठें, मौन बैठें, सन्नाटे में डूबें, शून्य में उतरें। भिक्षु का अर्थ ही है, समाधि की तलाश। गपशप से तो समाधि की तलाश नहीं होगी।

तुम भी सोचना, तुम भी संन्यस्त हो, तुम बैठकर अगर व्यर्थ की बातें करते हो, तो विचार करना, इन बातों से क्या होगा? और अगर ये बातें वैसी ही हैं जैसी होटलों में लोग कर रहे हैं बैठकर, अगर ये बातें वैसी ही हैं जैसी क्लबघरों में चल रही हैं, दुकानों पर चल रही हैं, बाजार में चल रही हैं, तो फिर तुममें और उन लोगों में फर्क क्या होगा? तुम्हारी बात से तुम्हारा पता चलता है। बात ऐसे ही थोड़े आ जाती है! बात तो फल है। नीम के वृक्ष में कड़वे फल लगते हैं, वह नीम की बात। आम के वृक्ष में आम के फल लगते हैं, मीठे फल लगते हैं, वह आम की बात। तुम कैसी बात करते हो, उसका थोड़ा विचार करना, सोचना, क्या बात करते हो? उस बात से पता चल जाएगा कि तुम्हारे भीतर जहर बह रहा है कि अमृत।

जिसके भीतर अमृत बह रहा है, उसकी बात का सारा ढांचा बदल जाएगा। वह कभी बात भी करेगा तो परमात्मा की, प्रार्थना की, पूजा की, ध्यान की। वह कभी बात भी करेगा तो बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की, क्राइस्ट की। और वह भी बहुत ज्यादा नहीं करेगा। क्योंकि बहुत ज्यादा करने को है भी क्या? कभी अगर रस भी लेगा तो जिसको हम रामकथा कहते हैं, रामचर्चा कहते हैं--स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा--वह बैठकर खुद के और दूसरे के सुख के लिए कभी-कभी राम की कथा कहेगा। स्त्री-कथा तो नहीं कहेगा। धन-कथा तो नहीं कहेगा। सत्संग कभी करेगा, रोएंगे दो भिक्षु मिल जाएंगे, बैठकर आनंद की बात करेंगे, अपनी एक-दूसरे को समाधि की चर्चा कहेंगे, क्या हो रहा है भीतर उसका थोड़ा इशारा करेंगे, दूसरे से थोड़ा सहारा लेंगे, एक-दूसरे के सहारे आगे बढ़ेंगे, सत्संग होगा।

तो बुद्ध जरूर चौंके होंगे। उन्होंने कहा, भिक्षुओ, भिक्षु होकर भी यह सब तुम क्या कह रहे हो! यह तो चर्चा तुम जो कर रहे हो, भिक्षुओं जैसी नहीं। पहले तो चुप होना उचित था। अगर चर्चा ही करनी थी तो परमात्मा की चर्चा करनी उचित थी। और उनकी चर्चा का विषय क्या था? विषय था--संसार में सुख क्या है? यह भी बड़ा सूचक है। जब भिक्षु संसार के सुख की बातें कर रहा हो, तो उसका मतलब है कि वह संसार से कच्चा चला आया, अभी मन वहीं अटका है, अभी मन वहीं जाता है।

रामकृष्ण कहते थे कि चील आकाश में भी उड़ती है, लेकिन उसका ध्यान नीचे कचरे के ढेर पर लगा रहता है कि कोई मरा हुआ चूहा पड़ा हो। उड़ती आकाश में है, बड़ी ऊंची उड़ती है, ऊंची उड़ने की वजह से धोखे में मत पड़ जाना कि चील भी कैसी ऊंची जा रही है! ऊंची-वूंची नहीं जा रही है, मंडरा रही है, वह नीचे जो कचरे के ढेर पर मरा चूहा पड़ा है--प्रतीक्षा कर रही है कि अगर कोई देखता न हो, कोई आसपास न हो तो झपट्टा मार ले।

तो ये भिक्षु मंडराती हुई चील जैसे रहे होंगे। ये बात क्या कर रहे हैं! --कि संसार में सुख, सबसे बड़ा सुख क्या है? अगर संसार में सुख ही था तो छोड़कर आए क्यों? जब संसार में दुख ही दुख रह जाए, तभी तो कोई संन्यस्त हो। जब यह समझ में आ जाए कि यहां कुछ भी नहीं है, खाली पानी के बबूले हैं, आकाश में बने इंद्रधनुष हैं, आकाश-कुसुम हैं, यहां कुछ है नहीं, तभी तो कोई संन्यस्त होता। संन्यास का अर्थ ही है, संसार व्यर्थ हो गया है--जानकर, अनुभव से, अपने ही साक्षात्कार से। ये भिक्षु ऐसे ही भागकर चले आए होंगे। किसी की पत्नी मर गयी होगी, संन्यासी हो गया होगा। किसी का दिवाला निकल गया होगा, संन्यासी हो गया होगा। कोई चुनाव में हार गया होगा, संन्यासी हो गया होगा--अब तुम देखना बहुत से लोग संन्यासी होंगे! फिर कुछ और बचता भी नहीं।

जो नहीं मिला, यह भी अहंकार मानने को तैयार नहीं होता कि नहीं मिला। अहंकार कहने लगता है, अंगूर खट्टे हैं। छलांग लगाती है लोमड़ी बहुत, अंगूर के गुच्छे ऊपर हैं, नहीं पहुंच पाती। नहीं पहुंच पाती, यह भी तो स्वीकार करने का मन नहीं होता। चल पड़ती है अकड़कर, कोई पूछता है कि चाची, क्या हुआ? तो लोमड़ी कहती है--अंगूर खट्टे थे।

संजय गांधी ने--देखा न--संन्यास ले लिया राजनीति से। क्या हुआ? अंगूर खट्टे थे। अब संजय गांधी कहते हैं कि अब तो हम जनता की सेवा बिना पद के करेंगे। पहले कौन रोक रहा था? अब यह बोध आया? तो बहुत से लोग संजय गांधी जैसे संन्यासी हो जाते हैं। यह संन्यास नहीं है। यह केवल हार को लीपा-पोती करके छिपाने का उपाय है। अब हार को भी सुंदर ढंग देने की व्यवस्था। मुफ्त पद मिलता होता तो कोई छोड़ने को राजी न था। अब नहीं मिल रहा है, महंगा पड़ा है, मुश्किल पड़ा है, तो छोड़ने की तैयारी है। मगर जो है ही नहीं, उसको छोड़ रहे हो! जो मिला ही नहीं, उसका त्याग कर रहे हो! थोड़ा संन्यास का मतलब तो समझो। जो नहीं है, उसका कैसे त्याग करोगे? जाना हो, जीआ हो, अंगूर चखे हों और खट्टे पाए हों, तो छोड़े जा सकते हैं। यह तो अपने को समझा लेने की व्यवस्था है, सांत्वना का उपाय है।

तो ये बैठे होंगे भिक्षु, ये सब संन्यासी हो गए हैं, इनके कारण गलत रहे होंगे। यह संन्यास ठीक बुनियाद पर खड़ा हुआ संन्यास नहीं है। ये हारे-थके लोग हैं। जीवन में, संघर्ष में टिक नहीं पाए, संन्यासी हो गए हैं--कहकर कि संसार बेकार है, रखा क्या है! लेकिन अब भी मन तो वहीं-वहीं जाता है। बैठते होंगे जब एकांत में तो चर्चा वहीं की उठती होगी। सो चर्चा उठी है।

किसी ने कहा, राज्य-सुख के समान दूसरा सुख नहीं। अब एक बात पक्की है कि इस आदमी ने राज्य-सुख नहीं जाना है। जिसने जाना है, वह बुद्ध तो छोड़कर आ गए हैं; जिसने जाना है, वह महावीर तो त्याग दिए हैं। इस आदमी ने राज्य-सुख नहीं जाना है, इसने दूर से राजाओं की डोली उठते देखी है, राजाओं के हाथी पर निकलते जुलूस, शोभायात्राएं देखी हैं, राजमहल दूर से देखे हैं, सड़क से खड़े होकर, चमकते हुए कंगूरे राजमहलों के, स्वर्णमंडित राजमहल इसने देखे हैं। मगर दूर से, राजमहल के भीतर क्या घटता है, इसका इसे कुछ पता नहीं है। इसकी वासना में राजमहल बसे हैं। यह भी चाहता था हो जाए, और अगर आज कोई इसको राजमहल देने को राजी हो तो यह संन्यास छोड़कर खड़ा हो जाएगा कि मैं आया। यह एक बार भी लौटकर फिर संन्यास की तरफ नहीं देखेगा। अभागे आदमी हैं, बुद्धपुरुषों के पास बैठकर भी राज्य-सुख की बात कर रहे हैं! सोच रहे हैं कि राज में सुख होगा।

राजसुख के समान दूसरा सुख नहीं है। और किसी ने कहा, कामसुख; अरे कामसुख के सामने राजसुख में क्या रखा है! असली सुख स्त्री है। या असली सुख पुरुष है। यह आदमी कामवंचित है। इसने कामवासना को दबा

लिया है। इसने कामवासना का दंश नहीं जाना, पीड़ा नहीं जानी, इसने कामवासना का जहर नहीं जाना। यह ऐसे ही भाग आया है। इसको स्त्री मिली नहीं। इसके मन में वासना अधूरी रह गयी है--जड़ें रह गयी हैं, पत्ते ऊपर-ऊपर काट डाले हैं, नए अंकुर निकल रहे हैं। और फिर किसी ने कहा, यश बड़ी चीज है। और फिर किसी ने कहा, भोजन; और फिर किसी ने कहा, वस्त्र। ये सब साधारण लोग हैं, जो गलत कारणों से संसार छोड़कर आ गए हैं। इन्होंने संसार छोड़ा नहीं, ये संसार में अब भी हैं, इनके वस्त्र बदल गए हैं।

इसलिए मैं तुमसे संसार छोड़ने को कहता ही नहीं। मैं कहता हूं, तुम वहीं रहो, वहीं जागे हुए जीओ। क्योंकि दुनिया में बहुत भगोड़े हैं, अगर उन्हें मौका मिल जाए भागने का, कोई बहाना मिल जाए भागने का, तो वे भाग खड़े होंगे। मैं तुमसे भागने को नहीं कहता हूं; मैं कहता हूं, वहीं रहो, अंगूर चख-चखकर व्यर्थ हो जाने दो, खट्टे हो जाने दो, अपने आप गिर जाने दो। ताकि तुम्हारे जीवन का स्वाद ही तुम्हें कह दे, अनुभव तुम्हें कह दे, अनुभव तुम्हारी निष्पत्ति बन जाए। फिर भागना कहां है? संसार अपने से गिर जाए।

ऐसे विवाद छिड़ गया। जहां वासना है, वहां विवाद है। जहां विचार है, वहां विवाद है। अगर संन्यास किसी ने ठीक-ठीक अर्थों में लिया हो तो विवाद समाप्त हो जाता है। क्या विवाद है! निर्विवाद एक बात दिखायी पड़ गयी कि संसार व्यर्थ है। फिर ये सब संसार के ही नाम हैं--राजपद कहो, धन कहो, यश कहो, मान कहो--ये सब संसार के ही अलग-अलग पहलू हैं, विवाद कहां है?

और तब बुद्ध अचानक वहां आ गए। खड़े होकर पीछे उन्होंने भिक्षुओं की बातें सुनीं। चौंके। फिर कहा, भिक्षुओ, भिक्षु होकर भी यह सब तुम क्या कह रहे हो! यह सारा संसार दुख में है। इसमें तुम बता रहे हो, कोई कह रहा है राज्य-सुख, कोई कहता है कामसुख, कोई कहता है भोजन-सुख, स्वाद-सुख; यह सब तुम जो कह रहे हो, क्या कह रहे हो! यह सुनकर मुझे आश्चर्य है। अगर इस सबमें सुख है तो तुम यहां आ क्यों गए हो? सुख तो आभास है, बुद्ध ने कहा, दुख सत्य है। और सुख नहीं है, ऐसा नहीं, पर संसार में तो नहीं है। संसार का अर्थ ही है जहां सुख दिखायी पड़ता है और है नहीं। जहां आभास होता है, प्रतीति होती है, इशारे मिलते हैं कि है, लेकिन जैसे-जैसे पास जाओ, पता चलता है, नहीं है।

फिर सुख कहां है? बुद्ध ने कहा, बुद्धोत्पाद में सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का जन्म हो जाए, तो सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का अवतरण हो जाए तो सुख है। बुद्धोत्पाद, यह बड़ा अनूठा शब्द है। तुम्हारे भीतर बुद्ध उत्पन्न हो जाएं, तो सुख है। तुम जाग जाओ तो सुख है। सोने में दुख है, मूर्च्छा में दुख है, जागने में सुख है। धर्मश्रवण सुख है। तो सबसे परमसुख तो है, बुद्धोत्पाद; कि तुम्हारे भीतर बुद्धत्व पैदा हो जाए। अगर अभी यह नहीं हुआ तो नंबर दो का सुख है--जिनका बुद्ध जाग गया उनकी बात सुनने में सुख है। धर्मश्रवण में सुख है।

तो सुनो उनकी जो जाग गए हैं, जिन्हें कुछ दिखायी पड़ा है। गुनो उनकी। लेकिन उसी सुख पर रुक मत जाना, सुन-सुनकर अगर रुक गए तो एक तरह का सुख तो मिलेगा, लेकिन वह भी बहुत दूर जाने वाला नहीं है। इसलिए बुद्ध ने कहा, समाधि में सुख है। बुद्धोत्पाद में सुख है, यह तो परम व्याख्या हुई सुख की। फिर यह अभी तो हुआ नहीं है, तो उनके वचन सुनो, उनके पास उठो-बैठो जिनके भीतर यह क्रांति घटी है, जिनके भीतर यह सूरज निकला है, जिनका प्रभात हो गया है, जहां सूर्योदय हुआ है, उनके पास रमो, इसमें सुख है। मगर इसमें ही रुक मत जाना। ध्यान रखना कि जो उनको हुआ है, वह तुम्हें भी करना है। उस करने के उपाय का नाम समाधि है। सुनो बुद्धों की और चेष्टा करो बुद्धों जैसे बनने की, उस चेष्टा का नाम समाधि है। उस चेष्टा का फल है, बुद्धोत्पाद। सुनो बुद्धों के वचन, फिर बुद्धों जैसे बनने की चेष्टा में लगना--ध्यान, समाधि, योग। और जिस दिन बन जाओ, उस दिन परम सुख।

तब उन्होंने यह गाथा कही थी--

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो।।

"बुद्धों का उत्पन्न होना सुखदायी, सद्धर्म का उपदेश सुखदायी, संघ में एकता सुखदायी... ।"

यह भी समझने जैसी बात है। भिक्षु विवाद करें, एक-दूसरे के विरोध में खड़े हों, तो राजनीति प्रविष्ट हो जाएगी। तो भिक्षु फिर भिक्षु न रहे, राजनीतिज्ञ हो गए, धार्मिक न रहे। जहां विवाद है, जहां कलह है, जहां मैं सही तुम गलत, ऐसी भावनाएं हैं, वहां अहंकार है। जहां अहंकार है, वहां राजनीति है।

"संघ में एकता सुखदायी है।"

भिक्षु तो ऐसे जीए जैसे रहा ही नहीं। संन्यासी तो ऐसे रहे जैसे अपने को छोड़ दिया। संघ है, संन्यासी नहीं है, ऐसी एकता। मैं को छोड़ दे। बुद्ध का संघ है, उसमें मैं भी एक लहर हूं, अलग नहीं। उनका सागर है, मैं भी एक लहर हूं, अलग नहीं।

"संघ में एकता सुखदायी है।"

तो भी सुख मिलेगा। क्योंकि जैसे ही तुम अहंकार छोड़ो--किसी निमित्त छोड़ो--सुख मिलता है। अहंकार में दुख है। अहंकार कांटे की तरह चुभता है। जहां अहंकार हटा, वहां फूल खिलने लगता है।

"एकतायुक्त तप सुखदायी है।"

और विवाद छोड़ो, व्यर्थ की बातों में मत पड़ो, अपने जीवन की सारी ऊर्जा को एक दिशा में लगाओ, तप की दिशा में लगाओ। तप शब्द को समझो। तप शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है, उष्णता, गर्मी, ऊर्जा। जैसे विज्ञान कहता है कि सारा जगत विद्युत से बना है, वैसा ही धर्म भी कहता है कि मनुष्य भी विद्युत-निर्मित है। और इतनी भीतर ऊर्जा पड़ी है कि अगर हम उसे जगाएं तो हमारा सारा अंधकार जल जाए; उसे जगाएं, हमारा सारा कूड़ा-करकट जल जाए। उसे हम जगाएं तो हमारे भीतर जो भी व्यर्थ है, वह सब नष्ट हो जाए, स्वर्ण ही बचे। इसलिए तप शब्द का उपयोग किया जाता है। तप में सब आ गया, जो भी साधक करता है, सब तप में समाविष्ट है।

लेकिन एक बात ख्याल में रहे--एकतायुक्त!

समग्गानं तपो सुखो।

ऐसा न हो कि तुम्हारा तप बिखरा-बिखरा हो, खंड-खंड हो, कुछ यहां किया, कुछ वहां किया, कुछ और कहीं किया, हजार दिशाओं में बहता रहा, तो परिणाम न होगा। तुमने देखा, सूरज की किरणों को अगर एक कांच के टुकड़े में से--जो उन्हें केंद्रित कर देता है--कागज पर गिराओ, तो कागज जल उठता है। कांच के टुकड़े को हटा लो, फिर भी किरणें गिर रही हैं, लेकिन अब कागज नहीं जलता। समग्गानं का अर्थ होता है, सब एक साथ गिर रही हों। तो कागज जल उठता है।

अगर तुम्हारी सारी जीवन ऊर्जा एक ही बात पर लग जाए कि जगाना है बुद्धत्व को अपने भीतर, तो जागरण होगा, होकर रहेगा। लेकिन बहुत-बहुत भागों में बंटी हो, एक मन कहता हो थोड़ा धन भी कमा लें,

एक मन कहता हो थोड़ा ध्यान भी कर लें, एक मन कहता हो थोड़ा संसार भी भोग लें, एक मन कहता हो थोड़ा संन्यास भी ले लें, ऐसा बंटा-बंटा हो, तो तुम कहीं भी न पहुंच पाओगे, और सुख उपलब्ध न होगा।

अंतिम सूत्र--

"जो संसार-प्रपंच को अतिक्रमण कर गए हैं, जो शोक और भय को पार कर गए हैं, ऐसे पूजनीय बुद्धों अथवा श्रावकों की, या उन जैसे मुक्त और निर्भय पुरुष की पूजा के पुण्य का परिणाम इतना है, यह किसी से कहा नहीं जा सकता।"

यह वचन भी बुद्ध ने एक विशेष परिस्थिति में कहा। उस परिस्थिति को समझें। ये परिस्थितियां बड़ी अनूठी हैं। और सूत्र को ठीक से समझ में आने के लिए जरूरी है उनकी पूरी पृष्ठभूमि ख्याल में आ जाए--कब ऐसा बुद्ध ने कहा?

एक समय भगवान श्रावस्ती से वाराणसी को जाते हुए मार्ग में एक वृक्ष के नीचे ठहरे। उस वृक्ष पर एक छोटा चबूतरा था। पास में ही खेत में काम करता हुआ एक ब्राह्मण किसान भगवान को देखकर उनके दर्शन को आया। लेकिन भगवान के चरणों में झुकने के पूर्व उसने वृक्ष के चबूतरे को झुककर पहले प्रणाम किया। शास्ता ने उससे पूछा, ब्राह्मण, क्या जानकर ऐसा किया? मुझे प्रणाम किए, लेकिन मुझसे पहले चबूतरे को प्रणाम किए फिर मुझे प्रणाम किए, ऐसा क्या जानकर किए? उस किसान ने कहा, भगवान, मुझे ज्यादा तो पता नहीं, लेकिन परंपरा से चला आया हमारा यह पूज्य स्थान है, सदा से हम इसे पूजते रहे हैं। ऐसा परंपरागत है। भगवान ने कहा, ब्राह्मण, तूने यह ठीक ही किया।

भगवान के शिष्य बात सुनकर बहुत चौंके, क्योंकि बुद्ध सदा कहते थे, चबूतरे पूजने से क्या होगा? अभी पिछले दिनों ही कोई सूत्र आया था--वृक्ष की पूजा से क्या होगा! चैत्य की पूजा से क्या होगा! मंदिर की पूजा से क्या होगा! मूर्ति की पूजा से क्या होगा! शास्त्र की पूजा से क्या होगा! तो बुद्ध तो सदा कहते थे, इस तरह की पूजा व्यर्थ है। आज तो शिष्य बड़े चौंके।

उस ब्राह्मण को उन्होंने कहा कि ब्राह्मण! यह तूने ठीक ही किया। भगवान के शिष्य बहुत चौंके--इसमें उन्हें विरोधाभास दिखायी पड़ा। तो भगवान ने उनसे कहा, यह पूर्व में हुए काश्यप बुद्ध की समाधि है। और पूजनीयों की पूजा करनी युक्त है, सदा युक्त है। फिर उन्होंने कहा, भिक्षुओ, आंखें बंद करो और ध्यान करो, तुम्हारी सारी चेतना को इस चबूतरे पर लगाओ। सारे भिक्षु ध्यान करने बैठ गए, शांत होकर बैठे, चबूतरे पर उन्होंने सारी अपनी जीवन-ऊर्जा को बहाया तो बड़े चौंके। ऐसा तो उन्होंने कभी न देखा था। ऊपर से तो वह चबूतरा बस जरा सा खंडहर था ईंट-पत्थर का, लेकिन भीतर अनंत ज्योति थी। उस दीन-दरिद्र चबूतरे के भीतर ऐसी विराट ज्योति थी कि कोसों तक उसका प्रकाश फैला हुआ था। तब उन्होंने आंखें खोलीं और उन्होंने भगवान से कहा, हमें समझाइए।

तो बुद्ध ने कहा कि मुझसे पूर्व काश्यप बुद्ध हुए। मैं कोई पहला बुद्ध नहीं हूं, अनंत बुद्ध मुझसे पहले हो गए, अनंत बुद्ध मेरे बाद होंगे। यह पृथ्वी कभी बुद्धों से खाली नहीं रहती। मुझसे पहले काश्यप बुद्ध हुए, यह उनका चबूतरा है। और बुद्धों के लिए क्या पहला और क्या पीछा, क्या अतीत और क्या भविष्य, असली सवाल तो बुद्धत्व को नमस्कार करने का है। और इस आदमी को पता भी नहीं है कि यह किसको नमस्कार कर रहा है। लेकिन क्या तुमको पता है? तुम मुझे नमस्कार करते हो, क्या तुम्हें पता है कि तुम किसको नमस्कार कर रहे हो? अज्ञान में तो आदमी अज्ञान में ही होता है। लेकिन अज्ञान में भी यह ठीक दिशा में चल रहा है। अंधेरे में भी

यह द्वार के लिए टटोल रहा है। इसे पता नहीं है कि यह चबूतरा किसका है, क्यों है--कहता है, परंपरा से चला आया है। लेकिन, जो बात चली आयी परंपरा से, जरूरी नहीं कि ठीक हो, जरूरी नहीं कि गलत हो।

इस बात को ख्याल में लेना। जो बात चली आयी है सदा से, जरूरी नहीं कि ठीक हो, जरूरी नहीं कि गलत हो। इसलिए प्रत्येक बात का निर्णय उस बात के ही गुणधर्म से करना। ऐसा कह देना कि जो परंपरा से चला आया है ठीक है, नासमझी है; और ऐसा कह देना भी नासमझी है कि जो परंपरा से चला आया है, वह इसीलिए गलत है कि परंपरा से चला आया है। न तो नया सत्य होता है, न पुराना सत्य होता है। सत्य पुराने में भी होता है, नए में भी होता है। सिर्फ कोई चीज पुरानी है, इसलिए सच मत मान लेना; और कोई चीज नयी है, इसलिए भी सच मत मान लेना।

दुनिया सदा इस तरह की भूलें करती है। जैसे पूरब में--पूरब में जो पुराना है; सो सही। पश्चिम में--जो नया है, सो सही। दोनों ही बातें गलत हैं। सही के नए और पुराने होने से कोई संबंध नहीं है। वेद चाहे पांच हजार साल पुराने हों और चाहे पचास हजार साल पुराने हों, इससे क्या फर्क पड़ता है! सही हैं, तो पांच दिन पुराने हों तो भी सही हैं। और गलत हैं, तो पचास हजार साल पुराने हों तो भी गलत हैं। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, अगर सही है तो सही है, चाहे कितना ही नया हो। और अगर गलत है तो गलत है, चाहे कितना ही नया हो। नए और पुराने से सत्य का कोई संबंध नहीं है।

प्रत्येक बात की जांच उस बात को देखकर ही करना, बुद्ध ने कहा। इसलिए मैंने बहुत बार कहा है कि चैत्य की पूजा में क्या रखा है, मगर इस ब्राह्मण से न कह सकूंगा। क्योंकि इसने जिस चैत्य को सिर झुकाया है, वहां कुछ रखा है। हालांकि इसे पता नहीं है। लेकिन झुकते-झुकते पता चल जाएगा। पूजनियों की पूजा करना ठीक है। न पता हो तो भी ठीक है। क्योंकि झुकते-झुकते शायद किसी दिन किरण उतर जाए।

उस समय उन्होंने यह सूत्र कहा--

"जो संसार-प्रपंच को अतिक्रमण कर गए हैं, जो शोक और भय को पार कर गए हैं, ऐसे पूजनीय बुद्धों अथवा श्रावकों की, या उन जैसे मुक्त और निर्भय पुरुषों की पूजा के पुण्य का परिणाम इतना है, यह किसी से कहा नहीं जा सकता।"

बुद्ध ने कहा, इतना-इतना परिणाम है उस पुण्य का--पूजा के पुण्य का, झुकने के पुण्य का--कि उसे कहा नहीं जा सकता। क्यों झुकने में इतना पुण्य होगा? सच बात यह है कि झुकने में नहीं है वस्तुतः, क्योंकि झुकने का अर्थ होता है, तुमने अहंकार को थोड़ा झुकाया--उसी में है, वह जो अहंकार झुका। तुम झुकने को राजी हुए, तुमने अहंकार को थोड़ी देर को अपने सिर से उतारकर रख दिया, तुमने किसी के सामने अपने को छोटा माना, उसी में पुण्य है।

इसलिए पूरब में हमने इस तरह की बहुत सी व्यवस्था की थी कि जिसके कारण आदमी को झुकने का अभ्यास बना रहे। बाप के पैर छू लो--अब जरूरी नहीं कि बाप ठीक ही हो। सभी बाप ठीक हों तो दुनिया ठीक ही हो जाए! बाप चोरी भी करता है, बाप हत्यारा भी हो सकता है। लेकिन फिर भी पूरब में हमने कहा कि बाप हत्यारा हो तो भी झुककर पैर छूना। मां के पैर छू लो--अब सभी मां ठीक नहीं होतीं। जरूरी भी नहीं है कि ठीक हों। मां होने से क्या ठीक होने का लेना-देना है! लेकिन झुक जाना। क्यों? ताकि झुकने का अभ्यास बना रहे। ताकि झुकने की प्रक्रिया भूल न जाए। ऐसे झुकते-झुकते किसी दिन उस आदमी के करीब भी पहुंच जाओगे जहां कुछ है, तो उस वक्त अड़चन न आएगी।

अब मैं देखता हूं यहां, पश्चिम से कोई आता है, उसे झुकने में बड़ी अड़चन आती है। वह झुकता भी है तो थोड़ा झिझकता-झिझकता सा झुकता है। क्योंकि पश्चिम में झुकने की कोई प्रक्रिया नहीं है। किसी के पैर छूना, पश्चिम में कोई परंपरा नहीं है। बाप के पैर नहीं छूना, मां के पैर नहीं छूना, गुरु के पैर नहीं छूना, पैर छूने की परंपरा नहीं है। एक दिन अचानक तुम उससे कहते हो कि परमात्मा के सामने झुको, उसे झुकने का कोई अभ्यास नहीं है। जो छोटे, उथले जल में नहीं तैरा, उसे अचानक सागर में उतारते हो! वह डुबकी खा जाएगा।

पहले तो तैरना सीखना पड़ता है नदी में--छोटी नदी में, या स्वीमिंग पूल में--उथले-उथले में तैरना आ जाए, फिर तुम गहरे सागरों में जा सकते हो। पिता माना कि अभी उथला किनारा है, सब तरह की भूलें हैं जो आदमी में होनी चाहिए, जो आदमी में होती हैं, ठीक, इसकी तुमने फिकर न की, फिर भी झुके--ऐसे उथले पानी में तुमने झुकने का अभ्यास कर लिया। फिर अगर कभी तुम संयोग से किसी बुद्धपुरुष के करीब आ जाओ, तो झुकने में जरा भी अड़चन न आएगी--जरा भी अड़चन न आएगी। एक बार भी मन में ऐसा न उठेगा कि झुकूं कि नहीं, झुकना चाहिए कि नहीं, तुम अवश झुक जाओगे। तुम सहज झुक जाओगे। तुम अचानक पाओगे कि तुम झुके हुए हो। तुम्हारा झुकना इतना स्वाभाविक होगा। और उसी स्वाभाविक झुकने में पुण्य है, उसी स्वाभाविक झुकने में कुछ तुममें बह जाएगा।

हमारी मान्यता यह है कि अगर किसी गलत आदमी के सामने झुके तो तुम्हारा कुछ खोता नहीं। हर्जा कुछ भी नहीं है। बस कुछ मिला नहीं, इतना ही हुआ न! लेकिन झुकने का अभ्यास बना रहा। किसी दिन अगर ठीक आदमी के सामने झुक जाओगे तो उसके अंतर से बहती हुई ऊर्जा तुम्हारे पात्र में भर जाएगी, तुम लबालब हो जाओगे। और तब तुम पाओगे कि जिन गलत आदमियों के सामने झुके, उनका भी धन्यवाद है, क्योंकि उन्होंने ही यह घड़ी सामने लायी।

तो बुद्ध कहते हैं, बुद्धों अथवा श्रावकों की, या उन जैसे मुक्त और निर्भय पुरुष की पूजा के पुण्य का परिणाम इतना है, यह किसी से कहा नहीं जा सकता, इसलिए इस ब्राह्मण को मैं कहता हूं, तूने ठीक ही किया, ब्राह्मण! तू मुझे तो जानता नहीं, लेकिन परंपरा से चले आए इस चबूतरे को जानता है--कोई कभी इस चबूतरे के सामने जानकर झुके होंगे, हजारों साल पहले काश्यप बुद्ध हुए, उनके चरणों में कोई जानकर झुका होगा। फिर उसके बेटे यह सोचकर झुके होंगे कि पिता झुकते थे। फिर उसके बेटे को भी थोड़ा ख्याल रहा होगा कि यहां कुछ है। फिर धीरे-धीरे बात भूलती गयी, मगर झुकने की परंपरा जारी रही। इस चैत्य ने ही तुझे इस योग्य बनाया है कि तू मेरे चरणों में भी झुक सका। इसलिए तूने ठीक ही किया कि तू पहले इस चैत्य के, चबूतरे के चरणों में झुका। धन्यवाद इसको देना जरूरी है।

काश्यप बुद्ध से बुद्ध का मिलना हुआ है पिछले जन्मों में, और बड़ी अनूठी कथा है। तब बुद्ध अज्ञानी थे--गौतम बुद्ध अज्ञानी थे--काश्यप बुद्ध की बड़ी महिमा थी। दूर-दूर से लोग यात्रा करके उनके चरणों में आते थे। तो गौतम बुद्ध भी अपने उस जन्म में उनके दर्शन को गए, वह उनके चरणों में झुके। जब वह चरण छूकर खड़े हुए तो बड़े चौंके, क्योंकि काश्यप बुद्ध उनके चरणों में झुक गए। तो बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि भंते, यह कैसा पाप! यह आप क्या कर रहे हैं! मैं आपके चरणों में झुकूं, यह तो ठीक--मैं अज्ञानी, मैं पापी, मैं नासमझ, मैं अबोध--मैं चरणों में झुकूं यह तो ठीक, लेकिन आप यह क्या कर रहे हैं, मेरे चरणों में झुक रहे! तो काश्यप बुद्ध ने कहा कि सुन, तू एक दिन बुद्ध हो जाएगा, मैं देख पाता हूं। तुझे तेरा बुद्धत्व दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन मुझे दिखायी पड़ रहा है, तू एक दिन बुद्ध हो जाएगा। मैं उस भविष्य के बुद्धत्व के चरणों में झुक रहा हूं।

उसी काश्यप बुद्ध की यह समाधि है जिस पर आज बुद्ध ठहरे हैं। हजारों वर्ष बीत गए हैं, लेकिन जब भिक्षुओं ने ध्यान किया है तो उन्हें लगा कि उस समाधि के भीतर अपूर्व प्रकाश है। ध्यान की आंख हो तो हजारों साल पहले जो बुद्ध जा चुके हैं, उनका प्रकाश भी तुम्हें छुएगा, आंदोलित करेगा। और ध्यान की आंख न हो तो जीवित बुद्ध के सामने भी तुम अंधे की तरह बैठे रहोगे, तुम्हें कोई प्रकाश न छुएगा। सब तुम पर निर्भर है।

बुद्ध का वचन ख्याल रखना, झुकने का अभ्यास अच्छा है। और बुरे-भले का भी क्या हिसाब रखना! और हम तय भी करने वाले कौन कि कौन बुरा और कौन भला! जहां झुकने का अवसर मिले, झुक जाना। तुम तो इसकी ही फिकर करना कि हमें झुकने का अवसर मिला, यही बहुत। ऐसे झुकते रहे, झुकते रहे, झुकते रहे, तो अहंकार कटता जाएगा, कटता जाएगा; अहंकार पत्थर की चट्टान है, समय लगता है कटने में। लेकिन अगर झुकते रहे, झुकने का जल अगर इस पत्थर की चट्टान पर गिरता रहा, गिरता रहाकृ

रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निसान

कठिन से कठिन पत्थर पर भी कुएं की रस्सी आते-जाते निशान पड़ जाता है।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान

और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, इंच-इंच चल-चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है और जड़मति भी सुजान हो जाता है।

तो बुद्ध कहते हैं, ठीक ही किया इस ब्राह्मण ने। इसे पता तो नहीं है, लेकिन झुकने का तो पता है। किसके चरणों में झुक रहा है, इसे पता नहीं, लेकिन झुकने का तो पता है।

इसलिए ख्याल रखना, बुद्धपुरुषों की वाणी में अगर कभी विरोधाभास मिले, तो जल्दी से विरोधाभास की वजह से उलझ मत जाना। जब बुद्ध कहते हैं, क्या रखा है मंदिरों में झुकने से, तब भी ठीक कहते हैं। और जब बुद्ध कहते हैं, झुकने में बहुत कुछ रखा है, तब भी ठीक कहते हैं। दोनों ही बातें सच हैं। दोनों अलग-अलग पात्रों के लिए कही गयी हैं।

जब बुद्ध कहते हैं, मंदिरों में झुकने में क्या रखा है, तो उन्होंने मालूम है किसको कही थी? यह बात उन्होंने कही थी एक पंडित को, अग्निदत्त को। बड़ा पंडित था, शास्त्र का ज्ञानी था, पूजा-पाठ इत्यादि का बड़ा ज्ञाता था। उसको उन्होंने कहा, क्या रखा है शास्त्र में? उस पंडित को चौंकाने के लिए, जगाने के लिए इसके सिवा कोई उपाय न था। उसके शास्त्र उससे छीनने जरूरी थे। उसकी अकड़ मिटाने का यही उपाय था कि उसको समझाया जाए कि शास्त्र में क्या रखा है! मंदिर में क्या रखा है! तीर्थ में क्या रखा है! और बुद्ध ने खूब निर्ममता से उसके ऊपर प्रहार किया। उस पंडित को गिराने के लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं था, यही अनुकंपा थी।

आज यह एक सरल-सीधा ब्राह्मण किसान है। इसे कुछ पता नहीं है। यह कोई पंडित नहीं है। यह कहता है, मुझे कुछ मालूम ही नहीं कि मैं क्यों झुक रहा हूं, यह परंपरा से चली आती बात। सीधा-सादा आदमी है। इसको बुद्ध ने उस तरह की चोट नहीं की। उस तरह की चोट की जरूरत नहीं है। इस झुकने वाले आदमी में अहंकार है ही नहीं जिसको चोट मारकर गिराना हो। इससे बुद्ध ने कहा, तूने ठीक ही किया, ब्राह्मण!

फर्क समझना! अहंकारी पर गहरी चोट की कि क्या रखा है मंदिर में? निरहंकारी से कहा कि तूने ठीक ही किया, ब्राह्मण! ये दो अलग परिस्थितियां हैं। इन दोनों अलग परिस्थितियों में दो अलग आदमियों से कहे गए वचन हैं।

ऐसा रोज होता है मेरे पास। अक्सर ऐसा हो जाता है कि एक आदमी मुझसे बात कर रहा है दर्शन में, उसको मैं कुछ कहता हूं, और उसके बाद जो आदमी आता है, उसके ठीक उलटी बात मुझे उससे कहनी पड़ती है। वे दोनों बड़े चौंक जाते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं कि दो अलग आदमियों से बात करनी पड़ रही है, तो जो मैं कहूंगा, उस आदमी को देखकर कहूंगा।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि मैं एक के प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं, फिर दूसरा मेरे सामने आता है, मैं उससे पूछता हूं, कुछ पूछना है? वह कहता है कि नहीं, क्योंकि यही मेरा प्रश्न था, आपने उत्तर दे दिया। मैं कहता हूं, क्षमा करो, यह उत्तर जिसको दिया है उसके लिए है, तुम अपना प्रश्न पूछो। तुम वही प्रश्न तो पूछ ही नहीं सकते जो इसने पूछा है। वह आदमी कहता है, लेकिन मेरा वही प्रश्न है, बिल्कुल वही है, शब्दशः वही है।

शब्द एक से होंगे, लेकिन प्रश्न वही नहीं हो सकता। क्योंकि तुम पूछने वाले अलग हो। तुम्हारी पृष्ठभूमि अलग है। तुम अलग मां के पेट से पैदा हुए, अलग बाप के वीर्य से पैदा हुए। तुम अलग देश में पैदा हुए, अलग हवा में पले, अलग परिस्थितियों से गुजरे, अलग संस्कार तुमने इकट्ठे किए। तुम्हारी सारी पृष्ठभूमि अलग है। तुम वही प्रश्न तो पूछ ही नहीं सकते जो इसने पूछा है, क्योंकि यह प्रश्न तो यही पूछ सकता है। इस दुनिया में कोई दूसरा आदमी नहीं पूछ सकता।

तो कभी-कभी ऐसा होता है कि शब्द एक जैसे, तो तुम सोचते हो प्रश्न भी एक जैसा। और कभी-कभी ऐसा होता है कि मैं भी तुम्हें एक से ही शब्दों में उत्तर देता हूं, तब तुम सोचते हो कि मैंने एक ही उत्तर दिया, तुम्हें भी और दूसरे को भी, इस भ्रांति में मत पड़ना।

सुबह की चर्चाएं सार्वजनिक हैं, सांझ की चर्चाएं व्यक्तिगत हैं। और सांझ की चर्चाओं का मूल्य गहरा है। सुबह तुम्हें सार्वजनिक सत्य कह रहा हूं, किसी एक से नहीं कह रहा हूं। सत्य जैसा है वैसा ही कह रहा हूं। तुम्हारे ऊपर ध्यान नहीं रखकर कह रहा हूं, सत्य पर ध्यान रखकर कह रहा हूं। जैसा मैं सत्य को देखता हूं वैसा कह रहा हूं। सांझ को जब तुमसे मैं बात करता हूं, तो सत्य से भी ज्यादा महत्वपूर्ण तुम हो। मुझसे भी ज्यादा महत्वपूर्ण तुम हो। तब तुम्हें देखकर मैं कहता हूं।

सुबह तो ऐसा समझो कि जो मैं कह रहा हूं वह केमिस्ट की दुकान है, जिस पर सभी दवाइयां हैं। सांझ को जब तुमसे कुछ कहता हूं, तो प्रेस्क्रिप्सन है, वह तुम्हारे ही लिए लिखा गया है। उसको किसी दूसरे को मत दे देना। यह मत सोचना कि मैंने तुम्हें दिया तो सभी के काम का है। वह किसी और के काम न आएगा। और कभी-कभी हानिकर भी हो सकता है।

इसलिए बहुत बार मेरे वक्तव्यों में तुम्हें विरोध दिखायी पड़ेगा। उस विरोध का कारण है। यही बुद्ध के भिक्षुओं को लगा। उन्हें लगा कि यह क्या बात है! अभी तो कहते थे कुछ दिन पहले कि कुछ नहीं रखा है, आज इस ब्राह्मण को कहने लगे, तूने ठीक ही किया, ब्राह्मण! लेकिन उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा। वह भी ब्राह्मण था, अग्निदत्त भी ब्राह्मण था, लेकिन वह पंडित ब्राह्मण था; यह भी ब्राह्मण है, यह सीधा-सादा, भोला-भाला ब्राह्मण है; इन दोनों पर एक सी चोट नहीं की जा सकती है। जिस चोट ने अग्निदत्त को जगाया होगा, वह चोट इसको मार डालेगी। जिस चोट ने अग्निदत्त के लिए सहारा दिया, वह चोट इसका सहारा छीन लेगी।

इसलिए बुद्धपुरुषों के वचनों में बहुत बार विरोधाभास होंगे, पद-पद पर विरोधाभास होंगे, लेकिन विरोधाभास हो नहीं सकता। असंभव है। दिखता होगा।

किसी ने बांटे फूल

किसी ने बांटे फल

किसी ने किसलय

पर दिन ढले

सब गले

कुम्हलाए

मुरझाए

तुम आए

बांटा बीजमंत्र

अनुकंपा

कहा, बन

आत्मा का माली

कर कषाय से रखवाली

बच जाएगी बगिया की

हरियाली

बुद्ध के सारे सूत्रों का सार है, अनुकंपा। वे जो कह रहे हैं, वे अनुकंपा से उठे हुए वक्तव्य हैं। जिस व्यक्ति को जो जरूरी था, वही उन्होंने दिया है।

किसी ने बांटे फूल

किसी ने फल

किसी ने किसलय

पर दिन ढले

सब गले

कुम्हलाए

मुरझाए

तुम आए

बांटा बीजमंत्र

अनुकंपा

बुद्ध का स्वाद पकड़ना हो तो अनुकंपा शब्द को पकड़ लेना। बुद्ध की उत्सुकता न तो किसी शास्त्र में है, न किसी सिद्धांत में, न किसी दर्शन में। बुद्ध की सारी आस्था अनुकंपा में है। तो जो भी कहा, करुणा से कहा। तर्कजाल नहीं है। इसलिए यह कभी ख्याल नहीं रखा है कि जो कल कहा था उससे आज कही गयी बात तालमेल खाती है या नहीं? तर्कशास्त्री को दिक्कत तो न होगी? वह विचार ही न किया। जो आज सामने है उसको झलकाया। जो आज सामने खड़ा है उसको उत्तर दिया। उत्तर बंधा-बंधाया नहीं है, उत्तर तैयार नहीं है। और तैयार उत्तर दो कौड़ी के होते हैं। बुद्धपुरुष तो दर्पण की भांति हैं, जो आया उसका ही प्रतिबिंब झलकता है।

एक कहानी मैंने सुनी है--एक था चूहा, एक थी गिलहरी। चूहा शरारती था, दिनभर चीं-चीं करता हुआ मौज उड़ाता। गिलहरी बड़ी भोली-भाली थी, टीं-टीं करती हुई इधर-उधर घूमा करती। संयोग से एक बार दोनों

का आमना-सामना हो गया। अपनी प्रशंसा करते हुए चूहे ने कहा, मुझे लोग मूषकराज कहते हैं और गणेश जी की सवारी के रूप में खूब जानते हैं। मेरे बिना गणेश जी भी चल नहीं सकते हैं। मेरे पैने-पैने हथियार-सरीखे दांत लोहे के पिंजरे तो क्या, किसी भी चीज को काट सकते हैं। मैं तर्कशास्त्री हूं। जैसे तर्कशास्त्री की कैंची चलती है, ऐसा मैं चलता हूं।

मासूम सी गिलहरी को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, हैरानी भी लगी। बोली, भई, तुम दूसरों का नुकसान करते हो, फायदा नहीं। यदि अपने दांतों पर तुम्हें इतना गर्व है, तो इनसे कोई नक्काशी क्यों नहीं करते? इनका उपयोग करो तो जानूं! जहां तक मेरा सवाल है, मुझमें आप-सरीखा कोई भी गुण नहीं। मेरे बदन पर तीन धारियां देख रहे हो न, बस यही मेरी खास चीज है। जो दाना-पानी मिल जाता है, उसका कचरा साफ करके संतोष से खा लेती हूं। चूहा बोला, तुम्हारी तीन धारियों की विशेषता क्या है, यह भी खूब रही! इन धारियों में क्या रखा है?

गिलहरी बोली, वाह, तुम्हें पता नहीं। आसपास दो काली धारियां हैं, उनके बीच में एक सफेद है। इनका मतलब है कि कठिनाइयों की पर्तों के बीच से ही असली सुख झांकता है। दो काली रातों के बीच में एक उजाला भरा हुआ दिन है। मैं इसी सुनहली धारी पर ध्यान रखती हूं। काली को आंकती ही नहीं, हिसाब में नहीं लेती। भगवान ने ये धारियां मुझे इसीलिए दी हैं कि बीच की धारी पर ध्यान रखना। उसको ध्यान रखने के कारण बड़ा संतोष है, बड़ा आनंद है। मौत दिखायी ही नहीं पड़ती, जीवन ही जीवन! दुख दिखायी ही नहीं पड़ता, सुख ही सुख!

विचार चूहे जैसा है। उसे अंधेरा ही अंधेरा दिखायी पड़ता है, उसे विरोधाभास ही विरोधाभास दिखायी पड़ता है। यह गलत, यह गलत, निंदा और आलोचना ही दिखायी पड़ती है। श्रद्धा भोली-भाली है, गिलहरी जैसी है। गिलहरी ने ठीक ही कहा कि दो काली धारियों के बीच में जो सफेद धारी देखते हैं न, वही मेरी खूबी है। उस पर ही मैं ध्यान रखती हूं।

तर्क व्यर्थ की बातों में उलझ जाता है, व्यर्थ की बातों में उलझकर व्यर्थ को बढ़ावा देने लगता है, तूल देने लगता है। श्रद्धा सार्थक को पकड़ती है। धीरे-धीरे व्यर्थ आंख से ओझल हो जाता है, सार्थक ही रह जाता है।

उस सार्थक में जिसने जीना सीख लिया, वही संन्यासी है।

आज इतना ही।

अड़सठवां प्रवचन

परम दिशा तुम्हारे भीतर की ओर

पहला प्रश्नः नकारात्मक मन से, आलोचक दृष्टि से और अहंकार से कैसे छुटकारा होगा? बुद्धि जलकर राख कब होगी? ये दुखदायी हैं, तो भी उनसे लगाव क्यों बना है?

पहली बात, नकारात्मक मन से छुटकारे की चेष्टा सफल नहीं हो सकती, क्योंकि विधायक मन को बचाने की चेष्टा साथ में जुड़ी है। और विधायक और नकारात्मक साथ-साथ ही हो सकते हैं। अलग-अलग नहीं। यह तो ऐसे ही है जैसे सिक्के का एक पहलू कोई बचाना चाहे और दूसरा पहलू फेंक देना चाहे। मन या तो पूरा जाता है, या पूरा बचता है, मन को बांट नहीं सकते। नकारात्मक और विधायक जुड़े हैं, संयुक्त हैं, साथ-साथ हैं। एक-दूसरे के विपरीत हैं, इससे यह मत सोचना कि एक-दूसरे से अलग-अलग हैं। एक-दूसरे के विपरीत होकर भी एक-दूसरे के परिपूरक हैं। जैसे रात और दिन जुड़े हैं, ऐसे ही नकारात्मक और विधायक मन जुड़े हैं।

तो पहली तो बात यह समझ लो कि अगर नकारात्मक से ही छुटकारा पाना है, तो कभी छुटकारा न होगा। मन से ही छुटकारा पाने की बात सोचो। मन यानी नकारात्मक-विधायक, दोनों।

हम जीवनभर ऐसी चेष्टाएं करते हैं और असफल होते हैं। असफल होते हैं तो सोचते हैं, हमारी चेष्टा शायद समग्र मन से न हुई, पूरे संकल्प से न हुई, शायद हमने अधूरा-अधूरा किया, कुछ भूल-चूक रह गयी।

नहीं, भूल-चूक कारण नहीं है। जो तुम करने चले हो, वह हो ही नहीं सकता। उसके होने की ही संभावना नहीं है। वह स्वभाव के नियम के अनुकूल नहीं है, इसलिए नहीं होता।

इसलिए इसके पहले कि कुछ करो, ठीक से देख लेना कि जो तुम करने जा रहे हो, वह जगत-धर्म के अनुकूल है? वह जगत-सत्य के अनुकूल है? जैसे एक आदमी दुख से छुटकारा पाना चाहता है और सुख से तो छुटकारा नहीं पाना चाहता, तो कभी भी सफल नहीं होगा। सुख-दुख साथ-साथ जुड़े हैं। दुख गया तो सुख गया। सुख बचा तो दुख बचा।

तुम्हारी उलझन और दुविधा यही है कि तुम एक को बचा लेना चाहते हो, दूसरे को हटाते। यही तो सभी लोग जन्मों-जन्मों करते रहे हैं। सफलता बच जाए, असफलता चली जाए। सम्मान बच जाए, अपमान चला जाए। विजय हाथ रहे, हार कभी न लगे। जीवन तो बचे और मौत समाप्त हो जाए। यह नहीं हो सकता। यह असंभव है। जीवन और मृत्यु साथ-साथ हैं। जिसने जीवन को चुना, उसने अनजाने मृत्यु के गले में भी वरमाला डाल दी। ऐसा ही विधायक और नकारात्मक मन है।

विधायक मन का अर्थ होता है, हां; और नकारात्मक मन का अर्थ होता है, नहीं। हां और नहीं को अलग कैसे करोगे? और अगर नहीं बिल्कुल समाप्त हो जाए तो हां में अर्थ क्या बचेगा? हां में जो अर्थ आता है, वह नहीं से ही आता है।

इसलिए मैं कहता हूं, तुम अगर आस्तिक हो, तो नास्तिक भी होओगे ही। चाहे नास्तिकता भीतर दबा ली हो। नास्तिकता के ऊपर बैठ गए होओ, उसे बिल्कुल भुला दिया हो, अचेतन के अंधेरे में डाल दिया हो, मगर, अगर तुम आस्तिक हो तो तुम नास्तिक भी रहोगे ही। अगर तुम नास्तिक हो, तो कहीं तुम्हारी आस्तिकता भी पड़ी ही है; जानो न जानो, पहचानो न पहचानो। आस्तिक और नास्तिक साथ-साथ ही होते हैं।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति को मैं कहता हूं, जो आस्तिक और नास्तिक दोनों से मुक्त हो गया। धार्मिक व्यक्ति को मैं आस्तिक नहीं कहता, और धार्मिक व्यक्ति को विधायक नहीं कहता, धार्मिक व्यक्ति को कहता हूं, द्वंद्व के पार।

तो पहली बात, पूछते हो, "नकारात्मक मन से कैसे छुटकारा होगा?"

मन से छुटकारे की बात सोचो। नकारात्मक मन से छुटकारे की बात सोचो ही मत, अन्यथा कभी न होगा। और जब मन से छुटकारे की बात उठती है तो उसमें विधायक मन सम्मिलित है उतने ही अनुपात में, जितने अनुपात में नकारात्मक मन सम्मिलित है। वे दोनों ही मन के ही पहलू हैं। हां कहो तो मन से आती है, न कहो तो मन से आती है।

इसीलिए तो परम सत्य को कहा नहीं जा सकता; कैसे कहो? या तो हां कहो, या न कहो। हां कहो तो नहीं आ जाती है, नहीं कहो तो हां आ जाती है। इसलिए परम सत्य को केवल मौन से कहा जा सकता है, शून्य से कहा जा सकता है। जहां शून्य है, वहां मन नहीं। ऐसा समझो, जहां हां और नहीं दोनों गिर गए, वहां जो बचता है उसी का नाम शून्य है।

बुद्ध का मार्ग तो शून्य का मार्ग है। इसे समझना। इसे हम समझ नहीं पाए, इस देश में बुद्ध को ठीक से समझा नहीं गया। ऐसा लगा कि शून्य तो नकारात्मक है। गलत हो गयी, भूल हो गयी बात। शून्य तो केवल इस बात की सूचना है कि हां और न दोनों गए।

बुद्ध बार-बार कहते हैं कि लोग कहते हैं कि मैं ईश्वर को मानता हूं; कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, मैं ईश्वर को नहीं मानता; कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, मैं आत्मा को मानता हूं; कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, मैं आत्मा को नहीं मानता; लेकिन मैं मान्यताओं के पार हूं। न मैं कहता हूं ऐसा है, न मैं कहता हूं वैसा है। मैं कुछ कहता ही नहीं। मैंने मान्यता ही छोड़ दी है। मैंने मन ही छोड़ दिया है। मैं शून्यभाव में ठहरा हूं।

इस शून्य का अर्थ तुम नकारात्मक मत ले लेना। इस शून्य का इतना ही अर्थ है, द्वंद्व जा चुका, विभाजन गिर चुका। दो बचे ही नहीं, चुनाव का सवाल कहां है? और जहां चुनाव को कुछ भी नहीं बचा, वहीं है सत्य। सत्य तुम्हारा चुनना नहीं है। जब तुम्हारे चुनने की सारी आदत गिर गयी, तब जो शेष रह जाता है वही सत्य है।

मैं समझता हूं, तुम कांटों से मुक्त होना चाहते हो, फूलों को बचाना चाहते हो। और सारे बुद्धपुरुषों की शिक्षा यही है कि अगर कांटों से मुक्त होना हो, तो फूलों को भी विदा दे दो। यहीं अड़चन है।

इसलिए पूछा है तुमने, "ये दुखदायी हैं, तो भी इनसे लगाव क्यों बना है?"

फूल से लगाव है, फूल में दुख नहीं है। कांटे में दुख है। सो कांटे से छूटने की तुमने जिज्ञासा उठायी है। जिस दिन तुम्हें यह भी दिखायी पड़ेगा कि फूल और कांटे साथ-साथ आते हैं, उस दिन कांटे का दुख फूल के साथ भी संयुक्त हो जाएगा--संयुक्त है ही। फूल में भी दुख है, ऐसा जिस दिन दिखायी पड़ जाएगा, उस दिन छूटने में क्षणभर की देर न लगेगी।

हमारी कठिनाई यही है। मन के सिक्के को हाथ में रखे हैं, एक हिस्सा प्रीतिकर मालूम होता है कि इसे बचा लें, एक हिस्सा अप्रीतिकर मालूम होता है। तो न छोड़ पाते हैं, न बचा पाते हैं। दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम। ऐसे बीच में अटक जाते हैं। ऐसे बड़ा तनाव और चिंता पैदा होती है। ऐसे बहुत खिंचे-खिंचे हो जाते हैं। ऐसे बड़ी बेचैनी पैदा होती है और जीवन एक रोग जैसा मालूम होने लगता है।

दूसरी बात पूछी है, "आलोचक दृष्टि से और अहंकार से कैसे छुटकारा होगा?"

मन कभी भी आलोचक दृष्टि से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि मन का मतलब ही यही है कि वह हर चीज में चुनाव करता है। मन यानी चुनाव करने की क्षमता। इसीलिए तो कृष्णमूर्ति बार-बार एक बात पर जोर देते हैं--च्वाइसलेसनेस, चुनावरहितता, चुनो मत। मन कहता है, चुनो। जब तुम चुनोगे तो आलोचक बुद्धि तो आ ही जाएगी। नहीं तो चुनोगे कैसे? जब चुनोगे तब यह तो कहोगे न कि यह ठीक है और यह गलत है। गलत को गलत कहोगे तभी तो ठीक को ठीक कह सकोगे। बुरे को बुरा कहोगे तभी तो अच्छे को अच्छा कह सकोगे। पापी को पापी कहोगे तभी तो महात्मा को महात्मा कह सकोगे; नहीं तो कैसे कहोगे! रावण की निंदा न करोगे तो राम की प्रशंसा कैसे करोगे? तो आलोचना तो आ ही जाएगी। आलोचक दृष्टि भी आ जाएगी। चुनाव आया कि आलोचक आया। आलोचक को अगर खोना हो तो चुनाव को ही खोना पड़े।

इसलिए परम ज्ञानियों ने कहा है, अच्छे-बुरे में भी भेद मत करना। पापी और पुण्यात्मा में भी भेद मत करना। साधु-असाधु में भी भेद मत करना। अभेद में जीना। इंचभर का भेद और सारे भेद आ जाते हैं। जरा सा भेद और सारे भेद प्रवेश कर जाते हैं। भेद ही मत करना। जो जैसा है वैसा है, तुम चिंता न करना, तो आलोचक दृष्टि अपने आप विदा हो जाएगी।

फिर पूछा है, "अहंकार से कैसे छुटकारा होगा?"

ये सब बातें जुड़ी हैं। आलोचक दृष्टि में ही अहंकार निर्मित होता है। यह मेरे काम का, यह मेरे काम का नहीं। जो मेरे काम का है, उसे इकट्ठा करूं; और जो मेरे काम का नहीं है, उसे त्यागता जाऊं। जो मेरे काम का है, उसके इकट्ठे करने से जो राशि बनती है, वही तो अहंकार है। धन इकट्ठा कर लूं, ज्ञान इकट्ठा कर लूं, सम्मान इकट्ठा कर लूं, सफलता इकट्ठी कर लूं, जो अच्छा-अच्छा है इकट्ठा कर लूं, जो बुरा-बुरा है उसे छोड़ दूं, तो अहंकार निर्मित होता है। अहंकार मन के द्वारा चुनी गयी वस्तुओं का जो राशिभूत रूप है, उसका ही नाम है।

जब मन चुनता ही नहीं, जब चुनाव ही नहीं होता, तो कुछ इकट्ठा भी नहीं होता। तब आदमी खाली का खाली जीता है, शून्यवत जीता है। स्लेट कोरी की कोरी रहती है, उस पर कुछ लिखावट नहीं होती। और जब तुम्हारे भीतर का कागज कोरा होता है, तो अहंकार निर्मित नहीं होता। कुछ लिखा कागज पर भीतर कि अहंकार बना। कुछ भी लिखा कि अहंकार बना।

एक झेन फकीर के पास उसका शिष्य आया और उसने कहा कि आप वर्षों से प्रतीक्षा करते थे, वह बात घट गयी। आप कहते थे, शून्य होकर आ, आज मैं शून्य होकर आया हूं। उसके गुरु ने कहा, शून्य को भी बाहर फेंककर आ। क्योंकि इतना भी अगर तेरे मन पर लिखा है कि आज शून्य होकर आ गया, तो अभी शून्य नहीं हुआ।

इसलिए बौद्धों ने शून्यता के अठारह भेद किए हैं। तुम चकित होओगे, शून्यता के अठारह भेद! अठारह प्रकार की शून्यता कही है। और जो आखिरी शून्यता है, जिसको उन्होंने महाशून्यता कहा है, उसमें शून्य का भी त्याग है, शून्य का भी विसर्जन है। फिर यह भी बोध नहीं रहता कि मैं शून्य हो गया हूं, कि मुझे समाधि लग गयी है, कि मैं सत्य को उपलब्ध हो गया हूं, यह लिखावट भी नहीं रह जाती। जहां चेतना का कागज बिल्कुल कोरा हो जाता है, वहीं बन गया वेद, वहीं बन गया कुरान, वहीं बन गयी बाइबिल, वही से परमात्मा बोलने लगता है। उस शून्य में जो प्रस्फुटित होता है, उस शून्य से जो बहता है निर्झर, वही शाश्वत सत्य है।

तो यह सब जुड़ा है, नकारात्मक मन, आलोचक दृष्टि और अहंकार, एक ही प्रक्रिया के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

पूछा है, "बुद्धि जलकर राख कब होगी?"

कौन पूछता है यह? यह बात भी बुद्धि की है। सुन-सुनकर ज्ञानियों की बातें बुद्धि यह भी सोचने लगती है कि बुद्धि जलकर राख कब होगी? क्योंकि लोभ पैदा होता है। परम ज्ञान, परम निर्वाण, लोभ जगता है कि उस आनंद की अमृत वर्षा मेरे भीतर कब होगी? कब ऐसा होगा, जब बुद्धों का स्वर्ग मेरा भी स्वर्ग होगा? कब ऐसा होगा, जब भीतर बसी सुगंध जगेगी, फैलेगी? कब ऐसा होगा, जब मेरे अंधेरे में, अंतर के अंधेरे में दीया जलेगा, बोध का प्रकाश होगा? लोभ जगता है। लोभ जगता है तो बुद्धि आत्महत्या तक की सोचने लगती है। बुद्धि कहती है, बुद्धि का नाश कब होगा? लेकिन यह बुद्धि ही कह रही है। यह कौन कह रहा है? जो भी तुम सोच सकते हो, वह सभी बुद्धि का है। जो बुद्धि के पार है, उसके संबंध में तो तुम कुछ सोच भी नहीं सकते।

इसे समझो। ख्याल रखना, समझ तभी पैदा होती है जब तुम कभी किसी तरह के लोभ को बीच में नहीं आने देते। जब मुझे तुम सुन रहे हो, तो ख्याल करना, कहीं लोभ तो बीच में आ नहीं रहा है? कहीं तुम यह तो नहीं सोचने लगे कि ऐसा हमें हो जाए; कब हो जाए, कैसे हो, जल्दी हो जाए, यह जीवन कहीं ऐसे ही न चूक जाए? यह बात होनी ही चाहिए। ऐसा लोभ अगर पैदा होता हो तो तुम जो भी सुनोगे, विकृत हो जाएगा। तुम कुछ का कुछ अर्थ कर लोगे।

सुनते समय लोभ करना ही मत। सुनते समय तो सिर्फ सुनना, शुद्ध सुनना। श्रवणमात्रेण। बस सुनते ही रहना। उसी सुनने में से एक स्फुरणा जगेगी और तुम अचानक देखोगे कि उस स्फुरणा में बुद्धि है ही नहीं। तो तुम यह नहीं पूछोगे कि बुद्धि राख कैसे हो? अगर तुमने मुझे ठीक से सुना, तो ऐसे क्षण आएंगे तुम्हारे अंतस्तल पर, ऐसी घड़ियां आएंगी, जब तुम अचानक चौंककर पाओगे कि बुद्धि है ही नहीं, राख क्या करना है! बुद्धि तो लोभ के साथ आती है।

इसीलिए तो हम बच्चे में लोभ जगाते हैं, क्योंकि अगर उसकी बुद्धि पैदा करनी है तो लोभ जगाना पड़ेगा। उससे हम कहते हैं, पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब, लोभ जगा रहे हैं; खेलोगे कूदोगे होगे खराब, लोभ जगा रहे हैं। नवाब बनाने का भाव पैदा कर रहे हैं। बच्चा स्कूल जाता है तो हम उसके पीछे पड़ते हैं कि प्रथम आना, पिछड़ मत जाना, बदनामी मत करवा देना हमारी; हमारे बेटे हो--किसके बेटे हो! किस कुल से आते हो, इसका ख्याल रखना। कुछ बुरा मत करना। कुछ ऐसा मत करना जिससे अपमान हो जाए। सम्मान मिले, पद-प्रतिष्ठा मिले, वंश का गौरव बढ़े, ऐसा लोभ हम जगाते हैं। ऐसे लोभ के चक्कर में पड़-पड़कर ही धीरे-धीरे बच्चे को बुद्धि पैदा होती है। बुद्धि का मतलब है, लोभ को पूरा करने की कुशलता। इसीलिए तो जो अपने जीवन में कुछ नहीं कर पाता उसको हम बुद्धू कहते हैं। हम कहते हैं, इसमें कुछ बुद्धि नहीं है।

लाओत्सू ने कहा है कि और सबके पास तो बुद्धि मालूम होती है, मैं एक बुद्धू हूं। और सबके पास तो बड़ी प्रखर प्रतिभा मालूम होती है, लेकिन मेरे पास कोई प्रतिभा नहीं है।

यह मजाक में ही कहा है, यह खूब गहरा व्यंग किया है लाओत्सू ने। यह कहकर इतना ही कहा है कि तुम जिसे बुद्धि कह रहे हो, वह कुछ भी नहीं है लोभ के सिवाय। मैं तो बुद्धि को खोकर असली चीज पाया हूं। अब तुम्हारे भीतर सवाल उठता है, यह बुद्धि कैसे खो दें? रोज मैं तुम्हें समझाता हूं कि बुद्धि को खो दो, लोभ उठता है कि बुद्धि को खो दें, भाव उठता है।

चूक हो रही है कहीं। जब मैं कहता हूं बुद्धि को खो दो, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारे किसी प्रयास से बुद्धि खोएगी। मैं इतना ही कह रहा हूं कि अगर तुमने ठीक से सुना, शांत, मौन में सुना, बिना लोभ के सुना, तो अचानक तुम पाओगे ऐसे क्षण तुम्हारे ऊपर फैलते हुए जहां बुद्धि नहीं होती, जहां विचार नहीं होता, जहां परम सन्नाटा होता है। उस सन्नाटे में तुम्हें पहली दफे स्वाद मिलेगा बुद्धि की शून्यता का। उसी स्वाद में फिर

तुम धीरे-धीरे ज्यादा डूबने लगोगे, स्वाद से ही तो डूबोगे! फिर और स्वाद लेने लगोगे। कभी मुझे सुनते ऐसा होगा, फिर कभी-कभी घर शांत कमरे में बैठे कुछ न करते हुए भी ऐसा हो जाएगा।

कल एक युवक आया। उसने कहा, बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। बैठता हूं तो एकदम खाली हो जाता हूं। घबड़ा रहा है कि अब क्या होगा? पश्चिम वापस लौटना है, घर वापस जाना है, तो और भी घबड़ाहट है कि अगर घर के लोगों ने ऐसा देखा कि खाली हो गया, तो वे समझेंगे कि पागल हो गया। उसकी घबड़ाहट तुम समझ सकते हो। पूछते हो, बुद्धि राख कब होगी? उसकी राख होने के करीब आयी तो वह सम्हाल रहा है, वह घबड़ा रहा है!

मैंने उससे पूछा कि घबड़ाहट क्या है, तुझे अच्छा नहीं लग रहा? उसने कहा, अच्छा तो बहुत लगता है, लेकिन और हजार बातों का सवाल उठता है--घर-द्वार, मां-बाप, काम-धंधा। फिर यह भी ख्याल उठता है कि यह क्या हो रहा है? ऐसा तो कभी हुआ नहीं था। और जब बिल्कुल शांति हो जाती है तो एक बेचैनी मालूम होती है। ऐसा तो कभी हुआ नहीं था, यह मुझे हो क्या रहा है? कहीं मेरा मस्तिष्क तो खराब नहीं हो रहा?

जब पहली दफा बुद्धि-अतीत क्षण तुममें उतरेंगे, तो तुम्हें भी ऐसा ही लगेगा कि कहीं मस्तिष्क तो खराब नहीं हो रहा? क्योंकि अब तक तो हजार उलझनों में उलझे थे, अचानक सब उलझनें छूट जाती हैं। बैठे तो बैठे रह गए, चुप हुए तो चुप रह गए, भीतर एकदम सन्नाटा हो गया। छुरी की धार की तरह लगेगा सन्नाटा, काटता चला जाएगा भीतर के केंद्र तक, आर-पार छेद देगा, घबड़ाहट होगी।

मगर अगर तुम्हें यहां सुनते-सुनते सत्संग में कभी ऐसे छोटे से क्षण आ गए, तो ये क्षण बड़े होने लगेंगे। क्योंकि इनका स्वाद ही ऐसा है। लोभ से बड़े न होंगे, स्वाद से बड़े होंगे। भेद को समझ लेना।

लोभ का मतलब है, स्वाद तो मिला नहीं, कोई और कहता था कि मैंने खूब स्वाद पाया है, उसकी बात सुनकर लोभ पैदा हुआ। और स्वाद का मतलब है, जिसको ऐसा हुआ है, उसके पास बैठकर उसके सत्संग में थोड़ा सा रस लूटा। लोभ और स्वाद का भेद ख्याल रखना। जैसे मैं मिठाई की बात करूं और तुम्हारे मन में लोभ पैदा हो कि मिठाई हम खाएं। यह एक बात हुई। मेरे पास बैठकर तुम मिठाई का स्वाद ले लो, यह बात बड़ी और हुई।

अगर तुम्हें यहां बैठ-बैठकर स्वाद मिल गया--इसीलिए रोज बोल रहा हूं। कुछ समझाने को है, ऐसा नहीं। समझाने को क्या है? समझने को क्या है? न समझाने को कुछ है, न समझने को कुछ है। यहां रोज-रोज बोल रहा हूं, ताकि तुम्हें एक मौका रहे कि तुम मेरे पास बैठकर थोड़ी देर को डुबकी लगा लो। फिर यह डुबकी का स्वाद आ गया तो कभी-कभी घर शांत बैठे-बैठे डुबकी लग जाएगी। तुम्हारे बावजूद डुबकी लग जाएगी। तुम शायद लगाने के लिए सोच भी नहीं रहे थे, बैठे-बैठे लग जाएगी। कभी संगीत को सुनते वक्त लग जाएगी। कभी चांद-तारों को देखते वक्त लग जाएगी। कभी एक बच्चे की किलकारी सुनकर लग जाएगी। कभी गुलाब के खिले फूल को देखकर लग जाएगी।

फिर यह लगने लगेगी और-और घटनाओं में। फिर धीरे-धीरे तो ऐसी घटनाओं में लगने लगेगी, जब तुमने सोचा भी नहीं होगा कभी कि इसमें लग सकती है। चाय की चुस्की लेते हुए लग जाएगी। स्नान करते वक्त लग जाएगी। रात बिस्तर पर लेटे-लेटे लग जाएगी। सुबह आंखें खुल गयी हैं, बिस्तर पर पड़े-पड़े लग जाएगी। फिर तो अकारण लगने लगेगी।

स्वाद जब आने लगा तो बढ़ेगा। फिर तुम ऐसा न पूछोगे कि बुद्धि जलकर राख कब होगी? यह बुद्धि जलकर राख होने की जरूरत ही नहीं है, यह तो राख है ही। तो राख को ही तुम अंगारा समझे बैठे हो, इसको कुछ राख करना नहीं है। तुम्हारे हाथ में असली स्वाद आ जाए तो यह दिखायी पड़ने लगेगी कि राख है।

तुमने एक पत्थर के टुकड़े को हीरा समझ रखा है, अब तुम मुझसे यह पूछते हो कि यह पत्थर का टुकड़ा कब होगा? यह पत्थर का टुकड़ा है। इसको पत्थर का टुकड़ा होना नहीं है। अगर यह हीरा ही होता तो पत्थर का टुकड़ा बनाने की जरूरत ही क्या थी, यह तो बहुमूल्य है, इसको बचाने का सवाल था। यह राख है। हां, तुम्हें असली हीरे का पता चल जाए तो उसकी तुलना में तत्क्षण यह पत्थर हो जाएगा। तत्क्षण! फिर देर न लगेगी। फिर सोच-विचार भी न करना पड़ेगा। असली हीरा दिखा कि यह पत्थर तो पत्थर था ही, असली हीरे की मौजूदगी में साफ-साफ झलक जाएगा कि पत्थर है।

तो मैं तुम्हें बुद्धि को राख करने के लिए नहीं कह रहा हूं, बुद्धि तो राख है; कूड़ा-कचरा है, दूसरों से उधार लिया हुआ है। अपना जो नहीं, वह सब कचरा है। तुम्हारे पास अपना कुछ स्वाद हो जाए।

अब तुम पूछते हो, यह स्वाद कैसे हो?

यहां रोज तुम बैठते हो, इस बैठने में ही स्वाद को जगाना। यह बैठक साधारण बैठक न रहे। यह दरबार है, यह बैठक नहीं; यहां से तुम सम्राट होकर जा सकते हो। यहां जो घट रहा है, वह ऊपर-ऊपर जो सुनायी पड़ता है वही नहीं है, कुछ भीतर के तार जुड़ रहे हैं।

तुम मुझे ऐसे सुनो, जिसमें लोभ न हो। डुबकी लगाकर सुनो। और यह ख्याल ही छोड़ दो कि सुनने के बाद फिर कुछ करना है, यह बात ही जाने दो। मैं तुमसे बार-बार कहता हूं कि यह सुनने मात्र से भी हो सकता है। क्योंकि यह हुआ ही हुआ है। इसे पाना नहीं है। जिस दिशा में मैं इशारे कर रहा हूं, वह दिशा तुम्हारे भीतर मौजूद है। जिस मालकियत की मैं बात कर रहा हूं, उसका आयोजन नहीं करना है, उसका निर्माण नहीं करना है, एक झीना सा पर्दा पड़ा है, उस पर्दे को हटा देना है।

और मैं कहता हूं, तुम मुझे मौका दो तो मैं हटा दूं। तुम्हें इतना भी कष्ट करने की जरूरत नहीं। मैं हटा दूं। तुम जरा मुझे पास आने दो! बड़ा झीना पर्दा है। हटाने में जरा देर न लगेगी। पर्दा हटते ही तुम पाओगे, जिसकी तुम तलाश करते थे, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

पूछा है, "ये दुखदायी हैं, तो भी इनसे लगाव क्यों बना है?"

लगाव बना है तो एक बात साफ है, कहीं न कहीं सुख की झलक जुड़ी होगी, नहीं तो लगाव न बना रहेगा। तुम जरूर इसमें कहीं न कहीं मजा भी ले रहे होओगे।

जैसे, जब तुम आलोचना करते हो तब तुम्हें मजा आता होगा। अपनी बुद्धि के पैनेपन से मजा आता होगा कि देखो, कैसी धार की तरह बुद्धि! जब तुम किसी का खंडन करते होओगे, तो तुम्हें मजा आता होगा कि देखो, मैं ज्यादा बुद्धिमान, तुम कम बुद्धिमान। जब तुम अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते होओगे किसी के सामने, तो रस आता होगा कि देखो, तुम कुछ भी नहीं जानते, मैं कितना जानता! मैं कहां, तुम कहां! इसमें जरूर कहीं रस आ रहा होगा। बिना रस के तो तुम यह कर नहीं सकते। बिना रस के तो कोई लगाव होता नहीं है। दुख भी पा रहे हो... अब समझना, कैसा है मामला!

दुख कब मिलता है? जब तुम्हारी बुद्धि हारती है तब दुख मिलता है। और जब जीतती है तब सुख मिलता है। जब कोई तुम्हें तर्क में पराजित कर देता है तो दुख मिलता है। जब तुम तर्क में जीत जाते हो तो सुख मिलता

है। तब तो तुम बड़े झंझट में पड़े हो। क्योंकि यही बुद्धि सुख दिलाती, यही दुख दिलाती; यही नाव डुबाती, यही किनारे लगाती मालूम पड़ती, तो इसको छोड़ो कैसे! जब हार के क्षण होते हैं तब तुम छोड़ना चाहते हो, जब जीत के क्षण होते हैं तब तुम पकड़ रखना चाहते हो। और यह तो रोज होता रहेगा। यह हार और जीत तो घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमती रहती है। प्रतिपल हार और जीत हो रही है। हार और जीत दो पंख हैं। दोनों साथ-साथ चल रहे हैं।

इसे देखो। बुद्धि में दुख मिल रहा है, इसका मतलब है कि बुद्धि में अभी सुख भी मिल रहा होगा। सुनो मेरी बात--एक घड़ी ऐसी आती है जब बुद्धि दुख भी नहीं दे सकती है, क्योंकि सुख ही नहीं देती तो दुख कैसे देगी? जब बुद्धि दुख भी नहीं दे सकती तभी समझना कि लगाव छूटा। अब दुख भी देने को क्या है! जिससे सुख मिलता, उससे दुख मिलता। जिससे दुख मिलता, उससे सुख जरूर मिलता होगा। जिस दिन तुम पाओगे कि बुद्धि दुख भी नहीं दे पाती, उसी दिन बात खतम हो गयी, उस दिन सुख भी गया।

तुमने ख्याल किया, कभी ऐसे आदमी ने तुम्हें दुख दिया जिससे तुम्हें सुख न मिलता हो? इसीलिए तो अपने जो करीब होते हैं वे ही दुख देते हैं, दूर के लोग तो दुख नहीं देते। इसलिए पत्नी दुख देती है, पति दुख देता है, बेटा दुख देता है, मां दुख देती, पिता दुख देता, मित्र दुख देते, दूर जो हैं वे तो दुख नहीं देते। जो जितने पास है उतना ज्यादा दुख देता है। क्यों? क्योंकि जो जितना पास है, उससे उतना सुख मिलता है। मिलता या नहीं मिलता, कम से कम आभास तो होता है। जिससे आभास हो गया, उससे दुख मिलता है। तुम्हारी पत्नी तुम्हें बिना देखे निकल जाए, तो दुख होगा। कोई एक अजनबी औरत तुम्हें बिना देखे निकल जाए तो कोई दुख नहीं होता। तुम्हारा बेटा तुम्हें सम्मान न दे तो दुख होता है, किसी और का बेटा तुम्हें सम्मान न दे तो कोई दुख नहीं होता, कोई कारण नहीं है दुख का।

ख्याल करना, जिससे सुख की आशा है, उसी से दुख है।

तो पूछा है तुमने कि ये दुखदायी हैं, यह बुद्धि, यह नकारात्मकता, यह आलोचक दृष्टि, यह अहंकार... ।

इसका मतलब है कि तुम्हारा सुख अभी इनसे जुड़ा है, इसलिए लगाव है। ये दुख भी क्या खाक देंगे! इनका बल क्या है!

मेरी बात समझो, बुद्धि दुख भी क्या देगी! बुद्धि में है क्या दुख देने को! थोथे विचारों की भीड़ है, दुख क्या होगा? नपुंसक विचारों की भीड़ है, दुख क्या होगा? आते-जाते विचार की लहरें हैं, दुख क्या होगा? तुम बुद्धि को न तो दुख देने वाली, न सुख देने वाली, ऐसा जानो। दोनों नहीं है। तब तुम पाओगे कि तुम्हारी दूरी बढ़ने लगी। एक दिन तुम पाओगे, तुम्हारी उपेक्षा सघन हो गयी।

बुद्ध ने उपेक्षा शब्द का बहुत उपयोग किया है। उपेक्षा का अर्थ होता है, न दुख मिलता है, न सुख मिलता है। न कुछ लेना, न कुछ देना। ऐसे भाव में थिर हो जाने का नाम उपेक्षा है। उपेक्षा बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। जिससे कोई भी अपेक्षा न रही, ऐसी दशा का नाम उपेक्षा है। जिससे कुछ भी मिलेगा नहीं, ऐसा भाव थिर हो गया।

ऐसी उपेक्षा में जो जीने लगता है, उसको फिर कोई चीज सुख-दुख नहीं देती। सफलता आती है, द्वार-दरवाजा ठकठकाकर चली जाती है; असफलता आती है, द्वार-दरवाजा ठकठकाकर चली जाती है; सम्मान आता है, फूलों की वर्षा हो जाती है, अपमान आता है, कांटे बरस जाते हैं, वह बैठा रहता है, वह साक्षीभाव से बैठा रहता है। वह दोनों को एक ही भांति देखता रहता है। उसकी दृष्टि सम होती है।

दूसरा प्रश्नः बुद्धपुरुषों का बुद्धत्व के बाद दुबारा जन्म क्यों नहीं होता है?

जरूरत नहीं रह जाती। जन्म अकारण नहीं है, जन्म शिक्षण है। जीवन एक परीक्षा है, पाठशाला है। यहां तुम आते हो, क्योंकि कुछ जरूरत है। बच्चे को हम स्कूल भेजते हैं न, पढ़ने-लिखने, समझने-बूझने; फिर जब वह सब परीक्षाएं उत्तीर्ण हो जाता है, फिर तो नहीं भेजते। फिर वह अपने घर आ गया। फिर भेजने की कोई जरूरत न रही।

परमात्मा घर है--सत्य कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो--संसार विद्यालय है। वहां हम भेजे जाते हैं, ताकि हम परख लें, निरख लें, कस लें कसौटी पर अपने को सुख-दुख की आंच में, सब तरह के कड़वे-मीठे अनुभव से गुजर लें और वीतरागता को उपलब्ध हो जाएं। सब गंवा दें, सब तरफ से भटक जाएं, दूर-दूर अंधेरों में, अंधेरी खाइयों-खड्डों में सरकें, सत्य से जितनी दूरी संभव हो सके निकल जाएं और फिर बोध से वापस लौटें।

बच्चा भी शांत होता, निर्दोष होता; संत भी शांत होता, निर्दोष होता। लेकिन संत की निर्दोषता में बड़ा मूल्य है, बच्चे की निर्दोषता में कोई खास मूल्य नहीं है। यह निर्दोषता जो बच्चे की है, मुफ्त है, कमायी हुई नहीं है। यह आज है, कल चली जाएगी। जीवन इसे छीन लेगा। संत की जो निर्दोषता है, इसे अब कोई भी नहीं छीन सकता। जो-जो घटनाएं छिन सकती थीं, उनसे तो गुजर चुका संत। इसलिए परमात्मा को खोना, परमात्मा को ठीक से जानने के लिए अनिवार्य है। इसलिए हम भेजे जाते हैं।

बुद्धपुरुष को तो भेजने की कोई जरूरत नहीं, जब फल पक जाता है तो फिर डाली से लटका नहीं रहता, फिर क्या लटकेगा! किसलिए? वृक्ष से लटका था पकने के लिए। धूप आयी, सर्दी आयी, वर्षा आयी, फल पक गया, अब वृक्ष से क्यों लटका रहेगा! कच्चे फल लटके रहते हैं। बुद्ध यानी पका हुआ फल।

छोड़ देती है डाल
रस भरे फल का हाथ
किसी और कसैले फल को
मीठा बनाने के लिए

छोड़ ही देना पड़ेगा। वृक्ष छोड़ देगा पके फल को, अब क्या जरूरत रही! फल पक गया, पूरा हो गया, पूर्णता आ गयी। बुद्धत्व का अर्थ है, जो पूर्ण हो गया। दुबारा लौटने का कोई कारण नहीं।

हमारे मन में सवाल उठता है कभी-कभी, क्योंकि हमें लगता है, जीवन बड़ा मूल्यवान है। यह तो बड़ी उलटी बात हुई कि बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति को फिर जीवन नहीं मिलता। हमें लगता है, जीवन बहुत मूल्यवान है। बुद्धत्व को जो उपलब्ध है, उसे तो पता चल गया और बड़े जीवन का, और विराट जीवन का।

ऐसा ही समझो कि तुम शराबघर जाते थे रोज, फिर एक दिन भक्तिरस लग गया, फिर मंदिर में नाचने लगे, डोलने लगे, फिर प्रभु की शराब पी ली, अब शराबघर नहीं जाते। शराबी सोचते होंगे कि बात क्या हो गयी! ऐसी मादक शराब को छोड़कर यह आदमी कहां चला गया? अब आता क्यों नहीं?

इसे बड़ी शराब मिल गयी, अब यह आए क्यों? इसे असली शराब मिल गयी, अब यह नकली के पास आए क्यों? इसे ऐसी शराब मिल गयी जिसको पीकर फिर होश में आना ही नहीं पड़ता। और इसे एक ऐसी शराब मिल गयी जिसमें बेहोशी भी होश है। अब यह इस क्षुद्र सी शराब को पीने क्यों आए?

बुद्धत्व को पाया व्यक्ति परम सागर में डूब गया। जिसकी तुम तलाश करते थे, जिस आनंद की, वह उसे मिल गया, अब वह यहां क्यों आए? यह जीवन तो कच्चे फलों के लिए है, ताकि वे पक जाएं, परिपक्व हो जाएं। इस जीवन के सुख-दुख, इस जीवन की पीड़ाएं, इस जीवन के आनंद, जो कुछ भी है, वह हमें थपेड़े मारने के लिए है, चोटें मारने के लिए है।

देखा, कुम्हार घड़ा बनाता है, घड़े को चोटें मारता है। एक हाथ भीतर रखता है, एक हाथ बाहर रखता, चाक पर घड़ा घूमता और वह चोटें मारता! फिर जब घड़ा बनकर तैयार होगा, चोटें बंद कर देता है; फिर घड़े को आग में डाल देता है। फिर जब घड़ा पक गया, तो न चोट की जरूरत है, न आग में डालने की जरूरत है।

संसार में चोटें हैं और आग में डाला जाना है। जब तुम पक जाओगे, तब प्रभु का परम रस तुममें भरेगा। तुम पात्र बन जाओगे, तुम घड़े बन जाओगे, फिर कोई जरूरत न रह जाएगी।

तीसरा प्रश्नः मनुष्यों में जो प्रथम बुद्ध हुए होंगे, वे किस मार्ग से गए होंगे? उनका गुरु कौन था?

प्रथम और अंतिम की बात उचित नहीं है, क्योंकि जो है, सदा से है। ऐसा थोड़े ही है कि कभी कोई प्रथम दिन था। ऐसा थोड़े ही है कि कभी कोई ऐसी घड़ी थी जिसके पहले कुछ भी नहीं था और फिर अचानक सब हुआ।

यह अस्तित्व शाश्वत है, सनातन है। यह सदा से है और सदा रहेगा। न यहां कोई प्रथम है, न यहां कोई अंतिम है। हमारी बुद्धि की सीमा है, हम इस शाश्वत को नहीं देख पाते। हम कितना ही खींचें इस शाश्वत को, हमें फिर भी लगता है, कहीं तो, कभी तो कुछ शुरू हुआ होगा। हम कितना ही पीछे जाएं, कितना ही पीछे जाएं, हमें लगता है कि फिर भी किसी दिन तो ऐसा हुआ होगा कि सब शुरू हुआ। बिना शुरू हुए सब कैसे हो गया! हमें यह बात असंभव लगती है कि सब सदा से है।

और इसके कारण हम एक दूसरी असंभव बात को मान लेते हैं कि एक दिन कुछ भी न था और फिर सब हो गया! दूसरी बात ज्यादा असंभव है। पहली बात उतनी असंभव नहीं है। क्योंकि जो आज है, वह कल भी हो सकता है, परसों भी हो सकता है। जीवन, अस्तित्व सदा से है। कभी हुआ नहीं, इसका कोई प्रारंभ नहीं है और न इसका कोई अंत है। यह एक सतत धारा है। इस सातत्य को समझो, तो फिर तुम्हें यह सवाल नहीं उठेगा कि पहला बुद्ध जब हुआ होगा। पहला बुद्ध होगा कैसे! ऐसा हो ही कैसे सकता है! सोचो, यह तो बात बड़ी दुर्घटना की होगी।

अगर कोई पहला बुद्ध हुआ--समझो कि दस हजार साल पहले पहला बुद्ध हुआ--तो उसके पहले सारा अस्तित्व बुद्धत्व से हीन रहा? उसके पहले कभी कोई बुद्ध नहीं हुआ? अनंत-अनंत काल तक अस्तित्व में कोई फूल न खिला? यह तो बड़ी बेरौनक बात होगी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, अनंत बुद्ध मुझसे पहले हुए हैं, अनंत बुद्ध मेरे बाद होंगे, बुद्ध होते ही रहे हैं।

अस्तित्व कभी भी बुद्धत्व से खाली नहीं हुआ। सारी बदलाहट, यह बड़ी धारा, यह बड़ा क्रम, हमें लगता है कभी-कभी कि ऐसा पहले शायद न हुआ हो। सोचो, जब कोई व्यक्ति पहली दफा प्रेम में पड़ता है तो उसे लगता है, ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ था, ऐसा प्रेम! लेकिन क्या तुम सोचते हो यह पहली घड़ी होगी? अनंत-अनंत लोगों ने प्रेम किया है और सबने ऐसा ही अनुभव किया है कि ऐसा कभी न हुआ होगा। फिर भी प्रेम सदा होता रहा है। जैसे प्रेम सदा होता रहा है, वैसे ध्यान भी सदा होता रहा है। इस जगत में कुछ भी नया नहीं है।

कुछ भी नया हो नहीं सकता। नए का तो अर्थ ही यह होगा कि अनंत-अनंत काल तक न हुआ, फिर आज हो गया। तो ये अनंत काल व्यर्थ ही गए--बांझ! कुछ पैदा न हुआ!

बुद्ध ने या महावीर ने इस सत्य की खूब चर्चा की है। इस सत्य को बांटा है। अलग-अलग पहलुओं से समझाने की कोशिश की है। एक पहलू समझने जैसा है, कि जगत का अस्तित्व वर्तुलाकार है। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है। तुम एक वर्तुल बनाओ और एक रेखा खींचो। तो रेखा में तो प्रारंभ होता है और अंत होता है। तुम बता सकते हो कि यहां रेखा शुरू हुई, यहां अंत हो गयी। लेकिन वर्तुल को तुम कैसे बताओगे, कहां रेखा शुरू हुई, कहां अंत हो गयी? वर्तुल तो बस है। न कोई प्रारंभ है न कोई अंत। अस्तित्व वर्तुलाकार है।

भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर जो चाक बना है, वह बौद्धों का है। और वह चाक अस्तित्व का प्रतीक है। जैसे चाक घूमता, चक्र घूमता, ऐसा वर्तुलाकार है अस्तित्व। फिर-फिर वही आरे ऊपर आ जाते हैं। जैनों ने कहा है कि प्रत्येक कल्प में चौबीस तीर्थंकर होते हैं, जैसे कि एक गाड़ी के चके में चौबीस आरे हों। फिर कल्प होगा, फिर चौबीस तीर्थंकर होंगे, फिर कल्प होगा, फिर चौबीस तीर्थंकर होंगे। और ऐसे अनंत कल्प हुए और अनंत कल्प होते रहेंगे, गाड़ी का चाक घूमता रहेगा।

पूरब और पश्चिम में समय की धारणा में यही भेद है। पश्चिम की समय की धारणा एक रेखा जैसी जाती है। पूरब की समय की धारणा वर्तुलाकार है। और पूरब की समय की धारणा ज्यादा सत्य के अनुकूल है, क्योंकि रेखाएं होती ही नहीं। तुमने कोई भी चीज रेखा में देखी है?

बच्चा हुआ, जवान हुआ, बूढ़ा हुआ। आया था तब बिना दांत के आया था, बूढ़ा जब हो गया तो फिर बिना दांत के हो गया। एक वर्तुलाकार प्रक्रिया है। बूढ़े फिर बच्चों जैसे जिद्दी हो जाते हैं, फिर बच्चों जैसे निर्दोष हो जाते हैं, फिर बच्चों जैसे झगड़ालू हो जाते हैं, फिर बच्चों जैसा ही उनका ढंग हो जाता है, व्यवहार हो जाता है।

ऐसे ही मौसम घूमते हैं--गर्मी आयी, फिर वर्षा आयी, फिर शीत आयी, फिर गर्मी आ गयी। ऐसे ही चांद-तारे घूमते हैं। ऐसे ही पृथ्वी घूमती है। ऐसा ही सूरज घूमता है। यह सारा अस्तित्व वर्तुल में घूम रहा है।

तो पूरब कहता है, समय भी वर्तुलाकार ही होगा, रेखाबद्ध नहीं हो सकता। इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा। क्योंकि इतिहास का मतलब तो तभी होता है जब घटना एक बार घटती हो और बार-बार न घटती हो। तब तो इतिहास लिखने का कोई मतलब होता है, क्योंकि प्रत्येक घटना अनूठी है। फिर दुबारा तो होगी नहीं, हो गयी तो हो गयी, इसलिए लिख रखने जैसी है। अगर बार-बार होनी है तो लिख रखने जैसी क्या है! फिर होगी, फिर होगी, होती ही रही है। इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा, पूरब ने पुराण लिखा। पुराण बड़ी अलग बात है।

इसलिए पश्चिम और पूरब की समझ में बड़े भेद हैं। जब पश्चिम का कोई व्यक्ति राम की कथा पढ़ता है, तो वह पूछता है कि यह ऐतिहासिक है या नहीं? ऐसा हुआ या नहीं? हमारे पास इसका उत्तर नहीं है। क्योंकि हमें इतिहास में रस ही नहीं है। हमारा तो यह कहना है कि जब भी अनंत-अनंत काल में राम हुए हैं, तो उन सबकी कथा का यह सार है।

इस फर्क को समझना।

एक तो है एक आदमी एक स्त्री के प्रेम में पड़ा और हमने उसका ब्यौरा लिखा। कैसे प्रेम में पड़ा, कहां प्रेम में पड़ा, रास्ते में मिल गए, कि बस में मिल गए, कि ट्रेन में मिलना हो गया, हमने उसका ब्यौरा लिखा। एक-एक बात लिखी, कौन घड़ी, कौन ठिकाने, किस तिथि में मिलना हुआ, कब विवाह किया, कब इनको बच्चा पैदा हुआ, यह सब ब्यौरा लिखा। यह तो इतिहास है।

फिर हमने जितने लोग अब तक प्रेम में पड़े, उन सबके प्रेम का जो सारभूत है, जो प्रेम का निचोड़ है, वह लिखा। वह पुराण है। उसमें किसी एक व्यक्ति का ब्यौरा नहीं है। उसमें सारे व्यक्तियों के प्रेम का सार-निचोड़ है। कहां मिले, यह सवाल अब महत्वपूर्ण नहीं है। मिले, यह बात जरूर सच है। क्योंकि बिना मिले कैसे प्रेम होगा? प्रेम हुआ, यह बात सच है, तो प्रेम का मौलिक अंश क्या है, मूलभूत क्या है, वह हमने लिखा।

राम की कथा कोई ऐसी कथा नहीं है कि इस कल्प में हुई; बहुत बार हुई। उस हर बार होने से जो हमने सार-निचा.ेड़ लिया, वह लिखा। इसी तरह जीसस का जो जीवन है, वह ऐतिहासिक है, उसमें तथ्यों पर जोर है। महावीर का जो जीवन है, वह ऐतिहासिक नहीं है। और बुद्ध का जो जीवन है, वह भी ऐतिहासिक नहीं है।

इतिहास दो कौड़ी का है, क्योंकि हमारी पकड़ बहुत गहरी है। हम यह कहते हैं कि जब भी जितने बुद्ध हुए, उन सबका जो सार-निचोड़ है, वह हमने फिर गौतम बुद्ध में पढ़ लिया, फिर हमने गौतम बुद्ध के नाम से लिख दिया। फिर आगे कोई बुद्ध होगा, गौतम बुद्ध तब तक भूल जा चुके होंगे, बिछड़ गए होंगे इतिहास के पुराने रास्तों पर, भूल चुके होंगे, फिर नया बुद्ध सारे बुद्धों में जो होता है, उसको फिर से पुनरुज्जीवित कर देगा। लेकिन कथा वही है। नाम बदल जाते हैं, रंग-ढंग बदल जाते हैं, लेकिन कथा वही है। गीत वही है, धुन वही है, टेक वही है।

इसलिए सारी बातें बुद्ध के जीवन में जो लिखी हैं, तुम ऐसा मत सोचना कि वे सच हैं। सच ऐतिहासिक अर्थों में नहीं हैं। कई बातें ऐसी हैं जो दूसरे बुद्धों के जीवन में घटी होंगी। और कई बातें ऐसी हैं जो आने वाले बुद्धों के जीवन में घटेंगी। बुद्ध के जीवन में हमने सबका सार रख दिया है। निचोड़ है।

गुलाब का एक फूल है, यह इतिहास! और हमने बहुत से फूलों का इत्र निकाल लिया, यह पुराण। उस इत्र में सभी गुलाबों की गंध आ गयी। मगर अब तुम यह न कह सकोगे, किस गुलाब से बना यह इत्र, अब मुश्किल है, अब बताना बिल्कुल मुश्किल है। जो तुम्हारी बगिया में खिला था, उस गुलाब से? या जो पड़ोसी की बगिया में खिला था, उस गुलाब से, कि पीले गुलाब से, कि लाल गुलाब से, कि सफेद गुलाब से? अब यह बताना बहुत मुश्किल है। अब तो यह इत्र सबका सार-निचोड़ है।

हमने इत्र लिखा, पश्चिम गुलाबों की रूपरेखा लिखता है, एक-एक गुलाब का हिसाब रखता है। हम कहते हैं, एक-एक गुलाब का हिसाब रखने से सार भी क्या है। सब गुलाब अपनी मूलभूत सत्ता में समान होते हैं, इसलिए हमारे सत्य सार्वलौकिक हैं, सार्वभौम हैं, शाश्वत हैं।

पूछा है तुमने, "मनुष्यों में जो प्रथम बुद्ध हुए होंगे... ।"

नहीं, कोई प्रथम नहीं हुआ। प्रथम के भी पहले बहुत हुए हैं। तो प्रथम कहने का कोई अर्थ नहीं है। और अंतिम भी कोई नहीं होगा। अंतिम के बाद भी होते रहेंगे।

प्रश्न है कि "किस मार्ग से गए होंगे वे? उनका गुरु कौन था?"

उनके पहले इतना ही समय हो चुका था जितना हमारे पहले हुआ है, क्योंकि समय अनंत है। इसमें हिसाब नहीं लगाया जा सकता है।

मैंने सुना है, एक म्यूजियम में म्यूजियम का गाइड एक यात्रियों के दल को चीजें दिखा रहा था। फिर उसने एक अस्थिपंजर बताया और कहा कि यह एक करोड़ तीन साल सात दिन पुराना है। यात्री भी थोड़े चौंके! एक करोड़ तीन साल सात दिन पुराना! उन्होंने कहा, एक करोड़ तो ठीक, मगर यह तीन साल और सात दिन! इतना हिसाब रखा है! उसने कहा, हां! तो कैसे पता चला यह तीन साल और सात दिन का? तो उसने कहा, ऐसे

पता चला कि आज से तीन साल सात दिन पहले इस म्यूजियम का जो डायरेक्टर है, उसने मुझसे कहा था कि यह एक करोड़ वर्ष पुराना है। तो अब मैं उसमें जोड़ता जाता हूं, क्योंकि अब तीन साल सात दिन बीत चुके।

अतीत अनंत है। तुम क्या सोचते हो कि हम बुद्ध के पच्चीस सौ साल बाद हुए--पच्चीस सौ साल बाद--तो क्या तुम सोचते हो, अतीत की अनंतता में धन पच्चीस सौ साल जुड़ गए? अतीत की अनंतता में क्या जोड़ोगे, क्या घटाओगे? अनंत अतीत की दृष्टि से तो कुछ भी नहीं बीता है, पच्चीस सौ साल कुछ भी नहीं बीते, बीता ही नहीं कुछ! अनंत में कुछ जोड़ो तो बढ़ता नहीं और घटाओ तो घटता नहीं। उपनिषद का वचन तुम्हें याद है न, पूर्ण में पूर्ण को जोड़ दो तो पूर्ण बड़ा नहीं होता, और पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लो तो पूर्ण छोटा नहीं होता। पूर्ण का अर्थ ही यह होता है, उसमें जोड़ा नहीं जा सकता और घटाया नहीं जा सकता। कितना ही जोड़ते चले जाओ।

अनंत का ख्याल करो, हमसे पहले अनंत काल बीत चुका है। अनंत का अर्थ ही होता है कि जिसका कभी कोई प्रारंभ नहीं था। अब उसमें पच्चीस सौ साल जुड़ने से कोई फर्क थोड़े ही पड़ता है। जितना काल हमसे पहले बीता है, उतना ही काल बुद्ध के समय में भी बीत चुका था। उतना ही! और हमारे बाद भी पच्चीस सौ साल बाद जब कोई आएगा, और चर्चा करेगा, तब भी उतना ही काल बीता है, कुछ फर्क नहीं पड़ा है।

इसलिए किस मार्ग से गए होंगे उनके पहले जो बुद्ध गए थे? अनंत-अनंत बुद्ध! स्वभावतः उसी मार्ग में से उन्होंने अपना मार्ग चुना होगा। उनके पहले जो अनंत दीपस्तंभ हुए थे, उन्हीं की रोशनी में उन्होंने अपनी खोज की होगी।

यहां कोई पहला नहीं है और यहां कोई अंतिम नहीं है। हम सब संयुक्त हैं।

तुम ऐसा सोचो, तुम अपने पिता से पैदा हुए, तुम्हारे पिता अपने पिता से पैदा हुए होंगे, पिता के पिता और किसी से पैदा हुए होंगे, तुमने कभी ऐसा सोचा कि पहला आदमी किससे पैदा हुआ होगा? वैसे ही यह भी प्रश्न है, पहला आदमी किससे पैदा हुआ होगा? पहला आदमी हो ही नहीं सकता। क्योंकि जब भी कोई आदमी पैदा होगा, पिता की जरूरत पड़ेगी, मां की जरूरत पड़ेगी। किसी से पैदा होगा। पहला आदमी हो ही नहीं सकता। और न अंतिम आदमी हो सकता है। क्योंकि जो है, वह रहेगा, मिटता नहीं। जो है, था और रहेगा।

इसका तुम्हें बोध आ जाए, यह विस्तार का तुम्हें थोड़ा स्मरण आ जाए।

यह कठिन है स्मरण करना, क्योंकि हमारी बुद्धि की बड़ी सीमा है, कितना ही खींचो-तानो, हम कहते हैं, कोई तो हुआ होगा पहले! हमारा मन पूछे ही चला जाता है, कोई तो हुआ होगा पहले! कभी तो अंत होगा!

इसे और तरह से देखो। हम कहते हैं, जगत असीम है। सोचो, चलते जाओ, चलते जाओ, चलते जाओ, प्रकाश की गति से चलो--प्रकाश बड़ी तीव्र से तीव्र गति है, एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड--प्रकाश की गति से तुम्हारा हवाई जहाज चला जा रहा है, या और भी बड़ी गति खोज लो। क्या तुम कभी ऐसी घड़ी में आओगे जहां तुम जगत की सीमा पर पहुंच जाओ?

समझना, इस पर दार्शनिक बहुत चिंतन करते रहे हैं कि ऐसी कोई जगह आएगी जहां तख्ती लगी हो कि यहां समाप्त हो गया संसार, अब आगे मत जाना नहीं तो गिर पड़ोगे? मगर अगर आगे गिर पड़ने को भी जगह है, तो अभी संसार बाकी है। अगर सीमा भी खींची जा सकती है कि यहां संसार समाप्त हो गया, तो सीमा तो बनती ही दो से है, तो यहां से कोई और चीज शुरू हो गयी। हर अंत शुरुआत है। हर द्वार कहीं खुलता है, कहीं बंद होता है।

अगर तुम एक ऐसी जगह पहुंच गए--ठीक है, यहां होता है ऐसा कि तुम पहुंच गए, महाराष्ट्र खतम, गुजरात शुरू, यह यहां हो जाता है। लेकिन गुजरात तो होना चाहिए, नहीं तो महाराष्ट्र खतम कैसे होगा? महाराष्ट्र खतम हो जाता है, गुजरात शुरू हो जाता है; हिंदुस्तान खतम हो जाता है, पाकिस्तान शुरू हो जाता है। जहां कुछ खतम होता है, वहां तत्क्षण कुछ शुरू हो जाता है। अगर यह विश्व कहीं खतम होता हो और एक रेखा आ जाती हो, जहां तख्ती लगी है, चुंगी-चौकी बनी है कि बस, आगे मत बढ़ना, यहां संसार खतम! तो उसका मतलब है, आगे कुछ तो होगा।

नहीं, ऐसी चुंगी-चौकी पर तुम कभी न पहुंचोगे। ऐसी कोई चुंगी-चौकी है ही नहीं। हो ही नहीं सकती। होना ही असंभव है। क्योंकि जहां भी रेखा खींचनी हो, रेखा दो के बीच खिंचती है। और अगर दूसरा मौजूद है तो अभी अंत नहीं आया। तो रेखा खिंच ही नहीं सकती। रेखा असंभव है। जब हम कहते हैं, जगत असीम है, तो हम कहते हैं, आकाश असीम है। और जब हम कहते हैं, जगत अनंत है, तो हम कहते हैं, समय, काल की धारा अनंत है।

समय और आकाश दोनों अनंत हैं। यहां न कभी कोई प्रथम हुआ और न कोई अंतिम होगा।

चौथा प्रश्नः आपके चरणों में सिर रखकर अपना प्रेम प्रगट करना मेरा ध्येय था, जिसके कारण मुझे संन्यास लेने में अड़चन नहीं हुई। कृपया बताएं कि गुरु की क्या जिम्मेवारी है? मुझे कैसे भरोसा आए कि मुझे गुरु प्राप्त हो गया? मैं आपसे चकित हूं!

पहली तो बात, क्या मुझ पर कोई मुकदमा चलाने का इरादा है? गुरु की जिम्मेवारी गुरु जाने! तुम जानकर क्या करोगे? कि अगर जिम्मेवारी न पूरी की गयी तो कोई झंझट-बखेड़ा खड़ा करोगे? गुरु की जिम्मेवारी गुरु जाने! तुम अगर पूछना ही हो तो शिष्य की जिम्मेवारी पूछो, क्योंकि वह तुम्हें करनी है। अपनी बात पूछो।

अपनी बात तो तुमने नहीं पूछी, तुम फिकर कर रहे हो कि गुरु की क्या जिम्मेवारी है! जैसे तुम्हारा काम तो अब पूरा हो गया; क्योंकि चरणों में सिर रख दिया, बात खतम हो गयी। हालांकि चरणों में सिर अभी रखा नहीं, नहीं तो जिम्मेवारी पूछते नहीं। जब चरणों में सिर रख ही दिया तो अब बचा क्या! अब बात खतम हो गयी। अब जो मर्जी सो करो। अब जैसा लगे, करो। यह गर्दन काटनी हो तो काट दो। अब कोई बात न रही पूछने की।

लेकिन तुमने चरणों में सिर रखकर जैसे गुरु पर अनुकंपा की, कि अब बोलो! कि हम तो कर दिए जो करना था, अब आपकी तरफ से क्या होगा? क्योंकि हमने तो सिर रख दिया!

सिर में है क्या? सिर काटकर बेचने जाओगे, कितने में बिकेगा?

ऐसा हुआ, कि अकबर के पास फरीद कभी-कभी आता था, अकबर फरीद के पास भी कभी-कभी जाता था। फरीद अनूठा फकीर था। जब अकबर फरीद के पास जाता या फरीद अकबर के पास आता तो अकबर सिर झुकाकर उसके चरणों में प्रणाम करता था। अकबर के वजीरों को बात न जंचती थी, उनको बड़ा अखरता था कि बादशाह और किसी फकीर के चरणों में सिर झुकाए! आखिर उनसे न रहा गया और उन्होंने कहा, यह शोभा नहीं देता कि आप अपना सिर झुकाएं फकीर के कदमों में। इसकी कोई जरूरत नहीं है, साधारण आदमी जैसा

आदमी, आपने समझा क्या है! आप क्यों इतना अपने को विनम्र कर लेते हैं? तो अकबर ने कहा, तुम एक काम करो, इसका उत्तर तुम्हें शीघ्र ही दूंगा, अभी रुको।

कोई महीने-पंद्रह दिन बाद एक आदमी को फांसी हुई, अकबर ने उसकी गर्दन कटवा ली और अपने वजीरों को कहा कि इसको बाजार में जाकर बेच आओ। सुंदर आदमी था, सुंदर चेहरा था, आंखें बड़ी प्यारी थीं। साफ-सुथरा करके सोने की थाली में रखकर वजीर उसको बाजार में बेचने गए। जिसकी दुकान पर गए, उसी ने कहा कि हटो, हटो, बाहर निकलो! तुम्हारा दिमाग खराब हुआ है? इसको करेंगे क्या लेकर? आदमी का सिर किस काम आता है, उन्होंने कहा! अगर हाथी का सिर होता तो कुछ काम भी आ जाए। हिरन का सिर हो तो कुछ सजावट के काम आ जाए। इसको हम करेंगे क्या! यह बदबू आएगी और गंदगी होगी, हटो! कोई आदमी दो पैसा देने को तैयार नहीं हुआ। वजीर बड़े हैरान हुए।

लौटकर आए, अकबर से कहा, कि दुखी हैं हम, लेकिन कोई आदमी दो पैसा देने को तैयार नहीं, उलटे लोग नाराज होते हैं। जिसके पास हम गए उन्होंने कहा कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, इसको करेंगे क्या?

तो अकबर ने कहा कि यह तुम्हारे लिए मेरा उत्तर था। आदमी के सिर की कीमत क्या है! दो पैसे में भी कोई लेने को तैयार नहीं है। तुम सोचते हो, मेरा सिर काटकर किसी दिन तुम बेचने जाओगे तो कोई खरीदेगा! तो जिसकी दो कौड़ी कीमत नहीं है, उसको अगर मैंने किसी फकीर के चरणों में झुका दिया, तुम्हें अड़चन क्या है? जिसका कोई मूल्य ही नहीं है!

इसका नाम झुकाना है। सिर में मूल्य नहीं है, इसको जानना ही सिर का झुकाना है। तुमने झुकाया होगा सिर, लेकिन यही सोचकर कि बड़ा गजब कर रहे हैं! बड़ी अनूठी घटना तुम कर रहे हो! कि देखो सिर झुका रहे हो! तुम्हारे मन में यह ख्याल है कि सिर का कोई बड़ा मूल्य है। मैं जानता हूं कि तुमने बड़ी अड़चन से झुकाया होगा, बहुत दिन सोचा होगा, विचारा होगा। लेकिन तुम्हारे सोच-विचार से कुछ सिर में मूल्य नहीं आ जाता। सिर झुकाने का अर्थ यह है कि तुमने यह कहा कि सिर में तो कुछ भी नहीं है, अब सिर के आगे कुछ यात्रा हो जाए। सिर में तो कुछ नहीं पाया, अब सिर के पार जाने की अभीप्सा प्रगट की।

इसीलिए पूरब में हम सिर झुकाते हैं गुरु के चरणों में जाकर। हम यह कहते हैं कि सिर से तो कुछ मिला नहीं, सिर की तो दौड़-धूप खूब कर लिए हैं, सिर की तो माराधापी खूब कर ली है, इससे कुछ मिला नहीं। पीड़ा पायी, असंतोष पाया, अतृप्ति पायी, ज्वरग्रस्त रहे, दुख-स्वप्न देखे, सिर से तो कुछ मिला नहीं, यह तो आपके पैरों में रख देते हैं यह सिर, अब कुछ ऐसा बताएं कि सिर के ऊपर कैसे जाएं? सिर का कोई मूल्य नहीं है, यही घोषणा सिर झुकाने में है।

तुम पूछते हो कि मैंने तो अपना सिर आपके चरणों में रख दिया, अब? बताएं कि गुरु की जिम्मेवारी क्या है?

तुम सोचते हो, तुम्हारा काम खतम हो गया। तुम्हारा काम शुरू हुआ। सिर में तो कुछ था नहीं, कचरा तुमने चढ़ा दिया पैरों पर, अब भूल जाओ सिर को। अगर नहीं भूले और याद रखा तो चढ़ाया ही नहीं। और अब पूछो कि शिष्य की जिम्मेवारी क्या है? अब मैं क्या करूं? यह तो कोई करने जैसी बात न थी, यह तो सिर्फ शुरुआत है करने की। यह कोई बहुत बड़ा काम नहीं हो गया। इससे कुछ क्रांति नहीं हो जाएगी। अब क्या करूं? व्यर्थ तो छोड़ दिया, अब सार्थक को कैसे तलाशूं? यह पूछो।

लेकिन तुम पूछते हो, "गुरु की जिम्मेवारी क्या है?"

तुम्हारा मतलब यह है कि हमारी तरफ का काम तो हमने कर दिया है, अब आप, अब आप बताएं आपकी जिम्मेवारी क्या है?

यह बात ही शिष्य न होने का लक्षण है। मेरी जिम्मेवारी मैं समझता हूं। तुम उसे समझ भी न सकोगे अभी। अभी तुम शिष्य भी नहीं हुए, तो तुम गुरु की जिम्मेवारी तो कैसे समझ सकोगे? गुरु की जिम्मेवारी तो तभी समझ में आएगी जब तुम शिष्यत्व की गहराई में इतने उतर जाओगे कि तुम्हारे भीतर ही गुरु का जन्म होने लगेगा, तब तुम गुरु की जिम्मेवारी समझ सकोगे। अभी तो तुम्हें आंख चाहिए, अभी तो तुम्हें विनम्रता चाहिए, सरलता चाहिए, ध्यान चाहिए, प्रेम चाहिए, भक्ति चाहिए, अभी तो तुम्हें बहुत कुछ करना है। यह तो सिर्फ घोषणा हुई तुम्हारी, तुमने शपथ ली कि हम झुक गए, अब हम करने को तैयार हैं; अब जो कहेंगे, हम करेंगे।

लेकिन प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि अधिक लोगों का यही भाव होता है कि हम तो कर दिए जो करने योग्य था, अब जो करना हो आप करें। मैं करूंगा, लेकिन मेरे अकेले किए कुछ भी न होगा, क्योंकि तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। तुम अगर साथ दोगे तो ही होगा। मैं तो करूंगा, लेकिन अगर तुमने विरोध किया तो कुछ भी न हो सकेगा। तुमने अगर द्वार-दरवाजे बंद रखे, तो यह सूरज की किरण बाहर ही खड़ी रहेगी और भीतर न आ सकेगी। सूरज की किरण जोर-जबरदस्ती से भीतर आ भी नहीं सकती। तुम्हें सहयोग देना होगा, द्वार-दरवाजे खोलना होगा।

अब तुम पूछते हो, "मुझे कैसे भरोसा आए कि मुझे गुरु प्राप्त हो गया?"

यह तुम्हें भरोसे का सवाल ही नहीं है। तुम्हें तो इतना ही भरोसा लाना है कि तुम शिष्य हो गए, बस, इतना ही भरोसा आ जाए तो बात समाप्त हो गयी। तुम्हारा काम तुम पूरा कर दो। इतनी बात तुम्हारी तुम पूरी कर दो कि तुम शिष्य हो गए, तुम्हारे शिष्य होने में ही भरोसा आ जाएगा कि गुरु मिल गया। और कोई उपाय नहीं है। मैं और कोई प्रमाण नहीं जुटा सकता। जो भी प्रमाण जुटाऊंगा, वे व्यर्थ होंगे। उनसे कैसे भरोसा आएगा? मैं लाख कहूं कि तुम्हें मिल गया, इससे कैसे भरोसा आएगा?

तुम शिष्य बनोगे, उसी शिष्य बनने में कुछ रसधार बहेगी, कुछ प्राणों में गुनगुनाहट उठेगी, कुछ मस्ती जगेगी, उसी मस्ती में प्रमाण मिलेगा कि गुरु मिल गया, अब अकेला नहीं हूं। तुम अपने अकेलेपन में भी एकांत में जब मौन बैठोगे तब तुम पाओगे कि कोई मौजूद है। तुम अपने भीतर भी झांकोगे तो पाओगे कोई मौजूद है। तुम्हारा हाथ किसी के हाथ में है। चलते, उठते, बैठते जैसे-जैसे तुम शिष्य बनते जाओगे, वैसे-वैसे तुम्हें लगता जाएगा कि गुरु साथ है। एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम तो विसर्जित ही हो जाते हो, तुम्हारे भीतर गुरु ही विराजमान हो जाता है।

अभी तो सिर झुकाया है, अभी हृदय में विराजमान करना होगा। और उसी के साथ प्रमाण मिलेगा।

शिष्य का ऐसा भाव होता है--स्वामी योग प्रीतम ने एक गीत लिखा हैकृ

जब तुम अपना माधुर्य लुटाते हो मुझ पर
मेरे प्राणों के नीलकमल खिल जाते हैं।
तेरी स्वरलहरी का आलिंगन पाते ही
हृद्वीणा हौले से झंकृत हो जाती है
तेरी मस्ती की धुन बजने लगती मुझमें

मेरे तन-मन की पंखुड़ियां खुल जाती हैं
छिड़ जाता कैसा राग तुम्हारे कंठों से
अंतस आंगन में कोटि दीप जल जाते हैं
जब तुम अपना माधुर्य लुटाते हो मुझ पर
मेरे प्राणों के नीलकमल खिल जाते हैं।
जाने कैसा जादू है तेरी चितवन में
मन के सब खिड़की-दरवाजे खुल जाते हैं
मन का सारा काठिन्य पिघल जाता पल में
जन्मों-जन्मों के पाप-शाप धुल जाते हैं
जब तुम निज करुणाजल बरसाते हो मुझ पर
मेरे भीतर शत-शत झरने बह जाते हैं
जब तुम अपना माधुर्य लुटाते हो मुझ पर
मेरे प्राणों के नीलकमल खिल जाते हैं।
तेरे भीतर से बरस रहा है प्रेमामृत
जो प्यासे चातक पी जाते हैं महाभाग
तू एक छबीला फूल जगत की बगिया का
वे धन्य भ्रमर जो लूट रहे तेरा पराग
जब तुम अपना आशीष लुटाते हो मुझ पर
मेरे नभ में सौ-सौ सूरज उग आते हैं
जब तुम अपना माधुर्य लुटाते हो मुझ पर
मेरे प्राणों के नीलकमल खिल जाते हैं।

शिष्य का भाव ऐसा है। वह तो आंखें खोलकर जैसे चातक चंद्रमा को निहारे, ऐसा गुरु को निहारता है। प्रमाण नहीं पूछता। तुम्हारी आंख ही धीरे-धीरे प्रमाण देने लगेगी। जैसे-जैसे तुम्हारी आंख खुलेगी और रोशनी तुम्हारे भीतर उतरेगी वैसे-वैसे प्रमाण मिलेगा। वह तो अपने हृदय को खोलकर बैठ जाता है। वह तो अपनी सब साज-सुरक्षा छोड़ देता है। वह तो अपने हृदय पर से सब द्वारपाल हटा देता है। वह तो कहता है, आओ, जब भी आओ, दिन-रात, सोते-जागते, मेरा हृदय खुला पाओगे। धीरे-धीरे गुरु की पगध्वनि हृदय के पास सुनायी पड़ने लगती है।

पूछा है, "मैं आपसे चकित हूं!"

सुंदर है। चकित हो, यह शुभ है। लेकिन इतने से ही काम नहीं होगा। चकित होना अच्छी शुरुआत है, तुम आश्चर्य से भर गए हो। लेकिन यह आश्चर्यभाव जल्दी ही खो जाएगा, अगर आगे न बढ़े। आश्चर्यभाव तो ऐसा ही है जैसे हम कार को चलाना शुरू करते हैं, तो बैटरी से कार शुरू होती है। मगर बैटरी से चलती नहीं। शुरू हो गयी, फिर तो इंजिन से चलती है, फिर तो पेट्रोल से चलती है। चकित-भाव तो कार में बैटरी की भांति है। यात्रा शुरू हो जाती है इससे, लेकिन तुम इसी के सहारे रहे तो ज्यादा देर नहीं चल पाएगी।

आश्चर्य से जो भर गया, यह शुभ लक्षण है, इस घड़ी में वह झुक जाता है। लेकिन बस इस पर ही मत रुक जाना। बहुत आगे जाना है। यह तो पहला कदम हुआ। बहुत अभागे हैं जिनको आश्चर्य भी नहीं होता, जो चकित भी नहीं होते। तुम सौभाग्यशाली हो कि चकित तो हुए, चौंके तो, विस्मय तो आया, रहस्य की थाप तो पड़ी, थोड़ा धक्का तो लगा। मगर इस धक्के को ही लेकर मत बैठ रहना, नहीं तो धीरे-धीरे यह धक्का भी खो जाएगा और तुम वैसे के वैसे रह जाओगे। यह जो थोड़ा सा धक्का लगा है, इस धक्के का उपयोग कर लो और चल पड़ो। यात्रा बड़ी है और बहुत करने को पड़ा है।

शायद उसी चकित-भाव में तुमने आकर सिर भी झुका दिया है। तुम्हारे सिर झुकाने में समर्पण मालूम नहीं होता, चकित-भाव मालूम होता है। कभी-कभी आदमी भौचक्केपन में कुछ कर जाता है, लेकिन वह कुछ बहुत दूरगामी पाथेय नहीं बन सकता। कुछ और गहराई में झुकना पड़ेगा।

नहीं जो झुका कर किसी देहरी पर
झुका द्वार तेरे, तुम्हारी शरण में
न पाया कहीं तृप्ति का एक कण भी
यहां जल कहां, आग का हर कुआं है
तने इंद्रधनुष हैं, मगर वायवी सब
यहां आर्द्र बादल कहां, सब धुआं है
चखे फल यहां के, सभी तिक्त कटु हैं
मिला शांति मधुरस तुम्हारे स्मरण में
जहां से चखो, क्षारमय जग समंदर
यहां खूब निर्झर, मगर सब जहर के
किरणजाल मोहक, मगर सब छलावा
यहां विषबुझे दंश हैं हर लहर के
नहीं छांव शीतल, जगत यह मरुस्थल
गिरा हार-थककर तुम्हारे चरण में
नहीं जो झुका कर किसी देहरी पर
झुका द्वार तेरे, तुम्हारी शरण में

चलो झुका, कहीं झुका! इतने पर ही मत रुके रह जाना। झुकना तो शुरुआत है, मिटने की। मिटे बिना न चलेगा। और तुमने झुकते से ही मिटने के खिलाफ आयोजन शुरू कर दिया।

तुम पूछते हो, कैसे भरोसा आए कि मुझे गुरु प्राप्त हो गया है? तुम पूछते हो कि गुरु के कर्तव्य क्या हैं? गुरु की जिम्मेवारी क्या है?

तुम गुरु का हिसाब रखने लगे। तुमने गलत बात पहले से ही उठा ली। फिर मेरे साथ ज्यादा देर न चल सकोगे, यह मैं तुम्हें कह दूं। मेरा हिसाब जिसने रखा, वह ज्यादा देर मेरे साथ चला नहीं। वह ज्यादा देर चल ही नहीं सकता, क्योंकि वह बहुत होशियार है, चालाक है। वह रत्ती-रत्ती हिसाब लगाकर चलता है। मेरे साथ जुआरियों की दोस्ती है। जो हिसाब-किताब रखता ही नहीं। जिन्होंने एक दफे दांव पर लगा दिया तो फिर

लौटकर देखा नहीं। फिर उन्होंने कहा कि अब ठीक, अब तुम जो करो सो ठीक, अब तुम जो कहो सो ठीक। तुमने अगर अपनी बुद्धि बचायी तो सिर उठ-उठ जाएगा, बार-बार चरण चूक-चूक जाएंगे।

तो यह तो बात ही भूल जाओ। मेरे कर्तव्य का मुझे पता है, मेरी जिम्मेवारी मुझे मालूम है। तुम्हें मालूम होने से कुछ लाभ भी न होगा। तुम अपना कर्तव्य पूछो, तुम अपनी जिम्मेवारी पूछो।

तुम्हारी जिम्मेवारी अब यह है कि जो सिर झुका है, उसे काट ही डालना है। तुम्हारी जिम्मेवारी यह है कि अभी झुके हो, अब बिल्कुल मिट जाना है। मिटकर ही तुम हो सकोगे, खोकर ही तुम पा सकोगे। तुम जाओ तो ही परमात्मा आ सकता है।

आखिरी प्रश्नः यद्यपि मैं सिख परिवार से आया हूं तो भी पच्चीस वर्षों तक मेरा विश्वास ईसाइयत में रहा। लेकिन आपकी पुस्तकें पढ़ने के बाद मुझे लगा कि यह तो बड़ी जीवंत बात है और मेरे लिए ईसाइयत का प्रभाव समाप्त हो गया। आप पर पूरा ईमान आ गया है, लेकिन मन अभी भी अशांत है। देर रात तक आपका साहित्य पढ़ता हूं तो ही कहीं नींद आती है। कृपाकर मेरा मार्गदर्शन करें।

देखो पच्चीस साल की श्रद्धा इतनी जल्दी टूट गयी तो श्रद्धा न रही होगी। फिर पच्चीस साल की श्रद्धा इतनी जल्दी टूट गयी, तो मुझ पर जो श्रद्धा आ गयी है, उसको टूटने में कितनी देर लगेगी! श्रद्धा तो तुम्हारी है। पच्चीस साल वाली भी न टिकी। और यह श्रद्धा भी तुम्हारी है, यह कितनी देर टिकेगी!

तुम्हारा तर्क मैं समझा, तुम्हारा तर्क शायद यह है कि वह श्रद्धा ईसाइयत पर थी, यह श्रद्धा आप पर है। यह तो फर्क हुआ। लेकिन तुम तो वही के वही हो। ईसा पर श्रद्धा हो, कि बुद्ध पर, कि महावीर पर, इससे अंतर नहीं पड़ता। असली अंतर तो श्रद्धा किसकी है, उसमें रूपांतरण हो तो ही पड़ता है।

अब तुम सिख परिवार में पैदा हुए तो नानक पर श्रद्धा रही होगी बचपन में। वह गयी, ईसा पर आ गयी। मुझे पढ़ा, वह भी चली गयी। कल कुछ और पढ़ लोगे, कल किसी और को सुन लोगे, यह भी चली जाएगी। तुम्हारी श्रद्धा को परखो। तुम्हारी श्रद्धा श्रद्धा नहीं है।

अब फर्क समझना।

जिसने सच में ही नानक पर श्रद्धा की है, वह मुझे सुनकर नानक पर श्रद्धा नहीं छोड़ता, मुझ पर श्रद्धा आ जाती है और नानक पर श्रद्धा बढ़ जाती है। जिसको सच में ही ईसा पर श्रद्धा रही, वह मुझे सुनकर ईसा पर श्रद्धा नहीं छोड़ता, मुझ पर श्रद्धा आ जाती है, ईसा पर श्रद्धा और गहरी हो जाती है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह कुछ ईसा और नानक के विपरीत तो नहीं। मैं जो कह रहा हूं, वह वही है जो उन्होंने कहा है। और निश्चित ही, जीसस ने जो कहा है वह दो हजार साल पुरानी भाषा में कहा है, उससे तुम्हारा तालमेल उतना नहीं बैठ सकता है जितना मुझसे बैठ सकता है, क्योंकि मैं तुम्हारी भाषा में बोल रहा हूं।

नानक ने कहा--वह पांच सौ साल पुरानी भाषा है। पांच सौ साल लंबा फासला है। नानक में और मुझमें ठीक पांच सौ साल का फासला है। पांच सौ साल छोटा फासला नहीं है। सब भाषा बदल गयी है। सत्य को कहने का ढंग बदल गया है। सत्य को समझने की प्रक्रिया बदल गयी है। लोग बदले, लोगों का मन बदला, वातावरण बदला है।

इस सारी बदलाहट में, मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह तुम्हारे मन के ज्यादा अनुकूल पड़ेगा, यह स्वाभाविक है। क्योंकि मैं तुम्हारी भाषा बोल रहा हूं। नानक उनकी भाषा में बोले जिनसे बोलते थे। जीसस

उनकी भाषा में बोले जिनसे बोलते थे। मैं तुमसे बोल रहा हूं। मैं बीसवीं सदी से बोल रहा हूं। मैं अत्याधुनिक मन से बोल रहा हूं। स्वभावतः तुम्हें मेरी बात ज्यादा ठीक से पकड़ में आ जाएगी।

लेकिन अगर तुम्हें मेरी बात पकड़ में आ गयी, तो तुम्हें नानक की बात भी पकड़ में आ जाएगी। तुम अहोभाव से भर जाओगे कि नानक पर श्रद्धा तो थी, लेकिन अभी तक ठीक-ठीक साफ-साफ नहीं हुआ था, अब साफ हो गयी बात। महावीर की बात तुम्हें ठीक से पकड़ में आ जाएगी, बुद्ध की बात ठीक से पकड़ में आ जाएगी। इसीलिए तो बुद्ध, नानक, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट पर बोल रहा हूं। क्योंकि मैं तुम्हारी श्रद्धा खंडित करने को नहीं हूं, तुम्हारी श्रद्धा को मजबूत करने को हूं।

अगर मैं कभी किसी के विपरीत बोलता हूं तो सिर्फ इसीलिए कि वे धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं, लोगों ने भ्रांति से उन्हें धार्मिक समझा है। तो ही। अगर मैं जानता हूं कि कोई व्यक्ति धार्मिक है तो मैं एक शब्द भी उसके विपरीत नहीं बोलता। हां, अगर किसी अधार्मिक व्यक्ति को किन्हीं भूल-भ्रांतियों के कारण धार्मिक समझ लिया गया है तो मैं जरूर कठोरता से खंडन करता हूं। जरूर कठोरता से खंडन करता हूं, क्योंकि वह खतरनाक बात है।

जैसे कभी पीछे किसी ने पूछा महर्षि दयानंद के संबंध में, तो मैंने कहा कि नहीं, मैं महर्षि दयानंद के पक्ष में एक शब्द नहीं बोल सकता। मेरे लिए वे वैसे ही महात्मा हैं जैसे महात्मा गांधी। दोनों सामाजिक, राजनैतिक आंदोलनकारी हैं, धर्म बहाना है।

लेकिन नानक या कबीर या कृष्ण या जरथुस्त्र या मोहम्मद या ईसा, उन्होंने जो कहा है, वही मैं कह रहा हूं। उससे अन्यथा कहने को कुछ है नहीं। सत्य एक है। जिन्होंने जाना है, उसी एक सत्य को कहा है, भिन्न-भिन्न ढंग से कहा होगा, लेकिन एक ही सत्य को कहा है।

वेद कहते हैं, उस एक सत्य को ही ज्ञानियों ने अलग-अलग ढंग से कहा है।

तो पहली तो बात यह है कि तुम अपनी श्रद्धा परखो, तुम्हारी श्रद्धा में कहीं भूल-चूक है। नानक पर उठ गयी, ईसा पर जम गयी, मुझ पर जम गयी! मैं तुम्हारी श्रद्धा से खुश नहीं हूं। साधारणतः तुम यही सोच रहे होओगे कि तुम्हारा प्रश्न सुनकर मैं प्रसन्न होऊंगा कि चलो कितना अच्छा हुआ कि एक आदमी जीसस से टूटा और मेरा हुआ। इतनी जल्दी कोई मेरा नहीं हो सकता! जो जीसस का न हुआ, वह मेरा कैसे हो सकेगा? और अगर तुम मेरे हो गए हो, तो तुम्हारे पास आंख आएगी जिससे तुम जीसस को पहचान पाओगे और पहली दफे जीसस के हो पाओगे। और वही आंख तुम्हें नानक का भी बना देगी।

लेकिन तुमने श्रद्धा का अर्थ, मालूम होता है, कुछ तार्किक निष्पत्तियां मान रखा है--जो बात तुम्हारे तर्क को जंच जाती है। फिर तुम चूकोगे। क्योंकि धर्म तर्क की बात ही नहीं है।

मैं जरूर तर्क का उपयोग करता हूं, मैं तर्क पर सवारी करता हूं। इसलिए कभी-कभी तार्किकों को मेरी बात बहुत जंच जाती है। लेकिन वे भ्रांति में न रहें, जल्दी ही उनको चौंका दूंगा। देर-अबेर नहीं लगेगी, ज्यादा देर नहीं लगेगी कि मैं कोई ऐसी बात कहूंगा जो कि तर्क के बिल्कुल बाहर होगी, विपरीत होगी।

तो तुम्हें मेरी बातें ठीक लग गयी होंगी, क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह तर्कयुक्त है। लेकिन तर्क का मैं उपयोग कर रहा हूं साधन की तरह, ले जाना है तर्क के पार। जीसस ने तर्क का उपयोग नहीं किया। जीसस तो कह दिए जो कहना है। मैं तर्क का भी उपयोग कर रहा हूं। क्योंकि यह सदी बिना तर्क की भाषा के और कोई भाषा समझ नहीं सकती। लेकिन ले जाना तो तर्क के पार है। तो जल्दी ही तुम अड़चन में पड़ जाओगे।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अपनी श्रद्धा पर फिर पुनर्विचार करो। तुम्हारी श्रद्धा भ्रांत रही है, गड़बड़ रही है। तुम्हारी श्रद्धा तर्क पर आधारित रही है। इसीलिए ईसाइयत से तुम प्रभावित हो गए होओगे, क्योंकि ईसाइयत काफी तर्क जुटाती है। ईसा ने तो कुछ तर्क नहीं दिए, लेकिन ईसाइयत काफी तर्क जुटाती है। क्योंकि ईसाइयत तो पश्चिम से आती है, पश्चिम तो तर्क की दुनिया है। तो ईसाइयत को अगर अपने पैर पर खड़े रहना है तो उसे तर्क जुटाने पड़ते हैं। तो ईसाइयत जंच गयी होगी।

लेकिन मेरे वश में पश्चिम का तर्क ही नहीं है, पूरब का तर्क भी है। और मेरे वश में तर्कातीत भी है। इसलिए फिर मेरा तर्क तुम्हें जंच गया होगा। क्योंकि मेरे तर्क में पश्चिम के सारे तर्क में जो-जो कुशलता है वह तो है ही, पूरब के तर्क की जो-जो मधुरिमा है वह भी है। और तर्कातीत जो अनुभव है, उसका रंग भी है। इसलिए तुम्हें जंच गयी होगी बात।

लेकिन अब मौका आ गया है कि तुम अपनी श्रद्धा को ठीक पहचान लो। और यह अब तक की इस सड़ी-गली श्रद्धा को तुम फेंको। इसीलिए अड़चन भी आ रही है।

अब तुम कहते हो कि "आप पर पूरा ईमान आ गया है।"

क्या ईसाइयत पर पूरा ईमान नहीं था? पच्चीस साल था। तो पूरे ईमान का क्या भरोसा? अभी पूरा है, अभी खिसक जाएगा। यह तुम्हारी आदत है। तुम जिस पर भी ईमान ले आते हो, मान लेते हो पूरा हो गया। फिर उतर जाएगा तो पूरा ही उतर जाएगा। और तब तुम्हारी अड़चन साफ है।

तुम कहते हो, "मन अभी भी अशांत है।"

अब ईमान आने से थोड़े ही मन शांत होता है! नहीं तो मन कभी का शांत हो गया होता। सिख घर में पैदा हुए थे, सिख-धर्म पर ईमान रहा होगा, उससे मन शांत न हुआ। फिर ईसाइयत पच्चीस साल, लंबा वक्त है, उससे मन शांत न हुआ। मेरे साथ तो शायद दो-चार महीने की दोस्ती होगी, इससे कैसे मन शांत हो जाएगा! एक बात तो समझो कि भरोसा कर लेने से मन शांत नहीं हो जाता। मन शांत करने के लिए मन की अशांति के कारण तोड़ डालने पड़ेंगे।

तुम्हें एक डाक्टर पर भरोसा आ गया, इससे थोड़े ही इलाज हो जाएगा। डाक्टर पर भरोसा आ गया, यह सहयोगी बात है, अब डाक्टर का प्रिस्क्रिप्शन लेकर भी तो काम शुरू करोगे न! कि तुमने इतना कह दिया कि आ गया डाक्टर पर भरोसा, लेकिन अभी भी बीमारी दूर नहीं हो रही है, बात क्या है? और ईमान पूरा आ गया। ईमान आ गया इससे लाभ होगा, लेकिन इतना काफी नहीं है, पर्याप्त नहीं है। दवा भी लेनी होगी; औषधि भी लेनी होगी और पथ्य भी स्वीकार करना होगा। कुछ बातें छोड़नी होंगी, कुछ बातें पकड़नी होंगी, रूपांतर करने होंगे।

इसके पहले कि यह श्रद्धा भी खो जाए, कुछ करो। इस श्रद्धा का उपयोग कर लो। जो हुआ अतीत में हुआ, जितने दिन बेकार गए गए, अब बेकार मत जाने दो। अब इस श्रद्धा के प्रभाव में कुछ कर गुजरो ताकि मन की व्यवस्था बदल जाए।

तुम अशांत हो, उसका अर्थ है, मन में अशांति के कारण होंगे। तुमने कभी ध्यान किया? बिना ध्यान के शांति न आएगी। तुमने कभी पूजा की, भक्ति की? बिना पूजा-भक्ति के शांति न आएगी। तुमने कभी प्रेम किया? बिना प्रेम के शांति न आएगी। और तुमने कभी विश्लेषण किया कि तुम्हारे मन की अशांति का मूल कारण क्या है? क्यों रात तुम सो नहीं पाते? तुम्हारा मन दौड़ता होगा--और धन कमा लूं और बड़े पद पर पहुंच जाऊं, यह कर गुजरूं, वह कर गुजरूं। तुम्हारा मन दौड़ता रहता होगा, इसलिए तुम सो नहीं पाते।

तो मन की दौड़ की जो महत्वाकांक्षाएं हैं, उनको विदा करो। धन पाकर क्या होगा! पद पाकर क्या होगा! मौत आती है, मौत की पगध्वनि सुनो। वह धन भी छीन लेगी, पद भी छीन लेगी। जागो और मन की व्यवस्था बदलो।

अब अगर तुम मेरे प्रभाव में आ गए हो तो मेरी सुनो भी। उसके अनुसार थोड़ा करो भी। ध्यान करो, नाचो, गाओ, गुनगुनाओ; थोड़ा मस्ती में डूबो। अचानक तुम पाओगे--अशांति गयी। और जब अशांति जा चुकी होगी, तब तुम्हें जो श्रद्धा आएगी वह असली श्रद्धा होगी। क्योंकि जिसके द्वारा अशांति चली गयी हो, फिर उसको छोड़ना असंभव हो जाएगा। और जिसके द्वारा सुख का थोड़ा सा स्वाद आ जाएगा, उसको फिर कैसे छोड़ सकोगे?

तुम्हें ईसा से कुछ भी सुख का स्वाद नहीं आ पाया, क्योंकि तुमने ईसा की मानकर कभी कुछ किया नहीं। बाइबिल पढ़ते रहे होओगे। तो बाइबिल पढ़ने से क्या होगा! यह तो ऐसा ही है जैसे कोई पाकशास्त्र की किताब बैठा पढ़ रहा है, पढ़ रहा है, पढ़ रहा है! और भूख लगी है और मरा जा रहा है, और चिल्लाता है कि क्या करूं, पाकशास्त्र की किताब पढ़ रहा हूं, फिर भी भूख नहीं मिटती।

तो बाइबिल तुम पढ़ते रहे होओगे। लेकिन इससे कुछ नहीं हुआ। अब तुम मेरी किताबों का मत वैसा ही उपयोग करने लगना जैसा बाइबिल का किया था।

अब तुम कह रहे हो, "जब रात नींद नहीं आती तो आपका साहित्य पढ़ता हूं तो कहीं नींद आती है।"

तो तुम साहित्य का उपयोग इस तरह कर रहे हो? नींद लाने की दवा की तरह? साहित्य का उपयोग करो जीवन को बदलने के लिए, जीवन को क्रांति देने के लिए।

अच्छा हुआ, क्योंकि नानक तो अब हैं नहीं, तुम अगर उन पर श्रद्धा भी रखते तो बहुत कुछ होने वाला नहीं था। ईसा तो अब हैं नहीं, तुम उन पर श्रद्धा भी रखते तो बहुत कुछ होने वाला नहीं था। तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम किसी जीवित आदमी के करीब आ गए हो। संयोग है। इस सौभाग्य के क्षण का ठीक उपयोग कर लो। तो फिर शायद श्रद्धा को और कहीं जाने की जरूरत न रहेगी।

यही श्रद्धा तुम्हारा अंतिम पड़ाव बन जाए, ऐसा आशीष देता हूं।

आज इतना ही।

उन्हत्तरवां प्रवचन

मृत्यु तो एक झूठ है

सुसुखं वत! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो।। 173।।

सुसुखं वत! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा।। 174।।

सुसुखं वत! जीवाम उस्सेकेसु अनुस्सुका।
उस्सेकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका।। 175।।

सुसुखं वत! जीवामयेसं नो नत्थि किंचना।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा।। 176।।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसंतो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं।। 177।।

जीवन अपने में न तो सुख है, न दुख। देखने-देखने की बात है। दृष्टि की बात है। कैसे देखते हैं, इस पर सब निर्भर है। सुख और दुख हमारी व्याख्याएं हैं। सुख और दुख तथ्य नहीं हैं, सुख और दुख हमसे बाहर नहीं हैं, सुख और दुख हमारे देखने के ढंग के परिणाम हैं, निष्पत्तियां हैं। वही बात एक व्यक्ति को सुख हो सकती है, वही बात दूसरे को दुख हो सकती है। और उसी बात में कोई निरपेक्ष भी रह सकता--न सुख हो न दुख हो। और कभी ऐसा भी होगा कि जो बात तुम्हें आज सुख थी, कल दुख हो गयी; और जो आज दुख थी, कल सुख हो गयी। और कभी ऐसा भी होगा, ऐसे क्षण भी आएंगे, जब तुम भी सुख और दुख के बाहर हो जाते हो, तटस्थ हो जाते हो।

अगर कोई अपने जीवन का ठीक-ठीक निरीक्षण करे, सम्यक निरीक्षण करे, तो इस सत्य को खोजने के लिए शास्त्रों में जाने की जरूरत नहीं है।

सुकरात का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं।

ठीक-ठीक सम्यक निरीक्षण करके ही कोई जीवन योग्य जीने को पाता है। सुकरात से किसी ने पूछा कि तुम एक संतुष्ट सूअर होना पसंद करोगे, या एक असंतुष्ट सुकरात?

तो सुकरात ने कहा, मैं असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करूंगा, संतुष्ट सूअर होना नहीं। क्यों, पूछा पूछने वाले ने, क्योंकि आदमी संतोष के लिए ही तो सब करता है। सुकरात ने कहा कि असंतुष्ट सुकरात एक दिन संतोष पा लेगा, और ऐसा संतोष, फिर जिसे छीना नहीं जा सकता। संतुष्ट सूअर तो नाममात्र को ही संतुष्ट है। अभी उसने असंतोष ही नहीं जाना, असंतोष के पार होना अभी कैसे जानेगा?

जीवन का ठीक-ठीक निरीक्षण हो, तो हम सुख और दुख दोनों के पार हो जाते हैं। क्योंकि एक सत्य रोज-रोज साफ होने लगता है--हमारी व्याख्या है। अगर हमारी ही व्याख्या है तो हम मुक्त हो गए।

सारे धर्मों का अगर सारसूत्र पकड़ना हो तो इस बात में पकड़ लेना--कि जीवन में जो भी हम अनुभव करते हैं, वह हमारी व्याख्या है। इसलिए हम जब चाहें तब स्वतंत्र हो सकते हैं। क्योंकि अपनी व्याख्या बदलना अपने हाथ में है। अगर जीवन में सुख-दुख हमसे बाहर होते तो बंधन हमसे बाहर होता।

समझो। ऐसा नहीं है कि किसी ने तुम्हें कारागृह में डाल दिया है। अगर किसी ने कारागृह में डाला हो और जंजीरें पहनायी हों, तो फिर तो तुम उसके हाथ में हो। मुक्त करेगा तो मुक्त होओगे, मुक्त न करेगा तो न हो सकोगे। और किसी तरह मुक्त हो भी गए तो फिर भी पकड़े जा सकते हो, फिर दुबारा पकड़े जा सकते हो। तो तुम्हारी मुक्ति कोई बहुत गहरी मुक्ति नहीं हो सकती। जब अमुक्ति दूसरे पर निर्भर है तो मुक्ति भी दूसरे पर निर्भर रहेगी। और यह तो भारी परतंत्रता हो गयी। मुक्ति में भी बंधे हैं, तो यह तो भारी परतंत्रता हो गयी।

स्थिति ऐसी है कि तुमने मान रखा है कि तुम कारागृह में हो। यह तुम्हारी मान्यता है। जंजीरें असली नहीं हैं, सिर्फ मान्यता की हैं, सिर्फ धारणा की हैं। इसलिए जिस दिन तुम आंख खोलकर देखोगे, जंजीरें पिघल जाएंगी, जंजीरें विसर्जित हो जाएंगी। ऐसा ही समझो कि जैसे रात सपने में तुमने पाया कि तुम कारागृह में पड़े हो, और सुबह जागकर देखा कि अपने घर में हो, कारागृह तुम्हारी कल्पना का जाल था।

बुद्ध के आज के सूत्र महत्वपूर्ण हैं।

पहले सूत्र, पहले तीन सूत्र--

सुसुखं वत! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो।।

"वैरियों के बीच अवैरी होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं! वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं।"

सुसुखं वत! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा।।

"आतुरों के बीच अनातुर होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। आतुर मनुष्यों के बीच अनातुर होकर हम विहार करते हैं।"

तीसरा सूत्र--

सुसुखं वत! जीवाम उस्सेकेसु अनुस्सुका।
उस्सेकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका।।

"आसक्तों के बीच अनासक्त होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। आसक्त मनुष्यों के बीच अनासक्त होकर हम विहार करते हैं।"

इन सूत्रों के जन्म की कथा समझें--

शाक्य और कोलीय राज्यों के बीच रोहिणी नामक नदी के पानी को रोककर दोनों जनपदवासी खेतों की सिंचाई करते थे। एक बार ज्येष्ठ मास में फसल के सूखने को देखकर दोनों जनपदवासी शाक्य और कोलियों के नौकर अपने-अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए रोहिणी नदी पर आए। दोनों ही पहले अपने खेतों को सींचना चाहते हैं, अतः दोनों में झगड़ा हो चला। यह समाचार उनके मालिक शाक्य और कोलियों को मिला। क्षत्रिय तो क्षत्रिय! तलवारें निकल गयीं। वे सेना को साथ लेकर तैयार होकर युद्ध करने के लिए निकल पड़े। भगवान बुद्ध रोहिणी तट पर ही ध्यान करते थे। उन्हें यह खबर मिली। वे आकर युद्ध को तत्पर दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े हो गए। शाक्य और कोलियों ने भगवान को देखकर हथियार फेंक वंदना की।

भगवान ने कहा, महाराज, यह कैसा झगड़ा है? किस बात के लिए झगड़ा है? दोनों राज्यों के राजाओं ने कहा, भंते, कारण हम नहीं जानते। भगवान ने पूछा, फिर कारण कौन जानता है? अकारण तलवारें निकाल ली हैं! कारण भी न पूछा! कारण तो खोज लेते! उन्होंने कहा, शायद सेनापतियों को पता हो। सेनापतियों ने उप-सेनापतियों की ओर इशारा किया, उप-सेनापतियों ने सैनिकों की ओर, और अंततः बात नौकरों पर पहुंची, तब कहीं कारण का पता चला। नौकरों ने कहा, भंते, पानी के कारण। बुद्ध ने कहा, पानी के कारण! पानी तो सदा से बहता है यहां, लड़े तुम आज, झगड़ा पानी के कारण नहीं हो सकता। नौकरों ने कहा, समझें भंते, पहले कौन उपयोग करे। तो बुद्ध ने कहा, पहले के कारण! पानी के कारण नहीं। प्रथम कौन हो! पानी को दोष मत दो।

बुद्ध हंसे और उन्होंने शाक्यों और कोलियों के प्रधानों से पूछा, महाराज, पानी का क्या मूल्य है? राजा बहुत लज्जित हुए। शरमाते बोले, अल्पमात्र भंते, न कुछ। पानी का क्या मूल्य है! और मनुष्यों का, बुद्ध ने पूछा। राजा और भी सकुचाए और बोले, अमूल्य भंते, मनुष्य से ज्यादा मूल्यवान और क्या है! बुद्ध ने कहा, तो फिर सोचो, अल्पमात्र मूल्य के लिए अमूल्य को मिटाने चले हो? पानी के लिए खून बहाने चले हो? और नदी ऐसी ही बहती रहेगी। तुम गिरोगे, कटोगे, मरोगे; और नदी ऐसी बहती रही, ऐसी ही बहती रहेगी और नदी को पता भी न चलेगा। असार के लिए सार को गंवाते हो? कंकड़-पत्थरों के लिए हीरे-जवाहरात फेंकने चले हो? इसीलिए तुम्हारे जीवन में दुख है, चिंता है, अंधकार है। मुझे देखो, मेरे महासुख को देखो, क्या है इसका राज? यही कि मैं वैररहित विहरता हूं। यही कि सार को मैं सार और असार को असार देखता हूं।

और तब उन्होंने ये तीन गाथाएं कहीं।

तो पहले तो इस कहानी के एक-एक शब्द को समझें। शास्त्रों में जो बोधकथाएं हैं, वे ऐसे ही पढ़ लेने के लिए नहीं हैं। उनके शब्द-शब्द में अर्थ है और पर्त-पर्त अर्थ है। एक पर्त उघाड़ोगे तो दूसरा पर्त अर्थ मिलेगा। और जितने गहरे जाओगे कथा में, उतने ही चौंकोगे कि तुम सीढ़ी दर सीढ़ी उतरते जा सकते हो।

पहली बात, झगड़ा हुआ नदी के तट पर नौकरों में। झगड़ा हुआ नौकरों में और मालिक खिंचे चले आए। तो नौकर मालिक मालूम होते हैं और मालिक नौकर मालूम होते हैं। यह पहली बात ख्याल में लेने जैसी है। और यह मनुष्य के संबंध में बड़ी गहरी बात है। कहानी में तुम्हें शायद सीधी साफ हो भी न सके, क्योंकि ये कहानियां ध्यान के विषय हैं। इन कहानियों पर खूब ध्यान कोई करे तो इनकी पर्तें उघड़ती हैं।

पहली पर्त, आंखें, हाथ, नाक, कान नौकर हैं और मालिक इनके पीछे खिंचा हुआ चला आता है। आंख ने कह दिया सौंदर्य है और तुम चले, दीवाने हुए! और तुम्हें पता भी नहीं है कि सौंदर्य है या नहीं। आंख ने कह दिया, आंख पर भरोसा कर लिया। कान ने कह दिया और कान पर भरोसा कर लिया; स्वाद ने कह दिया और

स्वाद पर भरोसा कर लिया। ऐसे नौकर-चाकरों के वश में मालिक घिसटता है। और जिस दिन तुमसे कोई पूछेगा गहरे में कि ऐसा तुमने क्यों किया, तुम कहोगे, कारण पता नहीं।

तुमने देखा नहीं, कोई आदमी किसी के प्रेम में पड़ जाए, पूछो उससे--क्यों? वह कंधे बिचकाता है। वह कहता है, क्यों का तो कुछ पता नहीं! एक आदमी धन के पीछे पागल होकर दौड़ रहा है, पूछो--क्यों? शायद वह कहे, चूंकि सब लोग दौड़ रहे हैं, सारी दुनिया दौड़ रही है, इसलिए। और भी दौड़ रहे हैं, इसलिए। एक आदमी पद के लिए पागल है, पूछो--क्यों? शायद साफ उसे हो ही न। इंद्रियों ने कुछ खबरें दी हैं, इंद्रियों की खबरों को मानकर भीतर का मालिक चल पड़ा है।

तो शाक्य और कोलियों के राज्य के बीच रोहिणी नामक नदी के पानी को रोककर दोनों जनपदवासी खेतों की सिंचाई करते थे। दूसरी बात, यहां हम सब एक ही जीवन को भोग रहे हैं। इसलिए झगड़ा तो प्रतिपल हो सकता है। क्योंकि हर एक के बीच वही नदी बह रही है--उसी से जल मुझे लेना, उसी से जल तुम्हें लेना। जीवन एक है। तो हम सब पड़ोसी हैं।

जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः अपने पड़ोसी को ऐसा ही प्रेम करो जैसा अपने को। और एक दूसरा वचन है कि अपने दुश्मन को ऐसा ही प्रेम करो जैसा अपने को। संत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि दोनों वचन एक से लगते हैं और फिर भी बड़े भिन्न हैं। एक तरफ जीसस कहते हैं, अपने पड़ोसी को ऐसा प्रेम करो जैसा अपने को; और एक दफे कहते हैं, दुश्मन को ऐसा प्रेम करो जैसा अपने को। तो अगस्तीन ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, दुश्मन और पड़ोसी दोनों एक ही के नाम हैं। जो पड़ोसी है, वही तो दुश्मन है।

तुमने ख्याल किया, तुम्हारा दुश्मन है कौन? तुम्हारा पड़ोसी। जो दूर है, उससे तो दुश्मनी नहीं होती। जो पड़ोस में है, उससे दुश्मनी होती है। क्योंकि एक ही जीवन की नदी, उस पर दोनों दावेदार। छोटी-छोटी बात पर झगड़ा हो जाता है। बातें ही क्या हैं! झगड़े के लिए कारण भी कहां हैं! झगड़े योग्य कारण कहां हैं! तुम लड़े किन छोटी-छोटी बातों पर हो! कभी किसी ने आधा फुट जमीन दबा ली, झगड़ा हो गया! तुमने कभी सोचा भी नहीं है कि झगड़कर तुम क्या गंवा रहे हो! और एक बात तो स्वीकार करने की ही है कि यह जीवन हमारा साझी का जीवन है, हम सब एक ही जीवन जी रहे हैं।

तो नदी तो एक है, जल सबको पीना है, प्यासे सब हैं, और स्वभावतः छीना-झपटी हो सकती है। लेकिन छीना-झपटी करने में मूढ़ता है, मूर्च्छा है। दोनों जनपदवासी एक ही नदी के जल से अपने खेतों को सींचते हैं।

एक बार ज्येष्ठ मास में फसल के सूखने को देखकर दोनों जनपदवासी शाक्यों और कोलियों के नौकर अपने-अपने खेतों की सिंचाई के लिए नदी पर गए। दोनों ही पहले अपने खेतों को सींचना चाहते थे। अब पहले से कुछ लेना-देना नहीं है, खेत सींचना असली बात होगी। असली बात है कि खेत सूख रहा है, धूप घनी है, जेठ की दुपहरी है, पानी देना जरूरी है। असली बात पानी देना है, पहले और पीछे का कोई भी मूल्य नहीं है।

लेकिन जीवन के सारे झगड़े पहले और पीछे के झगड़े हैं। इतना हम भूल जाते हैं पहले-पीछे में कि खेत-मेत तो एक तरफ पड़े रह गए--जब झगड़ा ही शुरू हो गया तो नदी से किसी ने भी पानी नहीं लिया! खेत प्यासे के प्यासे खड़े हैं, खेत रोते के रोते खड़े हैं, यहां दूसरी ही बात चल पड़ी। कई बार ऐसा होता है कि मूल कारण तो एक तरफ पड़ा रह जाता है, व्यर्थ की बातें बीच में आ जाती हैं। फिर हम मूल को तो भूल ही जाते हैं। फिर हम उन व्यर्थ पर ही जूझते रहते हैं। पहले और पीछे का सारा झगड़ा है। सारी प्रतियोगिता इस बात की है कि कौन पहले।

जीसस का दूसरा प्रसिद्ध वचन है कि जो अंतिम हैं, जो अंतिम होने में समर्थ हैं, वे ही मेरे प्रभु के राज्य के मालिक होंगे। जो अंतिम होने में समर्थ हैं।

इस जगत में सबसे बड़ी सामर्थ्य है, अंतिम होने की सामर्थ्य। प्रथम तो कोई भी पागल होना चाहता है। प्रथम होने में कुछ विशिष्टता नहीं है, सभी प्रथम होना चाहते हैं। प्रथम होना तो बड़ी सार्वजनिक बीमारी है। प्रथम होने का पागलपन तो सभी पर चढ़ा है। और यह प्रथम होने के पागलपन को ही मैं राजनीति कहता हूं।

इसलिए राजनीति सारे झगड़ों का मूल आधार है। जब तक दुनिया से प्रथम होने का रोग नहीं जाता, तब तक दुनिया से राजनीति नहीं जाएगी। और जब तक राजनीति नहीं जाती, तब तक युद्ध नहीं जाएंगे। तब तक हिंसा नहीं जाएगी। लाख समझाओ अहिंसा, इससे कुछ भी न होगा। तुम हिंसा का सूत्र पकड़ो, हिंसा का सूत्र हैः मैं पहले। अहिंसा का सूत्र हैः मैं अंतिम होने को राजी हूं। क्योंकि असली सवाल होने का है। आखिर में खड़ा हो जाऊंगा, सबसे पीछे खड़ा हो जाऊंगा, वहां खड़ा हो जाऊंगा जिस जगह से कोई धक्का देने को आए ही नहीं।

पहले का झगड़ा था। और जब पहले का झगड़ा हो तो पानी भी गौण हो गया, खेत भी गौण हो गए--खेत और पानी तो छोड़ो, जिनके लिए खेत की सिंचाई की जा रही थी, वे मनुष्य भी गौण हो गए। जिनके लिए भोजन जुटाने के लिए खेत खड़े थे, वे मनुष्य भी गौण हो गए। झगड़ा हो चला।

क्या है झगड़ा सारी दुनिया में? रूस का अमरीका का झगड़ा क्या होगा? भारत-पाकिस्तान का झगड़ा क्या होगा? चीन-तिब्बत का झगड़ा क्या होगा? इजराइल-इजिप्त का झगड़ा क्या है? वही झगड़ा है। उसी झगड़े की यह कहानी है। और जब इक्का-दुक्का आदमी पागल होता है तब तो हम पहचान लेते हैं, जब भीड़ पागल होती है तो पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। जब समूह के समूह पागल हो जाते हैं तो पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जब तब ही देखते व्यक्तियों में हम पागल, पर समूह का तो पागलपन नित्यधर्म है। कभी-कभी कोई आदमी पागल होता है, लेकिन समूह तो सदा से पागल रहे हैं। हिंदू धर्म पर खतरा है और हिंदू पागल हैं! इस्लाम पर खतरा है और इस्लाम को मानने वाले पागल! देर नहीं लगती पागल होने में। आदमी निजी रूप से तो पागल कभी-कभी होता है, लेकिन सामूहिक रूप से तो पागल है ही।

जब खबर पहुंची होगी मालिकों तक, राजाओं तक कि नौकरों में झगड़ा हो गया, कि उनके नौकरों ने हमारे नौकरों को मार दिया, कि हमारे नौकरों को पछाड़ दिया--ऐसी अफवाहें पहुंची होंगी। सत्य तो पहुंच नहीं सकता; पागलों के हाथ में सत्य के पहुंचने का तो कोई उपाय नहीं है। कुछ का कुछ हो जाता है। एक मुंह से दूसरे मुंह गया कि बदल जाता है।

एक स्त्री एक झगड़े का वर्णन अपनी पड़ोसिन को कर रही है। पड़ोसिन ने बड़ी उत्सुकता से सुना। झगड़ों में हमें रस है। बड़ा रस लेकर सुना। बेटा उसका रो रहा है, परेशान हो रहा है, मगर उसने फिक्र छोड़ दी, झगड़े की बात पहले सुनी। जब पूरी बात हो गयी तो उसने कहा, अरे और भी कहो, थोड़ा और विस्तार से कहो। सुनाने वाली स्त्री ने कहा कि जितना मैंने देखा, उससे दुगुना तो मैं बता ही चुकी, अब और क्या विस्तार!

बात बढ़-च.ढ़कर पहुंची होगी, खूब बढ़-चढ़कर पहुंची होगी, कि मार-काट हो गयी, कि खून बह गया, कि बड़ा अपमान हो गया। तलवारें खिंच गयीं--क्षत्रिय तो क्षत्रिय!

यह समाचार जब मालिकों ने सुना तो वे पागल हो उठे। सेनाएं तैयार हो गयीं, युद्ध के बैंड बज गए, नदी के दोनों तट पर सेनाएं खड़ी हो गयीं। भगवान ने यह खबर सुनी। वे पास ही एक वृक्ष के नीचे बैठे यह सब देख रहे हैं, यह जो हो रहा है। यहां जिसे देखना हो, इस जगत का खेल, उसे बैठकर ही देखना पड़ता है। अगर तुम

इसमें सम्मिलित हुए तो देख नहीं सकते। सम्मिलित होने वाला तो अंधा हो जाता है। सम्मिलित होने वाले की आंखें तो धुंधली हो जाती हैं। क्योंकि सम्मिलित होने वाला पक्षपात से भर जाता है।

निष्पक्ष बैठे थे। दोनों तरफ उनके प्रेमी थे। दोनों तरफ उनको मानने वाले थे, दोनों राज्यों में उनके प्रति लगाव था। वे सबके थे। तो कोई पक्षपात तो न था। पक्षपात हो सकता था, क्योंकि ऐसे तो वे शाक्य-कुल से आते थे। इसलिए उनका एक नाम है, शाक्य मुनि। शाक्य सम्मिलित थे इस झगड़े में; एक पक्ष शाक्यों का था, दूसरा कोलियों का था। अगर बुद्ध ने ऐसा देखा होता कि मैं शाक्य, तो फिर न देख पाते, तो जो देखते वह गड़बड़ हो जाता।

अगर तुमने देखा मैं हिंदू, तो तुम जो देखोगे वह चूक हो जाएगी। तुमने देखा मैं मुसलमान, तुम जो देखोगे चूक जाओगे। तुमने देखा मैं भारतवासी, तो तुम्हारी आंख फिर सच्ची आंख नहीं रह जाएगी। आंख तो उसी के पास होती है जिसके पास कोई पक्षपात नहीं है।

बैठे होंगे वृक्ष के नीचे शांत, ना-कुछ, शून्यवत, जैसे दर्पण होता है। यह सब देखा, यह सब मूढ़ता दिखायी पड़ी। जब भी तुम शांत होकर देखोगे, तुम्हें मूढ़ता दिखायी पड़ेगी, चारों तरफ मूढ़ता दिखायी पड़ेगी। तुम चकित हो-हो उठोगे कि यह क्या हो रहा है! लेकिन जब तक नौकर लड़ते थे तब तक ठीक था, जब देखा कि अब तो मालिक भी आ गए, तलवारें खिंच गयीं, मार-काट होने की तैयारी हो गयी, तो बुद्ध उठे, बीच में आकर खड़े हो गए।

शाक्य और कोलियों ने भगवान को देखकर हथियार फेंक वंदना की। ऐसी इस देश की परंपरा है कि जब बुद्ध जैसा व्यक्ति खड़ा हो जाए, तो क्षणभर को ही सही, हम अपना पागलपन छोड़ते हैं। क्षणभर को ही छोड़ते हैं, ज्यादा देर हम छोड़ नहीं सकते, क्योंकि पागलपन हमारे खून में मिला है। लेकिन इस देश की परंपरा है। अगर ऐसा बुद्ध ने किसी और देश में किया होता, तो खुद भी कट जाते। वे तलवारें गिरने वाली नहीं थीं। इस देश के संस्कार! बुद्धों के साथ इस देश का लगाव, बुद्धों के साथ इस देश का सत्संग पुराना है। वह भी हमारे खून में सम्मिलित हो गया है। भला हम कितने ही पागल हों, लेकिन कभी-कभी एक क्षण को किरण उतरती है। बुद्ध को बीच में खड़ा देखकर वे भी भूल गए कि क्या कर रहे हैं। और जब बुद्ध को प्रणाम करने हों तो शस्त्र तो फेंक देने होते हैं। शस्त्रों से भरे हाथ तो प्रणाम करने वाले हाथ नहीं हो सकते। क्योंकि जहां हिंसा है वहां तो प्रणाम नहीं हो सकता। जहां हिंसा है वहां तो बुद्धपुरुषों के चरणों में झुकने का कोई अर्थ ही नहीं होता, क्योंकि हिंसा तो झुकना जानती ही नहीं। सिर्फ अहिंसा झुकना जानती है। इसलिए जो समर्पित है, अहिंसक हो जाएगा, जो अहिंसक है, समर्पित हो जाएगा। एक क्षण को बिजली की तरह कौंध गयी, बुद्ध को बीच में देखकर दोनों ने तलवारें फेंक दीं।

बुद्ध ने पूछा, महाराज, यह कैसा झगड़ा है! किस बात के लिए झगड़ा है? बुद्ध देख रहे हैं कि बात न कुछ है। बात तो सदा ही न कुछ है। तुम अपने जीवन में ही देखना कि झगड़ा क्या है?

कभी-कभी मेरे पास आ जाते हैं, पति-पत्नी आ जाते हैं कि बहुत झगड़ा हो गया, अलग होना चाहते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, जरा कारण भी बताओ। तो वे दोनों ही सकुचाते हैं, कारण कोई बताना नहीं चाहता। वे कहते हैं, अब कारण क्या है, कारण तो कुछ खास नहीं है। जब मैं जिद्द करता हूं, कारण बताओ, तो वे बड़े हैरान होते हैं, कि आप जिद्द क्यों कर रहे हैं--कारण, क्योंकि कारण तो कुछ भी नहीं है। कारण बहुत छोटा हो सकता है।

अगर तुम अपने जीवन के उपद्रवों के कारण की खोज में जाओगे, तो आखिर में तुम सदा ऐसी ही कोई क्षुद्र बात पाओगे। लेकिन क्षुद्र को तूल मिल जाता है।

मैंने सुना है, अमरीका की एक अभिनेत्री ने विवाह किया--वह उसका दसवां विवाह था। और जब चर्च में उन दोनों ने रजिस्टर में दस्तखत किए, तो दस्तखत करते ही उसने चर्च के पादरी से कहा कि नहीं, मुझे तलाक चाहिए। अभी शादी के ही दस्तखत हुए थे, अभी हस्ताक्षर हुए ही थे! पादरी भी चौंका, उसने कहा कि तलाक मैंने भी बहुत देखे हैं, मगर यह तो बहुत जल्दी हो गयी। अभी दस्तखत की स्याही भी नहीं सूखी है। इतनी जल्दी तलाक का कारण क्या है? और मैं मौजूद हूं, अभी कोई तुममें झगड़ा भी नहीं हुआ है। उसने कहा कि झगड़ा हो गया। इस आदमी ने दस्तखत मुझसे बड़े किए हैं। यह झंझट की बात है। इतने बड़े-बड़े अक्षर में दस्तखत किए हैं, यह कुछ दिखाना चाहता है अपना रोब। यह बात ही गलत शुरू हो गयी, इसमें मैं जाना नहीं चाहती, इस झंझट में मैं पड़ना नहीं चाहती।

ऐसी छोटी बात पर झगड़ा हो सकता है कि किसी ने दस्तखत जरा बड़े कर दिए हैं। तुम जरा जीवन का निरीक्षण करना।

बुद्ध बैठे देख रहे थे कि बात कुछ बात जैसी नहीं है। बतंगड़ है, बात नहीं है। पूछा, महाराज, यह कैसा झगड़ा है? और किस बात के लिए झगड़ा है? दोनों राज्यों के राजाओं ने कहा, भंते, कारण हम नहीं जानते हैं।

कारण तो यहां किसी को भी पता नहीं है कि झगड़े क्यों हो रहे हैं। आदमी झगड़ना चाहता है तो कारण खोज लेता है। कारणों से थोड़े ही झगड़ रहा है। झगड़े के लिए कारण ईजाद करता है। फिर कहता है, कारण है, इसलिए झगड़ा कर रहा हूं। लेकिन तुम कभी खोजना, अपने ही भीतर, तुम जब झगड़ा करने की वृत्ति में होते हो, तब तुम कोई भी कारण खोज लेते हो। कोई भी कारण! घर आए और सब्जी में नमक कम है, बस पर्याप्त कारण है। कि तुमने थाली फेंक दी। हालांकि इतनी सी बात से थाली फेंकने का कोई अर्थ न था। कि चाय ठंडी हो गयी है। कि सुबह तुम्हें तुम्हारे जूते बिस्तर के पास नहीं मिले। कोई भी छोटी बात! लेकिन अगर तुम झगड़ा करने को आतुर हो, तो पर्याप्त है।

सच तो यह है कि अगर तुम्हारी झगड़े की आतुरता न होती, तो शायद बात तुम्हें दिखायी भी न पड़ती। तुम्हारी झगड़े की आतुरता के कारण ही कोई भी कारण खूंटी बन जाता है, फिर उस पर तुम टांग देते हो। और कारण को तुम बहुत बड़ा करके बताने लगते हो। ताकि जिम्मेवारी भी अपने ऊपर न रह जाए। जिम्मेवारी भी दूसरे पर थोप देते हो कि हम क्या करें, मजबूरी थी। दूसरे ने मजबूर कर दिया था।

कारण हम नहीं जानते, उन्होंने कहा। तो भगवान ने पूछा, फिर कारण कौन जानता है! तो सेनापतियों को शायद पता हो, उन्होंने कहा। अब तो उन्हें खुद भी शक हो गया था, इसलिए कहा, शायद! और सेनापतियों ने उप-सेनापतियों को और उप-सेनापतियों ने सैनिकों को, और आखिर में बात नौकरों पर पहुंची।

अब नौकर राजाओं को लड़वाते हैं। पर यही हो रहा है, पूरे जीवन में यही हो रहा है। नौकर ही तुम्हें लड़वा रहे हैं, उलझा रहे हैं। कोई ज्यादा खाए चला जाता है। डाक्टर कहते हैं, मत खाओ, ज्यादा खाओगे मरोगे, बीमारी होगी, यह होगा, वह होगा। लेकिन जीभ की मानता है, डाक्टर की नहीं मानता।

मुल्ला नसरुद्दीन की आंखें खराब हुई जा रही थीं। तो डाक्टर ने उससे कहा कि अब तुम शराब पीना बंद कर दो। अगर तुमने अब शराब पी, तो फिर देखने की क्षमता खो दोगे। मुल्ला उठ बैठा, चलने को हुआ, तो डाक्टर ने पूछा, तुमने कुछ जवाब नहीं दिया। मुल्ला ने कहा, देखो डाक्टर साहब, देखने योग्य जो था मैं पहले ही देख चुका हूं, अब देखने को बचा भी क्या है! शराब छोड़ने की मत कहो, देखने को बचा ही क्या है! मगर शराब की लत!

आंखें जाएं, प्राण जाएं, कुछ भी जाए, हम छोटी-छोटी लतों को--और छोटी-छोटी लतें नौकरों की डाली हुई लतें हैं। कोई स्वाद के पीछे दीवाना है, कोई रूप के पीछे दीवाना है, कोई किसी और चीज के पीछे दीवाना है--दीवानगियां अलग-अलग होंगी, लेकिन दीवानगी है।

नौकरों ने कहा, भंते, पानी के कारण। वह भी बात सच नहीं है, क्योंकि पानी तो सदा से बहता रहा है, झगड़ा आज उठा है। और पानी तो कल भी बहता रहेगा। तो झगड़ा पानी के कारण नहीं हो सकता।

इस पर ख्याल देना। जब तुम किसी बात को कारण बताओ तो ख्याल देना, वह असली कारण है? या कि कारण कहीं और छिपा है? यह भी नकली कारण है। असली कारण नौकरों को भी पता नहीं है। जिनसे झगड़े की शुरुआत हुई है, उनको भी असली कारण पता नहीं है। इस जीवन में हम मूर्च्छित जी रहे हैं, बेहोश, नींद में चल रहे हैं। हमें कुछ भी पता नहीं है, हम क्यों कुछ कर रहे हैं।

बुद्ध हंसे और उन्होंने कहा, पानी के कारण! या कि पहले कौन? तब मूल कारण पकड़ में आ गया। और ख्याल रखो, जब मूल कारण पकड़ में आ जाए तब बदलाहट संभव हो जाती है। पहले कौन? पहले कौन का अर्थ है, अहंकार मूल कारण है। क्योंकि पहले जो वही बड़ा, पहले जो वही शक्तिशाली है। पीछे जो वह छोटा। फिर भी बुद्ध ने कहा प्रधानों से कि महाराज, एक बात पूछनी है, पानी का कितना मूल्य है? राजा लज्जित हुए, शर्माए--अल्पमात्र, भंते!

अब बुद्ध के सामने झूठ एकदम बोला भी नहीं जा सकता। यही गुरु के सान्निध्य का अर्थ है। जिसे तुम अकेले में शायद न देख पाओ, वह गुरु के सान्निध्य में सुगमता से दिख जाएगा। जिसे तुम शायद अकेले में झुठला देते, शायद अपने को समझा लेते, इधर-उधर की बातों में उलझा लेते, वह गुरु के सामने स्पष्ट हो जाएगा। बुद्ध की मौजूदगी में बात तो सीधी-साफ थी। बात तो अकेले में भी सीधी-साफ थी, लेकिन अकेले में तुम ही बचते, तब तुम उसे झुठला लेते, रंग लेते। लेकिन बुद्ध के सामने तो उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

लज्जित भाव से उन्होंने कहा, अल्पमात्र, भंते! न कुछ। कुछ मूल्य पानी का तो है नहीं। और मनुष्यों का, बुद्ध ने कहा। बहुत मूल्य है, अमूल्य हैं मनुष्य, मूल्य कूता नहीं जा सकता, इतना मूल्य है मनुष्य का। तो उन्होंने कहा, फिर सोचो, अल्पमात्र मूल्य के लिए अमूल्य को मिटाने चले हो? यह कैसा सौदा! असार के लिए सार को गंवाते हो?

पर हम यही कर रहे हैं। तुम्हारी चेतना तुम कहां-कहां उलझाए हो! कूड़े-करकट में! तुम अपनी आत्मा को कहां-कहां गंवाए हो! जहां से कुछ मिलने को नहीं है, जहां से कुछ कभी किसी को मिला नहीं। और तुम भी जानते हो। तुम्हारे भीतर भी कभी-कभी बुद्धिमानी के क्षण झांकते हैं और तुम जानते हो कि वहां से तुम्हें भी कुछ न मिलेगा। सिकंदर को न मिला, नेपोलियन को न मिला, अकबर को न मिला, तुम्हें कैसे मिलेगा? किसी को नहीं मिलता, मिलता ही नहीं, वहां है ही नहीं।

लेकिन धन आदमी इकट्ठा करता है और आत्मा को गंवाता है, जीवन को गंवाता है। पद पर चढ़ता चला जाता है नसैनी लगाकर। पदों पर चढ़ता चला जाता है। इधर हाथ से जीवन खिसकने लगता है, वहां तिजोड़ी भरती चली जाती है। एक दिन अचानक तुम पाते हो, मौत आ गयी। जीवन भी गया और जो जोड़ा था जीवन को देकर, वह भी गया।

इस जगत से बहुत हारे हुए लोग लौटते हैं। बुरी तरह हारे हुए लोग लौटते हैं। जिन्होंने किसी तरह का संबंध राम से नहीं जोड़ लिया, वे बुरी तरह हारे हुए लौटते हैं। जिन्होंने किसी तरह अपने भीतर की ज्योति से संबंध नहीं जोड़ लिया, जो जागे नहीं, वे बुरी तरह हारे हुए लौटते हैं।

असार को पकड़ते और सार को छोड़ते! कंकड़-पत्थरों के लिए हीरे-जवाहरात फेंकने चले हो? इसलिए तुम्हारे जीवन में दुख है, चिंता है, अंधकार है।

बुद्ध ने इस छोटी सी घटना को खूब उपयोग का बना लिया। यही बुद्धों की कला है। यह छोटी सी बात थी, उसको एक उपदेश का आधार बना लिया। एक छोटी सी बात को बड़ा दूरगामी इशारा बना लिया, तीर बना लिया।

कहा, यही तुम्हारे जीवन में दुख, चिंता और अंधकार का कारण है। मुझे देखो, मेरे महासुख को देखो

यही तो सारे सदगुरु कहते रहे हैं, मुझे देखो, मेरे महासुख को देखो।

क्या है इसका राज? यही कि मैं वैररहित विहरता हूं।

यही कि मेरी किसी से शत्रुता न रही।

यही कि मैं सार को सार और असार को असार देखता हूं।

इसलिए कोई चिंता न रही, कोई पीड़ा न रही, कोई झगड़ा न रहा, कोई वैमनस्य न रहा।

इस बात को एक और गहरे तल पर देखना। जब बुद्ध कहते हैं कि मैं वैररहित विहरता हूं, तो तुम्हारे मन में इतना ही ख्याल आएगा कि वह किसी से शत्रुता नहीं रखते। इसके एक भीतर और छिपा हुआ ख्याल है--वह शत्रुता ही नहीं रखते। दूसरे की तो बात ही छोड़ दो, अपने भीतर भी अपने से भी किसी तरह की शत्रुता नहीं रखते। अक्सर ऐसा होता है कि तुम अपने से तो शत्रुता रखते रहते हो, दूसरों से छोड़ देते हो। जैसे एक आदमी सब छोड़ देता है, वह कहता है, मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं है, अब किसी से मुकदमा न लडूंगा, लेकिन अपने से लड़ाई जारी रखता है। अभी क्रोध है, इससे लड़ना है; अभी मोह है, इससे लड़ना है; अभी लोभ है, इससे लड़ना है; अभी अहंकार है, इससे लड़ना है; तो शत्रुता तो जारी है, दुश्मन बदल गए।

बुद्ध यह नहीं कहते हैं कि मेरे बाहर दुश्मन नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं, मैं वैररहित विहरता हूं--इस बात को समझना--मैं निर्वैर हो गया हूं। दूसरों से तो वैर गिर ही गया, अपने से भी गिर गया, वैर ही गिर गया। ऐसी जो निर्वैर दशा है, वही महासुख की दशा है।

पहले तो दूसरों से वैर छोड़ना है, ठीक है। मगर यह मत सोचना कि दूसरों से वैर छोड़कर वैर अपने से कर लेना है। एक आदमी दूसरे को भूखा मारने में मजा लेता है और एक आदमी उपवास करने में मजा लेने लगता है, इन दोनों में बहुत भेद नहीं है। जो दूसरे को भूखा मारकर सता रहा है उसका मजा, और जो अपने को भूखा मारकर सता रहा है उसके मजे में कुछ बहुत फर्क नहीं है। थोड़ा सा फर्क है, वह फर्क बहुत खतरनाक भी है। वह फर्क इतना ही है कि दूसरा तो भाग भी सकता था, दूसरा तो लड़ भी सकता था, दूसरा तो कोई उपाय भी खोज लेता बचने का, लेकिन तुम तो बिल्कुल निरीह हो गए। तुम्हीं अपने को भूखा मार रहे हो तो कैसे बचोगे, किससे बचोगे, कहां जाओगे बचकर? तो तुमने तो बड़ा असहाय शत्रु चुन लिया।

एक आदमी दूसरों को पीड़ा देने में रस लेता है... मनोवैज्ञानिक पागलों की दो कोटियां करते हैं। एक को वे कहते हैं सैडिस्ट और एक को कहते हैं मैसोचिस्ट। एक को वे कहते हैं स्वदुखवादी, वह खुद ही को सताता है, मैसोचिस्ट। और एक को वे कहते हैं परदुखवादी, वह दूसरे को सताता है, सैडिस्ट।

तुम जिनको साधु-संत कहते हो, उनमें से अधिक, निन्यानबे प्रतिशत तो मैसोचिस्ट हैं। वे वस्तुतः साधु-संन्यासी नहीं हैं। साधु-संन्यासी तो कहेगा, देखो, मेरे महासुख को देखो। साधु-संन्यासी का तो सारा वैर गिर गया। दूसरे से तो गिरा ही गिरा, अपने से भी गिर गया। वैर बचा ही नहीं। निर्वैर-भाव की दशा संन्यास है।

तब उन्होंने ये तीन गाथाएं कहीं--

"वैरियों के बीच अवैरी होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं।"

देखना, इन सूत्रों की वाक्य रचना भी स्पष्ट करती है जो मैं कह रहा हूं। पहले बुद्ध कहते हैं, "वैरियों के बीच अवैरी होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं।" फिर कहते हैं, "वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं।"

इसलिए बुद्ध यह कह रहे हैं कि जब तक तुम अपने भीतर अवैर को उपलब्ध नहीं हुए, तब तक तुम बाहर भी अवैर को उपलब्ध नहीं हो सकते। अगर भीतर वैर बचा है, किसी के भी प्रति, अपने ही प्रति सही, तो भी तुम वैर-भाव से जी रहे हो। इसलिए दुबारा बात कही है--

सुसुखं वत!

"देखो, अहो, हम कैसे सुख में जी रहे हैं।"

जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।

"वैरियों के बीच अवैरी होकर... ।"

कौन वैरी? जिनको तुम काम कहते, लोभ कहते, मोह कहते, मद-मत्सर कहते; जिनको शास्त्र तुम्हारे वैरी कहते हैं--भीतर के शत्रु।

"वैरियों के बीच अवैरी होकर... ।"

इन सारे शत्रुओं के बीच हम अवैरी होकर जी रहे हैं, इनसे भी वैर न रहा। ये भी रहें, इनकी मर्जी! इनके प्रति भी तटस्थ-भाव हो गया, इनके प्रति भी उपेक्षा हो गयी। रहो तो रहो, जाओ तो जाओ। जैसी तुम्हारी मर्जी!

और तुम हैरान होओगे, जिस क्षण ऐसी दशा आती है उपेक्षा की, उसी क्षण ये वैरी चले जाते हैं। फिर ये क्षणभर भी नहीं रुकते। क्योंकि तुम्हारी उपेक्षा में तो ये बच ही नहीं सकते, तुम्हारी उपेक्षा की अग्नि इन्हें जलाकर भस्म कर देती है।

हां, अगर तुमने रस लिया--पहले रस लिया था कामवासना को फैलाने में, फिर रस लिया कामवासना को दबाने में--तो ये वैरी बने रहेंगे। ये जाएंगे नहीं, तुम्हारा रस कायम है। दुश्मनी बन गयी अब--पहले मैत्री थी--लेकिन संबंध कायम है। मित्रता का संबंध होता है, शत्रुता का संबंध होता है।

तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारा शत्रु मर जाता है तो भी कुछ-कुछ खाली हो जाता है भीतर। जैसे अपना कोई मर गया, अब इसके बिना क्या करेंगे?

मैं एक आदमी को जानता हूं, उनका मुकदमा एक पड़ोसी से कोई चालीस साल से--बस मुकदमेबाजी मुकदमेबाजी चलती थी। उनका सारा काम ही अदालत, रस ही अदालत। पुराने मालगुजार थे, पैसे की कोई तकलीफ न थी। अगर एक बात में हारे तो दूसरा मुकदमा। कोई दस-पंद्रह मुकदमे वे पड़ोसी पर चलाते थे। और पड़ोसी भी वैसा ही जिद्दी था, वह भी मुकदमे पर मुकदमा चलाए जाता था।

फिर पड़ोसी मर गया। हार्ट अटैक से मर गया। तो मैं उस पड़ोसी के घर भी बैठने गया और उसके बाद मैं उनके जन्मजात शत्रु के घर भी मिलने गया। तो वह कहने लगे, आप, वह मर गए तो मेरे घर क्यों आए? मैंने कहा, मैं यह देखने आया कि आपकी क्या दशा है? क्योंकि अब आप क्या करोगे? वह बहुत चौंके। वह कहने लगे

कि यह तो बात बड़ी पते की कही, चिंतित तो मैं भी हूं। इसकी वजह से तो चालीस साल मजे में बीते, अब वह सब मजा खतम हुआ। यही तो हमारा रस था, यह दांव पर दांव लगाना। और वह भी एक कारीगर था, कहने लगे। उसने भी हमें काफी पछाड़ा। ऐसा नहीं कि हमीं-हमीं जीतते थे, वह भी काफी जीतता था। उसके बिना जरूर हम उदास तो हुए। उसके बिना कुछ खाली तो हो गया।

और छह महीने बाद वह सज्जन भी मर गए। तो मुझे कुछ ऐसा लगा कि अगर उनका पड़ोसी जिंदा रहता तो वह कुछ देर और जिंदा रहते। पड़ोसी मर गया तो अब रहने में कोई उनका अर्थ ही न रहा। एक ही तो प्रयोजन था, एक ही लक्ष्य था, चालीस साल उसी पर उन्होंने दांव पर लगाए थे, वह आदमी ही चला गया तो अब रहने का क्या मतलब है!

तुम ख्याल रखना, तुम मित्रों में ही तो नियोजन नहीं करते अपनी ऊर्जा का, अपने शत्रुओं में भी करते हो। तुम्हारे मित्र मरेंगे तो तुम निश्चित कुछ खोओगे, तुम्हारे शत्रु मरेंगे तो भी तुम कुछ खोओगे। दोनों से संबंध बन जाता है।

"वैरियों के बीच अवैरी होकर... ।"

संबंध ही न बनाने का नाम अवैर है। अब यहां थोड़ा फर्क ख्याल लेना। यहां जीसस की और बुद्ध की शिक्षाओं में थोड़ा फर्क है। जीसस और महावीर की शिक्षाओं में भी वही फर्क है।

जीसस कहते हैं, शत्रु को प्रेम करो। बुद्ध और महावीर कहते हैं, शत्रु से शत्रुता न रखो, बस। प्रेम की बात नहीं उठाते। क्योंकि प्रेम तो फिर संबंध हो गया। एक संबंध था घृणा का, उसे बदलकर तुमने प्रेम का बना लिया, लेकिन संबंध तो जारी रहा। बुद्ध और महावीर, दोनों की आकांक्षा है, तुम असंग हो जाओ, असंबंधित हो जाओ।

यह शिक्षा प्रेम की शिक्षा से भी ऊपर जाती है, क्योंकि जिससे प्रेम है, उससे कभी भी घृणा बन सकती है। और जिससे घृणा है, उससे कभी भी प्रेम बन सकता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम असंबंधित हो जाओ। असंग हो जाओ, निसंग हो जाओ। कोई संबंध न रह जाए। इस दशा का नाम अवैर है। इसको बुद्ध मैत्री कह सकते थे, लेकिन मैत्री उन्होंने कहा नहीं।

उन्होंने कहा, "वैरियों के बीच में अवैरी होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं।"

बुद्ध वहां खड़े हैं उनके बीच, और वह कहते हैं, जरा देखो मेरी तरफ, इस महासुख की वर्षा को देखो! हम सुखी हैं, महासुख उतरा है, और एक छोटी सी बात से उतरा कि हमने अवैर साध लिया है। इतने से सूत्र से स्वर्ग उतर आया है।

क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में!
नीली भूमि हरी हो आयी
इस किरणों के ज्वार में
ऊंचाई यों फिसल पड़ी है
नीचाई के प्यार में
क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में!

जैसे आकाश से वर्षा होती और दूब हरी हो आती। वर्षा हमें दिखायी पड़ती, दूब का हरा होना भी दिखायी पड़ता है। बुद्धपुरुषों का हरा होना तो दिखायी पड़ता है, लेकिन जो अमृत की वर्षा उन पर हुई है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ती। मगर उनकी हरियाली से ही तुम जान लेना कि वर्षा हुई है, कोई अदृश्य वर्षा है। उसी अदृश्य को वे कहते हैं--सुसुखं वत!

यह शब्द बड़ा अच्छा है। इसका अर्थ होता है, सिर्फ सुखपूर्वक नहीं, सुसुखं वत! सुख जैसे होकर हम विचर रहे हैं, महासुख होकर हम विचर रहे हैं। सुखी होकर नहीं, सुख होकर विचर रहे हैं। जरा हमारी तरफ देखो--

"वैरी मनुष्यों के बीच हम अवैरी होकर विहार करते हैं।"

तो पहले तो भीतर के शत्रुओं की बात कही कि उनके बीच हमने निर्वैर साध लिया, फिर बाहर की बात कही कि भीतर जो निर्वैर सध गया, अब वह बाहर भी फैल गया है।

"आतुरों के बीच अनातुर होकर, अहो, हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। आतुर मनुष्यों के बीच अनातुर होकर हम विहार करते हैं।"

वही बात ख्याल रखना--भीतर और बाहर। पहला सूत्र भीतर के लिए है। भीतर पहले, फिर बाहर। क्योंकि जो भीतर घटता है, वही बाहर घटता है। तो ही सच्चा है। पहले बाहर घटे, फिर भीतर घटे तो खतरा है। पाखंड भी हो सकता है, जबरदस्ती भी हो सकती है।

"आतुरों के बीच अनातुर होकर... ।"

कितनी प्यासें हैं तुम्हारे भीतर, कितनी भूखें हैं, कितनी क्षुधाएं हैं। कामवासना कुछ मांगती, स्वाद कुछ मांगता। आंख कुछ मांगती, कान कुछ मांगते, नाक कुछ मांगती, कितनी मांगें हैं तुम्हारे भीतर! कितने भिखमंगे हैं तुम्हारे भीतर!

"हम आतुरों के बीच अनातुर होकर... ।"

इन किसी भी मांग और क्षुधा में हम संयुक्त नहीं, अलग खड़े हो गए हैं। यही संन्यास है। संसार से भाग जाना नहीं, इन प्यासों के बीच प्यास से मुक्त होकर खड़े हो जाना।

सुसुखं वत! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा।।

"और आतुर मनुष्यों के बीच अनातुर होकर हम विहार करते हैं।"

चारों तरफ आतुर मनुष्य हैं, सावधान! भीतर आतुर वासनाएं हैं, बाहर आतुर मनुष्य हैं। अगर खूब जागे नहीं तो फंस जाओगे किसी न किसी प्यास में, किसी न किसी उलझन में। और हम सब नकल से जीते हैं। तुम्हारा पड़ोसी बड़ा मकान बना लिया तो तुम बड़ा मकान बनाने में लग जाते हो। फिर चाहे सब दांव पर क्यों न लग जाए! फिर चाहे कौड़ी-कौड़ी हालत खराब क्यों न हो जाए! लेकिन पड़ोसी ने अगर कुछ कर दिया है तो तुम्हें भी करके दिखाना है। हम सब नकल से जीते हैं। पड़ोसी ने एक तरह के कपड़े पहन लिए हैं तो तुम्हें एक तरह के कपड़े पहनने हैं। उसी तरह के कपड़े चाहिए, उससे बेहतर कपड़े चाहिए।

हम जीते हैं नकल से और नकल बहुत भटकाती है। जिसकी हमें जरूरत नहीं है, उसको भी इकट्ठा कर लेते हैं। तुम जरा कभी अपने भीतर, अपने घर में गौर करके देखना, तुमने क्या-क्या इकट्ठा कर लिया है! इसमें ऐसी कौन-कौन सी चीजें थीं जिनके बिना चल सकता था?

तुम चौंकोगे। इसमें बहुत सी चीजें न होतीं तो चल जाता और शायद ज्यादा सुविधा से चलता। क्योंकि ज्यादा जगह होती, चलने-फिरने, हिलने-डुलने के लिए थोड़ा अवकाश होता। चिंता कम होती, अशांति कम होती। और जहां चिंता नहीं है, वहां सुख का पदार्पण होता है।

"आसक्तों के बीच अनासक्त होकर, अहो, सुखपूर्वक हम जीवन बिता रहे हैं। आसक्त मनुष्यों के बीच अनासक्त होकर हम विहार करते हैं।"

सुसुखं वत! जीवाम उस्सेकेसु अनुस्सुका।
उस्सेकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका।।

ये पहले तीन सूत्र।

फिर चौथा सूत्र; उसकी परिस्थिति--

एक दिन भगवान पंचशाला नामक ब्राह्मणों के गांव में भिक्षाटन के लिए गए। मार ने--शैतान ने--पहले ही ग्रामवासियों में आवेश कर ऐसा किया कि भगवान को किसी ने कलछी मात्र भी भिक्षा न दी। फिर जब भगवान खाली पात्र गांव के बाहर आने लगे, तब मार आया और बोला, क्या श्रमण! कुछ भी भिक्षा नहीं मिली? बुद्ध ने कहा, नहीं। तू सफल रहा और मैं भी सफल हूं। मार समझा नहीं। बोला, यह कैसे? या तो मैं सफल, या आप सफल। दोनों साथ-साथ कैसे सफल हो सकते हैं! यह तो आप बड़ी तर्कहीन बात कर रहे हैं। बुद्ध ने हंसकर कहा, नहीं, तर्कहीन नहीं है। तू सफल हुआ लोगों को भ्रष्ट करने में, भ्रमित करने में, मैं सफल हुआ अप्रभावित रहने में। और यह भोजन से भी ज्यादा पुष्टिदायी है।

मार ने एक जाल और फेंका। मार ने कहा, तो भंते, फिर प्रवेश करें, शायद भिक्षा मिल ही जाए। दिनभर भूखे रहने में क्या सार! परेशानी होगी, पीड़ा होगी, दिनभर के थके-मांदे आप दूर यात्रा करके आए हैं, शायद कोई दया खा ही जाए। मार ने सोचा कि इस तरह शायद बुद्ध दुबारा अपमानित हों, क्योंकि गांव के लोगों पर तो उसे भरोसा था। शायद बुद्ध दुबारा अपमानित हों तो क्रोधित हो जाएं।

लेकिन बुद्ध ने कहा, जो बात गयी सो गयी। जो नहीं मिला, वह मिलने को नहीं था। जो मिला, वह बहुत है। कुछ लौटकर जाने की बात नहीं है। बुद्ध कहीं लौटकर जाते भी नहीं। बुद्ध ने कहा, बुद्ध लौटकर देखते भी नहीं पीछे। फिर आज का सुअवसर खो देने जैसा नहीं है। भोजन तो मिलता है, मिलता रहता है। आज तो हम जैसे आभास्वर लोक के ब्राह्मण, आभास्वर लोक के देवता प्रीतिसुख से जीते हैं, वैसे ही जीएंगे।

यह बौद्धों की एक धारणा है कि एक ऐसा लोक है, स्वर्ग, जहां ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति--ब्राह्मण या ब्रह्मा जो भी नाम देना चाहो, उस लोक का नाम है, आभास्वर। वहां कोई स्थूल भोजन नहीं करता। वहां लोग प्रेम का ही भोजन करते हैं। तुम कहते हो न कभी-कभी, प्रीतिभोज दिया; वहां प्रीतिभोज ही चलता है। तुम तो कहते ही भर हो प्रीतिभोज, खिलाते तो फिर यही स्थूल चीजें हो! लेकिन उस लोक में प्रीतिभोज ही चलता है। प्रेम ही वहां एकमात्र भोजन है। वही एकमात्र पोषण है।

तो बुद्ध ने कहा, आज हमें भी ऐसा सुअवसर मिला है, न चूकेंगे मार! आज हम उस लोक के ब्रह्माओं की भांति प्रीतिसुख में जीएंगे। आज प्रीतिभोज लेंगे।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

सुसुखं वत! जीवामयेसं नो नत्थि किंचना।

पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा।।

"जिनके पास कुछ भी नहीं है, अहो, वे कैसा सुख में जीवन बिता रहे हैं। आभास्वर के देवताओं की भांति हम भी आज प्रीतिभोजी होंगे।"

प्रीतिभक्खा--आज प्रीति को ही खाएंगे।

इसके पहले कि इस छोटी सी कथा की गहराई में हम उतरें, एक बात समझ लेनी जरूरी है। आधुनिक मनोविज्ञान इस सत्य को पुनः खोजा है कि जब मां बच्चे को भोजन देती है, तो सिर्फ भोजन ही नहीं देती, प्रीतिभोज भी देती है। एक तो स्थूल भोजन है, जो उसके स्तन से बहता है--दूध--और एक उसका प्रेम है, जो अदृश्य बहता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर बच्चे को सिर्फ दूध ही दिया जाए और मां प्रेम न दे, तो भी बच्चा सूखने लगता है। पूरा भोजन दिया जाए शारीरिक, लेकिन प्रेम न दिया जाए--जैसे कोई नर्स बच्चे को दूध पिला दे, कोई दाई तुम घर में रख लो, दूध पिला दे--तो बच्चे में वैसी प्रफुल्लता नहीं होती, वैसा उल्लास नहीं होता, वैसा जीवन नहीं होता, वैसे फूल नहीं खिलते। और कुछ बच्चे के जीवन में हमेशा खाली रहेगा। क्योंकि मां दूध तो देती थी, वह तो केवल स्थूल था, उस स्थूल के साथ-साथ लगा-जुड़ा छाया की भांति सूक्ष्म भी बहता था, वह प्रेम है।

प्रेम और भोजन बड़े गहरे जुड़े हैं। इसीलिए तो जब तुम्हारा किसी से प्रेम होता है तो तुम उसे भोजन के लिए घर बुलाते हो। क्योंकि बिना भोजन खिलाए प्रेम का पता कैसे चलेगा। जो तुम्हें बहुत प्रेम करता है, वह तुम्हारे लिए भोजन बनाता है। जब कोई स्त्री अपने प्रेमी के लिए भोजन बनाती है, तो सिर्फ भोजन ही नहीं होता, उसमें प्रीति भी होती है। होटल के भोजन में प्रीति तो नहीं हो सकती। तो शरीर तो तृप्त हो जाएगा, लेकिन कहीं प्राण खाली-खाली रह जाएंगे।

मां जब अपने बेटे के लिए भोजन बनाती है तो चाहे भोजन रूखा-सूखा ही हो, फिर भी उसमें एक स्वाद है। वह प्रीतिभोज है। कहीं किसी ने कितना ही अच्छा भोजन खिलाया हो, लेकिन खिलाने का मन न रहा हो, बेमन से खिलाया हो, तो पचेगा नहीं। पचा भी तो शरीर से गहरा न जाएगा।

इस देश में तो हमने हजारों साल पहले इस बात का बोध कर लिया था कि प्रेम कहीं अनिवार्यरूप से भोजन का हिस्सा है। और इसलिए जहां प्रेम न हो वहां भोजन स्वीकार न करना। अगर तुम्हारी पत्नी क्रोध में भोजन बना रही हो तो उस भोजन को स्वीकार मत करना। अगर तुम भोजन बना रहे हो क्रोध में तो मत बनाना, क्योंकि क्रोध में जब भोजन बनाया जाता है तो विषाक्त हो जाता है। आज परिणाम नहीं होगा, कल परिणाम होगा। कल नहीं होगा, परसों होगा, जहर इकट्ठा होगा।

जब तुम भोजन करने बैठो, अगर क्रोध में हो तो मत करना भोजन। क्योंकि जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तभी बाहर से बहते प्रेम को भी तुम भीतर ले जाने में समर्थ होते हो। प्रेम से प्रेम का तालमेल होता है, संयोग होता है। प्रेम की तरंग प्रेम की तरंग को भीतर ले जाती है। अगर तुम क्रोधित बैठे भोजन कर रहे हो तो तुम

भोजन तो कर लोगे, लेकिन प्रेम की तरंग भीतर नहीं जा सकेगी। और फिर क्रोध में जो तुम भोजन करोगे वह भी विषाक्त हो जाएगा।

इसलिए इस देश में तो हमने बड़े नियम बनाए थे कि क्रोध में कोई भोजन न करे, क्रोध में बनाया भोजन न करे। किसके हाथ का बनाया भोजन करे, किसके हाथ का बनाया भोजन न करे। किस घड़ी में कोई भोजन बनाए।

इस देश में तो चार दिन के लिए स्त्रियां--जब उनका मासिक-धर्म हो--तो भोजन के लिए मना कर दिया था। अब संभव है कि भविष्य फिर विज्ञान के आधार से मना करे। क्योंकि जब चार दिन स्त्रियों का मासिक-धर्म होता है तो उनके शरीर में इतने रूपांतरण होते हैं, इतना हार्मोनल अंतर होता है कि उनके भीतर सब प्रीतिसुख सूख जाता है--इतनी पीड़ा होती है। उस पीड़ा और दर्द में आशा नहीं है कि उनका प्रेम बह सके, इसलिए उस घड़ी में भोजन बनाना ठीक नहीं है। उस घड़ी में बनाया गया भोजन विषाक्त हो जाएगा।

इस पर तो प्रयोग भी चले हैं। इंग्लैंड की एक प्रयोगशाला डिलाबार में उन्होंने प्रयोग किए हैं। अगर जिस स्त्री को मासिक-धर्म के समय बहुत पीड़ा होती है, पेट में बहुत दर्द होता है, उस समय अगर वह गुलाब का फूल अपने हाथ में ले ले, तो दुगुनी गति से गुलाब का फूल सूख जाता है--दुगुनी गति से। वही स्त्री जब मासिक-धर्म में न हो, तब गुलाब के फूल को हाथ में लेती है, तो अगर उसको सूखने में घंटाभर लगे, मुर्झाने में घंटाभर लगे, तो मासिक-धर्म के समय आधा घंटे में मुर्झा जाता है। तो गुलाब के फूल तक पर तरंगें पहुंच जाती हैं। तो भोजन में भी तरंगें उतर जाएंगी।

यह जो हम हैं, केवल शरीर ही नहीं हैं, आत्मा भी हैं। तो आत्मा का भी कुछ भोजन होगा, जैसे शरीर का कुछ भोजन है। इसीलिए तो प्रेम के लिए इतनी लालसा होती है। आदमी भूखा रह ले, लेकिन प्रेम के बिना नहीं रहा जाता। आदमी गरीब रह ले, लेकिन प्रेम के बिना नहीं रहा जाता। बिना धन के रह ले, निर्धन रह ले, लेकिन बिना प्रेम के नहीं रहा जाता। प्रेम की एक गहन प्यास है। वह प्यास इतना ही बता रही है कि आत्मा कहीं अतृप्त है। आत्मा को जो मिलना था, नहीं मिला, आत्मा का भोजन नहीं मिला।

तो यह बौद्धों की जो धारणा है, बड़ी महत्वपूर्ण है। एक ऐसा देवलोक-- देवलोक का मतलब ही होता है, वहां जहां शरीर नहीं रहा। सिर्फ आत्माएं हैं। यह कल्पना भी हो तो भी महत्वपूर्ण है, समझने जैसी है। तुम्हारे जीवन में दृष्टि बनेगी। इस बात को कोई ऐसा मत मान लेना कि ऐसा कहीं कोई स्वर्गलोक है या होना चाहिए, यह कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। यह तो सिर्फ प्रतीक है। अगर कहीं कोई ऐसा लोक हो जहां शरीर तो गिर गए हैं और सिर्फ आत्माओं का वास हो, तो वहां भोजन की तो कोई जरूरत न होगी, वहां प्रेम की जरूरत होगी। प्रीतिभक्खा, वहां तो लोग प्रीतिभोज करेंगे। वहां प्रेम ही प्रेम बांटेंगे, परोसेंगे। बुलाएंगे और प्रेम देंगे और प्रेम लेंगे। वहां प्रेम का लेन-देन चलेगा। वहां खूब प्रेम का आदान-प्रदान होगा। प्रीतिभक्खा।

तो बुद्ध ने कहा कि आज ऐसा सुअवसर मिला, मार, हम भी प्रीतिभक्खा होंगे। आज तो प्रेम में ही जीएंगे।

अब हम इस कहानी को समझें--

एक दिन भगवान पंचशाला नामक ब्राह्मणों के गांव में भिक्षाटन के लिए गए। ब्राह्मणों का गांव, यह ख्याल में रखना। खतरनाक गांव है। सब पंडित-ज्ञानी हैं। जब भी बुद्धपुरुष हुए हैं तो पंडितों ने उन्हें इनकार किया है। जिन्होंने जीसस को सूली दी, वे पंडित थे, ब्राह्मण थे, पुरोहित थे। जेरूसलम के बड़े मंदिर का प्रधान

पुरोहित उसमें सम्मिलित था। पुरोहितों की कौंसिल ने निर्णय किया था। जितने बड़े पंडित थे यहूदियों के, सबने यह निर्णय दिया था कि यह आदमी मार डालने योग्य है, यह आदमी खतरनाक है।

पंडित ज्ञान के पक्ष में नहीं होता। यह थोड़ा समझना कि क्या बात है! होना तो चाहिए पंडित को ज्ञान के पक्ष में, लेकिन पंडित ज्ञान के पक्ष में नहीं होता। क्यों? क्योंकि अगर बुद्ध सही हैं तो फिर पंडित का सारा ज्ञान थोथा सिद्ध हो जाता है। वह तो शास्त्र से पाया, वह तो किताब से पाया। और बुद्ध उसे अपने भीतर जगाए हैं, अपने भीतर उठाए हैं। बुद्ध का शास्त्र उनकी चेतना में है और पंडित का शास्त्र तो बाहर है, किताबी है। इस किताबी ज्ञान को ही वह अब तक ज्ञान मानता रहा है।

तो जब असली ज्ञान सामने खड़ा होगा तो उसका ज्ञान एकदम फीका पड़ जाता है। असली सिक्के को देखकर नकली सिक्का अगर नाराज होता हो तो आश्चर्य तो नहीं। और फिर नकली सिक्के बहुत हैं। इसलिए नकली सिक्के अगर इकट्ठे हो जाते हों असली सिक्के के खिलाफ, तो भी कुछ आश्चर्य नहीं। और सभी नकली सिक्के अगर मिलकर असली सिक्के की हत्या कर देते हों, तो भी कुछ आश्चर्य नहीं।

तो पहली बात--पंचशाला नामक ब्राह्मणों का गांव। जिसमें ब्राह्मण ही ब्राह्मण बसते थे। अगर कोई एकाध भी ऐसा आदमी होता जो पंडित न होता तो शायद दया खा जाता। पंडित से क्या दया की आशा! और दूसरे मजे की बात है--जीसस ने कहा है कि शैतान भी शास्त्रों के उद्धरण देता है। तो मार ने, जो कि बौद्धों की शैतान की धारणा है, अगर पंडितों को राजी कर लिया हो बुद्ध के खिलाफ, तो कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि शैतान खुद भी महापंडित है।

तुम्हें शायद पता न हो, ईसाइयत की यही धारणा है--शैतान देवता है, लेकिन उसे स्वर्ग से निकाल दिया गया है, क्योंकि वह ईश्वर से भी वाद-विवाद करने को उत्सुक था। पंडित रहा होगा, ब्राह्मण रहा होगा। तो शैतान बातें तो बड़ी शास्त्रीय बोलता है। इसलिए शास्त्र जानने वालों से उसका तालमेल हो जाता है। इसलिए सारे पुरोहित और पंडित शैतान की सेवा में लग जाते हैं। मंदिर बनते तो भगवान के नाम पर हैं, लेकिन करते शैतान की सेवा हैं। पुरोहित पूजा का थाल तो सजाते हैं भगवान के लिए, लेकिन उतरती है आरती शैतान की।

तो कथा कहती कि भिक्षाटन के लिए ब्राह्मणों के इस गांव में गए। मार ने पहले ही ग्रामवासियों में आवेश कर ऐसा किया कि भगवान को किसी ने कलछी मात्र भी भिक्षा न दी। ऐसी दुर्घटनाएं रोज घटती रही हैं। फिर हजारों साल तक हम बुद्धों के लिए रोते हैं, आंसू बहाते हैं; और कभी हम ऐसा भी करते हैं कि एक कलछी भेंट भी, भिक्षा भी उनको नहीं देते। कभी हमसे सिर्फ अपमान ही मिलता है उनको, और फिर हम सदियों तक रोते और सम्मान करते। उस सम्मान से भी वह अपमान पोंछा नहीं जा सकता। क्योंकि वह अपमान बुद्धों का अपमान नहीं, अंततः अपना ही अपमान है। क्योंकि वह अपने भीतर ही बुद्धत्व को अस्वीकार करना है। वह अपने भीतर जागने की संभावना को इनकार करना है।

फिर जब भगवान खाली पात्र गांव से बाहर आने लगे तब मार आया होगा पूछने कि कहो, कैसी रही! क्या श्रमण! कुछ भी भिक्षा नहीं मिली? इनको तुम भीतर के प्र्तीक समझो। ऐसा कोई बाहर शैतान आकर खड़ा हो गया होगा, ऐसा नहीं है। मन के ही शैतान ने भीतर कहा होगा कि अरे! तुमने इतना ज्ञान पाया है, इतनी समाधि लगायी, इतना बुद्धत्व पाया और इन दुष्टों ने भीख भी न दी। इन पापियों ने भीख भी न दी। यह कोई बाहर खड़ा हो गया शैतान, ऐसा नहीं है। यह शैतान सबके भीतर सोया पड़ा है। यह तुमसे भी रोज-रोज इसकी मुलाकात होती है। शैतान ने कहा होगा, अभिशाप दे दो कि नष्ट हो जाए यह गांव। ये आदमी आदमी कहलाने योग्य नहीं। भड़काया होगा।

यही शैतान उन आदमियों के भीतर बैठा है, इसी शैतान ने उन्हें भड़काया है। इसी शैतान ने उनसे कहा है, यह बुद्ध आ रहा है, यह अपने को ढोंगी समझता है कि हम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, कि हम भगवान हो गए हैं। यह पाखंडी है। एक तो क्षत्रिय है। पहली तो बात ब्राह्मण नहीं है। दूसरी बात, वेद को नहीं मानता है। तीसरी बात, विधि-विधान को नहीं मानता है। चौथी बात, यह घोषणा करता है कि मैंने पा लिया जो कभी किसी ने नहीं पाया, अपूर्व समाधि मुझे उपलब्ध हुई है। यह सब अहंकार है। यह सब व्यर्थ की बातें हैं। यह लोगों को भरमाता है, भटकाता है, धर्म से भ्रष्ट करता है। ऐसा भीतर के शैतान ने गांव के लोगों को कहा होगा। इसको भिक्षा भी मत देना, इसको भिक्षा देना पाप है, क्योंकि तुम्हारी भिक्षा से जीएगा और लोगों को भटकाएगा, भरमाएगा, तो तुम भी साझीदार हुए। इसको देना ही मत। इसको साफ पता चल जाए कि इसका यहां कोई स्वीकार नहीं है। इसका अपमान पूर्ण हो।

और यही शैतान बुद्ध के भीतर बोला होगा। मन शैतान है। मन गलत की तरफ ले जाने की चेष्टाएं करता है। मन संसार की तरफ ले जाने की आकांक्षाओं को जगाता है। तो शैतान ने कहा, क्या श्रमण! कुछ भी भिक्षा नहीं मिली? अरे तुम, तुम जो कि बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए और तुम्हें भीख भी नहीं मिल रही! यह बात क्या है!

बुद्ध ने कहा, नहीं, नहीं मिली भीख। तू भी सफल रहा और मैं भी सफल हूं। मार समझा नहीं। मन तर्क तो समझता है, तर्क के पार नहीं समझता। शैतान तर्क तो समझ लेता है, लेकिन तर्कातीत शैतान की सीमा के बाहर है। इसीलिए तो सभी धर्म कहते हैं, जब तक तुम तर्कातीत न हो जाओगे तब तक मन के पार न हो सकोगे। श्रद्धा का अर्थ है, तर्कातीत हो जाना।

बुद्ध ने जब यह कहा कि मैं भी सफल, तू भी सफल; तू भी खुश हो, हम भी खुश हैं। शैतान की बात में कुछ किसी तरह का व्याघात बुद्ध को पैदा न हुआ, तो शैतान पूछने लगा, यह कैसे? या तो मैं सफल या आप सफल। मन तो सदा द्वंद्व में मानता है। या तो मैं सफल या आप सफल, या तो हम जीते या तुम जीते। मन ऐसा तो कभी मानता ही नहीं कि हम दोनों जीत जाएं। लेकिन कुछ ऐसी घड़ियां हैं जब दोनों जीत जाते हैं। समझ हो तो हार होती ही नहीं। हार में भी हार नहीं होती। इसी समझ का सूत्र है इस कथा में।

बुद्ध ने कहा, नहीं, यह बात तर्कहीन नहीं, तर्कातीत भला हो। मगर तर्क स्पष्ट है--तू सफल हुआ लोगों को भ्रष्ट करने में, भ्रमित करने में। वही तेरा काम है। तेरी सफलता पूरी रही। तू खुश हो, तू जा नाच, गा, आनंद कर। तू सफल हुआ। लोगों ने तेरी मान ली। और मैं सफल हुआ अप्रभावित रहने में। अपमान भारी था। द्वार-द्वार भीख मांगने गया और दो दाने भिक्षापात्र में न पड़े।

तुम जरा सोचो, एक सम्राट का बेटा, जिसके पास सब था, जो हजारों-लाखों भिक्षुओं को भोजन रोज करा सकता था, वह आज भिक्षापात्र लेकर भिखारियों के गांव में गया है--ब्राह्मण यानी भिखारी--सम्राट भिखारियों के सामने भीख मांगने गया और भिखारियों ने भी न दिया। चोट तो लगती होगी! पीड़ा तो होती होगी!

लेकिन बुद्ध ने कहा, मैं अप्रभावित ही रहा, इसलिए सफल हुआ, खूब सफल हुआ। तूने एक सौभाग्य का अवसर जुटा दिया, अपनी सफलता को जानने का एक मौका बना दिया। और यह भोजन से भी ज्यादा पुष्टिदायी है। भोजन से तो ठीक, शरीर भरता है, लेकिन यह अप्रभावित रहना, इससे मेरी आत्मा बड़ी पुलकित हुई है।

इसको मैं कहता हूं, दृष्टि, दर्शन; इसको मैं कहता हूं, आंख। असली आंख तो अंधेरे को भी रोशनी में बदल लेती है और कांटे को फूल बना लेती है, जहर को अमृत कर लेती है। बीमारी औषधि बन जाती। और आंख न हो तो अमृत भी जहर हो जाता है और फूल भी कांटे हो जाते हैं। सारी बात आंख की है, सारी बात देखने की है, देखने के ढंग की है, फिर तुम्हारी व्याख्या!

इसलिए मैंने आज की चर्चा तुमसे शुरू की कि जीवन न तो सुख है, न दुख, जीवन है व्याख्या। अब इस घड़ी में बुद्ध यह भी व्याख्या कर सकते थे कि मेरा बड़ा अपमान हुआ! और तब बड़े दुखी हो जाते। और इस घड़ी में उन्होंने कैसी व्याख्या की, कैसी अनूठी व्याख्या की, कैसी अपूर्व! न पहले सुनी, न पहले कभी देखी, ऐसी अपूर्व व्याख्या की। कांटे को बदल दिया तत्क्षण। मिट्टी सोना हो गयी।

कहा कि मैं अप्रभावित हुआ, अप्रभावित रहा। मुझ पर कुछ अंतर ही न पड़ा। लोगों ने द्वार-दरवाजे मेरे मुंह पर बंद कर दिए। लोगों ने कहा, आगे जा! लोगों ने कहा, यहां न मिलेगा कुछ। गांव से मैं खाली पात्र लौट आया हूं लेकर अपने हाथ में। लेकिन यह खाली पात्र तेरी दृष्टि से खाली है, मेरी दृष्टि से भरा है। क्योंकि मैं अप्रभावित लौट आया हूं। एक अपूर्व रस इसमें भरा है। और मैं प्रसन्न हूं, खूब प्रसन्न हूं। यह भोजन से भी ज्यादा पुष्टिदायी है।

मार ने कहा, तो भंते, फिर प्रवेश करें। क्योंकि मार को तो यह बात समझ में आयी नहीं। मार ने तो यह बात सुनी नहीं सुनी बराबर हो गयी। उसने तो कहा, तो फिर एक मौका और लेना चाहिए अगर यह अभी तक क्रोधित नहीं हुआ, नाराज नहीं हुआ। नाराज हो जाता तो मन के प्रभाव में आ जाता, नाराज हो जाता तो मार का प्रभाव शुरू हो जाता। यह नाराज नहीं हुआ! एक दफा और समझा-बुझाकर इसको गांव में भेज दें। क्योंकि गांव के ब्राह्मणों पर तो भरोसा है, वे तो फिर इसको इनकार करेंगे, शायद और भी जोर से दुतकारेंगे कि तू फिर आ गया! और हमने कह दिया कि नहीं कुछ मिलेगा! तो दुबारा अपमान की चोट शायद और भी ज्यादा होगी।

तो बुद्ध को फुसलाने लगा कि आप ऐसा करें, फिर प्रवेश करें गांव में, शायद भिक्षा मिल ही जाए, दिनभर भूखे रहने में सार भी क्या है--इन बातों में क्या रखा है! ये तो उसे बातें ही मालूम होती हैं कि अप्रभावित रहा, या आनंद का रस भरा हुआ है पात्र में! उसने पात्र देखा होगा, पात्र बिल्कुल खाली है, उसको कुछ समझ में न आया होगा। मन को तो आनंद की बात समझ में आती ही नहीं। मन तो एक ही भाषा जानता है, वह दुख की भाषा है।

बुद्ध ने कहा, नहीं, जो बात गयी सो गयी। बुद्ध लौटकर नहीं देखते हैं, बुद्ध लौटकर नहीं जाते। जो होना था हो गया। जो नहीं होना था नहीं हुआ। यह बात आयी गयी हो गयी। पुनरुक्ति में बुद्धों को कोई रस नहीं है। बुद्ध सदा नए में प्रवेश करते हैं। फिर आज का सुअवसर हम आभास्वर लोक के ब्रह्माओं की भांति प्रीतिसुख से ही बिताएंगे। और तब यह गाथा कही--

"जिनके पास कुछ भी नहीं है, अहो, वे कैसा सुख में जीवन बिता रहे हैं।"

वह भिक्षापात्र खाली शैतान के सामने करके बुद्ध ने कहा होगा, देख, जिनके पास कुछ भी नहीं है, अहो, वे कैसा सुख में जीवन बिता रहे हैं।

सुसुखं वत! जीवामयेसं नो नत्थि किंचना।

नहीं जिनके पास कुछ भी है, उनके सुख का कोई पारावार नहीं। क्योंकि जिनके पास कुछ है, उनके सुख की सीमा है। तुम्हारे पास हजार रुपये हैं तो उस हजार रुपये के योग्य सुख। तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं तो दस हजार रुपये के योग्य सुख। लेकिन ख्याल रखना, जिसके पास हजार रुपये हैं, हजार रुपये उसके सुख की सीमा है, और अरबों-खरबों जो हो सकते थे, नहीं हैं, वे उसका दुख होंगे। दुख ज्यादा होगा, दुख सदा ज्यादा होगा। एक स्त्री है तुम्हारे पास, उसका सुख, और करोड़ों जो सुंदर स्त्रियां हैं, वे तुम्हारे पास नहीं हैं, उनका दुख होगा, उनकी पीड़ा होगी।

ज्यां पाल सार्त्र का एक पात्र कहता है कि जब भी मैं किसी सुंदर स्त्री को देखता हूं, तो भोगना चाहता हूं। मैं दुनिया की सारी स्त्रियों को भोगना चाहता हूं। मगर यह कैसे संभव हो! इसलिए मैं दुखी हूं। एक स्त्री ही भोगोगे, दो स्त्री भोगोगे, दस स्त्रियां भोगोगे, लेकिन अनंत स्त्रियां हैं, अनंत रूप हैं, वह जो तुम नहीं भोग पाओगे, उनकी पीड़ा तो पीछा करेगी।

कितना धन इकट्ठा करोगे! बहुत रह जाएगा जो नहीं इकट्ठा कर पाए। पूरी पृथ्वी के मालिक हो जाओ तो चांद-तारे रह जाएंगे, अनंत-अनंत चांद-तारे, उनकी मालकियत हमारे हाथ में नहीं है। फिर दुख होगा। अभाव पकड़े रहेगा।

इसलिए बुद्ध के सूत्र को समझना--

सुसुखं वत! जीवामयेसं नो नत्थि किंचना।

उसके सुख का क्या कहना, उसके सुख की कोई सीमा ही नहीं, जिसके पास कुछ भी नहीं है! जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसके सुख की क्षुद्र सीमा टूट गयी, उसका सुख विराट हुआ। और जो कुछ भी नहीं में राजी हो गया, फिर उसको दुख कैसे हो सकता है! यही भिक्षु का अर्थ है, संन्यासी का अर्थ है--न कुछ में राजी हो जाना, न कुछ में परिपूर्ण रसमग्न हो जाना। खाली भिक्षापात्र को रस भरा देख लेना।

स्वामी राम अमरीका गए, वह अपने को बादशाह कहते थे। था उनके पास तो कुछ भी नहीं--दो लंगोटियां थीं, एक भिक्षापात्र था। अमरीका में किसी ने पूछा कि और सब तो ठीक है आप जो कहते हैं, मगर यह अपने आपको बादशाह कहना, यह जरा जंचता नहीं! आपके पास कुछ है तो है ही नहीं। ये दो लंगोटी और एक भिक्षापात्र। राम ने कहा, इन्हीं दो लंगोटियों और भिक्षापात्र के कारण मेरी बादशाहत थोड़ी सी कम है। जरा सी कम है--ये दो लंगोटी और यह पात्र! जरा सी अटकी है।

मैंने तुमसे पीछे कहा न--डायोजनीज नग्न रहने लगा। सिर्फ एक भिक्षापात्र रखता था। एक नदी पर भागा गया पानी पीने को, नदी से पानी भरा, और तभी एक कुत्ता आया और भागा हुआ पानी में छलांग लगाकर--डायोजनीज से पहले छलांग लगा ली, डायोजनीज तो अपना बर्तन साफ करके पानी पीने की तैयारी कर रहा था--उसने पानी झटपट पीया और जाने लगा। डायोजनीज ने तो पात्र फेंक दिया नदी में, पकड़ लिए कुत्ते के पैर कि गुरुदेव! कहां जाते हो? कुत्ता भी चौंका होगा कि यह मामला क्या है! और डायोजनीज ने कहा, खूब, खूब याद दिलायी, खूब वक्त पर आए, मैं नाहक ही यह बर्तन घिस रहा। तुम जब बिना बर्तन के जी सकते हो मजे से, तो मैं क्यों नहीं जी सकता! उसने बर्तन फेंक दिया नदी में। उस दिन डायोजनीज ने कहा कि मेरी बादशाहत पूरी हो गयी। एक छोटे से पात्र से थोड़ी सी अटकी थी।

राम ने कहा, ये दो लंगोटी और यह भिक्षापात्र, थोड़ी सी बादशाहत में कमी है।

लेकिन अर्थ समझना--

बादशाह वही है जो न कुछ में भी आनंदित है। क्योंकि न कुछ की कोई सीमा नहीं है, न कुछ असीम है। न कुछ का कहीं अंत नहीं है। न कुछ में सब आ गया।

राम ने और एक जगह कहा है कि जिस दिन मैंने एक घर छोड़ दिया, सारे घर मेरे हुए। एक छोटा आंगन छोड़ दिया और सारा आकाश मेरा हुआ।

तुम ख्याल रखना, एक तरफ से संन्यासी भिक्षु हो जाता है, एक तरफ से स्वामी हो जाता है। इसलिए हिंदुओं ने उसे स्वामी कहा है, बौद्धों ने भिक्षु कहा है, दोनों बातें सच हैं। भिक्षु होकर स्वामी हो जाता है। बौद्धों ने भिक्षु शब्द चुना, वह भी ठीक है। क्योंकि सब कह देता है मेरा कुछ भी नहीं है, अब मैं न कुछ में जीयूंगा। और हिंदुओं ने स्वामी शब्द चुना, क्योंकि जो न कुछ में जीता है, उसकी मालकियत पूरी हो गयी, वह सम्राट हो गया, वह स्वामी हो गया।

सुसुखं वत! जीवामयेसं नो नत्थि किंचना।

"जिनके पास कुछ भी नहीं, अहो, वे कैसा सुख में जीवन बिता रहे हैं!"

बुद्ध ने कहा, तू देख पागल, तू नाहक दुखी हुआ जा रहा है, खुद भी दुखी होता है, दूसरों को भी दुखी करता, इधर हम हैं कि बड़े सुख में जी रहे हैं। सुख रूप होकर विहर रहे हैं। हमारे पास कुछ भी नहीं है। यह भिक्षापात्र देख बिल्कुल खाली है। यही खालीपन हमारा सुख है।

इसलिए बुद्ध कहते हैंः शून्य समाधि है। जब तुम भीतर भी खाली हो जाओगे, कोई विचार न बचा, कोई वासना न बची, कोई आसक्ति, कोई आतुरता न बची, जब भीतर भी भिक्षापात्र खाली हो गया, तो वहां भी समाधि का सुख झरने लगेगा। जो शून्य हो जाता है, उसमें पूर्ण उतर जाता है।

"आभास्वर के देवताओं की भांति हम भी प्रीतिभोजी होंगे।"

पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा।

अब तो आज का दिन ब्रह्मा की तरह बिताएंगे। ऐसा स्वर्गीय दिन तूने जुटा दिया मार, तेरा धन्यवाद! तू भी सफल हुआ, हम भी सफल हुए।

इस देखने की कला को समझना। इस सूत्र को सम्हालकर रख लेना हृदय में। यह रोज-रोज काम पड़ सकता है। यह चीज ऐसी है कि रोज-रोज काम में लाने की है।

आखिरी सूत्र--

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।

उपसंतो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं।।

"विजय वैर को उत्पन्न करती है। पराजित पुरुष दुख की नींद सोता है। लेकिन जो उपशांत है, वह जय और पराजय को छोड़कर सुख की नींद सोता है।"

इस सूत्र को बुद्ध ने इस परिस्थिति में कहा--

कौशलनरेश प्रसेनजित काशी के लिए अजातशत्रु से युद्ध करने में तीन बार हार गया। वह बहुत चिंतित रहने लगा। उसके पास कुछ कमी न थी, बड़ा राज्य था उसके पास, कौशल का पूरा राज्य उसके पास था, लेकिन काशी खटकती थी। काशी पर किसी और का कब्जा, यह खटकता था। उसके अपने कब्जे में बहुत था, लेकिन जो दूसरे के कब्जे में था वह खटकता था। तीन बार उसने हमला किया काशी पर और तीनों बार हार गया। बहुत चिंतित रहने लगा। जब तीसरी बार भी हार हुई तो बात जरा सीमा के बाहर हो गयी, उसके दर्प को बड़ा आघात पहुंचा। वह सोचने लगा, मैं दुग्धमुख लड़के को भी न हरा सका, ऐसे मेरे जीने से क्या! और अजातशत्रु अभी लड़का ही था, अभी उसकी कोई खास उम्र भी न थी। और उस लड़के से बार-बार हार जाना पीड़ादायी हो गया।

तो उसने सोचा कि मैं दुग्धमुख लड़के को भी न हरा सका, तो फिर मेरे ऐसे जीने से क्या! इससे तो मौत ही भली। ऐसा सोच वह खाना-पीना छोड़कर बिछावन पर लेट गया। लेकिन तब भी निद्रा कहां! शांति कहां! ऐसे कहीं शांति आती है, ऐसे कहीं निद्रा आती है! आत्मघात करने को उत्सुक आदमी कहीं शांत हो सकता है! उसकी नींद भी खो गयी। वह करीब-करीब विक्षिप्त हो गया। वह असह्य दुख में डूब गया। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान से कहा।

बहुत दिन से प्रसेनजित आया नहीं तो भिक्षु चिंतित हुए। कभी-कभी भगवान को सुनने आता था। सुनकर भी कहां लोग सुनते हैं! प्रसेनजित उन्हें सुनने आता था और फिर भी यह दौड़ जारी ही रही। तो भिक्षुओं ने कहा कि ऐसी-ऐसी हालत हो गयी है प्रसेनजित की, तीन बार हार गया तो बिछावन पर लेट गया है, न खाता है न पीता है, न सोता है न जगता है, पागल जैसा है।

भगवान बोले, भिक्षुओ, न जीत में सुख है, न हार में। क्योंकि दोनों में उत्तेजना है। उत्तेजना में कहां शांति, कहां सुख! व्यक्ति जीतते हुए वैर को उत्पन्न करता है और हारा हुआ भी सुख से सो नहीं सकता।

तब यह गाथा कही।

"विजय वैर को उत्पन्न करती है।"

क्योंकि जिससे तुम जीते हो, वह बदला लेना चाहेगा। जिससे तुम जीते हो, वह तैयारी करेगा। वह तुम्हें हराएगा। और फिर जिससे तुम जीत गए हो, उसके साथ तुमने जो गहरी शत्रुता मोल ले ली है, उसके प्रतिकार का क्या करोगे? चिंता पकड़ेगी--हमला करेगा, प्रतिशोध लेगा, क्या करेगा? तो जीत वैर को उत्पन्न करती, चिंता को पैदा करती, सुरक्षा का आयोजन करना पड़ता।

फिर पराजित पुरुष--अगर जीत न हो, हार गए, तो भी सुख नहीं है। क्योंकि पराजित पुरुष सुख की नींद कहां सो सकता है? जागने में बेचैन कि हार गया, दर्प टूट गया, अहंकार खंडित हो गया, और नींद में भी बेचैन, करवटें बदलता है। सुख की नींद कहां, दुख की नींद सोता है। नींद में तक दुख। नींद तक में सुख छिन जाता है। नींद में तो प्राकृतिक सुख है, पशुओं को भी है, साधारण आदमियों को भी है, वह भी उसके पास नहीं रह जाता। नींद में भी दुखस्वप्न देखता है। वही छायाएं जिनसे हार गया और विकराल हो-होकर प्रगट होती हैं।

"लेकिन जो उपशांत है, वह जय और पराजय को छोड़कर सुख की नींद सोता है।"

उपशांत शब्द महत्वपूर्ण है। उपशांत का अर्थ होता है, जिसके जीवन में कोई उत्तेजना न रही। न जीत की इच्छा, न हार हो जाए तो कुछ परेशानी। जीत की इच्छा छोड़ दी जिसने, और अगर हार भी हो जाए तो उसे परमभाव से स्वीकार कर लिया जिसने, ऐसा व्यक्ति उपशांत। और उपशांत ही आनंदित है।

अब हम इस कथा को थोड़ा समझें।

कौशलनरेश प्रसेनजित काशी के लिए अजातशत्रु से युद्ध करने में तीन बार हार गया। वह बहुत चिंतित रहने लगा। आदमी एक बार में नहीं जागता, दो बार में नहीं जागता, तीन बार में नहीं जागता। तीन प्रतीक है। तीन बार हार गया। तीन प्रतीक है कि अब बहुत हो गया, आदमी बिल्कुल मूढ़ होना चाहिए।

बुद्ध अपने शब्दों को तीन बार दोहराते थे। वह किसी को कुछ कहते तो कहते, सुना? वह कहता, हां, भंते! वह फिर कहते, सुना? हां, भंते! वह फिर कहते, सुना? हां, भंते! वह तीन बार दोहराते। वह कहते कि लोग इतने मूढ़ हैं कि तीन बार में भी नहीं सुनते।

तीन बार हार गया, फिर भी उसे समझ न आयी कि जीत में कुछ रखा नहीं है। जीत से केवल हार हाथ में आ रही है, यह समझ में न आया। जिसने सफलता चाही उसको असफलता हाथ आती है, लेकिन समझ में नहीं आता। जिसने धन चाहा, वह और भी भीतर निर्धन होता जाता है, यह समझ में नहीं आता है। जिसने सम्मान चाहा, सब तरफ अपमान होने लगता है, यह समझ में नहीं आता। बार-बार होता है, फिर भी समझ में नहीं आता। आंखें हमारी बिल्कुल बंद हैं। बिजली कौंध-कौंध जाती है, फिर भी हम देखते नहीं।

तीन बार हार गया प्रसेनजित। चिंतित रहने लगा। जीत की आकांक्षा के कारण हार पैदा हो रही है, यह तो न देखा, उलटी चिंता रहने लगी! चिंता क्या? चिंता यह कि मैं दुग्धमुख लड़के को भी हरा न सका। ऐसे मेरे जीने से क्या! जैसे आदमी के जीने का इतना ही अर्थ है कि जीते। कुछ लोग हैं जो इसीलिए जी रहे हैं कि जीतो। जीत-जीतकर मर जाओगे। जीत से होगा क्या! जीत से जीवन का संबंध क्या है? और जहां जरा हारे कि आदमी मरने की सोचने लगता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने अपने जीवन में कम से कम एक बार आत्महत्या की बात न सोची हो। न की हो, यह दूसरी बात है। लेकिन न सोची हो, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। और अनेक लोग कोशिश भी करते हैं। सफल नहीं होते, यह दूसरी बात है, लेकिन कोशिश करते हैं।

तुम्हारा जीवन बस जीतता चला जाए तो ठीक। हारे कि बस मरने का मन होता है। जरा सी हार कि बस मौत। तो तुम्हारे जीवन का मतलब क्या है? सिर्फ जीतना और हारना? हम छोटे बच्चों की भांति हैं। हम जरा-जरा सी बात में मरने को तैयार हो जाते हैं। जरा-जरा सी बात में मारने को तैयार हो जाते हैं।

सोचने लगा, मर ही जाऊं, अहंकार को चोट लग गयी तो फिर जीवन में क्या है! हमने और तो कोई जीवन जाना ही नहीं। असली जीवन तो जाना नहीं। अहंकार का जीवन कोई असली जीवन तो नहीं! तुम्हारे भीतर एक जीवन है जिसकी मृत्यु ही नहीं हो सकती। काश, तुम उसे जान लो तो फिर तुम मरने की सोचोगे भी नहीं। आत्महत्या का विचार इसीलिए आता है कि तुम सोचते हो, मरना हो सकता है। मरना तो हो ही नहीं सकता। कोई कभी मरता तो है ही नहीं, कोई कभी मरा तो है ही नहीं। मृत्यु तो एक झूठी बात है। मृत्यु तो कभी होती नहीं। तुम्हारे भीतर जो है, वह शाश्वत है। वह सदा है, सदा था, सदा रहेगा। लेकिन आत्महत्या की बात उठती है मन में--बाजार में प्रतिष्ठा खराब हो गयी है, दिवाला निकल गया, पत्नी मर गयी, कि बेटा धोखा दे गया, कि कुछ हो गया छोटा-मोटा, बस मरने की बात उठती है। मरने की बात उठने का मतलब ही यही हुआ कि तुमने अभी जीवन को जाना ही नहीं। जीवन को जान लेते तो मृत्यु की सोचते कैसे?

मुझसे कोई पूछता है कभी आत्महत्या के लिए, लोग आ जाते हैं। अभी एक चार-छह दिन पहले एक महिला ने पूछा कि मुझे तो जीवन में कोई सार नहीं दिखायी पड़ता। उम्र भी उसकी कोई साठ के करीब हुई। चेहरा-मोहरा भी ऐसा नहीं है कि अब साठ वर्ष की उम्र में किसी से लगाव बने, कोई संबंध बने। तो पश्चिम में तो बड़ी घबड़ाहट होती है--पश्चिम से आयी हुई स्त्री है, उसे बड़ी घबड़ाहट हो गयी। पति ने तलाक दे दिया, बच्चे सब बड़े होकर अपनी-अपनी दुनिया में चले गए, अब कोई उसकी तरफ देखता भी नहीं, तो वह मरने की सोचती है। दो बार उपाय भी कर चुकी, नींद की दवाएं खा लीं, बमुश्किल बचायी जा सकी।

वह मुझसे पूछने लगी कि मेरे जीवन में सार भी क्या है, मैं मर ही जाऊं! मैंने उससे कहा कि तू कोशिश कर, मर तो सकती नहीं, लेकिन मैं तुझसे एक बात कहूंगा कि पहले जीवन को तो जान ले, फिर मर जाना। अभी तो जीवन जाना भी नहीं है और मरने की तैयारी करने लगी। अगर जीवन को जान ले तो फिर मैं तुझे आज्ञा देता हूं मरने की, तू मर जाना।

वह थोड़ी चौंकी भी। उसने कहा, मैंने यह सोचा नहीं था कि आप आज्ञा देंगे मरने की, आप जरूर समझाएंगे। मैंने कहा, समझाने में क्या रखा है? समझाने से तो तेरी जिद और बढ़ेगी, तुझे और रस आएगा कि मर ही जाएं। और मजा आएगा। निषेध करो तो और निमंत्रण मिलता है। कहो किसी से, मत करो, तो और करने की इच्छा होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अखबार पढ़ रही थी। अखबार पढ़कर उसने कहा कि सुनो, सुनते हो, वैज्ञानिक अणु को तोड़ने में सफल हो गए। मुल्ला ने कहा, इसमें क्या रखा है? अगर पार्सल में अणु को रखकर, ऊपर लिखकर पार्सल भेज दी होती पोस्ट-आफिस में कि इसे सम्हालकर उठाना--कभी का अणु टूट गया होता। बस जिस पार्सल पर लिखा है, सम्हालकर उठाना, उसी को लोग पटकते हैं। कभी का टूट गया होता, इतनी वैज्ञानिकों को चेष्टा करने की कोई जरूरत ही न पड़ती।

जहां तुमने देखा कि मनाही लिखी है, वहीं मुश्किल हो जाती है।

मैं एक गांव में बहुत वर्षों तक रहा। मेरे सामने ही एक सज्जन रहते थे, उनकी एक बड़ी दीवाल--वह बड़े परेशान रहते थे कि कोई इश्तहार न लगा दे, कोई लिख न दे, कोई आकर पेशाब न कर जाए। मैंने उनसे कहा, तुम एक तरकीब करो, इस पर लिख दो तो यह तुम्हें रोज-रोज की फिकर न रहेगी--कि यहां इश्तहार लगाना मना है, यहां पेशाब करना मना है। उनको बात जंची, उन्होंने लिख दिया।

पांच-सात दिन बाद मेरे पास आए कि आपने भी खूब मुसीबत कर दी! जो लोग पहले चुपचाप निकल जाते थे, वे भी पेशाब करने लगे हैं। वह आपने लिखवाकर तो झंझट कर दी। मैंने कहा, मैं यही तुम्हें बताना चाहता था--कहीं लिख भर दो कि यहां पेशाब करना मना है, तो जो भी जा रहा है, उसको पहले तो पेशाब करने का ख्याल तुमने दे दिया, और यह भी ख्याल दे दिया कि यह जगह करने योग्य है, नहीं तो कोई लिखता क्यों! जगह योग्य स्थान है। डर के कारण ही किसी ने लिख रखा है कि यहां करना मत, क्योंकि स्थान तो बिल्कुल योग्य है।

जहां-जहां निषेध है, वहां-वहां निमंत्रण हो जाता।

तो मैंने उस स्त्री को कहा कि तू मर जाना, कोई फिकर नहीं, फिर मरना ही है तो जल्दी क्या है, थोड़ा ध्यान कर ले, थोड़ा जीवन को जान ले। यही तो जीवन नहीं है कि कोई पति था वह छोड़कर चला गया, कुछ बेटे थे वे छोड़कर चले गए, अब कोई उत्सुक भी नहीं है तुझमें, यही तो जीवन नहीं है, जीवन एक और भी है। एक भीतर का जीवन भी है। थोड़ा उसका स्वाद ले ले, फिर मर जाना। क्योंकि मैं जानता हूं, जिसने उसका

स्वाद ले लिया, वह तो जान लेता है कि मरना तो हो ही नहीं सकता, असंभव है, मृत्यु तो घटती ही नहीं, जीवन शाश्वत है।

सोचने लगा कि अब मर जाऊं, खाना-पीना छोड़कर बिछावन पर लेट रहा। सोना चाहता है, लेकिन नींद कहां। ये कोई ढंग हैं नींद लाने के! ये कोई ढंग हैं शांति के! उसकी नींद भी खो गयी।

बुद्ध से जब भिक्षुओं ने कहा कि ऐसी दशा प्रसेनजित की हो रही है, तो उन्होंने कहा, भिक्षुओ, न जीत में सुख है न हार में, सुख तो भीतर है। जीत भी बाहर है, हार भी बाहर है। जीत भी संबंध है दूसरे से--उसकी छाती पर बैठ जाने का संबंध है--और हार भी संबंध है दूसरे से। और सुख तो अपने से संबंधित होने में है। दूसरे का ध्यान ही न रह जाए, अपना ही ध्यान रह जाए तो सुख की सरिता बहती है, तो सुख का सागर उमगता है। क्योंकि दोनों में उत्तेजना है--हार में और जीत में--जहां उत्तेजना है, वहां शांति कहां! व्यक्ति जीतते हुए वैर को उत्पन्न करता है, हारा हुआ भी सुख से सो नहीं सकता है।

और तब यह गाथा कही--

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसंतो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं।।

सोचना, थोड़े से अंतर से सब अंतर पड़ जाता है। थोड़ी सी दृष्टि का भेद है।

याचना, दान
मात्र भंगिमाएं हैं हथेली की

यह हथेली देखते हो? यह ऐसी सीधी तुम्हारे सामने फैल जाए तो भिक्षा और यह उलटी तुम्हारे सामने फैल जाए तो दान। इतने से अंतर से भिक्षा दान बन जाती है, दान भिक्षा बन जाता है।

याचना, दान
मात्र भंगिमाएं हैं हथेली की

और सुख-दुख भी भंगिमाएं हैं, सिर्फ दृष्टि की, सिर्फ आंख की।

अंतर है नीड़ और पिंजड़े में
इतना ही
कि एक को बनाया है तुमने,
दूसरे को तुम्हारे लिए किसी और ने

ज्यादा अंतर नहीं है। कोई दूसरा बना दे तो पिंजड़ा और तुम्हीं बना लो तो नीड़। दूसरे जो भी बनाएंगे वह पिंजड़ा ही सिद्ध होगा। इसलिए दूसरों के बनाए पर भरोसा मत रखो, कुछ अपने भीतर अपना बना लो।

अंतर है नीड़ और पिंजड़े में
इतना ही
कि एक को बनाया है तुमने,
दूसरे को तुम्हारे लिए किसी और ने
ज्यादा अंतर नहीं है।

दस के हों कि पचास साल के
सभी खेलते ही तो हैं
हां, वय के अनुसार चाहिए
उन्हें खिलौने अलग-अलग

बस इतना ही फर्क पड़ता है लोगों में। बचपन में तुम छोटे-छोटे खिलौनों से खेलते हो, बड़े हो गए बड़े खिलौनों से खेलते हो, बूढ़े हो गए थोड़े और बहुमूल्य खिलौनों से खेलते हो, मगर सब खेल खिलौनों का है। कोई शतरंज बिछाकर राजा-रानियों को चलाता है, हाथी-घोड़े चलाता है, कोई असली हाथी-घोड़े चलाता है, मगर है सब शतरंज का खेल। शतरंज में भी तलवारें खिंच जाती हैं! छोटे-छोटे खेल में पराजय और जीत हो जाती है।

मैं जब विश्वविद्यालय में पढ़ता था, तब कोई मेरे हास्टल में, मोनोपाली का खेल ले आया। मेरे साथ कोई खेलने को तैयार न हो। मैंने पूछा कि यह बात क्या है? तो उन्होंने कहा, बात यह है कि न आप हार में प्रसन्न होते हैं, न जीत में प्रसन्न होते, न आप सुखी होते न दुखी होते, जीत गए तो ठीक, हार गए तो ठीक, तो मजा ही नहीं आता आपके साथ खेलने में। मजा तो तब आता है कि जब कि जान की बाजी लग जाती है। मोनोपाली का खेल ही तो चल रहा है। कौन एकाधिकार कर ले!

दस के हों कि पचास साल के
सभी खेलते ही तो हैं
हां, वय के अनुसार चाहिए
उन्हें खिलौने अलग-अलग
अनुभवी किसको कहोगे?
उस पुरुष को जो बहुश्रुत वृद्ध है
बहुदृष्टि है,
या उसे
जो अनुभवों का रस जुगाना जानता है

सारे अनुभवों में से रस को निकाल लो, तो तुम एक ही बात रस की पाओगे, मूल पाओगे, अपनी व्याख्या। चाहे हार मान लो, चाहे जीत मान लो; चाहे सुख मान लो, चाहे दुख मान लो।

और जिस दिन तुम्हें यह दिख गया, उसी क्षण तुम मुक्त हो। फिर तुम्हें कौन बांधेगा? तुम्हारी अपनी व्याख्या है। तुम्हारी जंजीरें असली नहीं हैं, तुम्हारी धारणा की हैं, तुम्हारी व्याख्या की हैं।

आज इतना ही।

सत्तरवां प्रवचन

विपन्नता का कारणः हमारी मान्यताएं

पहला प्रश्नः जगत झूठ है और जीवन दुख ही दुख है, ऐसी टेक पर खड़ा होने वाला जीवन क्या और भी ज्यादा दुखी, उदास और विपन्न न हो जाएगा? क्या पूरब के देशों में यही चीज सामूहिक तल पर नहीं घटित हुई?

जीवन दुख है, यह कोई दार्शनिक धारणा नहीं। ऐसा बुद्धपुरुष सोचते नहीं हैं कि जीवन दुख है, ऐसी उनकी मान्यता नहीं है कि जीवन दुख है, जीवन को दुख सिद्ध करने में उनका कोई आग्रह नहीं है, जीवन ऐसा है। यह जीवन का तथ्य है। इसे तुम लाख झुठलाओ, झुठला न पाओगे। इसे तुम लाख दबाओ, दबा न पाओगे। यह उभर-उभरकर प्रगट होगा। और जब उभरेगा, तब बहुत दुखी कर जाएगा। क्योंकि तुम तो मानकर जीते हो कि जीवन सुख है, फिर उभरता है दुख। सुख की धारणा जब-जब टूटेगी, तभी-तभी तुम दुखी हो जाओगे।

तुम्हारे जीवन की विपन्नता जीवन के दुख-स्वभाव के कारण नहीं है, तुम्हारे जीवन की विपन्नता जीवन को सुख मानना और फिर सुख न पाने के कारण है। तुमने कांटे को फूल समझा, फूल समझकर छाती से लगाया, तुमने बड़ी आशाएं कीं, बड़े सपने संजोए, और फिर कांटा चुभा, तुम्हारे सपने टूटे, तुम्हारी आशाएं टूटीं, तो विपन्नता पैदा होती है।

अगर तुमने कांटे को कांटा समझा तो पहली तो बात, तुम छाती से न लगाओगे। तुम चुभने के खतरे से बाहर हो गए। और तुमने कांटे को कांटा समझा और अगर वह चुभ भी गया, तो भी तुम विपन्न न हो जाओगे। तुम समझोगे कि कांटा तो कांटा है, चुभेगा ही, सावधानी से चलना चाहिए, होशियारी से चलना चाहिए, बोध से चलना चाहिए। रोने का क्या है, अगर कांटा चुभ जाए तो इसमें छाती पीटने को क्या है! लेकिन तुम मानते हो फूल, निकलता है कांटा, फिर तुम बहुत छाती पीटते हो, फिर तुम जार-जार रोते हो। तुम्हारी विपन्नता तुम्हारी मान्यता की असफलता के कारण पैदा होती है।

अगर बुद्धपुरुषों की बात तुम्हें ख्याल में आ जाए, तो तुम्हारी विपन्नता तो समाप्त हो गयी। जो जैसा है, उसको वैसा ही जान लिया। अपेक्षा न रही, तो अपेक्षा के टूटने का उपाय भी न रहा। और जब अपेक्षा टूटती नहीं, फिर कैसी विपन्नता!

दूर मरुस्थल में तुम भटके हो, प्यासे तड़फ रहे हो और दिखायी पड़ा मरूद्यान; अगर है मरूद्यान, तब तो ठीक, पहुंचकर तुम सुखी हो जाओगे। मरूद्यान अगर नहीं है, तो यह जो दौड़-धाप करोगे, इसमें और प्यासे हो जाओगे। और मीलों चलने के बाद जब पाओगे कि मरूद्यान नहीं है, तो मूर्च्छित होकर न गिर पड़ोगे तो क्या करोगे! फिर जो श्रम इस झूठे मरूद्यान को खोजने में लगाया, वही श्रम सच्चे मरूद्यान को खोजने में लग सकता था।

तो पहली बात, जीवन दुख है, यह कोई धारणा नहीं है, ऐसा जीवन का तथ्य है। ऐसा जीवन है। बुद्ध कहते हैं, जैसा जीवन है उसे वैसा जान लो। जानते ही दो बातें घटेंगी। एक, तब जीवन से तुम्हारी कोई अपेक्षा न रह जाएगी। कभी कितना ही दुख होगा फिर, तो भी तुम जानोगे--होना ही था। एक स्वीकार होगा। एक सहज स्वीकार होगा। उस सहज स्वीकार में विपन्नता खड़ी नहीं होती, हो नहीं सकती। अगर पत्थर पत्थर है,

तो क्या विपन्नता है! मिट्टी मिट्टी है, तो क्या विपन्नता है! लेकिन मिट्टी को तुम तिजोड़ी में सम्हालकर रखे रहे और एक दिन खोला और पाया मिट्टी है, और अब तक सोचते थे सोना है, तो विपन्नता है। विपन्नता का अर्थ है, जैसा सोचा था वैसा न पाया। कुछ का कुछ हो गया। जहां प्रेम सोचा था, वहां घृणा पायी; जहां मित्रता सोची थी, वहां शत्रुता मिली; जहां धन सोचा था, वहां धोखा था।

तो पहली तो बात, तुम धोखे से मुक्त हो गए, अगर तुमने जीवन को दुख की तरह देख लिया, जैसा कि जीवन है। जो धोखे से मुक्त हो गया, उसके जीवन में बड़ी शांति आ जाती है।

दूसरी बात, जो श्रम जीवन के धोखे में तुम लगाते, वह श्रम तुम्हारे पास बच रहा। अगर जीवन दुख है, तो बाहर जाने की तो कोई अर्थवत्ता नहीं है। अब जीवन ऊर्जा का क्या करोगे? जो तुम्हारे पास जीवन ऊर्जा है, अब भीतर जा सकती है, बाहर तो दुख है। अगर यह सिद्ध हो जाए तुम्हारे सामने कि बाहर दुख है, तो अब जाओगे कहां? अब दिल्लियां जाने से तो कुछ सार न रहा। अब धन के पीछे पागल होने में तो कोई प्रयोजन न रहा। अब किसी मृग-मरीचिका के पीछे दौड़ने का तो कोई कारण न रहा। यह जीवन ऊर्जा तुम्हारी मुक्त हो गयी सारी आकांक्षाओं से। सारी व्यर्थ की दौड़ों से मुक्त हो गयी जीवन ऊर्जा भीतर जाने लगेगी।

क्योंकि ऊर्जा का एक नियम है कि ऊर्जा तो जाएगी ही। ऊर्जा का नियम है कि ऊर्जा गत्यात्मक है। अगर बाहर न जाएगी तो भीतर जाएगी। ऊर्जा चलेगी। ऊर्जा में गति है। ऊर्जा बहेगी। जीवन दुख है ऐसा जानते ही बाहर जाने के सब द्वार तत्क्षण बंद हो गए। अब इस ऊर्जा का क्या होगा? यह भीतर की तरफ मुड़ेगी, यह अंतस्तल की तरफ चलेगी, यह अपने ही केंद्र की तलाश में लग जाएगी--बाहर तो कुछ पाने को नहीं है, भीतर खोजो।

इस क्रांति का नाम ही धर्म है। इस रूपांतरण की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है, जिसको बुद्ध ने कहा है--परावृत्ति, जब ऊर्जा खड़ी रह जाती है, बाहर जाने को जगह न रही। तुम द्वार पर खड़े हो, बाहर जाने को तैयार खड़े थे। बाहर जाने में कोई अर्थ न रहा, अब क्या करोगे? लौटकर अपने घर में विश्राम न करोगे?

मुल्ला नसरुद्दीन अपने द्वार पर खड़ा था। हाथ में छड़ी लिए अपनी टोपी ठीक कर रहा था। इतने में एक मित्र आ गए। मित्र ने पूछा कि मुल्ला, कहां जा रहे हो? मुल्ला ने मित्र को देखकर कहा कि कहीं नहीं जा रहा हूं, आ रहा हूं, बाहर से आ रहा हूं।

पर मित्र को यह बात जंची नहीं, क्योंकि बाहर से वह खुद आ रहा था, मुल्ला को उसने आते नहीं देखा। और ठीक जूता उतारते, छड़ी सम्हालते--या जूता पहनते, कुछ पक्का नहीं हो सका--उसने कहा, मैं समझा नहीं। तो मुल्ला ने कहा, तुम्हें समझा देता हूं। मेरे हो, अपने हो, समझाने में कुछ बात नहीं, यह मेरी तरकीब है। जैसे ही कोई आदमी दरवाजे पर दस्तक देता है, मैं जल्दी से जूता पहनने की, टोपी लगाने की, छड़ी उठाने की कोशिश करने लगता हूं।

मित्र ने पूछा, इसका क्या सार है? उसने कहा, इसका सार यह है कि अगर देखा कि ऐसा आदमी है जिसको भीतर बिठालना ठीक नहीं, व्यर्थ सिर खाएगा, तो मैं कहता हूं, मैं बाहर जा रहा हूं। और अगर ऐसा आदमी है, अपना है, प्यारा है, बैठकर मजा आएगा, रस आएगा, तो मैं कहता हूं, लौटकर आ रहा हूं। ऐसा बीच में स्वागत करता हूं, दोनों तरफ खुली रहती है, दोनों तरफ द्वार खुले हैं, जैसा आदमी हुआ वैसा--या तो जाता, या आता।

जब तुम्हारी जीवन ऊर्जा बाहर न जाएगी तो घर तो आओगे ही! गंगा गंगासागर में न गिरेगी तो गंगोत्री में गिर जाएगी।

यह दूसरी बात ख्याल में लेना, जीवन दुख है, ऐसा कहने का, इस पर बार-बार जोर देने का बुद्ध का क्या प्रयोजन होगा? तुम्हें दुखी करना प्रयोजन नहीं है, तुम्हें दुख से मुक्त करना प्रयोजन है।

इसलिए बुद्ध ने आर्य-सत्य कहे। पहला आर्य-सत्य, जीवन दुख है। दूसरा आर्य-सत्य, जीवन के दुख से मुक्त होने का उपाय है। लेकिन पहले यह तो समझ में आ जाए कि जीवन दुख है, तो फिर छुटकारे का उपाय खोजना शुरू हो जाए। फिर बुद्ध ने कहा कि जीवन के दुख से छूटने की संभावना है--देखो मेरी तरफ, मेरे महासुख को, मैं छूट गया हूं। तो ऐसा नहीं कि यह कोई कल्पना ही है कि जीवन के दुख से छूट जाएंगे, कौन कब छूटा? छूटने की संभावना है। और एक ऐसी दशा है, जहां दुख नहीं रह जाता, जहां दुख-निरोध हो जाता है।

जीवन दुख है, इतने पर बुद्ध की उपदेशना समाप्त नहीं हो जाती, शुरू होती है। यह तो पहला कदम हुआ कि जीवन दुख है। यह तुम्हें दिखायी पड़ जाए तो तुम पूछोगे ही, स्वभावतः पूछोगे--इस दुख से छूटा जा सकता है? या कि यह हमारी नियति है, दुख भोगना ही पड़ेगा? बुद्ध कहते हैं, छूटा जा सकता है। आशा खुली। लेकिन यह नए ढंग की आशा है। यह बाहर दौड़नेवाली आशा नहीं है। यह भीतर ठहरने वाली आशा है। एक नया सूत्रपात हुआ, एक नयी किरण उतरी। अब यह किरण किसी धन की चमक नहीं है और किसी दूसरे में लगाव नहीं है, यह किरण अब अपने ही केंद्र की चमक है।

बुद्ध कहते हैं, संभावना है दुख के पार जाने की। ऐसी दशा है--दुख-निर्वाण, दुख-मुक्ति की, दुख-निरोध की--निर्वाण की दशा है। तो तुम पूछोगे, जीवन दुख है और एक ऐसी दशा है जहां जीवन का दुख नहीं रह जाता, फिर मार्ग क्या है? तो बुद्ध कहते हैं--अष्टांगिक, आठ प्रक्रियाएं, जिनसे आदमी धीरे-धीरे कर मुक्त हो जाता है दुख से।

तो बुद्ध तुम्हें दुखी नहीं करना चाहते, तुम्हें दुख से मुक्त करना चाहते हैं, इसलिए दुख की इतनी चर्चा करते हैं। तुम उलटा कर रहे हो। तुम देखते ही नहीं जीवन में आंख डालकर, तुम डरे हो कि कहीं दुख दिखायी न पड़ जाए, तो तुम आंखें बचा रहे हो। तुम यहां-वहां देखते हो, सीधा नहीं देखते जीवन में, तुम आंख में आंख डालकर नहीं देखते--इधर-उधर, कहीं दिख न जाए!

जानते तो तुम भी हो कि जीवन में दुख है, बार-बार अनुभव तो तुम्हें भी हुआ है कि जीवन में दुख है। कहते हैं न--दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है। यह तुम्हारी आंखें बताती हैं कि तुम्हें अंदाज है, तुम्हें अनुभव है--होना ही चाहिए, कितनी बार तो तुमने जाना कि यह फूल है और फिर कांटा पाया, आखिर बिना सीखे कैसे रह जाओगे? सीख तो गए हो तुम भी, फिर भी झुठला रहे हो अपनी सीख को।

बुद्ध इस बात को साफ कर देना चाहते हैं कि जीवन दुख है। यह इतना स्पष्ट हो जाए कि इसमें रत्तीमात्र भी संदेह न रहे। संदेह रहा तो तुम खोज जारी रखोगे, बाहर ही दौड़ते रहोगे। सोचोगे कि शायद कहीं से कुछ रास्ता मिल जाएगा। तो बुद्ध इसको अटूट रूप से सिद्ध कर देना चाहते हैं कि जीवन दुख है।

और कुछ बुद्ध को सिद्ध करने के लिए बहुत श्रम करने की जरूरत नहीं है, जीवन ऐसा है। सिर्फ पर्दा उठाकर दिखा दो, तो तुम देख लोगे--जीवन की नग्नता दुख ही है। जैसे हर आदमी को अगर तुम उघाड़कर देखो तो अस्थिपंजर पाओगे, सब सौंदर्य तिरोहित हो जाता है। ऐसे ही जीवन को उघाड़कर देखोगे तो दुख का अस्थिपंजर पाओगे। चमड़ी के ऊपर-ऊपर दिखायी पड़ता है सौंदर्य। बुद्ध तो जीवन के साथ वही कर रहे हैं जो एक्स-रे करती है। तुम्हारी हड्डी-हड्डी, तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, उसे उघाड़कर दिखा देती है।

पूछा है, "जगत झूठ और जीवन दुख ही दुख है, क्या इससे यह खतरा नहीं कि जीवन और उदास और दुखी और विपन्न हो जाए?"

नहीं, यह खतरा बिल्कुल नहीं है, क्योंकि जीवन दुखी है ही। यह खतरा जरा भी नहीं है। यह खतरा तो तब हो सकता था जब जीवन में सुख होता। लेकिन जीवन में सुख है ही नहीं, तुम खतरे के बाहर हो। तुम लाख उपाय करो तो तुम जीवन को और ज्यादा दुखी नहीं बना सकते। जीवन दुख की पराकाष्ठा है। उसमें तुम सुधार नहीं कर सकते, न बिगाड़ कर सकते हो।

और पूछा है कि "क्या पूरब के देशों में यही चीज सामूहिक तल पर घटित नहीं हुई?"

बुद्धों ने जो कहा, वह समझा नहीं जा सका, तो जो घटित हुआ उसकी जिम्मेवारी बुद्धों पर नहीं है। लोग कुछ का कुछ समझते हैं। लोग वही नहीं समझते जो कहा जाता है।

जैसे, मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक बस में खड़ा है और बिना टिकिट यात्रा कर रहा है। अंततः पकड़ा गया। चैकर ने उससे पूछा कि महानुभाव, कपड़े-लत्ते तो बड़े सज्जन जैसे पहने हुए हैं और बिना टिकिट यात्रा कर रहे हैं! और आपको जरा भी दिखायी नहीं पड़ता कि सामने ही तख्ती लगी है कि बिना टिकिट बस में बैठना जुर्म है। मुल्ला ने कहा, ठीक, इसीलिए तो खड़ा हूं। बैठा ही नहीं, इसी तख्ती के कारण तो खड़ा हूं। बैठना जुर्म है न!

लोग ऐसा समझते हैं। अपने हिसाब से समझते हैं। बुद्ध क्या कहते हैं, उसे लोगों ने वैसा नहीं समझा जैसा बुद्ध ने कहा है।

एक प्रोफेसर ने अपने एक विद्यार्थी को सहानुभूति से कहा, अरे, दर्शनशास्त्र में फेल हो गए, तो मेरी लिखी किताब पढ़ी थी या नहीं? उदास छात्र ने कहा कि नहीं सर, मैं आपकी किताब पढ़ने से नहीं, बीमार हो जाने से फेल हुआ हूं।

तुम कैसे लोगे किसी बात को, किस अर्थ में लोगे, तुम पर निर्भर है। बुद्धों ने जब कहा कि जीवन दुख है तो उन्होंने यह नहीं कहा है कि तुम दुख मान लो, उन्होंने यह भी नहीं कहा है कि तुम दुख की चादर ओढ़कर बैठ जाओ, उन्होंने यह भी नहीं कहा है कि तुम उदास होकर थके-मांदे, निराश होकर आत्मघाती हो जाओ। उन्होंने तो यही कहा है कि अगर तुम्हें जीवन दुख है, ऐसा दिखायी पड़ने लगे, तो तुम्हारे जीवन में सूरज की किरण आ जाएगी। तुम्हारे जीवन में पुलक और आनंद आ जाएगा। और बुद्ध बार-बार कहते हैं, अहो, देखो मेरा महासुख! बुद्ध तो चाहते हैं कि तुम भी बुद्ध जैसे उत्सव को उपलब्ध हो जाओ, तुम्हारे जीवन में भी वैसे ही फूल खिलें।

बुद्ध ने अगर जीवन को दुख कहा है तो इसीलिए ताकि तुम उस दिशा में चल सको जहां दुख नहीं, सुख है। लेकिन लोगों ने गलत समझा। लोग समझे कि जब जीवन दुख है तो फिर ठीक है, क्या करना! लोग सुस्त हो गए, काहिल हो गए, आलसी हो गए, बैठ गए--चलने से क्या सार, उठने से क्या सार, कुछ करने से क्या सार, यह जीवन तो दुख है! लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि वह उनकी अंतर्यात्रा शुरू हो गयी। बैठकर सुस्त दशा में भी वे सोचते तो बाहर की ही रहे!

अभी कल ही तो हम पढ़ते थे कि बुद्ध के भिक्षु बैठकर बात कर रहे हैं और सोच रहे हैं, संसार में सबसे बड़ी सुख की चीज क्या है? भिक्षु हैं, संसार का त्याग कर दिए हैं और सोच रहे हैं कि संसार में सबसे बड़े सुख की चीज क्या है! कोई कहता है, राजसुख। कोई कहता है, कामसुख। कोई कहता है, भोजन-सुख। और इस तरह की चर्चाएं हो रही हैं।

बुद्ध तो बड़े चौंके। वह खड़े होकर पीछे सुने हैं। उन्होंने कहा, भिक्षुओ, यह तुम क्या कह रहे हो, मैं तो भरोसा ही नहीं कर सकता! भिक्षु होकर भी तुम्हें राज्य में, धन में, पद में, काम में सुख दिखायी पड़ता है! तो तुम भिक्षु कैसे हो गए? और अब भिक्षु होकर भी तुम इसी में सोच-विचार कर रहे हो।

तो ये जो काहिल बैठे हुए लोग हैं, सुस्त लोग हैं पूरब के, तुम यह मत सोचना कि अंतरगामी हो गए हैं। बैठे-बैठे सोच तो यही रहे हैं कि कहीं से छप्पर फट जाए, क्योंकि हमने इस तरह की कहावतें बना रखी हैं कि जब भगवान देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। मगर देता क्या है? अभी आशा वही धन की है।

एक मित्र ने मुझसे पूछा है--प्रश्न है उनका--प्रश्न पूछा है कि सब नियति से होता है या पुरुषार्थ से होता है? संन्यासी हैं। यहां तक भी बात ठीक थी, इसके आगे उन्होंने कहा, कि कभी-कभी धन बिना कुछ किए आ जाता है और कभी-कभी धन बहुत मेहनत करने से भी नहीं आता है।

लेकिन नजर धन पर ही अटकी है। पुरुषार्थ और नियति इत्यादि तो सब बातचीत है, असली बात तो धन है। कभी-कभी धन बिना कुछ किए आ जाता है और कभी-कभी बहुत करने से भी नहीं आता। लेकिन नजर धन पर लगी है। सारे जीवन की दौड़ धन की तरफ है। संन्यस्त होकर भी सोच यही रहे हैं कि पक्का पता चल जाए कि धन कैसे आता है, कुछ करने से आता है कि अपने आप आ जाता है?

तो लोग बैठे हैं, वे सोच रहे हैं कि जब खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। तो क्या करना है! बैठे हैं। जब देगा तब छप्पर फाड़कर दे देगा। ऐसी कहानियां गढ़ रखी हैं उन्होंने कि राह चलते धन मिल जाता है, जिसके भाग्य में है उसको राह चलते मिल जाता है। और जिसके भाग्य में नहीं है, वह कितना ही उपाय करे, कुछ भी नहीं मिलता।

तो लोगों ने अंतर्यात्रा तो शुरू नहीं की, बहिर्यात्रा यथार्थतः तो बंद कर दी, लेकिन मानसिक रूप से जारी रखी। यह दुर्भाग्य हो गया। बैठे सोचते यही हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी ने राह चलते एक सज्जन का हाथ पकड़ लिया, सामने फेहरिश्त कर दी, कहा कि देखिए, एक मंदिर बनवा रहा हूं, एक लाख रुपये की जरूरत है, और फलां आदमी ने हजार दिए, फलां ने पांच हजार दिए, लिस्ट पर नाम भी लिखे हुए हैं गांव के खास-खास लोगों के। उन सज्जन ने छुटकारे के लिए कहा कि भई, मंदिर से क्या होगा, अस्पताल बनवाओ, स्कूल बनवाओ, उससे कुछ सार है; मंदिर तो वैसे ही बहुत हैं, मंदिर की क्या कमी है!

लेकिन वह आदमी नाराज हो गया, उसने कहा, मंदिर से सब होगा, क्योंकि भगवान के बिना कुछ भी हो सकता! इतने लोग बीमार ही इसलिए पड़ रहे हैं कि लोग भगवान की प्रार्थना भूल गए हैं। अगर लोग प्रार्थना करें तो बीमार ही क्यों पड़ें, अस्पताल की जरूरत क्या है! और असली ज्ञान तो प्रार्थना से पैदा होता है। इसलिए असली बात तो मंदिर है। मंदिर के बिना भगवान की पूजा कहां होगी?

राह पर भीड़ इकट्ठी होने लगी, सज्जन भागना चाहते हैं, तो उन्होंने कहा, भई, फिर तुम अगर ऐसा ही है, जिद्द ही कर लिए हो मंदिर बनाने की, तो किन्हीं उनको पकड़ो जो दस हजार, पांच हजार दे सकें, मैं तो कुछ इतना दे नहीं सकता। मेरे दिए से क्या होगा? तो जल्दी से, वह जो दान की याचना कर रहा है, पांच रुपये पर उतर आया; उसने कहा, अच्छा पांच रुपये तो दो। पिंड छुड़ाने के लिए उन्होंने एक रुपया निकालकर जेब से उसे दिया। उस आदमी ने गौर से रुपया देखा और कहा कि महाशय, आप मेरा नहीं भगवान का भी अपमान कर रहे हैं।

मगर भगवान का भी सम्मान और अपमान होता रुपये से ही! नजर रुपये पर ही बंधी है। पांच रुपये दें तो भगवान का सम्मान हो गया, और एक रुपया दें तो भगवान का अपमान हो गया। तुम्हारा सम्मान-अपमान भी रुपयों से होता है, तुम्हारे भगवान का सम्मान-अपमान भी रुपयों से होता है। लेकिन सब चीज को तौलने का तराजू रुपया मालूम होता है।

इसे थोड़ा समझो। मनुष्य पूरब में जरूर सुस्त हो गया, काहिल हो गया, लेकिन बस सुस्त और काहिल हो गया, धार्मिक नहीं हुआ। जो लोग तुमसे कहते हैं कि पूरब के देश धार्मिक हैं, सरासर झूठ कहते हैं। मेरे अनुभव में निरंतर यह बात आती है कि पश्चिम से जो लोग आते हैं, उनकी पकड़ धन पर कम है, उनकी पकड़ संसार पर कम है, पूरब के लोगों की पकड़ संसार पर ज्यादा है, धन पर ज्यादा है। कुछ करते नहीं, उस पकड़ को पूरा करने के लिए कुछ करते नहीं, प्रतीक्षा कर रहे हैं लेकिन, योजनाएं मन में वही हैं।

पश्चिम के लोग कुछ करते हैं, यह अच्छा है, कम से कम कुछ करते तो हैं; जिस बात की पकड़ है उसको पूरा करने के लिए कुछ करते हैं। पूरब के लोगों की पकड़ वही है, मन में वही रोग है, वही रस है, वही मवाद बह रही है मन के भीतर, वही घाव है, लेकिन बैठे हैं, करते कुछ नहीं। और इस बैठे होने को समझते हैं कि धार्मिक हो गए हैं। माला हाथ में है, राम-राम जपते हैं और बगल में छुरी है। छुरी पर ध्यान रखना, माला पर बहुत ध्यान मत देना, वह तो यंत्रवत हाथ में घूम रही है। असली बात अगर भगवान की लोग प्रार्थना भी कर रहे हैं तो भी धन ही मांगने के लिए कर रहे हैं कि प्रभु, हम पर कृपा कब होगी? लुच्चे-लफंगे आगे बढ़े जा रहे हैं, हम पर कृपा कब होगी? हर कोई सफल हुआ जा रहा है, हम पर कृपा कब होगी?

लेकिन अगर तुम पूछो कि कृपा के भीतर छिपाए क्या हो, मांगते क्या हो, तो तुम तत्क्षण पाओगे--धन है, पद है, प्रतिष्ठा है। पश्चिम में लोग जो वासना करते हैं, उसके लिए श्रम करते हैं। पूरब में वासना करते हैं और श्रम नहीं करते, इतना ही फर्क हुआ है। लेकिन वासना की दौड़ जारी है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम अपनी वासना को कृत्य में उतारते हो या नहीं, वासना आ गयी कि ऊर्जा बहिर्गामी हो गयी। निर्वासना होने से ऊर्जा अंतर्गामी होती है।

तो पूरब समझा नहीं। बुद्धपुरुषों ने जो कहा, उसकी नासमझी, उसकी गलत व्याख्या लोगों को काहिल, सुस्त, आलसी कर गयी। अगर बुद्धों की बात हमने समझी होती, तो जीवन में त्वरा होती, चमक होती, धार होती, प्रज्ञा होती, बुद्धि होती, तुम्हारे जीवन में एक ज्योति होती, एक तेजोमयता होती। बुद्ध तुम्हें फीका करने को नहीं आते, बुद्ध तुम्हें प्रज्वलित करने को आते हैं। तुम्हारे दीए को बुझाने नहीं आते, तुम्हारे दीए को जलाने आते हैं। तुम्हारे जीवन को धार देने आते हैं। तुम्हारे जीवन में ऐसी धार आ जाए, ऐसे आनंद की चमक आ जाए, जिस आनंद की तुम तलाश कर रहे हो, लेकिन गलत दिशा में तलाश कर रहे हो।

जीवन अर्थात बाहर, आनंद को खोजने की दिशा गलत है। जीवन अर्थात भीतर, ठीक दिशा है। एक जीवन बाहर है, एक जीवन भीतर है। बाहर के जीवन को बुद्ध दुख कहते हैं, भीतर के जीवन को सुख कहते हैं।

इसलिए कहते हैं, अहो, देखो हमारा महासुख, हम वैरियों के बीच अवैरी होकर विहरते हैं। देखो हमारा सुख, हम कामियों के बीच अकामी होकर विहरते हैं। देखो हमारा सुख, हम आकांक्षियों के बीच निराकांक्षी होकर विहरते हैं। लेकिन देखो सुख--सुसुखं वत! हमारे सुख को पहचानो।

तुम्हारे दुख को दिखाने का प्रयोजन इतना ही है कि तुम्हारी ऊर्जा सुख की दिशा में गतिमान हो जाए।

दूसरा प्रश्नः उस दिन आपने कहा कि भगवान बुद्ध अपने भिक्षुओं के पास गए और उन्हें धन, काम और पद को छोड़कर बुद्धत्व प्राप्त करने और धर्म-श्रवण करने का बोध दिया। बुद्ध जीवन छोड़ने को कहते हैं और आप जीवन को उत्सव बनाकर जीने को कहते हैं, इससे हमें दुविधा पैदा होती है। इस पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

मन तो दुविधा पैदा करता ही है। दुविधा की बात जरा भी नहीं है, सीधी-सीधी बात है। बुद्ध भी यही कह रहे हैं जो मैं कह रहा हूं, मैं भी वही कह रहा हूं जो बुद्ध कह रहे हैं। बुद्ध कह रहे हैं, बाहर के जीवन में दुख है, इसे छोड़ो, ताकि तुम भीतर के अमृतमयी, आनंदमयी सुख को पा सको। मैं कह रहा हूं, भीतर के आनंदमयी, अमृतमयी को पा लो, ताकि बाहर का जो है छूट जाए। बस कहने का भेद है। बुद्ध कहते हैं, आधा गिलास खाली है; और मैं कहता हूं, आधा गिलास भरा है। दुविधा की कोई बात नहीं है। मेरा जोर भरे पर है, बुद्ध का जोर खाली पर है।

और भरे पर जोर देने का कारण है। क्योंकि तुम खाली की भाषा को न समझ पाओगे। तुम खाली से एकदम घबड़ा जाते हो, तुम डर जाते हो। खाली! तुम भाग खड़े होते हो। मैं तुम्हें भरे की बात कह रहा हूं, भागने का कोई कारण नहीं है। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि जीवन दुख है। मैं कहता हूं, जीवन महासुख है, आओ भीतर। मगर मैं कह वही रहा हूं जो बुद्ध कहते हैं। बुद्ध कहते हैं, वहां दुख है, यहां आओ; मैं कहता हूं, यहां सुख है, यहां आओ। बाहर की बात मैंने छोड़ दी है। यहां तुम आने लगोगे तो बाहर का दुख अपने आप छूट जाएगा। इसलिए संसार छोड़ने पर मेरा जोर नहीं, संन्यास लेने पर जोर है। बुद्ध का संसार छोड़ने पर जोर है। मगर बात वही है। यह एक ही सूत्र को पकड़ने के दो ढंग हैं।

दुनिया बहुत बदल गयी बुद्ध के समय से। पच्चीस सौ साल में गंगा का बहुत पानी बह गया है। पच्चीस सौ साल पहले जो भाषा सार्थक मालूम होती थी, अब सार्थक नहीं मालूम होती। तुम्हें जो भाषा समझ में आ सकेगी वही मैं बोल रहा हूं।

तो मैं कहता हूं, परमात्मा उत्सव है। बुद्ध कहते हैं, दुख-निरोध। मैं कहता हूं, आनंद-उपलब्धि। मैं कहता हूं, परमात्मा नृत्य है। बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है। मैं कहता हूं, अंतर्जीवन कमल का फूल है। बुद्ध कहते हैं, यह बहिर्जीवन कांटे ही कांटे हैं।

तुम फर्क समझ लेना। एक पहलू को बुद्ध कह रहे हैं, दूसरे पहलू को मैं कह रहा हूं। मगर ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दुविधा तो मन पैदा कर देता है। मन तो दुविधा पैदा करना ही चाहता है। मन तो यही कहता है, दुविधा हो जाए तो झंझट मिटे। झंझट हो गयी, तो झंझट मिटी। झंझट मिटी यानी अब कुछ करने को नहीं रहा--जब दुविधा ही खड़ी हो गयी तो अटके रह गए। अब दुविधा हल होगी जब देखेंगे।

तो मन तो दुविधा में बड़ा रस लेता है। वह कहता है, अब क्या करें; बुद्ध की मानें कि इनकी मानें! मैं तुमसे कहता हूं, तुम किसी की भी मान लो, दोनों की मान ली। एक की मान लो--दोनों की मान ली। या तो तुम बुद्ध की मानकर चल पड़ो--अगर तुम्हें शून्य की भाषा जमती हो। कुछ लोग हैं जिन्हें जमती है। अगर तुम्हें जमती हो शून्य की भाषा तो बुद्ध की भाषा को सुन लो और मानकर चल पड़ो। अगर तुम्हें शून्य से भय लगता हो, तो मैं पूर्ण की भाषा बोल रहा हूं। तो तुम पूर्ण की भाषा मान लो।

दुविधा में मत अटके रहो। क्योंकि दुविधा में जो अटका, वह बहुत खो देता है। वह द्वार पर ही खड़ा रह जाता है, न भीतर जाता, न बाहर जाता, वह अटक गया। दुविधा में दोई गए, माया मिली न राम।

तीसरा प्रश्नः क्या प्रेम के बिना समर्पण हो सकता है?

ऐसा लगता है, बहुत बार तुम सोचते भी नहीं कि क्या पूछ रहे हो! प्रेम और समर्पण का एक ही अर्थ होता है। प्रेम के बिना कैसा समर्पण। और अगर समर्पण न हो तो कैसा प्रेम! प्रेम के बिना तो समर्पण हो ही नहीं सकता। प्रेम के बिना जो समर्पण होता है, वह समर्पण नहीं है, जबरदस्ती है।

जैसे किसी आदमी ने तुम्हारी छाती पर छुरी रख दी और कहा, करो समर्पण! और तुम्हें करना पड़ा। उसने कहा, चलो करो समर्पण--घड़ी, तुम्हारा बटुआ, समर्पण करो। अब छुरी के घबड़ाहट में तुमने समर्पण कर दिया, यह समर्पण तो नहीं है। यह तो मजबूरी है। इससे तो तुम बदला लोगे, मौका मिल जाएगा तो तुम इसे छोड़ोगे नहीं। यह समर्पण नहीं है, यह तो हिंसा हुई।

समर्पण का अर्थ है, स्वेच्छा से, अपनी मर्जी से। तुम पर कोई दबाव न था, कोई जोर न था, कोई कह नहीं रहा था, कोई तुम्हें किसी तरह से मजबूर नहीं कर रहा था। तुम्हारा प्रेम था, प्रेम में तुम झुके, तो समर्पण। प्रेम में ही समर्पण हो सकता है।

और जहां प्रेम है, अगर समर्पण न हो तो समझ लेना प्रेम नहीं है। आमतौर से लोग यह कोशिश करते हैं कि प्रेम के नाम पर समर्पण करवाते हैं। तुम्हें मुझसे प्रेम है, करो समर्पण! अगर प्रेम है तो समर्पण होगा ही, करवाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। बाप कहता है कि मैं तुम्हारा बाप हूं, तुम बेटे हो, मुझे प्रेम करते हो? तो करो समर्पण। पति कहता है पत्नी से कि सुनो, तुम मुझे प्रेम करती हो? तो करो समर्पण। प्रेम है तो समर्पण हो ही गया, करवाने की कोई जरूरत नहीं है। जो समर्पण करवाना पड़े, वह समर्पण ही नहीं। जो हो जाए, जो सहज हो जाए। अगर सहज न हो तो तुम एक झूठी मुद्रा में उलझ गए। एक नकली मुद्रा में उलझ गए।

हम खोज रहे हैं उसे जो आसपास है
यह जिंदगी अपने लिए घर की तलाश है
जो भी मिला वो एक टुकड़ा उम्र ले गया
जुड़ता नहीं किसी से भी यह मन उदास है
जितने भी उजले ख्वाब थे वे रात बन गए
फिर भी न जाने कौन सी सुबह की आस है
पूजा के वक्त देवता पत्थर बना रहा
वैसे तो जर्रे-जर्रे में उसका निवास है

कहते तो यही हैं कि जर्रे-जर्रे में उसका निवास है, लेकिन पूजा के समय जर्रे-जर्रे की तो छोड़ो, सामने रखा पत्थर वह जो देवता है, वह पत्थर ही बना रहता है।

पूजा के वक्त देवता पत्थर बना रहा
वैसे तो जर्रे-जर्रे में उसका निवास है

बना ही रहेगा, क्योंकि यह कोई सिद्धांत की बात नहीं है कि जर्रे-जर्रे में उसका निवास है, यह तो प्रेम की आंखों का अनुभव है। यह तो प्रेम से देखोगे तो जगह-जगह दिखायी पड़ जाएगा। फिर पत्थर की मूर्ति में भी दिखायी पड़ जाएगा। मूर्ति की भी जरूरत नहीं है, राह के किनारे पड़ी चट्टान में भी दिखायी पड़ जाएगा। अगर प्रेम है तो उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। प्रेम है तो बस परमात्मा है। प्रेम नहीं है, तो परमात्मा नहीं है।

परमात्मा के लिए कोई और प्रमाण नहीं होता, बस प्रेम की आंख। और जब तक यह प्रेम की आंख न मिल जाए, तब तक तुम भटकते रहोगे उसको खोजते हुए जो बिल्कुल पास-पास है। जो सब तरफ से तुम्हें घेरा हुआ है।

हम खोज रहे हैं उसे जो आसपास है

यह जिंदगी अपने लिए घर की तलाश है

दूर चांद-तारों पर थोड़े ही भगवान बसा है, तुम्हारा पड़ोसी है। जब जीसस ने कहा, अपने पड़ोसी को प्रेम करो, तो वह यही कह रहे थे कि जो पास है, उसे प्रेम करो। तो उस पास में ही तुम्हें परमात्मा दिखायी पड़ जाएगा। और जहां परमात्मा मिल गया, वहीं अपना घर मिला गया। बिना प्रेम के तो कुछ और ही हो रहा है।

जो भी मिला वो एक टुकड़ा उम्र ले गया

जुड़ता नहीं किसी से भी यह मन उदास है

बिना प्रेम के तो लाख जोड़ो, जुड़ेगा कैसे! प्रेम जोड़ता है, और तो कुछ जोड़ता नहीं, और सब चीजें तोड़ती हैं। तो कुछ जिंदगी तुम्हारी पत्नी ले गयी, कुछ तुम्हारी जिंदगी तुम्हारे पति ले गए, कुछ बच्चे ले जाएंगे, कुछ मां-बाप ले गए।

जो भी मिला वो एक टुकड़ा उम्र ले गया

आखिर में तुम पाओगे लुटे खड़े हो, मौत आ गयी, जो कुछ बाकी बचा-खुचा है वह मौत ले जाएगी।

जुड़ता नहीं किसी से भी यह मन उदास है

यह जुड़ेगा भी नहीं। क्योंकि जोड़ की जो कीमिया है, वही तुम्हारे पास नहीं, प्रेम तुम्हारे पास नहीं।

जितने भी उजले ख्वाब थे वे रात बन गए

फिर भी न जाने कौन सी सुबह की आस है

कितने संबंध टूट चुके, कितने प्रेम, तथाकथित प्रेम गिर चुके, फिर भी तुम न मालूम किस सुबह की आस लगाए बैठे हो। हर सपना व्यर्थ सिद्ध हो गया, फिर भी न मालूम सपनों में टटोल रहे, टटोल रहे, टटोल रहे। जागो!

सत्य के लिए एक ही पात्रता चाहिए, वह है प्रेम की पात्रता। अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम आ जाए--और आ जाए कहना ठीक नहीं, भरा है वहां--सिर्फ तुम बहाने की कला सीख जाओ। तुम उसे रोके बैठे हो, तुम बड़े कंजूस हो, कृपण हो, जब भी प्रेम देने का मौका आता है तुम एकदम रोक लेते हो, उसे बहने नहीं देते, ब--ड़े सोच-सोचकर, फूंक-फूंककर कदम रखते हो प्रेम के मामले में।

बांटो। दोनों हाथ उलीचिए। जो मिले उसे बांट दो। और यह तो फिकर ही मत करो कि वह लौटाएगा कि नहीं लौटाएगा, प्रेम लौटता ही है। हजार गुना होकर लौटता है। इसकी भी फिकर मत करो कि इस आदमी को दिया तो यही लौटाए। कहीं से लौट आएगा, हजार गुना होकर लौट आएगा, तुम फिकर मत करो। प्रेम लौटता ही है।

हां, अगर न लौटे, तो सिर्फ एक प्रमाण होगा कि तुमने दिया ही न होगा। अगर न लौटे, तो फिर से सोचना--तुमने दिया था? या सिर्फ धोखा किया था? देने का दिखावा किया था या दिया था? अगर दिया था तो लौटता ही है। यह इस जगत का नियम है। जो तुम देते हो, वही लौट आता है--घृणा तो घृणा, प्रेम तो प्रेम, अपमान तो अपमान, सम्मान तो सम्मान। तुम्हें वही मिल जाता है हजार गुना होकर, जो तुम देते हो।

यह जगत प्रतिध्वनि करता है, हजार-हजार रूपों में। अगर तुम गीत गुनगुनाते हो तो गीत लौट आता है। अगर तुम गाली बकते हो तो गाली लौट आती है। जो लौटे, समझ लेना कि वही तुमने दिया था। जो बोओगे, वही काटोगे भी।

चौथा प्रश्नः बुद्धपुरुषों के साथ पुराण कथाएं क्यों जुड़ जाती हैं। कृपा करके समझाइए।

महत्वपूर्ण है यह। सभी बुद्धपुरुषों के साथ पुराण कथाएं जुड़ जाती हैं। कारण है।

पहली बात, बुद्धपुरुषों के जीवन से अगर हम कथाओं को अलग कर लें, तो बचता क्या है! कोरा खाका बचता है--बुद्ध कब पैदा हुए, किस तारीख को पैदा हुए, किस घर में पैदा हुए। लेकिन इसको जानने से क्या होगा? पहली तारीख को पैदा हुए कि दूसरी तारीख को पैदा हुए कि तीसरी तारीख को पैदा हुए, इससे क्या अंतर पड़ता है! कभी पैदा हुए, इससे क्या अंतर पड़ता है! कब मरे, इससे क्या अंतर पड़ता है! बुद्धपुरुषों का मूल्य तो कुछ ऐसी चीज से है जो न कभी पैदा हुई और न कभी मरी। जो पैदा हुआ और मरा, वह तो देह थी, वह तो रूप था। उसके संबंध में हिसाब रखने से कुछ भी सार नहीं है। वह तो गौण है, असार है।

उस असार पर ध्यान देता है इतिहास। पुराण पकड़ता है सार को। पुराण यह फिकर नहीं करता कि बुद्ध कब पैदा हुए, पुराण यह फिकर करता है कि बुद्धत्व क्या है? पुराण अखबार नहीं है, घटनाओं की चिंता नहीं करता, घटनाओं के पीछे अंदर छिपी आभा को पकड़ता है।

दोनों में बड़ा फर्क है। दोनों पकड़ने के बिल्कुल अलग ढंग हैं।

बुद्धत्व क्या है, यह एक बात है; और गौतम बुद्ध कौन हैं, यह बिल्कुल दूसरी बात है। गौतम बुद्ध इतिहास के अंग हो जाएंगे। लेकिन इतिहास में तुम क्या पाओगे? एक छोटी सी टिप्पणी कि गौतम बुद्ध नाम का बेटा शुद्धोदन नाम के राजा के घर पैदा हुआ। मां का नाम यह था, इतनी उम्र में घर छोड़कर चला गया। फिर इतनी उम्र में लोग कहते हैं कि ज्ञानी हो गया, फिर इतनी उम्र में प्रचार करने लगा, लोगों को समझाने लगा। फिर अस्सी साल की उम्र में मर गया। यह ऊपरी ढांचा है। यह असली बात नहीं है। यह तो बहुत रेखाचित्र जैसा हुआ, इसमें मांस-मज्जा बिल्कुल नहीं है। मांस-मज्जा तो बड़ी और बात है।

उस रात जब बुद्ध ने अपना महल छोड़ा, तो बुद्ध के भीतर क्या हुआ? महल छोड़ा, यह बाहर की घटना है, यह इतिहास में आ जाएगी। लेकिन महल छोड़ते वक्त बुद्ध की चेतना में कैसे तूफान उठे, कोई इतिहास उन्हें अंकित नहीं कर सकता। कैसा आंदोलन उठा--उठा होगा आंदोलन, सुंदरतम पत्नी को छोड़कर जाते थे, अभी-अभी पैदा हुए बेटे को छोड़कर जाते थे--कैसा तूफान उठा? छोड़कर जब गए, आखिरी बार मन हुआ कि जाकर एक बार और देख लें, कम से कम बेटे को देख लें, फिर दुबारा तो देखने मिले न मिले! बेटा मां के आंचल में छिपा हुआ सो रहा था, करवट लिए यशोधरा सोयी है। बुद्ध को मन हुआ कि आंचल उठाकर बेटे का मुंह देख लें। फिर सोचकर रुक गए कि अगर आंचल उठाया, कहीं यशोधरा जग गयी, तो फिर मैं जा सकूंगा या न जा सकूंगा? कहीं यशोधरा रोने लगी, चीखने-चिल्लाने लगी, तो मैं जा सकूंगा या न जा सकूंगा? तो बिना आहट किए चुपचाप लौट गए द्वार से।

अब यह बात घटी कि नहीं, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है, मगर यह बात घटनी चाहिए। इस फर्क को समझना। इतिहास कहेगा कि हम तो इसे तब लिखेंगे जब यह घटी हो। पुराण कहेगा, यह घटी या नहीं घटी, यह बात तो बिल्कुल अर्थहीन है, लेकिन यह घटनी चाहिए। फर्क समझ रहे हो! घटनी चाहिए।

जिस स्त्री को प्रेम किया, जिस स्त्री से बच्चा पैदा हुआ, तुम्हारा बेटा पैदा हुआ, उसके द्वार तक न जाओगे? बुद्ध गए कि नहीं, यह बात जरा भी महत्वपूर्ण नहीं है, मगर जाना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव है कि जाएगा। यह मनुष्य के स्वभाव का लक्षण है कि जाएगा--बेटे को तो देख लें! फिर दुविधा खड़ी हुई होगी--हुई या नहीं, ख्याल रखना, महत्वपूर्ण नहीं है--हो सकता है बुद्ध चुपचाप भाग गए हों, गए ही न हों वहां। नहीं, लेकिन मुझे भी लगता है पुराण महत्वपूर्ण है, बुद्ध को ले गया पुराण वहां। यह सभी मनुष्य के भीतर घटेगा।

तुम थोड़ा सोचो, एक रात, आधी रात तुम घर छोड़कर जाने लगे, अपनी पत्नी को एक बार न देख लेना चाहोगे--जिसे इतना चाहा, जिसे सारी चाहत दी! अपने बेटे पर एक दफा हाथ न फेर लेना चाहोगे? यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह मनोवैज्ञानिक है। ऐतिहासिक है या नहीं, इससे कुछ अर्थ नहीं।

तो जिसने यह बात लिखी, वह मनुष्य के मन को समझकर लिख रहा है। हो सकता है, बुद्ध जिद्दी किस्म के आदमी रहे हों और चले गए हों। लेकिन बात जंचेगी नहीं। अगर ऐसा लिखा जाए कि बुद्ध चुपचाप उठे और चल दिए और लौटकर भी न देखा, तो यह बात मानवीय नहीं है, अमानवीय हो जाती है। आदमी तो लौट-लौटकर देखेगा, पछताएगा, सोचेगा हजार बार, लौट-लौट आएगा, जाकर भी लौट-लौट आएगा।

फिर कथा कहती है--चलो यह भी बात समझ में आ जाती है कि शायद हुई भी हो, ऐतिहासिक भी हो सकती है--जब बुद्ध अपने रथ पर सवार होकर चलने लगे तो उनके घोड़े की टापें इतने जोर से पड़ती हैं कि सारा नगर जग जाएगा। राजा के घोड़े, राजा का रथ, घोड़े की टापें--वे श्रेष्ठतम घोड़े थे उस समय के, उनकी टापें इतने जोर से पड़ेंगी कि सारा गांव जाग जाएगा, अड़चन हो जाएगी। पुराण कहता है, देवताओं को लगा कि कहीं लोग जाग गए तो बुद्ध का यह जो महा अभिनिष्क्रमण है, रुक जाएगा। देवताओं को लगा!

देवता प्रतीक है शुभ का, जैसे शैतान प्रतीक है अशुभ का। कोई देवता कहीं है, ऐसा नहीं है। लेकिन देवता प्रतीक है शुभ का--इस अस्तित्व को भी शुभ को बचाने की आकांक्षा होती है, होनी चाहिए, ऐसा पुराण कहता है।

तो देवताओं को लगा कि यह घोड़ों की टाप से तो बुद्ध का जाना न रुक जाए। बुद्ध का जाना रुका, तो अनंत-अनंत काल में कभी कोई बुद्ध होता है, वह महा घटना रुक जाएगी। अगर बुद्ध बुद्ध न हुए, तो करोड़ों लोग जो उनके पीछे चलकर बुद्धत्व की यात्रा करते, वे वंचित रह जाएंगे। तो अस्तित्व में जो शुभ का तत्व है, उसने तत्क्षण इंतजाम किया। उसने बड़े-बड़े कमल के फूल बिछा दिए, घोड़ों के पैर कमल के फूलों पर पड़ने लगे, उनकी चोट गांव में किसी को सुनायी न पड़ी।

अब यह हुआ, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। मगर ऐसा होना चाहिए, यह हमारी आकांक्षा है। पुराण मनुष्य की उदात्त आकांक्षा है।

पुराण यह कह रहा है, यह अस्तित्व हमारे प्रति उपेक्षापूर्ण नहीं हो सकता, जब तुम शुभ करोगे तो अनंत शक्तियां तुम्हारा साथ देंगी। इस बात को प्रतीक में रख दिया। जब तुम बुरा करोगे, तब तुम अकेले; जब तुम भला करोगे, तो सारा अस्तित्व तुम्हारा साथ देगा। होना भी ऐसा ही चाहिए! होना भी ऐसा ही चाहिए।

नहीं तो फिर अस्तित्व का अर्थ हुआ कि वह तटस्थ है, उसे हमारे जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है--हम चोरी करें, हत्या करें; या हम पुण्य करें, दान करें; हम प्रेम करें कि घृणा करें; हम धन जुटाएं कि ध्यान में उतरें, अस्तित्व को कोई प्रयोजन नहीं है। यह दुनिया बड़ी फीकी हो जाएगी। इसका अर्थ हुआ, कुछ लेना-देना नहीं है

अस्तित्व को, हम कुछ भी करते रहें। फिर हमारे करने का मूल्य क्या है? फिर हमने धन इकट्ठा किया कि ध्यान इकट्ठा किया, अगर दोनों में अस्तित्व कोई भेद ही नहीं करता, तो फिर यहां साधु-असाधु बराबर।

पुराण कहता है, नहीं, अस्तित्व फिक्र करता है। जब तुम बुरा करते हो, तब तुम अकेले, तब तुम्हें अस्तित्व साथ नहीं देता। बुरे के तुम अकेले जिम्मेवार हो। तो बुरा करते वक्त ख्याल रखना। और जब तुम शुभ करते हो तो सारा अस्तित्व साथ देता है। अस्तित्व चाहता है कि शुभ हो। इस महत्वाकांक्षा को, इस अभीप्सा को प्रगट किया है कथा में।

कथा में तो प्रतीक होते हैं, कहानी में तो प्रतीक होते हैं, प्रतीकों में बात छिपी होती है। देवताओं ने कमल के फूल बिछा दिए, घोड़ों की टाप किसी को सुनायी नहीं पड़ी। देवताओं ने ऐसी नींद फैला दी गांव में कि सारी राजधानी गहरी निद्रा में खो गयी। जो द्वार था गांव का, उसके खुलने की आवाज कोसों तक सुनायी पड़ती थी--पुराने राजकोटों के द्वार--जब द्वार खोला गया तो सारा गांव जैसे क्लोरोफार्म दे दिया गया।

अब ऐसा हुआ हो, यह सवाल नहीं है। यह पूछना ही मत कि ऐसा हुआ कि नहीं हुआ। यह पूछा कि तुमने गलत प्रश्न पूछा। मगर ऐसा होना चाहिए। बुद्ध के महा अभिनिष्क्रमण की रात्रि, जीवन के शुभतत्व ने सब तरह से साथ दिया।

पुराण का अर्थ होता है, जो दिखायी पड़ता है वही नहीं, जो अनदिखा है उसको उघाड़ना है। जो दिखायी पड़ता है वह तो इतिहास पकड़ लेगा, जो नहीं दिखायी पड़ता उसे पुराण पकड़ता है। पश्चिम में पुराण जैसी कोई बात नहीं है, इसलिए पश्चिम का इतिहास दरिद्र है। पश्चिम के इतिहास में काव्य नहीं है। जब इतिहास में काव्य जुड़ जाता है तो पुराण पैदा होता है। पूरब ने इतिहास नहीं लिखा, पुराण लिखा, पश्चिम ने इतिहास लिखा।

इसलिए जब पश्चिम का कोई विचारक आता है तो वह व्यर्थ की बातें पूछता है, वह कहता है कि बुद्ध इस तारीख में हुए कि नहीं हुए? इस पर वर्षों मेहनत करते हैं लोग कि किस तारीख को पैदा हुए। हम इसकी चिंता ही नहीं करते, हम कहते हैं, कोई भी तारीख काम दे देगी।

अब देखो, बुद्ध के जीवन में यह उल्लेख है कि बुद्ध पूर्णिमा की रात्रि में पैदा हुए। फिर पूर्णिमा की रात्रि में ही संबोधि को उपलब्ध हुए, फिर पूर्णिमा की रात्रि में ही मरे। यह बात पुराण की लगती है, इतिहास की नहीं लगती। ऐसा हो भी सकता है संयोगवशात, कोई आदमी पूर्णिमा को ही पैदा हो, पूर्णिमा ही को ज्ञान को उपलब्ध हो, पूर्णिमा को ही मरे, लेकिन यह बात जरा पौराणिक मालूम पड़ती है, ऐतिहासिक कम। वही दिन पैदा होना, वही दिन ज्ञान को पाना, वही दिन मर जाना, इतना संयोग बैठना जरा मुश्किल होता है। यह शायद इतिहास की बात नहीं भी हो, लेकिन यह बात मूल्यवान है।

पूर्णिमा तो प्रतीक है पूर्णता का। उस पूर्णता के प्रतीक को पकड़कर पुराण कहता है, बुद्ध पूरे पैदा हुए--पूर्णिमा की रात पैदा हुए--शीतल पैदा हुए, पूरी छवि से पैदा हुए, पूरे सौंदर्य से पैदा हुए, अपूर्व अमृत को लेकर पैदा हुए। फिर पूर्णिमा की रात्रि ही उनके भीतर छिपा हुआ यह अमृत बहा, प्रगट हुआ, स्फुटित हुआ, यह कमल खिला। फिर पूर्णिमा की रात को ही बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए, क्योंकि ज्ञान भी पूर्णिमा की रात्रि है। फिर बुद्ध पूर्णिमा की रात्रि ही विदा हुए, क्योंकि मृत्यु भी बुद्ध की पूर्ण होगी, जन्म भी पूर्ण होगा। बुद्ध के जीवन में सभी पूर्ण है। इस बात को कहने के लिए कि बुद्ध के जीवन में सभी पूर्ण है, हमने यह प्रतीक चुन लिया, यह पूर्णिमा की रात्रि। प्रतीक लोग अलग-अलग चुनते हैं, लेकिन प्रतीक मूल्यवान न होकर, प्रतीकों में जो हम अर्थ डालते हैं वह मूल्यवान है।

इसलिए बुद्धपुरुषों के पास पुराण खड़ा होता, पुराण कथाएं निर्मित होतीं। उन्हीं पुराण कथाओं के अर्थ को पकड़ लेकर तुम बुद्धत्व को समझोगे कि क्या अर्थ है।

दुनिया में दो तरह के नासमझ हैं। एक हैं जो सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि ये पुराण कथाएं सच हैं, ऐतिहासिक अर्थों में सच हैं, ये पागल हैं। इनकी वजह से व्यर्थ की झंझट खड़ी होती है। ये कविताओं को सत्य सिद्ध करने में लग जाते हैं। जैसे किसी ने कहा कि चांद को देखकर मुझे अपनी प्रेयसी की याद आ गयी, और चांद ऐसे लगा जैसे मेरी प्यारी का मुखड़ा हो।

अब तुम इससे झगड़ा करने लग सकते हो कि चांद और प्यारी के मुखड़े में कोई संबंध नहीं है। कहां चांद, कहां प्यारी का मुखड़ा! तुम्हें कुछ होश है! कितना बड़ा चांद और कितना सा मुखड़ा, छोटा सा। अब यह प्यारी के ऊपर इतना बड़ा चांद रख दो तो मर ही जाएगी। और चांद, तुम्हें पता है, अभी तो वैज्ञानिक पत्थर-कंकड़ भी ले आए वहां से, वहां कुछ सौंदर्य नहीं है। कंकड़-पत्थर, मिट्टी, खाई-खड्ड, यही है। कहां प्यारी का मुखड़ा और कहां चांद! कहां खाई-खड्डों से तुम प्यारी के मुखड़े की बात कर रहे हो! होश में हो?

अगर कोई ऐसी जिद्द करे तो मुश्किल में डाल देगा। तुम सिद्ध न कर पाओगे, तुम कहोगे कि क्षमा करो, कविता लिखी, गलती हो गयी।

मगर तुम समझे नहीं। क्योंकि कविता जिसने लिखी थी वह यह कह भी नहीं रहा था, जो तुम कह रहे हो। वह तो इतना ही कह रहा था कि कुछ साम्य, कुछ तालमेल, चांद को देखकर किसी सौंदर्य का भीतर आगमन, चांद को देखकर भीतर किसी लहर का जन्म लेना। वह लहर ठीक वैसे ही है जैसी मेरी प्रेयसी के चेहरे को देखकर मेरे भीतर लेती है। उन दोनों सौंदर्यों में कुछ समता है, कुछ तालमेल है--एक ही वेवलेंथ--इतना ही कह रहा है वह।

यह नहीं वह कह रहा कि चांद और मेरी प्रेयसी का मुखड़ा एक सी चीज हैं, वह कोई गणित के हिसाब से नहीं बोल रहा है, वह इतना ही कह रहा है कि चांद को देखकर भी मेरे भीतर कुछ वैसी ही कसमसाहट हो जाती है जैसी मेरी प्यारी के चेहरे को देखकर हो जाती है। चांद के साथ भी मैं वैसा ही लवलीन हो जाता हूं जैसा मैं अपनी प्यारी के चेहरे को देखकर लवलीन हो जाता हूं, इतना ही कह रहा है। वह एक साम्य की बात कर रहा है। और साम्य बड़ा बारीक है और साम्य चांद में और प्यारी के चेहरे में नहीं है, साम्य उसके हृदय में है।

तो जिन्होंने लिखा है कि बुद्ध पूर्णिमा को पैदा हुए, बुद्ध पूर्णिमा को ज्ञान को उपलब्ध हुए, बुद्ध ने पूर्णिमा को शरीर त्यागा, हो सकता है यह पूर्णिमा उनके भक्तों के हृदय में हो, यह भक्तों ने अनुभव किया हो कि ऐसा होना ही चाहिए। बुद्ध और किसी और दिन पैदा हो जाएं, यह बात जंचेगी नहीं। अब जैसे दसमी को पैदा हो गए, जरा जंचेगी नहीं, जरा बेहूदा लगेगा, ऐसा होना नहीं चाहिए कि बुद्ध और दसमी को पैदा हो गए! कि ग्यारस को ज्ञान हो गया! यह बात कुछ जंचेगी नहीं। जरा सोचो तुम, दसमी को बुद्ध का पैदा होना जंचता नहीं, पूर्णिमा को बात बिल्कुल ठीक पड़ती है, ऐसा होना चाहिए। जिन्होंने बुद्ध को प्रेम किया है, उनके हृदय में झांको तो बात ख्याल में आ जाएगी।

जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो कथाएं कहती हैं, जिस वन में निरंजना के तीर पर बैठकर उनको ज्ञान हुआ, अचानक बेमौसम फूल खिल गए। अगर कोई वैज्ञानिक इसका परीक्षण करने जाएगा तो मुझे लगता नहीं कि कोई बेमौसम फूल खिलेंगे। लेकिन खिलने चाहिए। इतने लोगों के हृदय के फूल खिले, इसको कैसे प्रगट करें! इसको प्रगट करने के लिए एक व्यवस्था खोज ली, एक काव्य बनाया कि जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो वृक्षों में

बेमौसम फूल खिल गए। अभी मौसम न था, लेकिन इतनी बड़ी घटना घटी हो तो कौन मौसम की और गैर-मौसम की फिकर करता है, यह मौका आ गया है कि फूल खिलने ही चाहिए। सूखे वृक्ष पुनः हरे हो गए, जिनमें वर्षों से अंकुर नहीं आए थे फिर अंकुर आ गए। होना चाहिए ऐसा। कितने सूखे हृदय अंकुरित हुए! इसको कैसे कहोगे? कितने लोग जन्मों से सूखे पड़े थे, बुद्ध का अमृतकण उन पर पड़ा और वे हरे हो गए और उनमें नए अंकुर आ गए और जीवन ने नयी हरियाली देखी, नए गीत गाए। इस बात को प्रतीक की तरह स्वीकार करके, तो फिर पुराण का अर्थ साफ हो जाएगा।

तो एक तो इस तरह के पागल हैं, जो सिद्ध करते हैं कि जो पुराण में लिखा है वह वैसा ही है। वे भी पुराण की हत्या कर देते हैं। और दूसरे ऐसे भी पागल हैं, वे कहते हैं कि जो भी पुराण में है वह सब असत्य है। वे भी हत्या कर देते हैं।

न तो सब सत्य है और न सब असत्य है। पुराण में बड़ा काव्यात्मक सत्य है। काव्यात्मक सत्य का अर्थ होता है, सत्य बड़े प्यारे और मीठे ढंग से कहा गया है। जब हम किसी बात को प्यारे और मीठे ढंग से कहते हैं तो असत्य का उपयोग किया जाता है। सत्य को इस ढंग से उपयोग किया गया है और असत्य को इस ढंग से उपयोग किया गया है कि दोनों में विरोध नहीं रहा। पुराण का अर्थ है, सत्य को कहने में असत्य का भी उपयोग कर लिया है।

यह बड़ी अदभुत बात है। होना ऐसा ही चाहिए कि असत्य भी सत्य की सीढ़ी बन जाए। असत्य का भी उपयोग कर लिया, उसको भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। काव्य का भी उपयोग कर लिया, कथा का भी उपयोग कर लिया, उसको व्यर्थ नहीं जाने दिया। कुछ छोड़ा नहीं, जीवन में जो भी था सबको ठीक से जमा लिया उस महासंगीत के लिए।

तो बुद्धपुरुषों के पास कथाएं पैदा होती हैं। अनूठी कथाएं पैदा होती हैं। उस आदमी को मैं ठीक-ठीक समझदार आदमी कहता हूं, जो न तो पुराण को अक्षरशः सत्य सिद्ध करने की चेष्टा करता है और न अक्षरशः झूठ सिद्ध करने की चेष्टा करता है। जो पुराण को काव्य की तरह समझने की कोशिश करता है। और तब बड़े अर्थ प्रगट होते हैं। ऐसे अर्थ जो किसी और ढंग से न तो लिखे जा सकते थे, न कहे जा सकते थे। पुराण एक अनूठी शैली है जीवन के गहन सत्यों को प्रगट करने के लिए।

पांचवां प्रश्नः कुछ दिन पहले कुछ सांसारिक मन वाले भोगी कच्चे भिक्षुओं की चर्चा पर आपने प्रकाश डाला। कृपा कर बताएं कि ऐसे बिन-पके लोगों को भी बुद्ध ने भिक्षु-दीक्षा क्यों दी?

पके लोग कहां से लाओगे? पके ही लोग होते तो दीक्षा की जरूरत क्या थी? यह तो तुमने ऐसा प्रश्न पूछा कि जैसे किसी डाक्टर से पूछो कि बीमारों का इलाज क्यों करते हो? तो क्या स्वस्थ लोगों का इलाज किया जाए! बीमार का ही इलाज होगा और कच्चे को ही दीक्षा देनी होगी।

दीक्षा का अर्थ ही है कि पकाने का प्रयास। तो कच्चे को ही तो देनी होगी! पागल को ही तो स्वस्थ करना है। बीमार को ही तो रोग से मुक्त करना है। उपाधियों के लिए ही तो औषधि खोजनी है।

तो तुम पूछते हो कि "बुद्ध ने दीक्षा क्यों दी?"

कुछ हमारा मन ऐसा है कि हम अपने में भूल-चूक खोजने की बजाय बुद्धों में भूल-चूक खोजने में ज्यादा रस लेते हैं। अब यह कहानी ऐसी थी कि तुम्हें अपने भीतर देखना था कि तुम्हारे भीतर भी ऐसा धन, पद, मद

का मोह तो नहीं छिपा है। वह तो नहीं देखा। तुमने कहा, अरे, तो बुद्ध में कुछ गड़बड़ मालूम होती है! ऐसे कच्चे आदमियों को दीक्षा ही क्यों दी? और जिस आदमी को इतना ही पता नहीं है, कौन कच्चा, कौन पक्का, उसको और क्या पता होगा? तुम्हारा मन अपनी भूल में नहीं उतरता, तुम बुद्धों की भूल में ज्यादा रस लेते हो। शायद बुद्धों की भूल पाकर तुमको थोड़ा मजा भी आता है। मजा यह आता है कि देखो, अरे, इनसे तो हमीं ज्यादा बुद्धिमान हैं! हमको दिखायी पड़ रहा है कि ये आदमी कच्चे हैं, इनको दीक्षा नहीं देनी चाहिए और बुद्ध ने दे दी।

तो पके आदमी कहां हैं? तब तो फिर बुद्ध बुद्धों को ही दीक्षा दे सकते हैं। लेकिन बुद्ध बुद्धों के पास दीक्षा लेने किसलिए जाएंगे! प्रयोजन क्या है!

ख्याल रखो, कच्चा आदमी ही जाता है। कच्चे आदमी को ही जरूरत है। बुद्ध के पास, बुद्ध की आंच में बैठकर पकेगा। तो यह कुछ अनहोनी घटना नहीं है कि तुम सोचो कि यह कुछ बुद्ध की भूल थी।

तुम यहां मेरे पास हो, तुम क्या सोचते हो, तुम पके हो इसलिए दीक्षा दे दी। तो दर्पण में अपना चेहरा देखना। तुम कच्चे हो और तुममें कच्चेपन की सारी भूलें हैं। और सारी भूलों को जानते हुए दीक्षा दी गयी है। दीक्षा दी गयी है, तुम्हारे भविष्य को ध्यान में रखकर, तुम्हारे अतीत को ध्यान में रखकर नहीं। तुम अब तक क्या रहे हो, इसको ध्यान में रखा जाए तो दीक्षा तुम्हें दी नहीं जा सकती। तुम क्या हो सकते हो, उस आशा में दीक्षा दी गयी है। एक फल कच्चा है, कच्चा अब तक है, लेकिन पक सकता है न! उस पक सकने की संभावना को दीक्षा दी गयी है। तुम कैसे हो, इसकी चिंता नहीं है, तुम क्या हो सकते हो, तुम्हारी अंतिम पराकाष्ठा को ध्यान में रखकर दीक्षा दी गयी है। तुम निखरोगे तो क्या हो जाओगे, तुम आग से गुजरोगे तो कैसे स्वर्ण, कुंदन, कैसे शुद्ध कुंदन होकर निकल आओगे, उसको ध्यान में रखकर दीक्षा दी गयी है। तुम्हें ध्यान में रखा जाए तब तो दीक्षा ही नहीं दी जा सकती।

तिब्बत में कथा है। एक बहुत पहुंचा हुआ फकीर हुआ, वह जीवनभर इनकार करता रहा, वह किसी को दीक्षा न दे। क्योंकि वह इतनी शर्तें लगाए कि वे शर्तें कोई पूरी न कर पाए, वह पक्के आदमी की तलाश में था। उसकी शर्तें ऐसी थीं कि कोई आदमी पूरी कर ही नहीं सकता था। वह पूछे कि निर्विचार हो गए हो? ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए हो? अब इस तरह की बातें। अगर कोई ब्रह्मचर्य को और निर्विचार को उपलब्ध हो गया हो, तो महाराज, आपकी शरण क्यों आए! तो आपने अस्पताल स्वस्थों के लिए खोल रखा है? धीरे-धीरे लोग हिम्मत ही छोड़ दिए, कोई पूछने की हिम्मत ही न करे कि महाराज, दीक्षा!

मरने के पहले, तीन दिन पहले, उसने गांव में खबर भेजी कि जिसको भी दीक्षा लेनी हो आ जाओ। लोग तो भरोसा ही न कर सके, क्योंकि यह खबर आयी कि जिसको भी! कुछ लोग पता लगाने आए कि कुछ गलतफहमी तो नहीं हो गयी, क्योंकि यह आदमी सत्तर साल से इनकार कर रहा है, एक आदमी को दीक्षा नहीं दी, आज बाजार में खबर भेजी है कि जिसको भी; लेना उसको, नहीं लेना उसको, वह भी आ जाए, उसको भी देंगे।

एक आदमी खबर लेने भेजा। वह आदमी पहाड़ी की गुफा में चढ़कर गया, उसने कहा, महाराज, ऐसी खबर पहुंची है गलत ही होनी चाहिए, कि आपने कहा कि जिसको भी दीक्षा लेनी हो! उसने कहा कि हां, जिसको भी दीक्षा लेनी है और देर न करो, जो आना चाहता है उसको ले ही आना। जरा भी इच्छा कोई प्रगट करे, उसको ले ही आना। पर उस आदमी ने कहा, आप जिंदगीभर तो कहते रहे, ये-ये शर्तें पूरी... उस फकीर ने कहा, तुम समझे नहीं; अब तक मैं योग्य ही नहीं था किसी को दीक्षा देने के, इसलिए बहाने खोजता था। बड़ी-बड़ी शर्तें लगा रखी थीं। अब मैं योग्य हुआ हूं, अब जो भी आए, चलेगा। और अब ज्यादा देर भी मैं यहां रहने

को नहीं, केवल तीन दिन। तो तीन दिन में जो भी आ जाए, दीक्षा दे देनी है। जो मुझे मिला है, बांट देना है। अब पात्र-अपात्र की फिक्र छोड़ो; बुरा-भला, इसकी फिक्र छोड़ो; तुम तो गांव में जाकर डुंडी पीट दो कि मैं तीन दिन और हूं। और मुझे उपलब्ध हो गया है, इसलिए जिसे भी लेना हो, आ जाए।

यह कथा बड़ी महत्वपूर्ण है। बुद्धत्व को जो उपलब्ध हो गया है, वह तो अंतिम को भी दीक्षा देने को तैयार हो जाएगा, हो ही जाना चाहिए। जो आखिरी शिखर पर पहुंच गया है, उसकी करुणा इतनी होगी कि जो नीचे खड्ड में पड़ा है, आखिरी खड्ड में पड़ा है, वह उसको भी पुकारेगा। जानते हुए कि तुम्हारे कपड़े कीचड़ से सने हैं और तुम्हारे हृदय में बहुत घाव हैं। लेकिन यह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। ये तुम्हारी भूल-चूकें हैं, जो कि काटी जा सकती हैं, जो कि हटायी जा सकती हैं। ये घाव भर जाएंगे, यह कीचड़ धुल जाएगी। तुम्हारे कपड़ों को थोड़े ही दीक्षा दी जा रही है, तुम्हें दीक्षा दी जा रही है। तुम्हारे कर्म तो तुम्हारे वस्त्र हैं। तुमने बुरे कर्म किए हैं तो कपड़े गंदे हो गए हैं। तुम्हारे नग्न स्वभाव को दीक्षा दी जा रही है।

जब बुद्ध किसी को दीक्षा देते हैं तो देखते हैं--क्या हो सकता है? बीज को थोड़े ही दीक्षा देते हैं, वृक्ष को दीक्षा देते हैं जो अभी हुआ ही नहीं है।

जब मैं तुम्हारे गले में माला डालता हूं तो तुम्हारे गले में थोड़े ही माला डालता हूं, उस गले में माला डालता हूं जो अभी होने को है। जब मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं तो तुम्हें थोड़े ही आशीर्वाद देता हूं, क्योंकि तुम्हें तो आशीर्वाद मिल जाए तो खतरा होगा। तुम तो अपनी गलतियों में और मजबूत होकर बैठ जाओगे। उसे आशीर्वाद देता हूं जो जन्मने को है। तुम तो मात्र गर्भ हो, तुम्हारे गर्भ में जो छिपा है; तुम तो मात्र बीज हो, तुम्हारे वृक्ष को आशीर्वाद देता हूं।

स्वभावतः दीक्षा के बाद भी तुम भूल-चूक करोगे। इसमें कुछ अड़चन नहीं है, करोगे ही। और तुम भूल-चूक करोगे और बुद्धों का काम होगा कि वे तुम्हें सजग करते रहें, चेताते रहें।

तो ये बौद्ध भिक्षु बैठकर बात कर रहे हैं धन की, पद की, राज्य की, बुद्ध चौंकाने के लिए पहुंच गए हैं कि अरे पागलो, यह तुम क्या बात कर रहे हो!

तुम यह मत समझना कि बुद्ध चौंके। बुद्ध जानते हैं कि यही बात होगी, और बात क्या होगी!

इस फर्क को समझ लेना। जब बुद्ध कहते हैं, अरे भिक्षुओ! तुम और ऐसी बातें कर रहे हो, तो तुम यह मत सोचना कि बुद्ध चौंक गए हैं। बुद्ध तो जानेंगे कि यही बातें होंगी, खाई-खड्ड में पड़े लोग और क्या करेंगे! जब बुद्ध ऐसा चौंकन्नापन प्रगट करते हैं तो वह सिर्फ भिक्षुओं को चौंका रहे हैं। वह कहते हैं कि तुमसे ऐसी अपेक्षा नहीं है, उठो अब, बहुत हो गया, अब छोड़ो भी, अब भिक्षु भी हो गए, अब ऐसी बात कर रहे हो! अब छोड़ो! जानते हुए कि अभी यह बात चलेगी। और क्या तुम सोचते हो, उन भिक्षुओं ने उस दिन बात सुनकर छोड़ दी होगी! इतनी जल्दी तुम भी नहीं छोड़ते, कोई भी नहीं छोड़ता। समय लगता है, बार-बार चोट करनी पड़ती है। चोट करते ही रहनी पड़ती है। गुरु की सतत चोट पड़ती रहती है, पड़ती रहती है, पड़ती रहती है, एक दिन बीज टूटता है।

छठवां प्रश्नः जीवन के द्वंद्वात्मक विकास में और निर्द्वंद्व अवस्था में कैसा संबंध है?

निर्द्वंद्व अवस्था ऐसी है जैसे बैलगाड़ी चलती है तो उसके घूमते हुए चाक के बीच की कील। कील नहीं घूमती, चाक घूमता है। और द्वंद्वात्मक अवस्था वैसी है जैसा घूमता हुआ चाक। चाक घूमता है न घूमती हुई कील पर।

जो घूम रहा है, वह संसार, और जो नहीं घूम रहा है, वही परमात्मा।

जो कील की तरह तुम्हारे भीतर थिर है, वही तुम्हारा केंद्र, और जो चाक की तरह तुम्हारे भीतर घूम रहा है--तुम्हारा मन--वही संसार। जो घूमता हुआ मन है, वह द्वंद्वात्मक है, वह विकासशील है, वह हो रहा है, रोज हो रहा है, रोज जा रहा है, चल रहा है, चल रहा है। और तुम्हारे भीतर कुछ है जो न हो रहा है न उसको होना है, है; शाश्वत है, थिर है, उसका कोई विकास नहीं। जैसा है वैसा ही सदा से है।

जो विकासमान है तुम्हारे भीतर--मन--वही है समय, टाइम, काल, परिवर्तन। और जो तुम्हारे भीतर विकास के पार बैठा है, निर्द्वंद्व, असंग, सदा से शांत, थिर, पालथी मारे, कभी हिला भी नहीं, अकंप, वह जो अकंप तत्व तुम्हारे भीतर बैठा है वह है कालातीत, समय के बाहर। संसार से स्वयं की तरफ जाने का अर्थ इतना ही है, चाक से कील की तरफ जाना; घूमते को छोड़ना, न घूमते को पकड़ना। क्योंकि घूमते के साथ खूब पिस लिए, चाक के साथ बंधे रहोगे तो पिसोगे ही। चाक के साथ बंधा आदमी पिसेगा ही, कष्ट पाएगा ही। चाक तो घूमता रहेगा और आदमी भी उसके साथ पिरता रहेगा। पुराने दिनों में सजा देते थे किसी को तो रथ के चाक से बांध देते थे। मर जाता आदमी चाक के साथ घूमता-घूमता। ऐसी ही सजा हम भुगत रहे हैं और किसी और ने हमें चाक से बांधा नहीं, हमने ही बांधा है, हमने ही चुन लिया है कील को।

कबीर का एक पद है। कबीर ने एक औरत को चक्की पीसते देखा, तो उनको ख्याल आया कि इस चक्की के दो पाट हैं और दो पाटों के बीच में जो भी पड़ जाता है वह पिस जाता है।

दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय

तो उन्होंने यह पद लिखा। जब उन्होंने यह पद कहा तो उनके बेटे कमाल ने कहा--कमाल था ही कमाल--उसने कहा, आपने ठीक से नहीं देखा, क्योंकि दोनों पाटों के बीच में एक कील है, जिसने कील का सहारा ले लिया उसको कोई भी नहीं पीस सका। आपने देखा, लेकिन बहुत गौर से नहीं देखा। ठीक है, पाटों के बीच में जो पड़ गए वे पिस गए, लेकिन उनकी भी तो कुछ कहो... ।

कुछ गेहूं के दाने तुमने अगर कभी चक्की पीसी है तो तुम्हें पता होगा, कुछ दाने बड़े होशियार होते हैं, वे एकदम सरककर कील को पकड़ लेते हैं; सब पिस जाएगा, जब तुम चक्की का पाट उठाओगे, देखोगे कुछ दाने जिन्होंने कील का सहारा पकड़ लिया, बच गए। ये कील का सहारा पकड़ लेने वाले गेहूं ही बुद्धपुरुष हैं। और क्या।

संसार में तो सब द्वंद्वात्मक है।

धूल उड़ाता बगिया से पतझार गया
रितुपति फूल लुटाने वाला आएगा
किसके लिए रुका है मेला दुनिया में
किसके लिए उमरभर तक जग रोया है
विरह नहीं क्षणभर का जो सह सकता था
सुबह चिता को फूंक शाम घर सोया है

किसी एक के लिए नहीं रुकती हलचल
जाने कब से है ऐसी ही चहल-पहल
जाने वाला सूना कर घर-द्वार गया
धूम मचाता आने वाला आएगा
ओंठ सिसकते हैं जो, गीत सुनाते हैं
तपती है जो धरा, वही बरखा पाती
अग्नि-परीक्षा देता वह कंचन बनता
रोने वाली आंखें ही तो मुस्कातीं
धूप-छांव संग-संग रहते ज्वाला-पानी
अगर नहीं तो शाम-सुबह के क्या मानी
तन झुलसाता सूरज का अंगार गया
पथ छलकाता शशि का ग्वाला आएगा

ऐसे द्वंद्व में--दिन गया तो रात, रात गयी तो दिन; सुख गया तो दुख; दुख गया तो सुख--ऐसे द्वंद्व में चलता है मन। सफलता-असफलता, हानि-लाभ, मान-अपमान, ऐसे द्वंद्व में डोलता है मन। मन की सारी गति द्वंद्वात्मक है। और जहां भी द्वंद्व होगा, वहां कलह होगी। जहां भी दो होंगे, वहां घर्षण होगा; जहां घर्षण होगा, वहां शांति नहीं--शांति कैसे संभव है?

इसलिए मन कभी शांत नहीं होता। जब तुम कभी-कभी कहते हो कि मन शांत कैसे हो, तो तुम गलत प्रश्न उठा रहे हो। मन कभी शांत नहीं होता। मन तो जब होता ही नहीं तभी शांति होती है। मन के अभाव में शांति होती है, मन कभी शांत नहीं होता। जहां शांति है वहां मन नहीं और जहां मन है वहां शांति नहीं, क्योंकि मन की तो प्रक्रिया ही दो की है। हर चीज को तोड़कर संघर्ष में डाल देना मन का सूत्र है--दुविधा, दुई, द्वैत।

तो द्वंद्व में तो बड़ा आंतरिक घर्षण, कलह, पीड़ा, विषाद बना रहेगा। वही तो, वही तो बुद्ध कह रहे हैं जीवन--वह जो द्वंद्व का, दो का, बाहर का।

एक निर्द्वंद्व जीवन है--भीतर का, एक का, अद्वैत का। उस एक के जीवन में जो चला गया।

एक झेन फकीर हुआ, जब भी उससे कोई कुछ प्रश्न पूछता तो वह जवाब देने की बजाय एक अंगुली ऊपर उठाकर बता देता। यही उसका उत्तर था। कुल जमा इतना उत्तर जीवनभर उसने दिया। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जो भी उत्तर दिया जा सकता है, उसने दे दिया।

मैं रोज बोलता हूं, मगर उतनी ही बात कह रहा हूं, वह फकीर जो एक अंगुली उठाकर कह देता था--एक। वह कहता था, दो में रहे तो झंझट में, एक में गए तो सब ठीक। दो यानी समस्या, एक यानी समाधि, समाधान। दो यानी संसार, एक यानी निर्वाण। मगर इतना भी वह कहता नहीं था, बस एक अंगुली।

जब वह मर रहा था, तब उसके शिष्य इकट्ठे थे। उन्होंने कहा, शायद अब मरते वक्त कुछ कह दे। कहा तो कुछ कभी नहीं। मरते वक्त, ठीक मरते वक्त, आखिरी क्षण उन्होंने उसे हिलाया और कहा कि गुरुदेव, अब तो कुछ कह दें! वह मुस्कुराया और उसने एक अंगुली ऊपर उठायी और मर गया। बस एक अंगुली उठी रही। उसके नाम पर जापान में जो मंदिर बना है, उसमें बस एक अंगुली की मूर्ति बनी है--ऊपर उठी एक अंगुली।

मरते वक्त भी उसने एक की तरफ इशारा किया। तुम जीवन में भी दो, मरने में भी दो; जागने में भी दो, सोने में भी दो। वह एक ही था--जीवन में भी एक, जागते-सोते, उठते-बैठते एक, मरते में भी एक। मरते क्षण में भी कोई द्वंद्व न था। इतना भी द्वंद्व न था कि मरूं, कि न मरूं, कुछ देर और रुक जाऊं, कि न रुक जाऊं; यह अच्छा है कि बुरा है। जहां एक है, वहां तो चुनाव ही नहीं--जो है, है; जैसा है, ठीक है।

जाने वाले को सजल विदा
आने वाले का स्वागत है
परिवर्तन जीवन का क्रम है
युग के पीछे पल का श्रम है
सृष्टिकार का चक्र न रुकता
गति में स्थिरता विभ्रम है
जड़ चेतन की सजल नियति है
चंचलता में कल्पित यति है
वर्तमान गत पर आधारित
भावी इनका ही अनुगत है
शट ऋतुओं का पुनरावर्तन
सूर्य-चंद्र का नित्यावर्तन
पलभर को भी कभी न रुकता
प्रकृति नटी का चंचल नर्तन
कभी खिलेंगे कभी झरेंगे
सुमन सदाशृंगार करेंगे
नाश और निर्माण एक है
बीज वृक्ष के अंतर्गत है
वर्तमान गत पर आधारित
भावी इनका ही अनुगत है

यहां तो वसंत है, पतझड़ है; फूल का खिलना है, फूल का झड़ना है। यहां हर चीज दो में है। जन्म है और मौत है, जवानी है और बुढ़ापा है, आज सब ठीक है और कल सब खराब हो गया, आज सब खराब है और कल सब ठीक हो गया। यहां तो चाक के आरे जैसे नीचे से ऊपर होते रहते हैं, ऐसा ही जीवन होता रहता है। यहां इस द्वंद्व में कुछ भी थिर नहीं है।

और थिर न होने के कारण बड़ी बेचैनी बनी रहती है, क्योंकि जो भी है उसका भरोसा नहीं है, आज है, कल होगा कि नहीं होगा! पद आज है, कल होगा कि नहीं होगा। धन आज है, कल होगा कि नहीं होगा। प्रियजन आज पास है, कल होगा कि नहीं होगा। यहां तो सब चीजें इतनी तीव्रता से बदल रही हैं कि भरोसा किया ही नहीं जा सकता। यहां तो अंधे ही भरोसा कर सकते हैं कि जो है, वह कल भी रहेगा। आंख वाले तो देखेंगे कि

परिवर्तन ही परिवर्तन है, थिर तो कुछ भी नहीं है। तो फिर हम उसकी तलाश करें जो परिवर्तन के पार है। उसे खोजें, जो शाश्वत है, सनातन है। उसकी खोज ही धर्म है।

कुछ लोग प्रेम के माध्यम से पाते हैं उस एक को, क्योंकि प्रेम एक को उदघाटित कर देता। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही है, दो को एक बना लेना। भक्त जब भगवान के साथ एक हो जाता, तब पकड़ ली कील, तब अब दो पाट उसे नहीं पीस सकते।

या, दूसरी प्रक्रिया है, ध्यान। छोड़ दिया मन, बन गए साक्षी। जब साक्षी बन जाते हैं, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे मन शांत होता जाता है, शांत होता जाता है, एक दिन खो जाता, शून्य हो जाता। जब मन शून्य हो जाता है और साक्षी बचता है, तो फिर बचा एक।

भक्त भगवान के साथ अपने प्रेम को जोड़कर एक हो जाता, ध्यानी संसार के साथ अपने को तोड़कर एक रह जाता। मगर दोनों प्रक्रियाएं एक होने की प्रक्रियाएं हैं। बुद्ध का मार्ग ध्यान का मार्ग है, साक्षी का मार्ग है, वैसा ही जैसा अष्टावक्र का। सहजो, दया, मीरा, उनका मार्ग भक्ति का मार्ग है। परमात्मा को अपने से जोड़ लेना है, ऐसा जोड़ लेना है कि जरा भी बीच में कुछ फासला न रह जाए। यह पता ही न चले कौन भक्त, कौन भगवान, उस घड़ी में दो खो गए। या, साक्षी का भाव निर्मित हो जाए, उस घड़ी में भी दो खो गए।

किसी तरह दो खो जाएं, किसी भी तरह, किसी भी व्यवस्था से तुम चाक की कील पर आ जाओ। उस कील में शाश्वत शांति है, शाश्वत सुख है। उस कील पर पहुंच जाने में तुम अपने केंद्र पर ही नहीं पहुंचे, अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच गए। फिर कोई दुख नहीं। उसे कुछ लोग मोक्ष कहते हैं, कुछ लोग निर्वाण कहते हैं, शब्दों का ही भेद है। लेकिन जिसने उस शरण को पा लिया, एक की शरण को, उसके जीवन से सारे कष्ट ऐसे ही तिरोहित हो जाते हैं जैसे सुबह सूरज के ऊगने पर ओस के कण विदा हो जाते हैं। या जैसे दीए के जलने पर अंधेरा खो जाता है।

जब तक तुम इस एक को न पा लो, तब तक बेचैनी जाएगी नहीं। जब तक तुम इस एक को न पा लो, तब तक तुम तृप्त होना भी नहीं। तब तक इसकी खोज जारी रखना। तब तक जो भी दांव पर लगाना पड़े, लगाना, क्योंकि यही पाने योग्य है। और सब पाकर भी कुछ पाया नहीं जाता। और इस एक को जो पा लेता है, वह सब पा लेता है।

इक साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।

आज इतना ही।